# रसकलस

( रस-संबंधी अनूठा काव्य-ग्रंथ )

रचयिता

साहित्यवाचस्पति, साहित्यरत्न, कविसम्राट्

**स्व० पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'**

प्रकाशक

*हिंदी-साहित्य-कुटीर*

बनारस

तृतीय संस्करण ] चैत्र, २००८, वि० [ मूल्य ४।।)

प्रकाशक

**हिंदी-साहित्य-कुटीर**

बनारस



मुद्रक—
ना० रा० सोमण
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस काशी

# विशेष वक्तव्य

'रसकलस' का जन्म देना सामयिक है या नहीं, इसका विचार रसिक वृंद करे। मुझे जो निवेदन करना है, उसे निवेदन करता हूँ। यह सच है कि व्रजभाषा का वह आदर अब नहीं रहा, किंतु यह भी सत्य है कि जबतक वह बोलचाल की भाषा है, तबतक उसमे जीवन है। उसकी पद अर्चना करनेवाले आज भी पर्याप्त संख्या मे मौजूद है, और उस समय तक उपस्थित रहेंगे, जबतक उसके बोलनेवाले धराधाम पर विद्यमान रहेंगे। भारतवर्ष की जितनी प्रांतिक भाषाएँ मरहठी, बँगला, पंजाबी और गुजराती आदि है, उन सबमे रचनाएँ हो, भोज-पुरी और मैथिली जैसी बोलियो मे कविताएँ लिखी जावे, किंतु व्रज-भाषा का ही सह स्वत्व छीन लिया जावे, ऐसा कहना न्यायसंगत नहीं। जो जिसका प्राकृत अधिकार है, उससे उसको वंचित करना टेढ़ी खीर है, यह किसी के बूते की बात नहीं। इसलिये यह कहना कि अब व्रजभाषा मे कविता करना झख मारना और समय-प्रवाह के विरुद्ध चलना है, यदि प्रमाद नहीं तो अज्ञान अवश्य है। रही शृंगार रस की बात, इस विषय मे मुझे यह कहना है, कि क्या शृंगार रस की रचनाएँ इस योग्य है कि उनको वक्र दृष्टि से देखा जावे, और उनकी कुत्सा की जावे। कदापि नहीं, शृंगार रस ही साहित्य का शृंगार है, जिस दिन वह इस गौरव से वंचित होगा, उसी दिन उसका सौंदर्य नष्ट हो जावेगा। शृंगार रस पर जो खड्ग-हस्त है, वे उसका मर्म जानते ही नहीं; वे अमृत को विष समझ रहे है। अश्लील शृंगार रस अवश्य निंदनीय है, फिर भी उस निंदा की सीमा है, जहाँ वह किसी कला का अंग होगा, वहाँ उसको उसी दृष्टि से ग्रहण करना होगा। जिन्होंने शृंगार रस की कुत्सा करने का बीड़ा ले रखा है वे कलेजे पर हाथ रखकर बतलावे कि क्या

वे सचमुच हृदय से उसे कुत्सा योग्य समझते है, या अंध-परंपरा मे पड़े है। यदि वास्तव मे हृदय से उसे ऐसा समझते है, तो उनकी रचनाओ मे उसका स्रोत क्यो बह रहा है ? और वे क्यो उसकी सरसता मोहकता और व्यापकता पर लट्टू है। समझ लेना चाहिये नायिका भेद की रचनाएँ ही शृंगार रस नहीं है। जिन निरूपणों में प्रेम का आभास है, जिन कविताओ मे प्रकृति की छटाओ का वर्णन है, जहॉ मधुरता, सरलता, हृदयग्राहिता, और सौंदर्य्य है, वहीं शृंगार रस विराजमान है।

मैं वह स्वीकार करता हूँ कि प्राचीन प्रणाली का अनुकरण ही आजकल भी अधिकांश वर्त्तमान ब्रजभाषा के कवि कर रहे है, निस्संदेह यह एक बहुत बड़ी त्रुटि है। समय को देखना चाहिये, और सामयिकता का अपनी कृति मे अवश्य स्थान देना चाहिये। देश-संकटो की उपेक्षा देश-द्रोह है, और जाति के कष्टो पर दृष्टि न डालकर अपने रंग मे मस्त रहना महान् अनर्थ। मातृभूमि की जिसने उचित सेवा समय पर न की वह कुल-कलक है, और जिसने पतित समाज का उद्धार नही किया वह पामर। यह विचार कर ही प्राचीन प्रणाली के कवियो की दृष्टि इधर आकर्षण करने के लिये 'रसकलस' की रचना की गई है। आजतक जितने 'रस-ग्रंथ' बने है, उनमे शृंगार रस का ही अयथा विस्तार है, और रसो का वर्णन नाम मात्र है। इसके अतिरिक्त संचारी भावों के उदाहरण भी प्रायः शृंगार रस के ही दिये गये है, ऐसा न करके अन्य विषयो का उदाहरण भी उनमे होना चाहिये था। 'रसकलस' मे इन सब बातो का आदर्श उपस्थित किया गया है, और बतलाया गया है कि किस प्रकार अन्य रसो के वर्णन का विस्तार किया जा सकता है, और कैसे जाति, देश और समाज संशोधन सबंधी विषयों को उनमें और संचारी भावो में स्थान दिया जा सकता है। इस ग्रंथ में देशप्रेमिका जातिप्रेमिका और समाजप्रेमिका आदि नाम देकर कुछ ऐसी नायिकाओं की भी कल्पना की गई है, जो बिल्कुल नई है, परंतु समाज और

साहित्य के लिये बड़ी उपयोगिनी है। इस समय देश मे जिन सुधारो की आवश्यकता है, जिन सिद्धांतों का प्रचार वांछनीय है, उन सबो पर प्रकाश डाला गया है, और उनके सुंदर साधन भी उसमे बतलाये गये है। पाश्चात्य विचारो के प्रवाह मे पड़कर देश की कुलागनाओं मे, अध अनुकरणकारियो एवं विदेशी भावो के प्रेमियो मे जो दोष आ रहे है, उनका वर्णन भी उसमे मिलेगा, साथ ही उनकी भर्त्सना भी। नव रसो मे शृंगार रस प्रधान है, इसलिये ग्रथ मे उसके सब अंगों का वर्णन है, किंतु कविता की भाषा संयत है। कुछ अत्यंत अश्लील विषयों को छोड़कर शृंगार रस-संबंधी सब विषय मैने ले लिये है, और सब का वर्णन यथास्थान किया है; केवल इस उद्देश्य से कि जिसमे यह बतलाया जा सके कि जहॉ अश्लीलता की संभावना हो, वहॉ सयत और गूढ़ भाषा लिखकर किस प्रकार उसका निवारण किया जा सकता है। सभव है कही मै अपने इस उद्देश्य मे पूर्णतया सफल न हो सका होऊँ, परतु ऐसे स्थल को अधिकाश कविताओं को विचारपूर्वक पढ़ने से प्रत्येक सहृदय पुरुषो पर प्रकट हो जावेगा कि मैंने इस विषय में कितना परिश्रम किया है और कितनी सावधानी से काम लिया है। मै ऐसे कुछ और विषयो को भी छोड़ सकता था, परंतु ऐसा करने पर मेरे उद्देश्य मे व्याघात होता, अतएव मैं उन्हें न छोड सका। व्रजभाषा मे 'रसविलास' 'रसराज' और 'जगद्विनोद' आदि ऐसे बड़े अपूर्व 'रसग्रथो' के होते, 'रसकलस' की रचना की कोई आवश्यकता नहीं थी, और न मैं ऐसा करता, यदि इन उद्देश्यो से मैं प्रेरित न होता, और यदि प्राचीन प्रणाली के कवियो की दृष्टि को सामयिकता और देश-प्रेम की ओर आकृष्ट करना इष्ट न होता। मै नहीं कह सकता कि अपने उद्देश्य मे मुझको कितनी सफलता मिली, परंतु वास्तविक बात का प्रकट करना आवश्यक था। सहृदय विबुध समाज मेरे कथन को कहॉ तक स्वीकार करेगा, यह समय बतलावेगा।

इस समय हिंदी ससार के कुछ विद्वानो की शृगार रस पर बडी कड़ी दृष्टि है, संभव है ग्रंथ में कुछ ऐसा स्थान या अंश पाया जावे, जो उन्हें अश्लील ज्ञात हो। ऐसी दशा मे उन सज्जनो से मेरा निवेदन यह है कि ग्रंथ के कुछ अंशो अथवा विशेष स्थानो के आधार से उसके विषय मे कोई सिद्धांत निश्चित करना युक्ति-सगत न होगा। ग्रंथ के अधिकांश स्थानो को देखकर ही मेरे उद्देश्य की उचित मीमासा हो सकेगी। दूसरी बात यह कि अश्लीलता का निर्णय उचित दृष्टि से ही करना पड़ेगा, दोष-प्रदर्शन की दृष्टि से नही। आलोचक को न्याय तुला हाथ मे रखना चाहिये और आवेश मे न आना चाहिये, अन्यथा सत्य का अपलाप होगा। प्राय देखा गया है कि एक विद्वान् जिसे अश्लील नहीं मानता, दूसरा उसी को अश्लील मानकर वाद करने के लिये कमर कस लेता है। इसका हेतु रुचिवैचित्र्य अथवा मत-भेद है—जो सर्वत्र दृष्टिगत होता है। दोनो आलोचना-विचार के उत्पादक हैं, किंतु अविवेक उन्हे उत्पीड़क बना देता है। मै अश्लीलता के विषय में पहले बहुत कुछ लिख चुका हूँ, इससे इस विषय मे यहाँ विशेष लिखना पिष्ट पेषण मात्र होगा। परंतु इतनी प्रार्थना अवश्य है कि अश्लीलता की मीमासा के समय अपने पक्ष को न देखकर दूसरे के पक्ष को भी देखना चाहिये। शरीर मे ऐसे अनेक पदार्थ है, जो उससे अलग होकर अश्लीलतम बन जाते है, परतु अपने स्थान पर उनकी उपयोगिता असदिग्ध है। मेरे कथन का यह प्रयोजन नही कि ग्रथ के गुण दोष की आलोचना न की जावे, और जहाँ जहाँ वास्तव मे अश्लीलता हो, उससे मुझे अभिज्ञ न किया जावे। प्रायः मनुष्य अपने दोषो के विषय मे अधा होता है, इसलिये यदि बंद आँखें खोल दी जावे, इससे बढ़कर दूसरी कौन कृपालुता होगी? आँखे खुल जाने पर अथवा अपना दोष जान लेने पर मै सावधान तो हो ही जाऊँगा, दूसरे संस्करण मे ग्रंथ के संशोधन की भी चेष्टा करूँगा। इसलिये जिस मार्ग से ऐसे दो महान् कार्य्य हो सके उसको रोकने की चेष्टा मै

क्यो करूँगा ? केवल विद्वज्जन से इतनी ही प्रार्थना है, कि विचार के समय उचित विवेक दृष्टि से ही काम लिया जावे ।

इस ग्रंथ को, विशेषकर भूमिका के लिखने मे मुझको जितने ग्रंथों से सहायता मिली है, उनकी एक तालिका ग्रथ मे लगा दी गई है । मैं इन सब ग्रंथो के रचयिताओ को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, और उनका बहुत बड़ा आभारी हूँ । क्योकि मेरे ग्रथ मे जो कुछ विभूति है, वह सब उन्हीं के विशद ग्रंथो अथवा उन्हीं के ग्रंथो से उद्धृत विशेष अशो का प्रसाद है । मै क्या और क्या मेरी प्रतिभा, यदि इन ग्रथो का अवलबन न होता, तो शायद मै इस ग्रंथ की रचना मे समर्थ न होता। भूमिका मे मैंने 'साहित्यदर्पण' और 'रसगंगाधर' से बहुत अधिक सहायता ली है। 'साहित्य-दर्पण' की साहित्याचार्य्य श्रीमान् पं० शालिग्रामशास्त्री विरचित 'विमला' नाम्नी हिंदी टीका, और श्रीमान् पंडित पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी के 'हिंदी-रसगंगाधर' से मुझको सस्कृत के वाक्यो और अवतरणो का हिंदी अनुवाद प्राप्त करने मे बहुत बड़ी सहायता मिली है, मैने प्रायः यथातथ्य उन्ही के हिंदी अनुवाद को अपने ग्रथ मे रख दिया है, अतएव मै इस विषय में उन दोनो सज्जनो का विशेष ऋणी हूँ । मैने रसो अथवा सचारी भावादि के लक्षण स्वयं लिखे है, किंतु कहीं-कहीं किसी-किसी ग्रंथ के लक्षणों को ही उत्तम समझकर अपने ग्रथ मे उठाकर रख दिया है; मै इसके लिये उन ग्रथो के रचयिताओ का भी कम उपकार नहीं मानता ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय
२-८-३१

# प्राक्कथन

अत्यंत प्रसन्नता का अवसर है कि इधर हमारी भाषा और हमारे साहित्य की उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि होती जा रही है, प्रत्येक विद्वान् और सुयोग्य महानुभाव इनकी उन्नति के लिये अनुदिन तन, मन, धन से प्रयत्नशील हो रहा है। नये-नये सुंदर-सराहनीय ग्रंथ-रत्नो से भाषा-भंडार के भरने का स्तुत्य कार्य किया जा रहा है। विशेष प्रसन्नता होती है यह देखकर कि अब हमारे विद्वज्जन स्थायी साहित्य के निर्माण में भी नवीन विधानों के साथ, वैज्ञानिक ढंग से, अपनी सुरुचि दिखलाने लगे हैं और ऐसे-ऐसे ग्रंथ-रत्न उपस्थित करने लगे हैं जिन पर वास्तव मे हिंदी-भाषा-भाषियों को गर्व हो सकता है और जो अन्य भाषाओ के रत्नो की श्रेणी में रखे जाकर भी निस्संकोच भाव से मूल्यवान् कहे जा सकते है। प्रस्तुत ग्रंथ-रत्न 'रसकलस' इसी प्रकार का एक परम मूल्यवान् , नया अथच न्यारा रत्न है। हम मुक्तकंठ से कहते हैं कि यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य की रीति-ग्रंथ-माला मे सुमेरु के समान ही सर्व-शिरोमणि है। रस-सिद्धांत पर इधर वैज्ञानिक विवेचन की शैली से कोई भी सुंदर सर्वांगपूर्ण ग्रंथ न लिखा गया था, अतएव इस प्रकार के एक ग्रंथ की महती आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति श्री० उपाध्यायजी ने इस ग्रंथ-रत्न के द्वारा करके हिंदी-साहित्य तथा तत्प्रेमियों का चिर-स्मरणीय हित किया है। प्राचीन कवियो में से कुछ ने इस विषय पर अपने रीति ग्रंथो मे प्रकाश डाला है अवश्य, किंतु बहुत ही सूक्ष्म रीति से। उनका प्रधान उद्देश्य अपने काव्य एवं कवित्व का प्रदर्शन करना मात्र था, वे वास्तव में कवि-कर्म-कुशल कलाकार थे, काव्य-शास्त्र-सुधा-रसाम्बुधि-सिद्धांत-तरंगस्नात आचार्य न थे। इसीलिये उन्होंने केवल मूल बाते देकर उनकी उदाहरण-रचना को ही अपना अभीष्ट लक्ष्य रखा था

और तदनुसार आचरण भी किया था। उनके ग्रथो मे सिद्धांत-समीक्षा या मीमांसा तो एक प्रकार से गौण और उदाहरण-रचना-कौशल का प्रदर्शन ही प्रधान है। इसके साथ ही कुछ कवियो ने तो रस सिद्धात का पूरा प्रदर्शन भी नहीं किया, उसके किसी एक विशेप अंग पर ही प्रकाश डाला है। नखशिख-वर्णन और नायक-नायिका का भेद ही प्रायः रचना के लिये प्रधान विषय रहे हैं, जगद्विनोदादिक पुस्तके इसके उदाहरण है। तात्पर्य यह है कि इस विषय की मार्मिक तथा विस्तृत विवेचना की ओर हमारे विद्वानो ने कोई विशेष ध्यान न दिया था।

यद्यपि इस समय इस विषय की दो-चार पुस्तके हिंदी-साहित्य-सद्म में उपस्थित हैं, जिनमे से श्री० अयोध्या-नरेश कृत "रस-कुसुमाकर", "हिंदी-काव्य में नव रस" एवं "काव्य-प्रभाकर" अति प्रधान और प्रचलित मानी जाती है, किंतु वास्तव में ये सब पुस्तके सर्वांगपूर्ण, सुव्यवस्थित तथा वैज्ञानिक विवेचन की दृष्टि से संतोषप्रद नहीं सिद्ध होतीं। इस अभाव की ऐसे सुदर ग्रंथ के द्वारा स्तुत्य पूर्त्ति करने के लिये श्री० उपाध्यायजी को जितना भो साधुवाद दिया जाय थोडा ही है। इस ग्रथ-रत्न से उपाध्यायजी कवि-काव्याचार्य-श्रेणी में उच्चस्थान प्राप्त कर अमर यश के भव्य भाजन होते हुए शाश्वत स्मरणीय हो गये हैं।

यथार्थ मे काव्यशास्त्र के ऐसे गूढ और जटिल विषयो पर प्रकाश डालने के लिये कमनीय कवि-कर्म-कौशल, काव्य कला-कोविदत्व और विशद विद्वत्ता की आवश्यकता है। केवल कवि-प्रतिभा ही न तो इसके शास्त्रीय विवेचन मे सफल और समर्थ सिद्ध होती है और न केवल विद्वत्ता या आचार्य्यता ही सर्वथा पर्याप्त हो सकती है। वस्तुत काव्य-शास्त्र के मार्मिक विवेचन के लिये कवि-प्रतिभा और विद्वत्ता दोनो की समान रूप से आवश्यकता है। कहा भी गया है—

"कवि· कवयते काव्य मर्म जानाति पंडितः"—तथा—

"अपूर्वो भाति भारत्याः काव्यामृतफले रसः"
"चर्वणे सर्वसामान्यं स्वादवित्केवल कविः"।

कहना न होगा कि श्री० उपाध्यायजी मे दोनों गुण सुंदर रूपो मे विद्यमान हैं। आप उच्चकोटि के "कवि-सम्राट" भी है और प्रशस्त काव्याचार्य भी है, इसीलिये आप काव्य-कला के सभी प्रकार मान्य, मर्मज्ञ और काव्य-कौशल-तत्वज्ञ है। हो सकता है कि कुछ लोग हमारे इस कथन पर किसी कारण कुछ किंतु-परंतु करते हुए नाक-भौं सिकोड़े, किंतु न्याय के लिये हम उसकी सर्वथा उपेक्षा ही करते है। "सत्ये नास्ति भय क्वचित्" पर विश्वास रखकर हम स्पष्टवादिता तथा सत्य-प्रियता को ही महत्त्व देते हुए उपाध्यायजी को वर्तमान समय का एक मात्र महाकवि तथा प्रशस्त आचार्य कहने मे रचक भी नही हिचकिचाते।

यदि सत्य और न्याय को हृदय मे रखकर देखा और कहा जाय तो उपाध्यायजी का स्थान इस समय हिंदी-साहित्य के क्षेत्र मे सर्वोच्च सिद्ध होता है। भाषा के समस्त प्रधान और साहित्यिक रूपो पर—चाहे वह खड़ी बोली हो, चाहे ठेठ हिंदी या कथित ( So called ) हिंदुस्तानी ( चलती हुई बामुहावरा साधारण हिंदी ), चाहे ब्रजभाषा हो और चाहे अवधी, सभी पर आपको असाधारण और पूरा अधिकार प्राप्त है। उनके सब रूपो की समस्त उत्कृष्ट और साधारण शैलियो के सुप्रयोग मे भी आप सर्वथा सफल और प्रशस्तरूपेण पटु सिद्ध हुए है। आपके 'प्रिय प्रवास, चोखे चौपदे, बोलचाल, ठेठ हिंदी का ठाठ, कबीर-वचनावली की भूमिका, सभापति के रूप मे दिये गये भाषण' आदि रचनाओ से आपकी खड़ी बोली के विविध रूपो और ढंगो मे प्रकामाभिराम पटुता तो हिंदी-संसार को प्रकट हो ही चुकी है, अब इस "रस-कलस" के द्वारा आप की ब्रजभाषा-मर्मज्ञता का भी यथेष्ट परिचय प्राप्त हो जायगा। वास्तव मे ऐसी बहुमुखी प्रतिभा तथा पांडित्य-परिपुष्ट काव्य-कला-कुशलता के साथ भाषा-भांडार-भाण्डारिता विरले ही महापुरुषो के

सौभाग्य मे देखी जाती है। हम कह सकते है कि न केवल इस वर्त्तमान समय मे ही उपाध्यायजी हिंदी-साहित्य-क्षेत्र मे सर्वोच्च कवि-कीर्ति की कल कमनीय-कांति-कौमुदी के कलित कलाधर हो रहे है, वरन् इसी प्रकार चिरकाल तक बने रहेंगे।

हिंदी-साहित्य के इतिहास से यह सर्वथा स्पष्ट है कि हिंदी-साहित्य के अलंकृत या कला-काल मे रीति-ग्रंथो की रचना करने की एक परिपाटी चल पड़ी थी, जो लगभग दो सौ वर्ष तक बड़ी प्रबलता और प्रचुरता के साथ साहित्यागार को रुचिर रीति ग्रंथो से सुसज्जित करती रही। इसी परिपाटी या प्रणाली के प्राबल्य-प्रभाव से प्रेरित होकर आचार्य महाकवि केशव, मतिराम, भूषण, देव, दास, पद्माकर आदि कविवरो ने अलंकार एवं रसादि-संबंधी कतिपय सुंदर ग्रंथ रचे थे। इस परपरा को १८०० ई० के लगभग से शिथिलता प्राप्त हो चली और धीरे-धीरे वर्त्तमान समय मे इसका एक प्रकार से लोप-सा हो गया। इधर की ओर कुछ महानुभावो ने देश-काल के अनुसार रीति-ग्रंथो की रचना-शैली मे कुछ रूपातर उपस्थित करने का सफल प्रयास किया और दोहो आदि छंदो मे न देकर गद्य मे ही अलंकारादि की परिभाषाएँ देने तथा उनकी मार्मिक विवेचना करने की नवपद्धति चलाई। परंतु प्रायः विद्वानो ने अलकार-विवेचन पर ही विशेष ध्यान दिया था, रस-सिद्धान्त के विवेचन की ओर वे अग्रसर न हुए थे। सच पूछिये तो रस, नायक-नायिका-भेद तथा नख-शिख-वर्णन वाली परंपरा की इस नव युग में एक प्रकार से इतिश्री ही हो गई थी। परंतु श्री० उपाध्यायजी ने इस परंपरा को भी ठीक उसी प्रकार नये जीवन का दान दिया, जिस प्रकार आपने अपने परम प्रशस्त "प्रिय-प्रवास" के द्वारा कृष्ण-काव्य की परपरा को विशेपत्व प्रदान किया है। कृष्ण-काव्य की रचना-परपरा मे व्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा है क्योकि वह उस व्रज की मंजु-मधुर भाषा है जहाँ व्रज-विपिन-विहारी ने अपनी अति प्रियशीला ललित लीला की थी। उपाध्यायजी ने उसमे

खड़ी बोली का संचार कर युगांतर ही उपस्थित नही कर दिया, वरन् खड़ी बोली को भी कृष्ण-लीला के सुधारस से सिंचित कर संजीवन रस प्रदान किया है। इतना ही नहीं, खडी बोली की कविता कामिनी को भी उन्होने सुवेय गेय गोविद-पदारविंद-मकरंदानंद - सेविनी मलिंद-महिषी होने का सुअवसर दिया और इस प्रकार उसे सौभाग्य शालिनी भी बनाया है। संस्कृत सरस पद-विन्यास संयुक्त, भावमय, सु-प्रवृत्ति-संपन्न, सुवर्ण-वृत्तालंकृत और मोहन-मन-मोहिनी बनाकर उन्होंने सदा के लिये उसे जिस सरस सुमनासन पर बिठला दिया है वह भी सर्वसुलभ नहीं।

जिस प्रकार "प्रिय-प्रवास" के वाणी-विलासकर अनुपम आवास में आपने लोकोपकारादि अन्य, स्वभावजन्य, गेय गुणों को, विशद विकाश-प्रकाश देनेवाले, नये न्यारे रम्य रंगो से अनुरंजित, विविध विचार-विधि-व्यंजित, ब्रजेश के विचित्र चारु-चित्र चित्रित कर, समयानुकूल मंजु-मौलिकता दिखलाई है, उसी प्रकार इस "रसकलस" मे भी देश-कालोपयुक्त, युक्ति-युक्त, प्राश्चात्य दुर्गुण-विमुक्त आर्यावर्तीय सभ्यता-संस्कृति-सुकृति सूचक, ध्रुवधार्य, आर्य कार्य के आदर्श उपस्थित कर, ब्रजभाषा की प्राचीन रचना - परंपरा में, भव्य रूपेण नव्य-मौलिकतामयी जीवन स्फूर्ति के द्वारा उसकी अपूर्ति में पूर्ति के लाने का भी सफल प्रयास किया है। कतिपय नई नायिकाओं की भी आपने देश-कालानुकूल मौलिक कल्पना की है—यथा देश-प्रेमिका, जाति-सेविका आदि, जो सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

नायक-नायिका-भेद जैसे विषय पर रचना करते हुए भी आपने शिष्टता ( श्लीलता ) का सर्वत्र सुंदर और सराहनीय निर्वाह किया है। वस्तुत. यह बड़ा ही कठिन कार्य है और आप ही जैसे सुयोग्य महाकवि का काम है। सर्वत्र भव्य भारतीय नव्य भावनाओं की ही गहरी छाप है, अपने ही समाज के सुंदर-स्तुत्य आचारों-विचारों की महत्ता-सत्ता

स्थान-स्थान पर दिखलाई गई है। दूर से देखने पर दिव्यदामाभिराम पाश्चात्य देशों के उन दुर्गुणों की मिथ्या मनोहरता के बड़ी युक्ति तथा मार्मिकता से दिखलाने की चेष्टा की गई है, जिनकी बहिरंग-रंग रुचिरता से समाकृष्ट हो, भ्रांत नवयुवक मृगतृष्णा में भूले-भटके तथा तंग आये कुरंग-वृंद-से पथ-भ्रष्ट अथच ताप-तप्त बन पश्चात् पश्चात्ताप करते फिरते हैं। यही उपाध्यायजी का कवि-संदेश देश के लिये जान पड़ता है। रचना का एक दूसरा प्रधान उद्देश्य भी यही प्रतीत होता है। वास्तव में प्रत्येक लेखक एवं कवि का यही मुख्य कर्तव्य-कर्म तथा परिपालनीय धर्म है कि वह अपनी रचना के द्वारा अपने देश तथा समाज की समय-संमानित सभ्यता-संस्कृति का संरक्षण करता हुआ प्राचीन परंपरा का यथेष्ट ( यथावश्यकता ) परिमार्जन एवं परिशोधन कर अपने वास्तविक धर्म-कर्म का प्रचार करे, और पर-प्रभाव-प्रभावित एवं भ्रम-भूल से भूले हुए नवयुवकों को सत्पथ पर अग्रसर कर देश-जाति के हित-संपादन में लगे-लगाये। जो लेखक या कवि अपने ऐसे उत्तरदायित्व को नहीं समझते और देश-जाति के हिताहित का ध्यान नहीं रखते या परखते वे वास्तव में रचयिता-राजि-भूषण होकर भी देश-दूषण ही ठहरते हैं। उनकी अमूल्य रचनाएँ भी बिना मूल्य हो लुप्त होती हुई अपने साथ समय के गुप्त-गह्वर में उन्हें भी सदा के लिये सुप्त कर देती है। कोई भले ही इस प्रकार के कवि को उपदेशक तथा समाज-सुधारक कहता हुआ उसके स्थान को कुछ दूसरा दिखलाने का प्रयत्न करे और उसे कुछ कम महत्त्व दे—यद्यपि वास्तव में इन गुणों के कारण उसका स्थान एवं महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है—किंतु ऐसा समझदार संसार उस व्यक्ति के ऐसे कथन को ही महत्त्व न देगा जो यह जानता है कि कवि ही वह व्यक्ति है जो देश-जाति को उन्नत एवं अवनत करने, बनाने-बिगाड़ने, योग्यायोग्य पद देने में समर्थ होता है। कवि तो वस्तुतः सृष्टि का स्रष्टा है ( "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः"—वेद ) वही अखि

लेश है, किंतु हो वह सच्चा कवि। जितने भी सच्चे कवि हुए हैं, सभी ने समाज-हित के लिये अपनी रुचिर रसना से सुधार-रस-धारा प्रवाहित की है, सभी ने उचित उन्नतिकारी, उपकारी उपदेश देश-समाज को दिये है। यही कार्य उपाध्यायजी ने भी किये है।

"रस-कलस" शब्द ही ग्रथ के वर्ण्य विषय को स्पष्ट रूप से प्रकट कर देता है, इसलिये इस संबध में यहाँ केवल इतना ही कहना सर्वथा अलम् है कि इस ग्रंथ मे काव्य के शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्साद्भुत और शान्त नामक नवो रसो, उनके ६ स्थायी और ३३ संचारी भावो, विभावों ( आलंबन—जिसके अतर्गत है, समस्त नायक नायिका-भेद और उनका नख-शिख-वर्णन, और उद्दीपन—जिसके अदर आते है सखा-सखी भेद और कर्म, समय, स्थान, प्रकार तथा षट्ऋतु-वर्णन ) और ४ प्रकार के अनुभावों ( जिनके अदर अगज, अयत्नज और स्वभावज हाव-भावादि अलंकार आ जाते है ) का यथोचित और यथाक्रम सर्वांग-पूर्ण सुंदर और सराहनीय विशद वर्णन किया गया है। सर्वत्र उदाहरण मंजु, मृदु, मधुर और मौलिक दिये गये है। प्रायः अन्य रस-ग्रंथो मे शृंगार रस का ही विस्तार दिखलाया जाता है और विभावानुभावादि संबंधी उदाहरणो में भी इसी रस को प्रधानता दी जाती है, तथा अन्य रसो का केवल सूक्ष्म परिचय मात्र दे दिया जाता है जिससे वाचक-वृंद को यथेष्ट ज्ञान नहीं हो पाता। यह ग्रंथ इस न्यूनता से सर्वथा मुक्त होकर समस्त रसों के विशद वर्णन से संयुक्त हो अधिक उपयुक्त बन गया है। शृंगार रस चूँकि सर्व-रस-प्रधान रसराज तथा साहित्य-शिरमौर माना गया है, इसलिये उसके समस्त अंग-प्रत्यंग का नवरंग ढंग-रंजित तथा विविध-विचार-व्यंजित विमल-वासना-वलित, सुकल्पना-कलित, अति ललित वर्णन किया गया है। केवल कुछ ऐसे ही विषय छोड़ दिये गये है जो इतने अश्लील है कि उनका सर्वथा सुशिष्ट और सुरुचिमिष्ट बनाना असंभाव्य ही सा ठहरता है, जहाँ तनिक भी ऐसे

विषय अपने साधारण रूप मे भी आ गये हैं वहाँ उनके अनीप्सित प्रभाव के अभाव को दूर करने के लिये भाषा दुर्बोध, गूढ़ तथा कुछ जटिल कर दी गई है, जिससे उस प्रसंग का अंतरंग, अंग उन्हीं सज्जन वाचक-वृंद को अवगत हो सके जो कला-कौशल-प्रेमी और नीति-रीति नेमी होकर सत्सार-सराहक और गुण ग्राहक हैं और जिनके विद्या-व्रत-स्नात वर-विवेक-जन्य-विचार उनके मनोविकार पर पूर्णतया प्रभाव डाल कर उन्हें स्वच्छंद छल-छंद की ओर नहीं दौड़ने देते। वास्तव मे यही सत्कवि का कर्तव्य-कर्म और रचना-रस-रंग के नैर्मल्य का मुख्य मर्म है।

प्रायः यह देखा जाता है कि कवि लोग किसी एक विशेष रस (प्राय शृंगार, वीर, करुण) मे रचना करने का अभ्यास कर लेते है और इसी-लिये उस रस मे वे चोखी तथा कभी-कभी अनोखी रचना भी करते है। किंतु अन्य रसों की रचना करने मे वे प्रथम तो समर्थ ही नही होते और यदि कुछ होते भी हैं तो सर्वथा सफल नहीं होते। यह परम-प्रखर-पांडित्य-पूर्ण, पटु-प्रतिभावान् सत्कवि-महान् का ही कार्य होता है कि वह प्रत्येक रस मे सराहनीय सफलता से सुंदर, सुखद और रोचक रचना कर ले। महाकवि का यह एक प्रधान और विचक्षण लक्षण है। श्री० उपाध्यायजी मे भी यह लक्षण आकर उन्हें महाकवि मानने के लिये पाठकों को उसी क्षण प्रेरित करता है जब वे उनकी विलक्षण रचना का सम्यक् समावलोकन कर चुकते हैं। इस ग्रंथ मे जिस रस के जो उदाहरण दिये गये है उन सब मे उस रस का यथोचित परिपाक पाया जाता है, जिससे उनमें सरसता के साथ ही साथ सफल सार्थकता तथा स्वाभाविकता-सी मिलती है। साकारता और सजीवता तो कहीं भी किसी प्रकार कम हुई ही नहीं। इन उदाहरणों में भी उपाध्यायजी ने बड़ी मार्मिक, धार्मिक, उपयुक्त तथा उपादेय बातें कही है। अद्भुत रस के उदाहरणों मे आपने "रहस्यवाद" के सच्चे स्वरूप और उसके गूढ़-गहन, मोहन, मर्म अथवा रुचिर-रोचक रहस्य का चारु

चित्रण सहज, सूक्ष्म किंतु मूल-मंत्र सूचक रूप से किया है और इस प्रकार रहस्यवादियों को भी सच्चे रहस्यवाद की पथरीली राह को रसीली करके दिखलाया है। यों ही अन्यत्र कतिपय स्थानों पर भी उन्होंने कितनी ही आवश्यक समस्याओं के सुलझाने, समझने तथा समझाने की ओर न्याय-निकेत सुंदर संकेत दिये हैं।

ग्रंथ की रचना-वस्तु-संबंधी इन अवश्य अवलोकनीय और अनिवार्य रूपेण प्रशंसनीय मौलिक विशेषताओं की ओर सूक्ष्मतया इस प्रकार संकेत करके यहाँ हम इस ग्रंथ की भाषा के संबंध में भी संक्षेप से प्रकाश डालना उचित समझते हैं, क्योंकि भाषा की महत्ता भाव-सत्ता के संमुख यदि अधिक नहीं तो न्यून भी कदापि नहीं है। कह भी सकते हैं कि रचना-क्षेत्र में भावों की अपेक्षा भाषा का ही महत्त्व अधिक प्रबल और प्रधान है। यद्यपि भाषा को भावों का परिधान-सा कहा जाता है तथापि यदि बिचारपूर्वक देखा जाय तो परिधान होते हुए भी यही प्रधान, भाव-प्रभाव-निधान और विचार-विधान विधायक ठहरती है। बिना भाषा के विचारों या भावों का विकास तथा विद्या-बुद्धि-विलास का प्रकाश हो ही नहीं सकता। भाव चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों—यदि वे अच्छी भाषा में अच्छे ढंग और रुचिर रचना रंग के साथ व्यक्त न किये गये तो वे सर्वथा अरोचक और अन्यथा ही से हो जाते हैं। चारु चोखी भाषा और अनोखी रीति-नीति से प्रकट किये गये विचार साधारण होते हुए भी असाधारण से होकर धारणा में धारण करने के योग्य और मनोज्ञ हो जाते हैं। इसलिये भाषा को रचना-कला में विशेष महत्त्व देकर सुसज्जित तथा वैचित्र्य-विनिमज्जित करके मृदु, मधुर, मनोहर बनाने के विविध विधान भाषा-भाव-भूषण के रूपों में बनाये गये हैं, अस्तु।

उपाध्यायजी ने इस ग्रंथ की रचना उस परम प्रशस्त परंपरा-प्रचलित सुललित ब्रजभाषा में की है जो अपने मार्दव, माधुर्य आदि गेय गुणों

की गरिमा के कारण, काव्य की एकमात्र उपयुक्त भाषा के रूप मे साहित्य-स्रष्टा कवि-राज-समाज मे सब साधारण द्वारा अनुमोदित होकर धारण की गई है, उसी के लोक-प्रिय अनुपम आलोक से साहित्यादित्य* आलोकित होकर अद्यापि अवलोकित होते है। आपने अपनी रचना मे ब्रजभाषा का तो प्रयोग किया है, किंतु यह ब्रजभाषा अन्य साधारण कवियो की-सी नहीं, वरन् अपने रंग-ढंग की विशेष ब्रजभाषा है। कहा जाता है कि भारतेंदु बाबू ने ब्रजभाषा तथा उसकी रीति-नीति मे देश-कालानुसार नवीन विशेषताओ का संचार किया था, कुछ अंशो मे यह ठीक है। किंतु यदि विचारपूर्वक एक निष्पक्ष न्याय-पोषक निरीक्षण की भाँति सूक्ष्म और विचार-पूर्ण दृष्टि से देखा जाय तो वास्तव मे ब्रजभाषा को नवीन रूप से परिमार्जित और संस्कृत करने का स्तुत्य कार्य इस काल मे विशेषतया श्री० स्व० 'रत्नाकर' जी न ही किया है। उन्होंने साहित्यिक ब्रजभाषा का एक रूप निश्चित कर उसे परिष्कृत तथा परिपुष्ट कर प्रचलित किया है, आजन्म उन्होने इसी भाषा की पूरी देख-भाल और सेवा की, और तब उसे अपने अनुकूल चलाने मे समर्थ हो सके। श्री० 'रत्नाकर' जी ने ब्रजभाषा को साहित्यिक सौष्ठव एवं स्थैर्य के साथ एक निश्चित रूप से परिष्कृत तो किया किंतु उसे रखा प्राचीन ही रंग-ढंग मे, उन्होने उसे निखारने का ही सफल सराहनीय प्रयास किया। श्री० उपाध्यायजी ने ब्रजभाषा मे दूसरे प्रकार की विशेषताओं के निखारने का प्रयत्न किया है और अपने इस प्रशंसनीय प्रयास मे वे सफल भी हुए है।

सब से बड़ी विशेषता, जो आप की ब्रजभापा मे स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर होती है, यह है कि आपने अपनी भापा में नवीन भावों को व्यंजित करने की क्षमता उद्दीप्त कर दी है, इसके लिये कहीं-कहीं उन्हें उसे विशेष रूप से चलाना भी पड़ा है। आपने प्रायः पुराने घिसे-घिसाये और प्रयोगच्युत ऐसे शब्दों के निराकरण या दूरीकरण से भाषा को

---

*साहित्य-सूर्य = सूरदास।

स्वच्छ करने का प्रयत्न किया है जिसका प्रयोग केवल परम्परागत रूढ़ियों की प्रेरणा से ही प्रायः प्राचीन परम्परानुयायी कवि किया करते है, जिनके प्रयोग, अर्थ आदि से जनता अब परिचित नहीं रह गई और जो भाषा की दुरूहता के ही कारण होते हैं। आपने कतिपय शब्द अपने नवीन भावों के लिये संस्कृत से लेकर बड़ी कुशलता से प्रयुक्त कर भाषा की शब्द-राशि को बढ़ाते हुए भाव-व्यंजकता भी बढ़ा दी है। वास्तव में किसी कवि का यह कार्य विशेष महत्ता एवं सत्ता सूचित करता है। जो कवि जितने ही नये, निराले शब्द एवं प्रयोग (मुहावरे) कल्पित कर इस प्रकार प्रयुक्त करता है कि उनसे भाषा की भाव-व्यंजक क्षमता, शब्द-राशि तथा विचित्रता बढ़-चढ़ जाती और उसमें विलक्षणता भी आ जाती है वह उतनी ही उत्कृष्ट श्रेणी का कवि माना जाता है। प्रत्येक महाकवि अपनी प्रतिभा के प्रभाव से अपनी एक विशेप भाषा तथा शैली (रीति-नीति) लेकर साहित्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होता और जीर्ण शीर्ण प्रयोग-परिचय-च्युत रूढ़िगत शब्दादिकों के चर्वित चर्वण-प्राबल्य से समुत्पन्न अनिष्ट अजीर्ण को अपने अजीर्ण ( नये निराले ) शब्दादिकों से दूर करने का प्रयत्न करता है। दूसरे लोग फिर उसी का अनुकरण या अनुसरण करते हैं और उसे अपना पथ-प्रदर्शक और प्रधान प्रवर्तक मानने लगते हैं। उपाध्यायजी को भी हम इसी श्रेणी का महाकवि कह सकते हैं।

भाषा आपकी सर्वथा सुव्यवस्थित, संयत और सुगठित है, शब्दावली सब प्रकार भावानुकूल, रसपरिपोषक और सबल है। कोई भी शब्द शिथिल, अनावश्यक और केवल छंद या पाद का परिपूरक नहीं है। प्रायः आपने एक प्रधान और भावपूर्ण शब्द को लेकर उसी से बननेवाले अन्य कई प्रकार के शब्दों का यथावश्यकता चारु चमत्कार-चातुर्य के साथ प्रयोग करके एक विशेष प्रकार का कौशल दिखलाया है। सर्वत्र पद-मैत्री और वर्ण-मैत्री अपने सुंदर रूपों में पाई जाती है। शब्दो के

उक्त विशेष प्रयोग से बड़ी विलक्षणता एवं विचक्षणता अनुप्रासो के रूपों मे प्रतिभात होती है।

शब्दो के भिन्न-भिन्न प्रकाराकार वाले प्रयोगों से रचना-कला मे रचयिता की प्रकामाभिराम पटुता प्रकट होती है। यह दिखलाने का भी पूरा प्रयत्न किया गया है कि शब्द कितने भिन्न-भिन्न अर्थों मे कितने भिन्न-भिन्न रूपो या आकारो-प्रकारो से प्रयुक्त किया जाता या जा सकता है, इस कार्य मे सफलता भी बहुत हुई है। भाषा को मुहावरेदार रखने का भी अच्छा प्रयत्न किया गया है। इससे भाषा मे लालित्य के साथ ही साथ प्रसादगुण की भी वृद्धि हो गई है। शब्द-संचयन और संगुंफन भी बड़ा ही सयत और सराहनीय है, जिससे प्रकट होता है कि उपाध्यायजी ने शब्द-संग्रह मे बड़ा स्तुत्य श्रम किया है। वस्तुतः ऐसे ही उच्चकोटि के कवियो का यह काम है जो प्रगाढ़ पांडित्य और भाषाधिपत्य के सूचित करने मे सर्वथा समर्थ होते है। कवि, यदि यथार्थ कहा जाय, एक कुशल शब्द-सग्रहकार है, शब्दों मे ही उसकी शक्ति *, अनुरक्ति और भक्ति रहती है, और रहना भी चाहिए। जितनी ही सफलता उसे शब्द सग्रह मे प्राप्त होगी उतनी ही सफलता उसे रचना-कार्य मे भी प्राप्त हो सकेगी। कुछ लोगों का कहना है कि शब्दो के चुनाव और कला-कौशल के साथ सगठित करने से रचना की उस स्वाभाविकता को, जो प्रधान और मुख्य है, धक्का पहुँचता है और वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। कहीं किसी अश मे यह ठीक हो सकता है, किन्तु सवत्र इसे चरितार्थ मानना वास्तव मे रचना-कला ( काव्य-कला ) और कवि कर्म-कौशल के मर्म का न समझना ही है। काव्य मे वैचित्र्य या वैलक्षण्य का ही पूरा ध्यान रखकर शब्द-चयन और पद-संगुंफन अथवा वाक्य-विन्यास के सगठन का कार्य करना चाहिए। हम कह सकते है कि जैसी स्तुत्य एवं चिरस्मरणीय तथा

* 'कबिहिं अरथ-आखर बल साँचा'—तुलसीदास।

अनुकरणीय सफलता उपाध्यायजी को खड़ी बोली के प्रयोग में मिली है, प्राय वैसी ही ब्रजभाषा के प्रयोग में भी प्राप्त हुई है। सच्ची कवि-प्रतिभा वही है कि जो समान सफलता के साथ काव्य-कला के भिन्न-भिन्न अंगों मे पृथक् पृथक् रीति-नीति (शैली) और भाषा के द्वारा कृतकार्य हो सके।

सारांश यह है कि भाषा, भाव, कला-कौशल आदि सभी दृष्टियो से उपाध्यायजी का यह ग्रथ रत्न वस्तुतः अपने रंग-ढंग का अप्रतिम और परम प्रशसनीय ठहरता है। संभव है कि किसी को इसके मयंक-अंक मे कहीं कुछ कालिमा भी दिखलाई पड़े, किंतु यह इसकी कमनीय-कौमुदी-कांति के समक्ष निष्पक्ष रूप से देखने पर क्या होगी? कुछ नहीं, केवल दृष्टि-भ्रांति। हाँ, जलौका-प्रवृत्ति वाले भले ही व्यर्थ के लिये छिद्रान्वेषण कर सकते हैं और नीरस जन स्वार्थ आदि किसी विशेष कारण से निन्दा तक कर सकते है, इसके लिये स्वयं उपाध्यायजी ही ने कह दिया है—

'हरिऔध' कैसे 'रसकलस' रुचैगो ताहि,
जाको उर रुचिर रसन तैं न सोहैगो।

मूलग्रंथ पर इस प्रकार विहंगम-दृष्टि के द्वारा प्रकाश डाल चुकने पर हम ग्रंथ के पूर्वार्द्ध का भी, जो भूमिका के रूप मे हैं, कुछ संक्षिप्त परिचय दे देना चाहते हैं। यह पूर्वार्द्ध भी अपनी विशिष्ट महत्ता और सत्ता रखता है और अनिवार्य रूप से अवलोकनीय, विचारणीय-और ग्रहणीय या अनुसरणीय है। इसमें ब्रजभाषा तथा उसके काव्य पर प्रायः जो अनर्गल आक्षेप किये जाते है और जिन्हें प्रमादिक, तर्क-प्रमाण-शून्य, ईर्षा द्वेष-जन्य तथा निराधार या निरर्थक समझ कर ब्रजभाषा-प्रेमी विद्वान् उपेक्षा के ही साथ देखते-सुनते आये हैं उनके उत्तर बड़ी ही सतर्कता, योग्यता और गंभीरता से दिये गये हैं और ब्रजभाषा की महान् महत्ता-सत्ता का पांडित्यपूर्ण प्रतिपादन किया गया है। बड़ी ही न्यायप्रियता, निष्पक्षता तथा युक्ति के साथ उसके पक्ष का विपक्ष-वृंद

कृत वितंडावाद के समक्ष समर्थन भी किया गया है। इससे खड़ी बोली के विद्वान् विधायक आचार्य उपाध्यायजी का ब्रजभाषा में विशद एवं मार्मिक अध्ययन तथा ज्ञानानुभव स्पष्टतया प्रकट होता है। इसी प्रकार इसी भूमिका में आपने शृंगार रस पर किये जानेवाले कड़े कटाक्षों की भी निस्सारता और निर्मूलता दिखलाई है और उसे सतर्क रसराज सिद्ध किया है। ऐसा करके वस्तुतः उपाध्यायजी ने भूले हूए नवयुवको की आँखें खोल दी है और उन्हें ब्रजभाषा तथा उनके शृंगारात्मक काव्य-कौशल का सच्चा मर्म समझा दिया है, अब कोई समझे, या न समझे, माने चाहे न माने।

मूलग्रंथ, चूँकि रीति-ग्रंथो की परम्परागत रचना-शैली से लिखा गया है, इसलिये उसमे रस-सिद्धांत से संबंध रखनेवाले विविध मत-मतांतरों, उनके आधार पर होनेवाले क्रमिक विकास आदि की सम्यक् समीक्षा या मीमांसा नहीं की गई और इस प्रकार विषय-विवेचन का एक अत्यंत आवश्यक या अनिवार्य अंग रह गया था। अतएव उपाध्यायजी ने अपनी भूमिका में (जिसका कार्य वस्तुतः विषय में प्रवेश कराना और उसके संबंध की अन्य आवश्यक बातो का यथेष्ट निरूपण या स्पष्टीकरण करते हुए समुचित परिचय देना है ) इन सब बातो का बड़ा ही मार्मिक और पांडित्यपूर्ण विवेचन किया है और इस न्यूनता की परमोपयोगी तथा परमावश्यक पूर्ति कर दी है। भूमिका के इस अंश से उपाध्यायजी के प्रगाढ़ पांडित्य, विस्तृताध्ययन तथा पूर्ण ज्ञान का स्पष्ट रूप से पता चलता है।

इस प्रकार रस-सिद्धांत के हिंदी मे एक सर्वोपरि, सर्वमान्य तथा सर्वथा श्लाघनीय ग्रंथ के उपस्थित करने पर हम उपाध्यायजी को सहर्ष हृदय से बधाई देते है और मुक्तकंठ से उनके सफल श्रम की प्रशंसा करते हैं। हमें सुदृढ़ विश्वास है कि समस्त सहृदय तथा सुयोग्य समाज

हमारे ही समान उपाध्यायजी को इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये हृदय खोल कर बधाई देता हुआ इस ग्रंथ-रत्न का समुचित समादर करेगा।

इस ग्रंथ-रत्न मे हमारी समझ से यदि रसो एवं भाव-भावनाओ ( Feelings and Emotions ) का मनोवैज्ञानिक ( Psychological ) विवेचन भी और जोड़ दिया जाय ( चाहे वह परिशिष्ट के ही रूप मे रखा जाये ) तो अत्युत्तम होकर सोने और सुगधि की कहावत को चरितार्थ कर दे। इसी के साथ यह भी दिखला देना उपयुक्तोपादेय सिद्ध होगा कि रस-सिद्धात नाटक-रचना से प्रारंभ होकर अर्थात् नाटको के ही आधार पर प्रथम उठाया और उन्हीं के लिये आवश्यक ठहराया जाकर क्यो, कब और कैसे काव्य-शास्त्र के अदर प्राधान्य प्राप्त कर सका। इस संस्करण मे इन बातो के दिये जाने की कठिनाई को देखते हुए हम उपाध्यायजी से दूसरे सस्करण मे इनके देने का अनुरोध करते है, और इसलिये यह साग्रह कहते है जिससे यह ग्रथ सर्वांग-पूर्ण होकर अपने रंगढंग का अकेला ही रहे और चिरस्थाया बन जावे।

अन्त मे हम फिर उपाध्यायजी को इस ग्रंथ-रत्न के सफलता-पूर्वक प्रणयन करके तथा हिदी-साहित्य मे काव्य-शास्त्र के इस अंग की प्रशंसनीय पूर्ति करने के लिये सहर्ष हार्दिक साधुवाद देते है और विश्वास रखते हैं कि भावुक कवि-समाज, सहृदय वाचक-वृद तथा सुयोग्य समालोचक-समुदाय इसको समुचित समादर देते हुए अनुराग के साथ अपनायेगा। तथास्तु।

विद्वज्जन कृपाकाक्षी

रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल'

एम० ए०

रमेश-भवन

प्रयाग

# भूमिका की सूची

# भूमिका

## रस-निर्देश

रस शब्द अनेकार्थक है, व्युत्पत्ति इसकी 'रस्यते इति रस.' है, जिसका अर्थ यह है कि जो चखा जावे अथवा जिसका स्वाद लिया जावे वह 'रस' है। जब हम कहते है, 'इनके गले मे अथवा इनकी बातो मे बड़ा रस है' तो उस समय इसका अर्थ मधुरता और मिठास होता है। जब राका-मयंक को देखकर हम कहने लगते है, 'वह रस बरस रहा है' उस समय इसका अर्थ आँखो को तर करनेवाला कोई पदार्थ होता है, चाहे उसको सुधा कहें या और कुछ। जब आम-अंगूर खाते है, ईख को चूसते है और उस समय यह कह उठते है कि इनका रस कितना अच्छा है तब रस का अर्थ वह तरल पदार्थ होता है जो उनमे भरा मिलता है। हरे पत्तो को निचोड़ने पर उनमे से हरे रंग का पानी की तरह का एक पदार्थ निकलता है उसको भी रस कहा जाता है, जैसे, आम अथवा सुदर्शन के पत्ते का रस। खट्टा, मीठा खारा, कड़ुआ, तीखा, कसैला—इन प्रसिद्ध छः रसो को कौन नहीं जानता? ये भी अपनी अलग सत्ता रखते है। वैद्यक के रस भी विशेष अर्थ के द्योतक हैं, कभी उनका प्रयोग एक शरीर-संबंधी धातु के विषय मे होता है, कभी रासायनिक रीति से तैयार हुई कुछ औषधों के लिये। जब रहीम खाँ खानखाना के इस दोहे को पढ़ते है—

'कहु रहीम कैसे निभे केर-बेर को सग ?
वे डालत रस आपने उनके फाटत अग ॥'

तो ज्ञात होता है कि रस का अर्थ उमंग और मौज भी है। वेद मे

परमात्मा को रस कहा गया है, जैसे 'रसो वै स'। जल को भी रस कहते है, इस तरह रस का प्रयोग बहुत अर्थों मे देखा जाता है।

जैसे रस शब्द अनेकार्थक है उसी प्रकार उसकी रसन-प्रणाली भी भिन्न-भिन्न है। कान ने जैसे मधुर बातो को सुना, आँखो ने जिस प्रकार मयक को रस बरसते देखा, जीभ ने जिस प्रकार फलो के अथवा खट्टे-मीठे पदार्थों के रस को चखा—उन सब का प्रकार एक नही अलग-अलग है। इससे आस्वादन-प्रणाली की भिन्नता स्पष्ट है। साहित्य मे जैसे रस शब्द का ग्रहण इन सबो से भिन्न दूसरे ही अर्थ मे होता है उसी प्रकार उसकी व्यापकता भी अधिक है और उसके आस्वादन का ढंग भी विलक्षण।

## रस के साधन

शब्द दो प्रकार का होता है, ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। जिस समय विमुग्धकरी वंशी बजती रहती है अथवा कोई सुकंठ पक्षी गान करता रहता है उस समय भी हमारे कानो तक उनकी लहर पहुँचती रहती है, परन्तु उनमे झंकार मात्र होती है, वर्णविन्यास नहीं होता। अतएव ऐसे शब्द को 'ध्वन्यात्मक' कहते है, क्योंकि वह ध्वनि पर ही अवलम्बित होता है। दूसरा वर्णात्मक शब्द वर्ण-विन्यास-युक्त होता है। एक वर्ण-विन्यास व्यक्त और दूसरा अव्यक्त होता है। जैसे ऑय, बॉय, सॉय—शब्द वर्ण-विन्यास-युक्त है, किन्तु इनका कोई अर्थ नहीं, अतएव ये अव्यक्त है। जब हम कहेंगे 'आप कृपा करके आइये' तो यह व्यक्त हो जावेगा, इसलिये कि इसके वर्णों का कुछ अर्थ है। ध्वन्यात्मक शब्दो से व्यक्त वर्णात्मक शब्द अधिक प्रभावशाली और उपयोगी होता है।

ध्वन्यात्मक शब्दो मे कितना आकर्षण है यह अविदित नही। वाद्यो का मधुर वादन, पक्षियो का कलकूजन, कमनीय कंठो का स्वर, कितना हृदय-विमोहक है, यह सब जानते है। शेख सादी कहते है—

बेहज रूयजेबास्त आवाजे खुश ।
कि ईं इज़्जे नफसस्त वीं कूत रूह ।

सुन्दर मुख से मधुर ध्वनि कही उत्तम है । वह आनंदित करता है और इससे प्राणो की पुष्टि होती है । जिस समय बाजे मधुरता से बजते रहते है क्या उस समय वे उन्मादक नही होते ? क्या कामिनी-कंठ लोगो पर जादू नही करता ? बालको के कंठ की कूक क्या स्वर्गीय सुधा नही बरसाती ? मुरलीमनोहर की मुरली क्या पादप एवं लता-बेलियो तक को स्तम्भित नही करती थी ? श्रीमद्भागवतकार लिखते है—

वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ।
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णु व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजु स्म ॥

—श्रीमद्भागवत, १०।३५।८, ९

भगवान् जब वन मे प्रवेश कर पहाड़ मे विचरनेवाली अपनी गायो को वेणु बजाकर बुलाते है तब पुष्प-भारनम्र लताए अपनी आत्मा मे परमात्मा का अनुभव करती हुई स्नेह से परिपुष्ट हो तरुसमूह के साथ फूल-फल से मधुधारा को वर्षा करने लगती है। कविवर सूरदासजी क्या कहते है उसे भी सुनिये—

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाइ ।
मोहे सुर नर नाग निरतर ब्रज-बनिता सब धाई ।
जमुनातीर प्रवाह थकित भयो पवन रह्यो उरझाई ।
खग मृग मीन अधीन भये सब अपनी गति बिसराई ।
द्रुमबल्ली अनुरागु पुलक तनु ससि थक्यो निसि न घटाई ।
सूरस्याम बृदाबन बिहरत चलहु चलहु सुधि पाई ॥

यदि भगवान् श्रीकृष्ण की मुरली के विषय मे कुछ 'इदं कृत.' हो और उसके वर्णन को रंजित समझा जावे तो लोक की घटनाओ पर ही दृष्टि डाली जावे । क्या नट की तमडी का नाद [illegible]

नही हो जाता ? क्या बधिक की वीणा पर हरिण अपने प्राण उत्सर्ग नही कर देता ? वास्तविक बात यह है कि ध्वनि अपार शक्तिमयी है अतएव ध्वन्यात्मक शब्द भी प्रभावशालिता मे कम नही। परन्तु वर्णात्मक शब्द उससे भी लोकोत्तर है। वेद भगवान जिस ज्ञान का महत्त्व इन शब्दो मे प्रकट करते है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः', बिना ज्ञान के मुक्ति नही होती, उस ज्ञान का आधारस्तम्भ वर्णात्मक शब्द है संसार का साहित्य, जो समस्त सभ्यताओ का जनक है, वर्णात्मक शब्दो की ही विभूति है। इसीलिये ध्वन्यात्मक से वर्णात्मक शब्दो का महत्त्व अधिक है और निम्नलिखित श्लोक मे सगीत से साहित्य का स्थान प्रथम।

साहित्यसगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

'साहित्य-संगीत-कला-विहीन जन बिना सींग पूँछ का पशु है।'

तैत्तिरीय उपनिषद् मे लिखा है—

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठ प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पाप मपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्माद् धर्मं परम वदन्ति"

धर्म सारे जगत् की प्रतिष्ठा है, लोक मे धर्मिष्ठ पुरुष की ओर प्रजा जाती है, धर्म से पाप कटता है। सब कुछ धर्म पर प्रतिष्ठित है इसीलिये धर्म को सब से बढ़कर कहा गया है।

जिस धर्म की ऐसी महत्ता है उसके आधार ससार के धर्मग्रन्थ है और धर्मग्रंथो के अवलम्बन वर्णात्मक शब्द। मन्त्र की महिमा को कौन नही जानता। गोस्वामी तुलसीदास कहते है—मत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्व'। मन्त्रो के विषय मे ऋग्वेद की यह आज्ञा है—

"मन्त्रो गुरु (१।१६७-४), सत्यो मन्त्रः (१, १, ५२, २), मन्त्रेभिः सत्यै (१, ६७, ३), तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुव मन्त्र देवा अनेहसम् (१, ४०, ६)।

मन्त्र गुरु है, मन्त्र सत्य है, हे देवतो, हम यज्ञो मे उन सच्चे मन्त्रो को कहें जो सुख देनेवाले और पाप से बचानेवाले है।

ये मन्त्र क्या है ? वर्णात्मक शब्दो के समूह मात्र। इससे अधिक

वर्णात्मक शब्दो की महत्ता और क्या बतलाई जा सकती है। व्यवहार मे देखा जाता है कि जिसकी वाचाशक्ति जितनी बढ़ी और सुसंगठित होती है संसार मे उसको उतनी ही सफलता मिलती है। 'बात की करामात' प्रसिद्ध है और इस कहावत को कौन नही जानता—'बातै हाथी पाइये बातै हाथी-पाँव'। मनुष्य के हृदय पर अधिकार करने की शक्ति जितनी इसमे है, अन्य किसी दूसरी वस्तु मे नही। जहाँ वचन-रचना और ध्वनि दोनो मिल जाती है, वहाँ मणिकांचन योग हो जाता है और असभव सभव होता है। भाव और विचारो को इनके द्वारा वह सहायता मिलती है कि उनकी सफलता की पराकाष्ठा हो जाती है। जैसा इनके द्वारा बाह्य जगत् प्रभावित होता है वैसा ही अन्तर्जगत् भी।

बाजा कितनी ही मधुरता से क्यो न बजता हो, किन्तु उसमे वह तन्मयता नही होती जितनी उस समय होती है जब उसके साथ मधुर सगीत भी होता हो। यदि यह मधुर संगीत भावमय हो तो क्या कहना! वह तो बिल्कुल तन्मय कर देता है। उस समय देहाध्यास तक जाता रहता है। ऐसा क्यो होता है? मै यह बतलाने की चेष्टा करूँगा।

ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक शब्दो के प्रभाव के विषय मे ऊपर लिख आया हूँ। जिस समय कोई सुंदर बाजा बजता रहता है अथवा कोई कल ध्वनि वायु मे ध्वनित होती रहती है उस समय उसको कान आस्वादन करता है और उसके साहचर्य से हृदय मे आनंद की एक लहर-सी उठती रहती है, किंतु उसमे सोचने, समझने, विचारने एवं मनन करने की कोई बात नही होती। न तो उनको सुनकर कोई विशेष भाव हृदय मे उत्पन्न होता और न धीरे-धीरे बढ़कर वह प्रगाढ ही बनता है। समय की कोमलता, मधुरता, सरसता, रूक्षता और तीव्रता की दृष्टि से जितनी राग-रागिनियो की कल्पना हुई है उनके स्वरो मे निस्सन्देह ऐसा विकास मिलता है जो हृदय मे अनेक सामयिक भावों को उदित करता है। वंशी की ध्वनि जितनी विरागमयी है, वीणा की

ध्वनि उतनी ही उल्लासकरी। रण-वाद्य जैसा उत्तेजक है, मृदंग वैसा ही मानस-विमोहक। जब कोकिल बोलता है तो ज्ञात होता है कि उन्माद हृदय का आलिंगन करता है, किंतु चातक के स्वर में यह बात नहीं पाई जाती, उसको सुनकर चित्त किसी मर्म-पीड़ा का अनुभव करने लगता है। किसी-किसी पक्षी का स्वर इतना मधुर और मोहक होता है कि वह प्रकृति-वधूटी का वसुन्धरा-विमुग्धकर कोई अलौकिक आलाप जान पड़ता है। यद्यपि इन बातों से हमारी मानसिक स्थिति और संस्कृति का बहुत कुछ संबंध है तथापि स्वरों और ध्वनियों की भाव-प्रवणता अस्वीकार नहीं की जा सकती। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि वचन-रचना उससे अधिक प्रभावमयी है। व्यापकता में चाहे वह उसका सामना न कर सके, किंतु प्रभावशालिता में उसको अवश्य उत्कर्ष है। आप लोगों ने व्यासासन पर से यदि किसी सुवक्ता को किसी विषय का निरूपण करते सुना होगा अथवा किसी 'हॉल' में बैठकर किसी प्रसिद्ध वाग्मी का भाषण श्रवण किया होगा तो आप लोगों से यह छिपा न होगा कि वचन-रचना में कितनी शक्ति होती है। जनता को हँसा देना, रुला देना, उत्तेजित कर देना, उसके मन को अपनी मुट्ठी में कर उससे मनमानी करा लेना उनके बाएँ हाथ का खेल होता है। भगवान् बुद्ध, महात्मा ईसा और हज़रत मुहम्मद ने अपनी विचित्र वाक्य-रचना-शक्ति से संसार में जो चमत्कार कर दिखलाया वह लोकोत्तर और अभूतपूर्व है। कोई मधुर ध्वनि और मनोहर निनाद आज तक वह कार्य न कर सका। कालान्तर में भी न कर सकेगा। 'सरगम' का समादर है, परंतु क्या उतना ही जितना भाव-मय गान का? हारमोनियम की स्वर-लहरी विमुग्ध करती है, किंतु क्या फोनोग्राफ के इतना ही? कनसर्ट का कमाल आप लोगों ने देखा होगा, अनेक सम्मिलित स्वर किस प्रकार उसमें आकर्षण उत्पन्न करते हैं, जिसने उसको सुना होगा वह इस बात को भली भाँती जानता

है। किंतु गाना आरंभ होने दीजिये। फिर देखिये, वह किस प्रकार इन समस्त स्वर लहरियो पर अधिकार कर लेता है। उसके एक-एक भावमय पदों को स्पष्ट सुनाई देने के लिये किस प्रकार स्वर-लहरियों को संयत होना पड़ता है और फिर वह किस प्रकार सहृदय जनों को विमुग्ध करके भावमत्त बनाता और उनके आनंद को द्विगुण-त्रिगुण करता रहता है, यह अविदित नही। कभी-कभी तो एक-एक पद पर लोग लोटपोट हो जाते और तत्सबंधी अन्य पदो को सुनने के लिये इतना उत्कर्ण हो उठते है कि क्षण-भर का विलम्ब भी असह्य हो जाता है। यदि आप लोगो ने कव्वाली सुनी होगी अथवा किसी संत समाज मे बैठकर भजन-गान होते देखा होगा तो आप लोगो को श्रोताओ की तल्लीनता अविदित न होगी। उस समय की वहाँ की उत्सुकता और उस समय का वहाँ का भावावेश विलक्षण होता है। यह ज्ञात होता है कि चारो ओर से अपूर्व आनंद का समुद्र उमड़ रहा है और उसमे लोग मग्न हो रहे है, हाथ-पाँव मार रहे है, उछल रहे है और जितना ही अलौकिक रस का पान कर रहे है उत्तरोत्तर उनकी तृषा उतनी ही बढ़ती जा रही है। कितना ही मधुर बाजा बजे, कितनी ही मुग्धकरी ध्वनि क्यो न हो, उसके द्वारा प्राय ऐसा भावावेश नहीं होता, क्योंकि उसका रस उतना प्रगाढ़ नही हो सकता। भावमय शब्दो को कान सुन सकते है, यदि ये शब्द मधुर कंठ से निकले है तो उसकी मधुरता का आनंद वे प्राप्त कर सकते है, किंतु उनमे जो लोकोत्तर अथवा अपूर्व भाव है उसके ग्रहण करने की शक्ति उनमे नही होती, अतएव भावमय शब्द-प्रसूत-विह्वलता वे उत्पन्न नही कर सकते। यह कार्य हृदय का है और हृदय के भाव-विह्वल होने पर ही, इस प्रकार का भावावेश देखा जा सकता है।

कंठस्वर, मधुरध्वनि और वचन-रचना के अतिरिक्त वेशविन्यास भावभंगी, कथन-शैली इत्यादि का प्रभाव भी हृदय पर पड़ता है। इनकी

सहकारिता से वचन-रचना अपने भावों को अधिकाधिक पुष्ट कर सकती है। कर-सचालन, अंग-संचालन, अथच अंगुलि-निर्देश से अनेक अस्पष्ट भाव स्पष्ट हो जाते है और कितनी ही अव्यक्त बाते व्यक्त बनती है। नृत्त अथवा नृत्य एवं अभिनय के ढंग की अनेक कलाएँ भी यथावसर भावपुष्टि का साधन बनती रहती है। अतएव इनकी उपयोगिता भी अल्प नही। जब ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक शब्द अंग-संचालनादि अन्य साधनो और कलाओ के आधार से किसी भाव को पुष्ट करते है उसकी वास्तविक पुष्टि उसी समय होती है और साहित्य के उस रस की यथार्थ उत्पत्ति भी प्राय तभी होती है, जो सहृदय-हृदय-संवेद्य माना जाता और जिसका सुख ब्रह्मानंद समान कहा जाता है। इसीलिये प्राय: दृश्य-काव्यो-द्वारा ही साहित्यिक रस की मीमांसा की गई है क्योकि उसमे प्राय सभी साधनों का समीकरण होता है।

## रस की उत्पत्ति

यह स्वाभाविकता है कि मनुष्य मनुष्य के सुख से सुखी और उसके दु:ख से दुखी होती है। संबंध-विशेष होने पर इसकी मात्रा मे तारतम्य हो सकता है, किंतु यह असंभव है कि एक मानव के हृदय का प्रभाव दूसरे मानव के हृदय पर न पड़े। संस्कृति, विचार-विभिन्नता और विरोध अतर डाल सकते है, किंतु यह अपवाद है, साधारण नियम नही। जब हम किसी को रोते देखते है तो हमारा दिल पिघल जाता है और हम भी उसके दु:ख का अनुभव करने लगते है और जब किसी को प्रफुल्ल देखते है तो हम भी प्रफुल्ल हो जाते है और उसके हृदय का आनंद हमारे हृदय मे भी प्रवेश करता है। वास्तव मे प्राणी-मात्र का हृदय एक है और एक गुप्त तार सदा उसको मिलाये रहता है, यह दूसरी बात है कि कोई प्रतिबंध बीच-बीच मे उसको तोड़ता रहे। एक भूखा हमारे सामने आकर जब पेट दिखा और आँसू बहाकर कुछ माँगता है तो

उसका यह कारुणिक भाव हमारे हृदय में करुणा उत्पन्न किये बिना नहीं रहता। हमने एक बंगाली को देखा कि जब मधुर स्वर में वह बेला बजाने लगता तो आप भी मस्त हो जाता और अपने मधुर-वादन और भावभंगी द्वारा अन्धों को भी कुछ-न-कुछ मस्त बना देता। जो कवि कविता पढ़ते-पढ़ते स्वयं मुग्ध हो जाता है वह दूसरों को भी मुग्ध बनाये बिना नहीं छोड़ता। भजनानंदी औरों को भी आनंदित कर लेता है। यदि यह सत्य है तो यह भी सत्य है कि एक सरस हृदय से निकले हुए प्रभावजनक भाव अन्य हृदय को सरस बनाये बिना नहीं छोड़ते। यह हुई साधारण अवस्था की बात और जब प्रगाढ़ होकर यह अवस्था उच्चतर हो जाती है तभी रस की उत्पत्ति होती है। नाट्यशास्त्रकार महामुनि भरत लिखते हैं—

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति.'

विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के सयोग से रस की उत्पत्ति होती है। काव्य-प्रकाशकार इसकी टीका यों करते हैं—

"कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।
विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिण.।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।"

लोक में रति आदिक स्थायी भावों के जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं नाटक और काव्य में वे ही विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी—क्रम से—कहलाते हैं। इन विभावादि की सहायता से व्यक्त स्थायी भाव की रस संज्ञा होती है।

अब यहाँ प्रश्न यह होगा कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी अथवा संचारी भाव किसे कहते हैं। इस विषय में साहित्य-दर्पणकार यह लिखते हैं—

१—**विभाव**—'रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः'

लोक मे जो रति आदिक के उद्बोधक है वे ही काव्य और नाटकों मे 'विभाव' कहलाते है, इसकी व्याख्या ग्रन्थकार ही यो करते हैं—

"ये हि लोके रामादिगतरतिहासादीनामुद्बोधकारणानि सीतादयस्त एव काव्ये नाट्ये च निवेशिताः सन्तः विभाव्यन्ते आस्वादाङ्कुरप्रादुर्भावयोग्या क्रियन्ते सामाजिकरत्यादिभावाः एभिः इति विभावा उच्यन्ते ।"

"लोक मे सीता आदिक जो रामचंद्रादि की रति आदि की उद्बोधक प्रसिद्ध है वे ही यदि काव्य और नाटक मे निवेशित किये जावे तो 'विभाव' कहलाते है, क्योंकि वे सहृदय द्रष्टा तथा श्रोताओं के रत्यादिक भावो को विभावित करते है अर्थात् उन्हें रसास्वाद की उत्पत्ति के योग्य बनाते है।"

विभाव के दो भेद है—पहला आलम्बन और दूसरा उद्दीपन। रति आदिक स्थायी भावो के आधार नायक-नायिका 'आलम्बन' और उनके उद्दीप्त करनेवाले चद्र, चाँदनी, मलय-पवन आदि 'उद्दीपन' कहलाते है। साहित्य-दर्पणकार लिखते है—

> आलम्बनोद्दीपनाख्यो तस्य भेदावुभो स्मृतौ ।
> आलम्बनो नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात् ।
> उद्दीपनविभावास्ते रसामुद्दीपयन्ति ये ।

२—अनुभाव—'अनुभावयन्ति इति अनुभावा.'।

रति आदिक स्थायी भावो का जो अनुभव कराते है उन्हे अनुभाव कहते है। अमरकोशकार लिखते है—'अनुभावो भावबोधकः'।

३—व्यभिचारी अथवा सचारी भाव—

साहित्य-दर्पणकार कहते है—

'स्थिरतया वर्त्तमाने हि रत्यादौ निर्वेदादयः प्रादुर्भावतिरोभावाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिताः कथ्यन्ते'।

रति आदिक स्थायी भाव मे आविर्भूत और तिरोभूत होकर जो

निर्वेद आदि भाव अनुकूलता से व्याप्त रहते है उन्हें विशेष रीति से संचरण करते देखकर संचारी कहा जाता है।

मानव के हृदय मे वासना अथवा संस्कार-रूप से अनेक भाव सदा उपस्थित रहते है, वे किसी कारण-विशेष द्वारा जिस समय व्यक्त होते है उसी समय उनकी उपस्थिति का पता चलता है। इन भावो मे जिनमे अधिक स्थिरता और स्थायिता होती है, जो किसी भी काव्य-नाटकादि मे आद्योपान्त उपस्थित रहते है, प्रधानता और प्रभावशालिता मे औरो से उत्कर्ष रखते है, साथ ही जिनमे रस-रूप मे परिणत होने की शक्ति रहती है, उनको स्थायी भाव कहा जाता है। यथा—

रसावस्थः परंभावः स्थायिता प्रतिपद्यते।

जो भाव रस-अवस्था को प्राप्त हो, वही स्थायी होता है। रसगंगाधर मे स्थायी भाव के विषय मे यह लिखा गया है—

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।<br>
आत्मभावं नयत्याशु स स्थायी लवणाकरः॥<br>
चिरं चित्तेऽवतिष्ठन्ते सम्बध्यन्तेऽनुबन्धिभिः।<br>
रसत्वं ये प्रपद्यन्ते प्रसिद्धाः स्थायिनोऽत्र ते॥<br>
सजातीयविजातीयैरतिरस्कृतमूर्तिमान्।<br>
यावद्रसं वर्त्तमानः स्थायिभाव उदाहृतः॥

जो भाव विरोधी एवं अविरोधी भावो से विच्छिन्न नहीं होता, किंतु विरुद्ध भावो को भी शीघ्र अपने रूप मे परिणत कर लेता है, उसका नाम स्थायी है, उसकी अवस्था लवणाकर के समान होती है, जो प्राप्त समस्त वस्तुओ को लवण बना लेता है॥ १॥ जो भाव बहुत समय तक चित मे रहते है, विभावादिको से संबंध करते है, और रस-रूप बन जाते है, वे स्थायी कहलाते है॥ २॥ जो मूर्तिमान भाव सजातीय और विजातीय भावो से तिरस्कृत न किया जा सके और जब तक रस का आस्वादन हो तब तक वर्त्तमान रहे, उसे स्थायी भाव कहते है॥ ३॥

भरत मुनि कहते है—

यथा नराणा नृपति. शिष्याणा च यथा गुरु. ।
एव हि सर्वभावाना भावः स्थायी महानिह ॥

जैसे मनुष्यो मे राजा, शिष्यो मे गुरु, वैसे ही सब भावो मे स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है ।

काव्यप्रकाशकार पहले अष्ट रसो का नाम बतलाते है । वे ये है—

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
वीभत्साद्भुतसंज्ञो चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥

फिर कहते है—'एषा स्थायी भावानाह' ।

अब इनके स्थायी भावो को बताता हूँ । उनके नाम सुनिये—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भय तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा' प्रकीर्तिता ॥

अंत मे लिखते है—निर्वेद' स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस. ।

इन पंक्तियो के पठन करने से यह स्पष्ट हो गया कि शृंगार, हास्य, करुण आदि नव रसो के जनक रति, हास, शोक आदि नव स्थायी भाव है । इन स्थायी भावो मे से कोई एक जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव की सहायता से लोकोत्तर आनंद रूप मे परिणत होकर व्यक्त होता है, तब उसकी 'रस' संज्ञा होती है ।

मान लीजिये कि कही कोई रामलीला-मंडली आई है और किसी सुसज्जित स्थान पर रामलीला हो रही है । मधुर स्वर से बाजे बज रहे है, कमनीय कठ से रामायण का गान हो रहा है, और अपार जनता वहाँ एकत्र है । इतने मे जयध्वनि हुई, और एक रमणीय वाटिका मे किशोर-वयस्क भगवान् रामचंद्र अपने प्रिय अनुज के साथ पुष्पचयन करते दिखाई पड़े । फिर कंकण-किंकिणी की ध्वनि हुई और मंदगति से श्रीमती जनकनंदिनी का सखियों समेत उसमे प्रवेश हुआ । धीरे-धीरे पुष्पवाटिका की लीला का समा बँधने लगा और चारो ओर

आनंद का समुद्र उमड़ पड़ा। अनेक भावुक भक्तजनो की तल्लीनता बढ़ गई, और वे परमानंद-पयोधि मे ऐसे मग्न हो गये कि सब कुछ भूल गये। कभी वे शिर हिलाते, कभी झूमते, कभी वाह-वाह करते और कभी युगलमूर्त्तियो की छवि को एकटक देखते रह जाते।

इस दृश्य मे भावुक भक्तजनो की रति स्थायी भाव है, क्योंकि रसत्व उसको ही प्राप्त है। भगवान् रामचंद्र और श्रीमती जानकी आलम्बन-विभाव है, क्योंकि उनकी रति अर्थात् प्रेम के आधार वे ही है, और वे ही उसको विभावित करते है। तरंगायमान स्वरलहरियो का प्रसार, भाव-मय रामायण की चारु चौपाइयो का गान, युगलमूर्त्तियो का शृगार आदि उद्दीपन विभाव है, क्योंकि वे ही रति के उद्दीप्त करने के कारण है। भक्तजनो का शिर हिलाना, झूमना आदि अनुभाव है, क्योंकि वे ही रति-भाव के बोधक है। उत्सुकता और उत्फुल्लता आदि संचारी है, जो रति-भाव मे समय-समय पर संचरण करके उसको उत्तरोत्तर वर्द्धित करते रहते है। स्थायी भाव के कारण को विभाव, कार्य को अनुभाव और सहकारी को संचारी भाव कहते है। मै समझता हूँ, जो उदाहरण मैने उपस्थित किया है, उससे यह बात भली भाँति समझ मे आ गई होगी। फिर भी इसको और स्पष्ट किये देता हू। भक्तजन के स्थायी भाव रति के कारण-भूत कौन है? युगलमूर्त्ति और उनके शृंगारादि। अतएव आलम्बन और उद्दीपन विभाव दोनो इसमे आ गये। रति के कार्य उनमे किस रूप मे प्रकट हुए, झूमने और एक-टक अवलोकन करने आदि मे, ये ही अनुभाव है। रति को अपने कार्य मे किससे सहायता मिलती रही उत्सुकता और उत्फुल्लता आदि से, ये ही संचारी भाव है। इसलिये विभाव का कारण, अनुभाव का कार्य और सहकारी का संचारी होना स्पष्ट है।

## रसास्वादन प्रकार

आप लोगो को इसका अनुभव होगा कि रामलीला के दृश्यों का

सब के हृदय पर समान प्रभाव नही पड़ता। कोई उनको देखकर अत्यन्त विमुग्ध होता है, कोई अल्प और कोई नाम-मात्र को। कुछ लोग वहाँ ऐसे भी दिखलाई देते है, जिनका हृदय रामलीला देख प्रभावित होकर भी प्रभावित नही होता। इससे यह जाना जाता है कि रस का अधिकारी सब का हृदय नहीं होता। जिसमे भावुकता नही—जिसकी वासना रस-ग्रहणाधिकारिणी नही—और जिसकी सस्कृति मे रसानुकूल साधनाये नहीं, उनके हृदय मे रस की उत्पत्ति नही होती। साहित्य-दर्पणकार ने इस बात के प्रमाण मे एक विद्वान् का यह वचन उद्धृत किया है—

सवासनाना सभ्याना रसस्यास्वादन भवेत्।
निर्वासनास्तु रङ्गान्तः काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः॥

"'वासनायुक्त सभ्यो को ही रसास्वाद होता है। वासना-रहित पुरुष तो नाट्य-शाला मे काठ, पत्थर और दीवाल के समान ही जड़ बने रहते हैं।'

प्रयोजन यह कि समस्त साधनो के उपस्थित होते भी जिसके हृदय का स्थायी भाव यथातथ्य व्यक्त नही होता, उसके हृदय मे रस की उत्पत्ति होती ही नही। रस की उत्पत्ति तभी होगी जब स्थायी भाव व्यक्त होकर विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के साथ सर्वथा तल्लीन हो जायगा। साहित्य-दर्पणकार कहते है—

ननु तर्हि कथं रसास्वादे तेषामेकः प्रतिभास इत्युच्यते—
प्रतीयमानः प्रथम प्रत्येक हेतुरुच्यते।
ततः सम्मिलितः सर्वो विभावादिः सचेतसाम्।
प्रपानकरसन्यायाच्चर्व्यमाणो रसो भवेत्।

यथा खण्डमरिचादीना सम्मेलनादपूर्व इव कश्चिदास्वादः प्रपानकरसे सजायते विभावादिसम्मेलनादिहापि तथेत्यर्थः।

"अच्छा तो फिर रसास्वाद में उन सब विभावादिको का एक प्रति-

भास अर्थात् एकरस के रूप मे परिणाम कैसे होता है? भिन्न-भिन्न कारणो से भिन्न-भिन्न काय ही होने चाहिएँ। इसका समाधान करते है। पहले विभावादि पृथक् पृथक् प्रतीत होते है, उसी समय उन्हे हेतु कहा जाता है, इसके अनतर भावना के बल से और व्यंजना की महिमा से आस्वाद्यमान सब सम्मिलित विभावादिक सहृदयो के हृदय मे प्रपानक रस की भॉति अखंड एकरस के रूप मे परिणत हो जाते है। जैसे किसी प्रपानक रस मे खॉड़, मिर्च, जीरा, हीग आदि के सम्मेलन से एक अपूर्व उन सब के पृथक्-पृथक् स्वाद से विलक्षण आस्वाद पैदा होता है, उसी प्रकार विभावादि के सम्मेलन से एक अपूर्व रसास्वाद पैदा होता है, जो विभावादिको के पृथक्-पृथक् आस्वाद से विलक्षण होता है।''—विमलाथदर्शिनी

यहॉ यह प्रश्न हो सकता है कि स्थायी भाव के व्यक्त होने का क्या अर्थ? दूसरी बात यह कि सब दर्शको के रति भाव को रसता क्यो नहीं प्राप्त होती?

जितने स्थायी अथवा संचारी भाव है वे वासना-रूप से सदैव मानवमात्र के हृदय मे वैसे ही विद्यमान रहते है जैसे पृथ्वी मे गध। कहा गया है कि 'गंधवती पृथ्वी'. किन्तु पृथ्वी की गंध, वृष्टि होने पर ही विदित होती है। इसी प्रकार भावोदय भी विशेप कारणो से होता है। जिस समय कोई भाव हृदय मे उदित होकर कार्यकारी बनता है, उसी समय उसकी प्रतीति अनुभावो द्वारा होती है। आदि मे लहरे समुद्र मे अव्यक्त अवस्था मे रहती है, बाद को वे व्यक्त होती है। इस व्यक्ति का भी अनेक रूप होता है, कभी यह रूप बहुत साधारण होता है और कभी बहुत व्यापक, विशाल और अचिंतनीय! यही अवस्था हृदय और भावो की है। आप हृदय को समुद्र और भावो को लहरे समझे, भावोदय के कारणो को विविध समीर। कैसे अव्यक्त भाव व्यक्त होकर कार्यकारी हो जाता है, तरंगो की स्थिति और उनकी

गति-विधि पर विचार करने से यह बात भी स्पष्ट हो जावेगी। अब रही दर्शकों के रति भाव की बात।

मैं पहले कह आया हूँ कि लीला देखने में सब दर्शकों की तल्लीनता समान नहीं होती, ऐसी अवस्था में सब के हृदयों में रति भाव का उदय एक रूप में न होगा, उसमें तारतम्य होगा। कहीं वह तरलातितरल, कहीं तरल, कहीं प्रगाढ़ और कहीं उससे भी प्रगाढ़ होगा। कोई बाजों का अनुरागी होता है, कोई गाने का, कोई वेषभूषा का, कोई स्वाभाविक दृश्यों का, कोई रामायण सुनने का, कोई उसकी भावमय कविताओं का, कोई उसके शब्द-विन्यास का, कोई हाव-भाव-कटाक्ष का, कोई नाच-रंग का और कोई वार्तालाप का, कोई स्वरूपों को साधारण मनुष्य समझेगा, कोई राजकुमार और कोई अवतार। इस दृष्टि से उनमें किसी की रति सामान्य होगी, किसी की उससे अधिक और किसी की अगाध। कोई इनमें से दो-दो तीन-तीन बातों के प्रेमी मिलेंगे, कोई कई एक के और कोई सभी बातों के। जिसकी जैसी रुचि होगी, उसी के अनुसार उसकी भावग्राहिता होगी और उसी के परिणाम से उसकी रति तरल, प्रगाढ़ अथवा अधिक प्रगाढ़ होगी। मैं पहले गान, वाद्य अभिनय इत्यादि साधनों के प्रभाव का विस्तृत वर्णन कर आया हूँ। यह भी बतला चुका हूँ कि सब साधनों का सम्मिलित प्रभाव जितना हृदय-ग्राही, विमुग्धकर और व्यापक होता है, उतना किसी एक अथवा दो-चार का नहीं। ऐसी अवस्था में आप यह सोच सकते हैं कि किसके हृदय का रति-भाव किस अवस्था में किस कोटि का होगा। केवल दूध-दही, घी शहद, मीठे को अलग-अलग अथवा इनमें से किसी दो-तीन-चार को एक साथ आस्वादन करनेवाला पचामृत के स्वाद का आनंद नहीं प्राप्त कर सकता और न अनेक सुंदर और स्वादिष्ट पेय पदार्थों से बने हुए प्रपानक रस पान का परमानंद वह पा सकता है, जिसने उनमें से किसी एक-दो पेय वस्तुओं

का ही स्वाद चखा है। आशा है, इतना निवेदन करने के बाद यह बात समझ में आ गई होगी कि सबके र.त-भाव को रसता क्यों नहीं प्राप्त होती। वास्तविक बात यह है कि परमानंद प्राप्ति का अधिकारी पूर्ण ज्ञान-प्राप्त, उदात्त और भावुक हृदय ही होता है और उसी के रति-भाव को रसता प्राप्त होती है। अपनी भावना के अनुकूल थोड़ा-बहुत आनंद लाभ करनेवाले की रति का ऐसा सौभाग्य कहाँ? भगवान् मरीचिमाली की किरणें अनेक वस्तुओं पर प्रतिफलित होती है, किन्तु हिमाचल के हिम-धवल शृंगों का गौरव किसे प्राप्त होता है?

यहाँ पर मै यह भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि जितने स्थायी भाव है, अनेक अवस्थाओ मे वे संचारी ही रहते है, विशेष अवस्था मे ही उनको रसत्व प्राप्त होता है। रति अथवा अनुराग की भी यही अवस्था है। साहित्य-दर्पणकार लिखते है—

अत्र च रत्यादिपदोपादानेन स्था।यत्वे प्राप्ते पुनः स्थायिपदोपादान रत्यादीनामपि रसान्तरेऽस्थायित्वप्रतिपादनार्थम्। ततश्च हासक्रोधादयः शृंगारवीरादौ व्यभिचारिण एव।

भावार्थ इसका यह है, 'जो रति आदि एक रस के स्थायी है, वे ही दूसरे रस मे जाकर अस्थायी हो जाते है, अत. शृंगार-वीरादि रसों मे हास, क्रोध आदि जो हास्य और रौद्रादि रसो के स्थायी है, संचारी (अस्थायी) हो जाते है।

'रत्नाकर'-कार भी यही कहते है, जिसका प्रतिपादन रसगगाधर-कार भी करते हैं—

> रत्यादयः स्थायिभावाः स्युर्भूयिष्ठविभावजाः।
> स्तोकैर्विभावैरुत्पन्नास्त एव व्यभिचारिणः॥

'अधिक विभावादिको से उत्पन्न हुए रति आदि स्थायी भाव होते है और वे ही जब थोड़े विभावादिको से प्रसूत होते है तो व्यभिचारी कहलाते है।'

—हिन्दी रसगगाधर

इससे क्या प्रतिपादित हुआ ? यही न कि जिन दर्शकों के हृदय मे रति-भाव सचारी-भाव के रूप मे प्रकट होगा, उसमें उसको रसता नहीं प्राप्त हो सकती ! रसता उसी के हृदय के रति-भाव को प्राप्त होगी, जिसमे उसका आविर्भाव स्थायी रूप मे होगा। ऐसे भावुक अल्प होते है, यही आचार्यो की सम्मति भी है। साहित्य-दर्पण मे इसका यह प्रमाण उठाया गया है—

'पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससततिम्'।

'जैसे कोई-कोई विशिष्ट योगी ब्रह्म का साक्षात्कार करते है, इसी प्रकार कोई-कोई पुण्यवान् अर्थात् वासनाख्य संस्कार से युक्त सहृदय पुरुष रस का आस्वाद लेते है'। —साहित्य-दर्पण

अब आप लोग समझ गये होगे कि किस लिये अधिकांश दर्शको की रति को रसता नही प्राप्त होती। वास्तविक बात यह है कि जिन हृदयो मे रति संचारी-भाव मे ही परिणत हुई, उनमे तो उसको स्थायी भाव का पद भी नही प्राप्त हुआ, फिर उसको रसता कैसे मिलती ? वसंतागम से जो उन्माद कोकिल के हृदय मे उत्पन्न होता है, जलदागम से जो प्रगाढ़ प्रेम पपीहा के हृदय मे उदय पाता है, उसके अधिकारी अन्य पक्षी नही हो सकते। श्रावण के मेघ की उपादेयता क्वार के श्वेत बादलो मे नहीं मिलती।

साहित्य मे रस किसे कहते है, उसकी उत्पत्ति कैसे होती है ? उसका अधिकारी कौन है ? प्राय. अधिकांश दर्शकों के भावो को रसता क्यो नहीं प्राप्त होती ? इन विषयों पर मै अपना विचार प्रकट कर चुका। रस-सबंधी कुछ और बाते भी सुनिये।

## रस का इतिहास

काव्य के दो भेद है—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। जो काव्य केवल श्रवण किया जा सकता है, उसको 'श्रव्य' कहते हैं, जैसे महा-

भारत, रामायण आदि; और जो काव्य रंगमंच पर खेलकर दिखलाया जाता है, उसे 'दृश्य' कहते है, जैसे शकुन्तला और उत्तररामचरित आदि। पहले मै इस बात का प्रतिपादन कर आया हूँ कि रस-उत्पत्ति के लगभग समस्त साधन दृश्य काव्य मे पाये जाते है। इसलिये पहले-पहल दृश्य काव्य के आधार से ही रस की ओर विबुधो का विचार आकर्षित हुआ। जिस समय रंगमंच का अभिनय देखकर लोग पुलकित होते थे और तरह-तरह के भावो से उनका हृदय गद्गद होता था, साथ ही जब विचारशील अपने साथ अन्यो को भी आनंदस्रोत मे बहते देखते तो उनको यह विचार होता कि जिस रस की प्राप्ति से दर्शक-मंडली इस प्रकार विमुग्ध होती है, उस रस का आधार कौन है? और वह कैसे उत्पन्न होता है? स्मरण रहे, यहाँ पर रस से उस तरल रस और साधारण आनद से ही प्रयोजन है, जो अभिनय के समय प्राय सब दर्शको को प्राप्त होता है। उस परमानंद अथवा प्रगाढ़ रस से नही, जिसका निरूपण बाद को गम्भीर गवेपणा के उपरान्त साहित्य-सर्मज्ञो ने किया। हृदय मे तर्क उपस्थित होने पर सहृदयो ने उसपर विचार आरंभ किया और अनेक सिद्धांतों पर पहुँचे। रसगगाधरकार ने उसका बड़ा सुंदर वर्णन किया है, उन्ही के ग्रंथ के आधार पर मै इस विपय मे यहाँ कुछ लिखता हूँ।

आप लोग जानते है कि नाटको मे जनता की दृष्टि को अपनी ओर अधिक आकर्षण करनेवाले, उसके पात्र ही होते है। अभिनेता मे ही यह शक्ति होती है कि अपने अभिनय और कलाकौशल से वह दर्शको के हृदय मे स्थान ग्रहण कर लेवे। अतएव पहले-पहल कुछ लोगो का यह विचार हुआ कि 'भाव्यमानो विभाव एव रस'। नाटक-पात्रो के वेष मे आकर जो अभिनेता हमारे सामने तत्सबंधी प्रेममूलक अथवा अन्य मनोभावो से सम्पर्क रखनेवाले कार्य-कलाप करता एवं नाना प्रकार की लीलाओ और हाव-भाव-कटाक्ष से हम लोगो को विमुग्ध

बनाता है, मूर्तिमान् रस वही है। क्योंकि नाटक-पात्रो के समस्त भावों और व्यापारो का आधार अथवा आलंबन वही होता है।

अनेक विचारशीलो को यह बात न जची। उन्होने सोचा, अभिनेताओ मे यो तो कोई आकर्षण होता नही, जब वे विशेष वेषभूषा मे रगमंच पर आते है और अपनी अगभगी, चेष्टाओ और रागरंग से लोगो को विमुग्ध करते है तभी दर्शको को आनंद प्राप्त होता है। अतएव रस चेष्टाओ और अंगभंगी आदि ही मे रहता है, अभिनेताओ मे नहीं। उनके इस विचार को रसगंगाधरकार ने इन शब्दो मे प्रकट किया है 'अनुभावस्तथातथेतरे'। भाव इसका यह है कि कुछ लोगो की यह सम्मति है कि 'अनुभावो' मे रस रहता है।

कतिपय भावुको के मन मे यह बात भी न जमी। उन्होने कहा, 'चेष्टाएं और अंगभंगी आदि अनुभाव किसी मानसिक भाव के परिणाम होते है, इसलिये रस रह सकता है तो उसी मे रह सकता है, क्योंकि कारण का गुण ही कार्य मे होता है' अतएव उनके मुख से यह बात निकली—'व्यभिचार्येव तथातथा परिणमति', अर्थात् हृदय के व्यभिचारी भाव ही रस-रूप मे परिणत होते है।

ज्यों-ज्यो इस विषय मे तर्क आगे बढ़ा और विचार होने लगा, त्यो-त्यो नई-नई धारणाएं हुई और एक के बाद दूसरे मत प्रकट होने लगे। किसी ने कहा, 'विभावादयस्त्रय· समुदितौरसाः', विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तीनो मिलकर इसकी सृष्टि करते है, क्योंकि वे परस्पर अन्योन्याश्रित है। किसी ने कहा—'त्रिषु य एव चमत्कारी स एव रसोऽन्यथा तु त्रयोऽपि नैव' 'तीनो मे जो चमत्कारी होगा, उसी की रस-संज्ञा होगी, अन्यथा किसी की नही।' जिस समय यह विवाद चल रहा था, उसी समय महामुनि भरत ने यह व्यवस्था दी 'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। किंतु यह उन्होंने नही बतलाया कि इन तीनो का सयोग

किसके साथ होने से, परस्पर होने से अथवा किसी अन्य के साथ होने से। मेरा विचार है, नीचे के वार्तिक मे उन्होने इस बात को भी स्पष्ट कर दिया है। उक्त सूत्र लिखकर वे स्वयं प्रश्न करते है—को दृष्टान्त, इसका क्या दृष्टान्त है ? फिर स्वयं उत्तर देते हैं—

'यथा हि—गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनौषधिभिश्च षाडवादयो रस निर्वर्तन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति'।

जिस प्रकार गुड़ादिक द्रव्य व्यंजनो और औषधियो से विविध प्रकार के पानक रस बनते है, वैसे ही अनेक भावो से युक्त होकर स्थायी भाव भी रसत्व को प्राप्त होते है।

'नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति' का 'स्थायिनो भावाः' किस भाव का व्यंजक है ? इसी भाव का कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावो का जब स्थायी भावो से संयोग होगा, तभी रस की उत्पत्ति होगी। रस किस मे और कैसे उत्पन्न होता है, इस बात का निर्णय महामुनि भरत ने अपने उल्लिखित सूत्र मे स्पष्टतया कर दिया है। किंतु इसके अर्थ मे ही मतभिन्नता हो गई, इसलिये विवाद कुछ दिन और चला, भट्ट लोल्लट आदि विद्वानो ने कहा—

यह स्वीकार कर लिया जाता है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रति आदिक स्थायी भाव को रसत्व प्राप्त होता है। किंतु यह रति आदिक भाव किनके होते है ? उन लोगो का कथन है कि ये रति आदिक भाव नाटक-पात्रों के होते है, चाहे वह नायक-नायिका हो, अथवा कोई और अपेक्षित पात्र। यहाँ यह प्रश्न होगा कि वे पात्र तो अतीत के गर्भ मे होते है, अथवा कल्पना-ससार मे विचरण करते रहते है, उनके रति आदिक स्थायी भावो से दर्शक-समुदाय कैसे प्रभावित होगा और यदि प्रभावित नही होगा, तो उनके करुण, निर्वेद, हास्य और आनंदादि का क्या हेतु होगा ? वे लोग कहते है, अभिनेताओ पर वे उन पात्रों का आरोप कर लेते हैं, अर्थात् वेष-भूषा और कार्य-कलाप द्वारा

दर्शक लोग उस समय अभिनेताओ को ही नाटक-पात्र मान लेते है और उनका यह ज्ञान ही उनके सुख-दु.ख अथवा आनंद का कारण होता है।

शकुक कहते है कि.आरोप कर लेने मे अवास्तविकता है। यदि आरोप करने के स्थान पर अनुमान कर लेना कहा जावे तो अधिक संगत होगा।

भट्टनायक ने आरोप अनुमान की बात नही मानी। उन्होने कहा—'अभिनय देखने के समय जो आनंद का प्रवाह बहता है, अथवा करुण आदि रस जिस भाव का विस्तार करते है, वे मोहक और व्यापक होते हैं। इसलिये उस समय दर्शक यह अनुभव नही कर पाते कि जिन रात आदिक भावो के आधार से वे रस विशेप का आस्वादन कर रहे है, उनके है, अथवा किसी नाटकीय पात्र के। वास्तव मे उस समय वे बिल्कुल निरपेक्ष होते है।

काव्य-प्रकाशकार को किसी की सम्मति पसन्द नहीं आई, उन्होने स्पष्ट कहा—

> कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
> रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥
> विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण'।
> व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥

लोक मे रति आदिक स्थायी भावो के जो कारण, कार्य और सहकारी होते है, नाटक और काव्य में ही विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी क्रम से कहलाते है। इन विभावादि की सहायता से व्यक्त स्थायी भाव की रस-संज्ञा होती है।

इसके आगे वे लिखते है 'अभिव्यक्तः सामाजिकानाम् वासनात्मतया स्थितः स्थायी रत्यादिको . . . . . अलौकिकचमत्कारकारी शृंगारादिको रस.।'

किस व्यक्त स्थायी भाव की रस-संज्ञा होती है, इस वार्तिक में यह स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने बतलाया कि सामाजिकों ( दर्शको ) के हृदय

मे वासना रूप मे स्थित स्थायी, रति आदिक भाव को ही रसत्व प्राप्त होता है। मै समझता हू, निम्नलिखित वार्तिक मे इसी बात को नाट्य-शास्त्रकार भरत मुनि उनसे भी पहले कह चुके है—

"नानाभावाभिनयव्यञ्जितान्वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकास्तस्मान् नाट्यरसा इत्यभिव्याख्याता.।"

नाना भावाभिनय से व्यंजित वचनावली और अगभंगी द्वारा दर्शक लोग मन मे स्थायी भावो के रस का आस्वादन करते है इसीलिये नाटको मे 'रस' माना गया है।

लगभग यही सम्मति अभिनव गुप्ताचार्य की है, वरन् वास्तविक बात तो यह है कि काव्यप्रकाशकार का विचार उसके प्रभाव से प्रभावित है। साहित्य-दर्पणकार का भी यही मत है और कुछ शाब्दिक परिवर्तन से इसी सिद्धात को पंडितराज जगन्नाथ भी स्वीकार करते है। बीच-बीच मे और तर्क-वितर्क भी हुए है, परंतु इस समय सर्वमान्य सिद्धान्त यही है।

हिदी शब्दसागर के रचयिता विबुधजन इस विषय मे जो लिखते है, उसे भी देखिये—

"हमारे यहॉ के आचार्यो मे इस विषय मे बहुत मतभेद है कि रस किसमे तथा कैसे अभिव्यक्त होता है। कुछ लोगों का मत है कि स्थायी भावो की वास्तविक अभिव्यक्ति मुख्य रूप से उन लोगों मे होती है, जिनके कार्यो का अभिनय किया जाता है। (जैसे राम, कृष्ण, हरिश्चद्र आदि) और गौण रूप से अभिनय करनेवाले नटो मे होती है, अत इन्हो मे लोग रस को स्थिति मानते है। ऐसे आचार्यो का मत है कि अभिनय देखनेवालो का काव्य पढ़नेवालो के साथ रस का कोई संबंध नहीं है। इसके विपरित अधिक लोगो का यह मत है कि अभिनय देखनेवालो तथा काव्य पढ़नेवालो मे ही रस की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे लोगो का कथन है कि मनुष्य के अन्त.करण मे भाव

पहले से ही विद्यमान रहते है और काव्य पढ़ने अथवा नाटक देखने के समय वही भाव उद्दीप्त होकर रस का रूप धारण कर लेते है और यही मत ठीक माना जाता है। तात्पर्य यह कि पाठको या दर्शकों को काव्यों अथवा अभिनयो से जो अनिर्वचनीय और लोकोत्तर आनंद प्राप्त होता है, साहित्य-शास्त्र के अनुसार वही 'रस' कहलाता है।"

—हिंदी शब्दसागर, पृष्ठ २९०८

रस का विषय बड़ा वादग्रस्त है, कुछ मर्मज्ञ विद्वानों की धारणा है कि अब तक रस की उचित मीमांसा नही हुई। जो हो, किंतु मै यह कहूँगा कि उसका शास्त्रार्थ जिस विस्तृत रूप से ग्रंथो मे लिपिबद्ध है, वह साहित्य की बहुमूल्य और मननशीलता की अद्भुत सम्पत्ति है। वह अगाध समुद्र है, डूबने पर उसमे बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते है, किंतु यह कार्य है, बड़ा उद्वेगजनक और दुस्तर। मैंने थोडे में जिन बातों का परिचय दिया है, वह कहाँ तक यथातथ्य है, यह कहना कठिन है। जहाँ शब्दो की ही पकड़ है और बात-बात मे तर्क-वितर्क होता है, वहाँ निश्चित रूप से किसी सिद्धांत का संक्षिप्तीकरण सुलभ नही। किंतु यह दुस्साहस मैने किया है, आशा है पाठको को इससे रस का इतिहास जानने मे कुछ सुविधा अवश्य होगी।

संस्कृत को छोड़कर रस की कल्पना और किसी भाषा में नही हुई। अँगरेज़ी, अरबी, फारसी और उर्दू मे भाव के ही पर्यायवाची शब्द मिलते है, रस के नही। रस का विवेचन जितना ही विमुग्धकर है, उतना ही पांडित्यपूर्ण।

## रस की आनंदस्वरूपता

काव्यप्रकाशकार लिखते हैं—

'पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः पुर इव परिस्फुरन् हृदयमिव प्रविशन् सर्वांगीणमिवालिङ्गन् अन्यत् सर्वमिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिकचमत्कारकारी शृंगारादिको रसः'।

'पानक रस के समान जिनका आस्वाद होता है, जो स्पष्ट झलक जाते, हृदय मे प्रवेश करते, व्याप्त होकर सर्वांग को सुधारस-सिंचित बनाते, अन्य वेद्य विषयो को ढक लेते और ब्रह्मानंद के समान अनुभूत होते है, वे ही अलौकिक चमत्कारसम्पन्न शृंगारादि रस कहलाते है।

यह हुई शृंगारादिक रस की परिभाषा। यहाँ प्रश्न यह होता है कि करुण, भयानक आदि रसो मे, जिनके स्थायी भाव शोक, जुगुप्सा और भय आदि है, इस परिभाषा की सार्थकता कैसे होगी? क्योंकि वे तो दु खमय होते है।

इसका उत्तर साहित्य-दर्पणकार इस प्रकार देते है—

करुणादावपि रसे जायते यत्परसुखम् ॥
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।
किंच तेषु यदा दु.ख न कोऽपि स्यात्तदुन्मुख. ॥

नहि कश्चित् सचेतन आत्मनो दु खाय प्रवर्त्तते। करुणादिषु च सकलस्यापि साभिनिवेशप्रवृत्तिदर्शनात्सुखमयत्वमेव।

'करुण आदि रसो मे भी जो परमानंद होता है, उसके लिये सहृदयो का अनुभव ही प्रमाण है। यदि करुणादि रसो मे दु ख होता हो तो करुणादि रस-प्रधान काव्य नाटकादि के श्रवण, दर्शन आदि मे कोई भी प्रवृत्त न हो क्योंकि कोई भी समझदार अपने दु ख के लिये प्रवृत्त नही होता; परन्तु करुण रस के काव्यो मे सभी लोग आग्रहपूर्वक प्रवृत्त होते है, अतः वे रस भी सुखमय ही है। —विमलार्थदर्शिनी।

यह कहकर स्वयं तर्क करते है, दु ख के कारण से सुख की उत्पत्ति कैसे होगी? उत्तर देते है—

'लौकिकशोकहर्षादिकारणेभ्यो लौकिकशोकहर्षादयो जायन्ते, इति लोक एव प्रतिनियम', काव्ये पुनः सर्वेभ्योऽपि विभावादिभ्यः सुखमेव जायते।'

'शोक के कारणो से शोक के उत्पन्न होने और हर्ष के कारणो से

हर्ष के उत्पन्न होने का नियम लोक मे ही होता है, ( काव्य और नाटकों मे ) विभावादिकों से सुख ही मिलता है।'

फिर स्वयं तर्क करते है—

'कथ तर्हि हरिश्चन्द्रादिचरितस्य काव्यनाट्ययोरपि दर्शनश्रवणभ्यामश्रुपातादयो जायन्ते ।'

यदि सुख ही होता है तो हरिश्चंद्र आदि के करुणरसमय चरित को काव्य एव नाटको मे देखने-सुनने से अश्रुपातादि क्यो होते है ?

उत्तर देते है—

'अश्रुपातादयस्तद्वद्द्रुतत्वाच्चेतसो मत.' ।

चित्त के द्रवित होने के कारण से, प्रयोजन यह कि चित्त दुःख में ही द्रवित नही होता आनद मे भी द्रवित होता है और उस समय भी अश्रुपातादि होते है ।

साहित्य-दर्पणकार ने जो कुछ कहा है, सूत्र रूप से कहा है। मै यथामति उसकी व्याख्या करके उसको स्पष्ट करना चाहता हूँ। मानव-समाज के कुछ सस्कार सार्वभौम है, किसी देश अथवा किसी जाति का प्राणी क्यो न हो, गुणो का आदर और दुर्गुणो का अनादर अवश्य करेगा। मानस के जो उदात्त और महान् भाव है, उसकी पूजा सब जगह सभी करता है, इसी प्रकार उसके जो कुत्सित, घृणित एवं निन्द-नीय विचार है, उनको हेय, असत् और तिरस्कार योग्य कौन नही मानता ? सती स्त्री जैसे संसार मे वन्द्य है, असती स्त्री वैसे ही अनम्य। सदाचारी पुरुष सब स्थानो मे देवता समझा जाता है और दुराचारी पुरुष वसुधरा भर मे दानव। जहाँ किसी शिष्ट, उदारचेता, धर्मप्राण, पुरुष को देखकर हृदय प्रफुल्ल और कृतकृत्य होता है, वहाँ दुष्ट उत्पी-ड़क एव धर्मच्युत जन को देख क्रुद्ध और संतप्त बन जाता है। प्रायः देखा गया है कि नरपिशाचो का नाश, दमन और उत्पीड़न देखकर समाज हर्ष-विह्वल हो जाता है और वही महात्माओ की कदर्थना देखकर

कलेजा थाम लेता है। जब यह संसार मनुष्य मात्र का है, वह भी एक-देशी नहीं, सर्वदेशी तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि काव्य-श्रवण अथवा नाटक-दर्शन के समय भी वह जैसा का तैसा रहेगा, उसमें यदि कारण विशेष से किसी काल में कुछ परिवर्तन होगा, तो नाम मात्र का। अपवाद की बात और है, वह कहाँ नहीं होता?

जितने साहित्यिक ग्रंथकार और नाटककार होते हैं, सबका उद्देश्य सदादर्श-प्रचार होता है। प्रायः अधिकांश ग्रंथ इस उद्देश्य से लिखे जाते हैं कि उनके द्वारा जाति, देश और समाज का उत्थान हो और उनमें ऐसे भावों का प्रचार हो जिससे उनके सुख-शांति की वृद्धि हो। लक्ष्य सबका यही होता है, लिखने की प्रणाली में भिन्नता हो सकती है। इस सूत्र से नाटक आदि में भले-बुरे सभी प्रकार के पात्र होते हैं। भले की भलाई और बुरे की बुराई दिखलाकर एक का उत्कर्ष और दूसरे का पतन दिखलाया जाता है। इसलिये कि जिसमें दर्शकों के हृदयों में भलाई करने और बुराई न करने की रुचि उत्पन्न हो। अपने उद्देश्य की सिद्धि में जिस ग्रंथकार अथवा नाटककार की लेखनी जितनी ही विलक्षण होती है, जितनी ही उसमें मार्मिकता होती है, जितनी ही सुंदरता से वह सूक्ष्म मानसिक भावों का चित्रण कर सकती है, उसकी रचना उतनी ही अपूर्व मनोहारिणी और प्रभावजनक होती है। इसी प्रकार इन भावों का अभिनेता अपने कार्य में जितना ही दक्ष, पटु और भावुक होता है, जितनी ही सहृदयता से भावों का व्यंजन कर सकता है, उसका अभिनय उतना ही सफल होता है, और उतना ही वह दर्शक-जन के हृदय को आकर्षित कर उसे विमुग्ध और आनंदित कर सकता है।

मान लीजिये, रंगालय में जनता समवेत है, रामलीला हो रही है, वनवास प्रकरण है, और चारों ओर करुण-रस प्रवाहित है। सामने न तो महाराज दशरथ हैं, न कौशल्या देवी, न कैकेयी, न मंथरा, न

भगवान् रामचंद्र, न श्रीमती जनकनंदिनी आदि। कुछ अभिनेता इन लोगो का पार्ट लेकर अपना अभिनय तन्मयता से कर रहे है। फिर भी सहस्रो वर्ष का बीता दृश्य सामने है और जनता आनंदमग्न है। जब कैकेयी और मन्थरा सामने आती है, तो उसका हृदय घृणा से भर जाता है, उसकी आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगती है, वह दाँत पीसने लगती है और उसकी भौहें टेढ़ी हो जाती है। जब कौशल्या देवी की करुणामयी मूर्ति देखती है, अश्रुविसर्जन करने लगती है, बारबार रोती है, फिर भी तृप्त नहीं होती। जब भगवान् रामचंद्र की मर्यादामयी मूर्ति को अवलोकन करती है, श्रद्धा से भर जाती है, उनकी पितृ-भक्ति, धैर्य और त्याग को देखकर उनपर निछावर होती है, कभी कलेजा थामती है, कभी मूर्तिमान् आर्य-गौरव की मन-ही-मन आरती उतारने लगती है। जब भग्नहृदया जानकी देवी दृष्टिगत होती है, तब उसकी छाती फटने लगती है। जब वह उन्हे वन जाने के लिये प्रस्तुत देखती है और उनके मुख की ओर ताकती है, आठ-आठ आँसू रोने लगती है। फिर जब भगवान् रामचंद्र भगवती जानकी को वन की भयंकरता बतलाने लगते है, उस समय न जाने कहाँ का भय आकर उसके जी मे समा जाता है। उस समय तो वह और भीत होती है, जब जनकनंदिनी के कुसुमादपि कोमल कलेवर पर दृष्टिपात करती है। किंतु जनता की ये समस्त दशाए क्या उसे दुःखभागिनी बनाती है, नहीं, कदापि नहीं। वरन् प्रत्येक दशा मे वह विचित्र सुख और आनंद का अनुभव करती है। क्यो? इसलिये कि जिस संस्कृति से उसका हृदय संस्कृत है, उसके चरितार्थ करने की उसमे बड़ी ही मुग्धकारी सामग्री उसको मिलती है। दूसरी बात यह है कि मानसिक भावो को जिस समय जिस रूप मे परिणत होना चाहिए, उस समय उसके उस रूप मे परिणत होने से ही आनद और सुख की प्राप्ति होती है, अन्यथा चित्त बहुत तंग करता है और यह ज्ञात होने लगता है कि

हृदय न जाने किस बोझ से दबा जा रहा है। तीसरी बात यह कि अभिनय करने के समय अभिनेता अपने पार्ट को जब इस मार्मिकता से करता है कि असली और नकली का भेद प्राय जाता रहता है, तो उस समय दर्शकों को जो आनंद होता है, वह भी अपूर्व ही होता है। चाहे यह अभिनय करुण रस का हो, चाहे वीभत्स या भयानक रस का। कारण इसका यह है कि उस समय की अभिनेता की स्वकर्मपटुता और अद्भुत अनुकरणशीलता चुपचाप उनपर विचित्र प्रभाव डाले बिना नही रहती।

मौलवी अहमद अली एक मुसलमान थे। उनको हरिश्चंद्र नाटक देखने का बड़ा अनुराग था। वे सहृदय और सुकवि भी थे। इस नाटक के करुण स्थला पर प्राय उनकी आँखे भर आती, पर वे खुलकर न रोना चाहते। परिणाम यह होता कि विशेष स्थलो पर चित्त उनको चैन नहीं लेने देता। जब वे खुलकर रो लेते. तभी उनको सुख मिलता। सबल प्रवाह को रोक दो, देखो जल कैसे चक्कर में पड़ जाता है। उसको आगे बढ़ने दो, उस समय वह अपनी स्वाभाविक गति से मंद-मंद सानद बहता दिखलाई पड़ेगा।

एक नाटक का ऐसा दुष्ट पात्र था, जो रास्ते मे काँटे बिछाकर, अंधेरे में साँप के समान रस्सी खड़ी कर, चुपचाप लोगो की देह मे सुई चुभोकर, बिछावनो में कंकर भरकर, भिड़ के छत्तों को छेड़कर और कभी-कभी जलते अंगारे ऊपर फेककर बच्चो तक को बहुत तंग किया करता। लोगों का उससे नाको दम था, सब उसके शत्रु हो गये थे। एक दिन एक हट्टेकट्टे मोटेताज़े गुरूघंटाल ने उसको पकड़ा। उसके पास तरह-तरह के साँप, बड़े-बड़े बिच्छू, लोहे के तेज़ काँटे, नोकदार छुरी, अनेक प्रकार के भाले, और कई तरह के नुकीले दूसरे हथियार थे। उसके साथी के हाथ मे एक अँगीठी थी, जिसमे जलते अंगारे दहक रहे थे। जब वह साँप निकालकर उस दुष्ट से कहता—'कटा दूँ',

बिच्छू निकालकर कहता—'क्या डक मरवा दू', तब उसकी नानी मर जाती और वह इतना डर जाता कि 'ओ' ओ:' छोड़कर उसके मुह से सीधी बात न निकलती। जब उसकी देह मे वह लोहे के कॉटे चुभो देता, या नुकीली छुरी या कोई हथियार गड़ा देता, या यह कहता कि यह अंगीठी तुझ पर उलट दू, तब वह इतना डर जाता और उसकी घिग्घी ऐसी बॅध जाती कि वह मौत को सामने देखने लगता और ऐसी चेष्टाए करता कि मानों अब मरा। पर दर्शक उसकी यह दशा देखकर कभी हसते, कभी तालियॉ बजाते, कभी कहते, 'अच्छे से पाला पड़ा।' इसी को कहते है, 'इस हाथ दे उस हाथ ले।' एक ओर भयानक रस का उग्र रूप और दूसरी ओर था मूर्तिमान् आनंद। यह विपर्यय क्यो? केवल संस्कार-वश।

प्राय देखा जाता है कि जब रंगमच पर किसी बड़े अत्याचारी की यातना आरम्भ होती है, लहूपिपासितो का लहू बहाया जाता है और दूसरो की नाक काटनेवालो की नाक काट ली जाती है, जब देश-हितैषियो के गले पर छुरा चलानेवालो, पेट मे कटार भोकनेवालो का लहू पान किया जाता है, अथवा देशद्रोहियो का शिर गेद बनाया जाता है, उनके मांस के लोथड़े उछाले जाते है, और उनकी अॅतड़ी चबाई जाती है तो यह वीभत्स कांड देखकर दर्शक-मंडली के रोगटे नही खड़े होते और न उनके हृदय मे कुछ दु:ख ही होता है। वरन् वे जितना छटपटाते है, जितना रोते कलपते है और जितनी हाय-हाय करते है, उतनी ही वह हर्षित होती और उल्लास प्रकट करती है। क्यो? इसलिये कि नाटककार की लेखनी के कौशल से अत्याचारियो, देश-द्रोहियो और उत्पीड़को के प्रति उनके हृदय मे इतनी घृणा जाग्रत् रहती है कि उनको उनकी नाटकीय यातना देखकर ही सुख मिलता है। दूसरी बात यह कि मनुष्य का संस्कार बड़ा प्रबल होता है, वही अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल उसके हृदय में सुख-दु:ख, घृणा और प्रेम की सृष्टि करता

है। अत्याचारियों, देशद्रोहियों, मानव-उत्पीड़कों के प्रति मनुष्य मात्र का संस्कार द्वेष और घृणामय है। इसलिये जब वह उसकी दुर्गति होते देखता है तो संतोष तो लाभ करता ही है, यह सोचकर भी उत्फुल्ल होता है कि संसार-कंटकों की जितनी दुर्गति दिखलाई जावे, उतना ही उत्तम, क्योंकि उसी को देखकर जनता के नेत्र खुलते हैं, उन्मार्ग-गामियों को त्रास होता है और दुर्जनों से वसुधा सुरक्षित रहती है। नाटक देखने के समय एक भाव और सब दर्शकों के हृदय में जाग्रत् रहता है वह यह कि वे उसको खेल समझते हैं, तात्कालिक होनेवाली सत्य घटना नहीं। इसलिये रंगमंच के सुख दुःखमय दृश्यों का, अभिनेताओं के कौशल-मय अभिनयों का, रंगभूमि के गान-वाद्य और परदों के बहुरंजित सीन-सीनरी आदि का प्रभाव तो उनपर पड़ता है और वे प्रभावित भी होते हैं, परन्तु उनको वह शोक, मोह और क्षोभ नहीं सताता जो वास्तविक घटना के संघटित होने के समय प्रत्येक प्रत्यक्षदर्शी मानव-हृदय को कष्ट पहुँचाता है और इस प्रकार उस समय उनका चित्त उन स्वाभाविक आघातों से भी सुरक्षित रहता है, जो ऐसे अवसरों पर प्रत्येक मानव-हृदय पर साधारणतया होते रहते हैं।

अब तक जो मैंने निवेदन किया है, आशा है, उससे यह अवगत हो गया होगा कि किस प्रकार करुण-रस से भी सुख की प्राप्ति होती है, और कैसे भयानक रस और वीभत्स रस में भी हृदय में आनंद का संचार होता है। नाटकों में विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के जिस व्यापार द्वारा इस प्रकार के रसों की उत्पत्ति, परिणति आदि होती है, उसको विभावन, अनुभावन और संचारण कहते हैं। साहित्य-दर्पणकार लिखते हैं—

"विभावन रत्यादेर्विशेषेणास्वादाङ्कुरणयोग्यतानयनम्। अनुभावनमेवभूतस्य रत्यादे. समनन्तरमेव रसादिरूपतया भावनम् सञ्चारण तथाभूतस्यैव तस्य सम्यक चारणम्"।

'रति आदिक स्थायी भावों को आस्वादोत्पत्ति ( रसोद्बोध ) के योग्य बनाना 'विभावन' कहलाता है, विभावन के द्वारा आस्वादोत्पत्ति के योग्य हुए उन रति आदिक को तुरन्त रस-रूप मे परिणत कर देनेवाले व्यापार का नाम अनुभावन है। इस प्रकार सुसम्पन्न रति आदिक को भले प्रकार संचारित कर देने का नाम संचारण है'। —विमलार्थदर्शिनी।

वे यह भी लिखते है—

'ये खलु वनवासादयो लोके दुःखकारणानि इत्युच्यन्ते, त एव हि काव्यनाट्यसमर्पिता अलौकिकविभावनव्यापारवत्तया कारणशब्दवाच्यता विहायालौकिकविभावशब्दवाच्यत्व भजन्ते'।

"लोक मे जो वनवास आदिक दुःख के कारण कहे जाते है, वे यदि काव्य और नाटक मे निबद्ध किये जावे तो फिर उनका कारण शब्द से व्यवहार नही होता, किन्तु अलौकिक विभाव शब्द से होता है। इसका कारण यह है कि काव्यादि मे उत्पत्ति होने पर उन्हीं कारणो मे विभावन नामक एक अलौकिक व्यापार उत्पन्न हो जाता है।" —विमलार्थदर्शिनी।

प्रयोजन यह कि लोक मे अथवा संसार के साधारण व्यवहार मे साक्षात् संबंध से विभाव, अनुभाव एव संचारी भाव के जो कार्य-कलाप होते है, काव्य में उनका चित्रण और नाटको मे उनका अनुकरण मात्र होता है। नित्य लोक मे जितनी घटनाएँ होती रहती है, उनका सबंध परिस्थिति के अनुसार सुख-दु ख दोनो से होता है। इन घटनाओ से जिनका संबंध होता है, उनको सुख-दु.ख दोनो प्राप्त होते रहते है। यह स्वाभाविकता है, संसार की रचना ही सुख-दु खमयी है। काव्य और नाटको की रचना का उद्देश्य आमोद-प्रमोद और आनंद-प्राप्ति है, साथ ही शिक्षा और देश-सुधार आदि। इसी इष्ट की प्राप्ति के लिये काव्य पढ़े-सुने और नाटक देखे जाते है। अनेक अवस्थाओ मे चिंतित और दु खित होने पर मन बहलाने के लिये भी काव्य और नाटको की शरण ग्रहण की जाती है। इसलिये काव्य और नाटक आनंद

के ही साधन है, और उनसे आनंद की ही प्राप्ति होती है। लौकिक विभावादि से उनके विभावादि मे अतर होता है, अतएव वे अलौकिक कहलाते है। यहाँ अलौकिक का अर्थ लोक से सबंध न रखनेवाला है, अपूर्व अथवा परम विलक्षण नहीं। आशा है, अब तक जो कुछ कहा गया, उससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि विभावन-अनुभावन आदि क्या है, और इन नामो की कल्पना क्यो हुई। विश्वास है, यह बात भी समझ मे आ गई होगी, कि नाटको और काव्यो मे करुण, वीभत्स और भयानक रसो मे भी आनंद की ही प्राप्ति होती है, दु:खो की नही।

## रस और ब्रह्मास्वाद

'रस का आस्वाद ब्रह्मानंद के समान होता है, समस्त साहित्य-मर्मज्ञो का यही सिद्धांत है। काव्यप्रकाशकार कहते हैं—

'ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन्'

ब्रह्मानंद के समान अनुभूत होता है। साहित्यदर्पणकार अपने ग्रंथ मे एक स्थान पर यह वाक्य उद्धृत करते है—

'परमार्थतस्त्वखण्ड एवायं वेदान्तप्रसिद्धब्रह्मतत्त्ववद्वेदितव्य:'

'वास्तव मे रस वेदांत-प्रसिद्ध ब्रह्म की तरह अखंड और वेद्य है'।

ऐसे ही और प्रमाण भी उठाये जा सकते है, किंतु इससे व्यर्थ विस्तार होगा। मेरा विचार है, इन उक्तियो का आधार पवित्र वेद की यह श्रुति है—'रसो वै स'। अब यह चिंतनीय है कि ऐसी धारणा क्यों हुई? मै कहूँगा, निम्नलिखित कारणो से—

१—काव्यप्रकाश की बालबोधिनी टीकाकार, ब्रह्मास्वाद का यह अर्थ करते है—

'ब्रह्मास्वादे (मुक्तिदशाया) ब्रह्ममात्र प्रकाशते, रसे तु विभावाद्यपीति भेदात् सादृश्यम्'।

'ब्रह्मास्वाद अर्थात् मुक्ति-दशा मे ब्रह्ममात्र ही प्रकाशित रहता है

और भावों का तिरोभाव हो जाता है। विभावादि जब स्थायी भावों के साथ मिलकर रस-रूप मे परिणत होते है, उस समय भी केवल रस विकसित रहता है, और सब उसी मे लीन हो जाते है, कहा भी है—'अन्यत् सर्वमिव तिरोदधत्'। इसलिये वह ब्रह्मास्वाद सहोदर है, अथवा ब्रह्मास्वाद से उसकी समानता है।

२—कुछ विद्वानो का सिद्धांत है, 'काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरं रसादिश्चात्मा' शब्द और अर्थ काव्य के शरीर है, और रस आत्मा। साहित्यदर्पण-कार लिखते है—'वाक्य रसात्मक काव्यम्' काव्य वह है जिसकी आत्मा रस है, इससे भी उसका ब्रह्म-स्वरूप होना सिद्ध है।

३—अग्निपुराण मे लिखा है—

> अक्षर परम ब्रह्म सनातनमज विभुम्।
> वेदान्तेषु वदन्त्येक चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्॥
> आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
> व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया॥

जिसको वेदांत मे अक्षर, परब्रह्म, सनातन, अज, व्यापक, चैतन्य और ज्योतिस्वरूप कहा गया है, उसका सहज आनंद किसी समय जब प्रकट होता है, तो उस अभिव्यक्ति को चैतन्य, चमत्कार अथवा रस कहा जाता है।

४—नाटकों मे देखा जाता है कि रस का उद्रेक होने पर एक काल में सहस्रो मनुष्य मन्त्रमुग्धवत् बन जाते है, एक साथ हँसते-रोते और तालियाँ बजाते है, आनंद-ध्वनि करते हैं, शर्म-शर्म या थू-थू कहने लगते है और कभी-कभी अपने से बाहर हो जाते है। यह रस की अलौकिकता है, क्योंकि साधारणतया लोक मे दो एक प्राणिविशेष मे ही उसकी उपस्थिति देखी जाती है। दूसरी बात यह कि वह अपरिमित है, इसलिये कि अनेक श्रोताओ और दर्शकों के हृदय मे वह एक ही समय मे उदित और विकसित होता है।

५—रस मे ज्ञानस्वरूपता और स्वयं प्रकाशता है। साहित्य-दर्पण-कार कहते है—

'अभिन्नोऽपि स प्रमात्रा वासनोपनीतरत्यादितादात्म्येन गोचरीकृतः इति च ? ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वमनङ्गीकुर्वतामुपरि वेदान्तिभिरेव पातनीयो दण्डः।

'यद्यपि रस आत्मा के स्वरूप से अभिन्न है, चिन्मय है, तथापि अनादि वासना के द्वारा उपनीत अर्थात् ज्ञान में प्रतिभासित जो रत्यादिक उनके साथ अभिन्न रूप से गृहीत होता है। इस प्रकार रस को ज्ञानस्वरूपता और उसके साथ रत्यादि का अभेद सिद्ध हुआ। ज्ञान स्वय प्रकाश है, अत. रस भी स्वयप्रकाश है। —विमलार्थप्रकाशिनी

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि क्या वास्तव मे समस्त नाटक देखने और काव्य पढ़ने-सुननेवालो को ब्रह्मास्वाद की प्राप्ति होती है ? उत्तर यह है कि नही। जिसकी जैसी वासना होगी, भाव-ग्रहण की जैसी शक्ति होगी, जिसमे जैसी सहृदयता होगी, रस आस्वाद का वह वैसा ही अधिकारी होगा। रस की भी कोटि है, उसका सब से उच्च कोटि का स्वरूप ब्रह्मास्वाद है, उसके अधिकारी सर्वत्र थोड़े है। रस का साधारण रूप जो प्रायः उससे निम्नकोटि का होता है, वही सर्वसाधारण का उपभोग्य कहा जा सकता है, चाहे उसकी मात्रा मे कुछ तारतम्य भले ही हो। जिसने नाट्यशाला मे बैठकर नाटक देखा होगा, किसी सुवक्ता का व्याख्यान किसी सभा मे सुना होगा अथवा किसी प्रसिद्ध सकीर्तन-मडली का भक्तिमय कीर्तन श्रवण किया होगा, उसको इस बात का अनुभव स्वय होगा। परमात्मा का नाम है सच्चिदानंद। क्यो ? इस-लिये कि वह सत् है, चित् है और आनंदस्वरूप है। अतएव आनंद मात्र ईश्वर का स्वरूप है, परंतु इस सच्चे आनद के अधिकारी कितने है ? प्रत्येक प्राणी मे, हरे-भरे वृक्षो मे, विकसित सुमनो मे, रस भरे नाना फलो मे। प्रयोजन यह है कि जहाँ शिव है, सत्य है, सौंदर्य है, वहाँ ईश्वर की आनंदमयी सत्ता मौजूद है। परंतु उसका सच्चा उपभोग

करने वाले, कोई महान्हृदय महात्मा ही है। सर्वसाधारण अपने ज्ञान, विवेक, विचार और दृष्टि के अनुसार ही उनसे यथाशक्य थोड़ा या बहुत आनद प्राप्त कर सकते है। यही अवस्था नाटक-दर्शकों अथवा काव्य आदि श्रवणकर्ताओं की भी समझनी चाहिये। किंतु इससे रस के ब्रह्मास्वाद होने मे बाधा नही पड़ती, क्योकि रस परिणति की अंतिम सीमा वही है।

## विभावादिकों की रसव्यंजकता

आप लोग पढ़ते आये है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तीनो का संयोग जब रति आदिक स्थायी भावो से होता है, तभी रस की उत्पत्ति होती है। किन्तु देखा जाता है कि इनमे से किसी एक के द्वारा भी रस उत्पन्न हो जाता है, ऐसी अवस्था मे इसकी मीमांसा आवश्यक है। साहित्यदर्पणकार लिखते है—

'ननु यदि विभावानुभावव्यभिचारिभिर्मिलितैरेव रसस्तत्कथं तेषामेकस्य द्वयोर्वा सद्भावेपि स स्यादित्युच्यते'।

'यदि विभाव, अनुभाव और सचारी इन तीनो के मिलने पर ही रसास्वाद होता है, एक दो से नहीं होता, तो जहाँ कही एक अथवा दो ही वर्णन है, वहाँ जो रसास्वाद दीख पड़ता है, सो कैसे होगा ?'

उत्तर देते है—

'सद्भावश्चेद्विभावादेर्द्वयोरेकस्य वा भवेत्।
झटित्यन्यसमाक्षेपे तथा दोषो न विद्यते ॥'

'विभावादिकों मे से दो अथवा एक के उपनिबद्ध होने पर जहाँ प्रकरणादि के कारण दोष का झट से आक्षेप हो जाता है, वहाँ कुछ दोष नही होता।'

—विमलार्थप्रकाशिनी

आक्षेप का अर्थ 'व्यंजनीय रस के अनुकूल शेष (अन्य) दो भावों का भी बोध करा देना।'

कुछ प्रमाण लीजिये—केवल विभाव द्वारा रस की अभिव्यक्ति—

दमदम दमकत दामिनी घहरत नभ घनघोर।
मान करत कत मानिनो मोर मचावत सोर ॥१॥

इस दोहे मे उद्दीपन विभाव का वर्णन है, न तो संचारी का है, न अनुभावो का। परंतु मानिनी का मानयुक्त होना, उसके हृदय का सामर्ष होना सूचित करता है, जो एक संचारी भाव है। जब वह मान दशा मे है तो उसकी भौहें अवश्य चढ़ी होगी, मुँह भी निम्सदेह बिगड़ा होगा, इसलिये अनुभाव भी उसमे मिले और तीनो के आधार से ही रस की सिद्धि हुई।

केवल अनुभाव द्वारा रसविकास—

टपटप टपकत सेदकन अंग अंग थहरात।
नीरजनयनी नयन मै काहे नीर लखात ॥२॥

स्वेद विंदु का टपकना, अंगो का कम्पित होना, आँखो मे जल आना अनुभाव है, और इन्ही का वर्णन दोहे में है। किंतु कारण अप्रकट है, किसी विभाव के कारण ही ऐसा हो रहा है, चाहे वह आलंबन हो अथवा उद्दीपन, अतएव अनुभावो द्वारा ही विभाव की सूचना मिल रही है। किसी श्रम, आवेग, चिंता और शंका के द्वारा ही ऐसी दशा होने की सभावना है, अतएव संचारी का उद्बोध भी उससे हो रहा है।

केवल सचारी द्वारा रस का आविर्भाव—

करति सुधारस पानसी रस बस ह्वै सरसाति।
कत गयदगतिगामिनी उमगति आवति जाति ॥३॥

इस दोहे मे हर्ष और औत्सुक्य पूर्ण मात्रा मे मौजूद है, जो कि संचारी है। वे ही उस विभाव को ओर भी संकेत कर रहे है जो उनके आधार है। उमग-उमग कर आना-जाना अनुभाव के अग्रदूत है।

इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तीनों के द्वारा ही रस की उत्पत्ति होती है, किसी एक के द्वारा नहीं।

जहाँ इनमे से कोई एक या दो होता है, वहाँ आक्षेप द्वारा शेष दो या एक का भी ग्रहण हो जाता है। यही बात पंडितराज जगन्नाथ भी रसगंगाधर मे कहते है—यथा

"एवं च प्रामाणिके मिलितानां व्यञ्जकत्वे यत्र क्वचिदेकस्मादेवा साधारणाद्रसोद्बोधस्तत्रेतरद्वयमाक्षेप्यमनोनानैकान्तिकत्वम्"।

"ऐसे स्थलो मे अन्य दोनो का आक्षेप कर लिया जाता है, सो यह बात नही है कि रस कही सम्मिलितो से उत्पन्न होता है, और कही एक ही से, किंतु तीनो के सम्मेलन के बिना रस उत्पन्न होता ही नहीं।"

—हिंदी रसगंगाधर

इसके अतिरिक्त एक बात और है। वह यह कि यदि केवल विभाव या अनुभाव अथवा संचारी भाव से रस की उत्पत्ति होने लगे तो रस के निर्णय मे व्याघात उपस्थित होगा। कारण यह है कि एक विभाव अनेक रसो का विभाव हो सकता है, ऐसे ही एक अनुभाव अथवा संचारी भाव कई रसो मे पाया जाता है। काव्यप्रकाशकार लिखते है—

'व्याघ्रादयो विभावा भयानकस्येव वीराद्भुतरौद्राणाम्। अश्रुपाता दयोऽनुभावाः शृंगारस्येव करुणभयानकयोः, चिन्तादयो व्यभिचारिणः शृंगारस्येव वीरकरुणभयानकानामिति, पृथगनैकान्तिकत्वात् सूत्रे मिलिता निर्दिष्टाः।'

"भयानक रस के विभाव व्याघ्र आदि वीर, अद्भुत और रौद्र रस के भी विभाव, शृंगार रस के अनुभाव अश्रुपातादिक करुण और भयानक रस के भी अनुभाव और चितादिक व्यभिचारी शृंगार रस के अतिरिक्त वीर करुण और भयानकादि अन्य रसो के भी व्यभिचारी भाव हो सकते है। इसीलिये सूत्रकार भरत मुनि ने सूत्र मे इन सब के सम्मिलन से ही रस की उत्पत्ति मानी है, पृथकत्व से नही।"

—हिंदी रसगंगाधर

ऐसी अवस्था मे यह स्पष्ट है कि विभाव अनुभाव और संचारी,

तीनों के संयोग से ही एक ऐसे रस की उत्पत्ति होगी, जो अन्य रसों से भिन्न होगा और जिसकी समता दूसरे से न हो सकेगी।

## रस की कल्पना

रस की कल्पना संस्कृत में हुई है, अंगरेजी अथवा अरबी-फारसी में इसका पर्यायवाची कोई शब्द नही। वास्तव मे परिपुष्ट भाव का ही नाम रस है, इसलिये भाव के पर्यायवाची शब्द ही अन्य भाषाओं में मिलते है, अँगरेजी मे भाव को 'इमोशन' और फारसी मे 'जज़बा' कहते है। अभिनय अवलोकन के समय जो तन्मयता दर्शको मे देखी जाती है, उसके आधार से ही रस की कल्पना हुई ज्ञात होती है, क्योकि नाट्यशास्त्र मे ही पहले-पहल इसका नियमबद्ध उल्लेख हुआ है। महामुनि भरत कहते है कि 'द्रुहिण' नामक किसी आचार्य्य द्वारा इसका आविष्कार हुआ। वे लिखते है—'एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना' किंतु अग्निपुराण मे उसकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी गई है—

अक्षर परम ब्रह्म सनातनमज विभुम्।
आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया॥
आद्यस्तस्य विकारो यः सोहङ्कार इति स्मृतः।
तताभिमानस्तत्रेद समात भुवनत्रयम्॥
अभिमानाद्रति. सा च परिपोषमुपेयुषी।
रागाद्भवति श्रृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते॥
वीरोऽवष्टम्भजः सङ्कोचभूर्बीभत्स इष्यते।
श्रृंगाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रस॰॥
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्बीभत्साद्भयानक॰।

'जो अक्षर, परब्रह्म, सनातन, अज और विभु है, उसका सहज आनंद कभी-कभी प्रकट हो जाता है। यह अभिव्यक्ति चैतन्य, चम-

त्कार और रसमय होती है। उसके आदिम विकार को अहंकार कहते हैं, उससे अभिमान ( ममता ) की उत्पत्ति हुई, जो भुवन मे व्याप्त है। उस अभिमान (ममता) से रति उत्पन्न होकर परिपुष्ट हुई। बाद को राग ( रति ) से शृंगार की, तीक्ष्णता से रौद्र की, गर्व से वीर की और संकोच से बीभत्स की सृष्टि हुई। फिर शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्‌भुत और बीभत्स से भयानक का आविर्भाव हुआ।

महामुनि भरत भी पहले चार रस की ही उत्पत्ति मानते हैं, और उनसे अन्य रसों की। वे लिखते है—'तेषामुत्पत्तिहेतवश्चत्वारो रसाः शृ गारो रौद्रो वीरो बीभत्स इति' 'उनके ( रसों के ) उत्पत्ति के हेतु चार रस हैं— शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स। इनके उपरांत वे यह कहते है—

> शृ गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
> वीराच्चैवाद्‌भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः॥
> शृ गारानुकृतिर्यातु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः।
> रौद्रस्यैव च यत्कर्म स ज्ञेयः करुणो रसः॥
> वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्‌भुतः परिकीर्तितः।
> बीभत्सदर्शन यच्च ज्ञेयः स तु भयानकः॥

शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्‌भुत, और बीभत्स से भयानक की उत्पत्ति हुई। शृगार की अनुकृति हास्य का, रौद्र का कर्म्म करुण का, वीर का कार्य्य अद्‌भुत का और बीभत्स दर्शन भयानक का जनक है।

अग्निपुराण मे रसों की उत्पत्ति जिस प्रकार दिखलाई गई है, वह बहुत ही स्वाभाविक है। ईश्वर रस स्वरूप है, श्रुतियों मे उसको 'रसो वै स', कहा गया है, इसलिये उसको रस का आधार कहना, अथवा उसके द्वारा रस का विकास दिखलाना, वास्तविकता पर प्रकाश डालना है। रस क्या है? उसके आनंद की अभिव्यक्ति है। आनंद का यथार्थ उद्रेक ही रसत्व को प्राप्त होता है। आनंद का उपभोग अहंभाव ही

व्यक्तित्व का आधार है। बिना अहंभाव के व्यक्तित्व अस्तित्व मे नही आता, अतएव जगदात्मा का आदिम विकार अहंभाव है। यह अहंभाव विश्व मे व्याप्त होकर साभिमान हो जाता है, क्योंकि केन्द्रित होने पर उसमे ममत्व आ जाता है। ममत्व से ही रति की उत्पति होती है। जब तक किसी वस्तु अथवा व्यक्ति मे किसी की ममता न होगी, तबतक उससे उसकी रति ( प्रीति ) न हो सकेगी। ममता ही प्रीति की जननी है। रति कहिये, चाहे प्रीति कहिये, चाहे प्रेम कहिये वह आनद कामुक है, वह इस विपय में इतना तन्मय रहता है कि दृष्टिविहीन बनता है। दूसरो को नही देखता, अपने ही आनंद मे निमग्न रहता है, यही शृगार रस का रूप है। जब किसी कारण से आनंद-प्रवाह मे व्याघात उपस्थित होता है, तो वह कुछ तीखा हो जाता है, उसमे कुछ तीक्ष्णता आ जाती है, उस समय रौद्र रस सामने आता है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है, क्रोध और गर्व का घनिष्ठ संबंध है। गर्व होने पर ममत्व व्याघात का सामना करने के लिये उत्साहित होता है, यही वीर रस है। सामना करने के समय ममत्व को यदि अपने अथवा व्याघात-कर्ताओ के प्रति कारण-विशेष से घृणा उत्पन्न हो जाती है तो वह संकु-चित हो जाता है, यही बीभत्स रस है। ये ही चारो प्रधान रस है, जिनके आधार से शेप रसो की उत्पत्ति होती है।

अब देखिये, इन चार रसों से अन्य चार रसो की उत्पत्ति कैसे हुई ? महामुनि भरत कहते है कि 'शृगार रस की अनुकृति हास्य है।' अनुकृति का अर्थ है, अनुकरण, अथवा नकल करना। आप लोग जानते है, नकल हँसी की जड़ है। किसी की वेशभूपा, चाल-ढाल, बातचीत आदि की नकल जब विनोद के लिये की जाती है, तब उस समय हँसी का फव्वारा छूटने लगता है। शृंगार रस की सब बातो की नकल कितनी हास्य विनोदमय होगी, इसके बतलाने की आवश्यकता नही, हास्य मे स्थायिता है। वह आकर्षक और व्यापक भी बहुत है,

इसलिये बाद को हास्य भी एक रस माना गया। क्रोध मे आकर यदि कोई किसी को प्रहार कर बैठता है, अथवा किसी को लगती किंवा कटु बाते कहता है, तो वह व्यथित अथवा आहत हुए बिना नही रहता, उसके हृदय मे शोक भी उत्पन्न हो जाता है, और वह अपने दु खो का वर्णन कर के रोने कलपने लगता है, यही करुण रस है, जो रौद्र रस का कार्य है। इसीलिये करुण रस की उत्पत्ति रौद्र रस से मानी गई है। इसमे भी स्थायिता और व्यापकता है, अतएव धीरे-धीरे यह भी रस में परिगणित हो गया। यह कौन नही जानता कि वीर के कार्य्य आश्चर्य्य-जनक होते है, वीरपुंगव अंजनीनंदन ने, महापराक्रमी भीष्मपितामह ने महाभारत विजयी धनंजय ने जो वीरता के कार्य कीये है वे किसको चकित नही बनाते। महाराणा प्रताप, वीरवर नैपोलियन के वीरकर्म भी लोक विश्रुत है, और सब लोग इनको अद्भुतकर्मा कहते है। इस-लिये वीरता के कर्मो को अद्भुत रस का जनक माना गया है। रणभूमि को रक्ताक्त देखकर, मज्जा मेद मांस को जहाँ तहाँ खाते-पीते नुचते अवलोकन कर, कटे मुंडो पर बैठ काको को आँखे निकालते, गीधो को अंतड़िया खीचते, शृगालो को लोथ घसीटते और कुत्तो को हड्डियाँ चबाते देख किसके हृदय मे भय का सचार न होगा। इसीलिये बीभत्स दर्शन से भयानक की उत्पत्ति मानी गई है। मेरा विचार है इस विषय मे जो सिद्धांत महामुनि भरत और अग्निपुराण के है, वे युक्तिसंगत और उपपत्तिमूलक है।

जैसे पहले चार रस, फिर आठ रस की कल्पना हुई, वैसे ही काल पाकर नवॉ रस शांत भी स्वीकृत हुआ। यद्यपि तर्क वितर्क इस विषय मे भी हुए, परन्तु आजकल अधिक सम्मति से नव रस ही माने जाते है। रसगंगाधरकार लिखते है—

'यैरपि नाट्ये शान्तो रसो नास्तीत्यभ्युपगम्यते तैरपि बाधकाभावान्महाभार-तादि प्रबन्धाना शान्तरसप्रधानतया अखिललोकानुभवसिद्धत्वाच्च काव्ये सोवऽश्य-

स्वीकार्यः। अतः एवाष्टौ नाट्ये रसा इत्युपक्रम्य शान्तोऽपि नवमो रस इति मम्मट-भट्टा अप्युपसमहार्षुः'।

'जो लोग नाटको मे शांत रस नही है, यह मानते है उन्हें भी किसी प्रकार की बाधा न होने के कारण एवं महाभारतादि ग्रंथो मे शांत रस ही प्रधान है, यह बात सब लोगो के अनुभव से सिद्ध होने के कारण उसे काव्यो मे अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। इसी कारण मम्मटभट्ट ने भी 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' इस तरह प्रारंभ करके 'शान्तोऽपि नवमो रस.' इस तरह लिखकर उपसंहार किया है।' —हिंदी रसगगाधर

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि शांत रस की कल्पना कैसे हुई? इसका उत्तर स्वयं काव्यप्रकाशकार देते है। वे लिखते है 'निर्वेदस्थायि-भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस.' जिसका स्थायी भाव निर्वेद है नवाँ वही शांत रस है। रसगंगाधरकार निर्वेद की व्याख्या यो करते है—

'नित्यानित्यवस्तुविचारजन्मा विषयविरागाख्यो निर्वेद', गृह कलहादिजस्तु व्यभिचारी।'

"जिसकी उत्पत्ति नित्य और अनित्य वस्तुओ के विचार से होती है. जिसका नाम विषयो से विरक्ति है, उसे निर्वेद कहते है, वही निर्वेद यदि गृहकलहादि जन्य हो तो व्यभिचारी होगा।"

प्रदीपकार कहते है—

'शमोऽस्य स्थायी, निर्वेदादयस्तु व्यभिचारिणः स च शमो निरीहावस्थायाम् आनन्दः स्वात्मविश्रामादिति।'

इसका ( शांत रस का ) स्थायी भाव 'शम' है, क्योकि निर्वेद की गणना व्यभिचारी भावो मे है। शम तृष्णा रहित अवस्था के उस आनद को कहते है, जिसमे आत्म-विश्राम-प्रसूत सुख की प्राप्ति होती है—उसका वर्णन महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने यो किया है—

'यच्च कामसुख लोके यच्च दिव्य महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयः सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥'

संसार मे जितने कामप्रद सुख है, जितने दिव्य और महान् सुख है, वे तृष्णाक्षय सुख के सोलहवे भाग के बराबर भी नहीं है।

पंडितराज जगन्नाथ ने साधारण निर्वेद को व्यभिचारी माना है, और रस-अवस्था-प्राप्त को स्थायी। उसी को प्रदीपकार ने 'शम' कहा है। सिद्धात दोनो का एक है। चाहे उसे शाम कहें या उच्च कोटि का निर्वेद—किंतु यह स्थायी भाव कितना महत्त्व रखता है, वह महर्षि द्वैपायन के कथन से प्रकट है। कोई समय था, जब भारतवर्ष मे शांत रस की धारा बह रही थी, आज भी उसका प्रवाह बहुत कुछ सुरक्षित है। आर्य-सस्कृति मे उसकी बड़ी महत्ता है, और इस जाति के समस्त महान् ग्रथ उच्च कंठ से उसका यशोगान कर रहे है। मानव-जीवन मे त्याग की बड़ी महिमा है और इसमे सदेह नही कि सच्ची शांति और परमानंद की प्राप्ति उसी से होती है। ऐसी अवस्था मे उसका रस मे न गिना जाना, असंभव था। काल पाकर मनीषियो की दृष्टि इधर गई और वह भी रसो मे गिना गया। यहाँ तक कि नाटक मे भी उसको स्थान मिला और इस रस का 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक एक क्षमता-शालिनी लेखनी द्वारा निर्मित होकर सस्कृत-साहित्य मे समादरणीय स्थान पा गया।

रस की सख्या नव तक आकर समाप्त हो गई, यह नहीं कहा जा सकता। अब भी नये-नये रसो की कल्पना हो रही है। वास्तविक बात यह है कि भाव ही उत्कर्ष पाकर रस का स्वरूप धारण करते है। काव्यप्रकाशकार कहते है—'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः' 'भावः प्रोक्तः' देवादि (अर्थात् देव, मुनि, गुरु, नृप, पिता, ज्येष्ठ भ्राता आदि गुरुजनो और लघु भ्राता एवं पुत्रादि की रति और व्यंजित व्यभिचारी की संज्ञा भाव है।) इस सिद्धांत के अनुसार देव भक्ति और वात्सल्य आदि भाव है, रस नही, किंतु कुछ आचार्यो ने इन्हें भी रस माना है। कुछ लोग सख्य को रस कहने लगे है। अतएव रस की संख्या कहाँ तक

पहुँचेगी, यह नही कहा जा सकता। किंतु आजकल सर्वसम्मत नव ही रस है। भाव और रस पर मेरा एक वृहत् विवेचन वात्सल्य रस शीर्षक आगे लिखे जानेवाले एक लेख मे होगा। इसलिये इस अवसर पर रस और भाव पर अधिक लिखने की चेष्टा नही की गई।

कुछ लोग कहते है कि काव्यो मे जो भाव व्यापक और अधिक प्रभावजनक पाये गये और जिनमे स्थायिता भी अधिक मिली, रगशाला मे अभिनय के समय जो मनोभाव आदि से अंत तक स्थिर और यथावसर अधिकाधिक प्रभाव विस्तारपटु और विशेष आकर्षक देखे गये, जिनकी प्रतीति काव्य और नाट्य मे प्रायः अथवा लगातार होती है, जिनमे चमत्कार के साथ विमुग्धकारिता भी मिलती है—जब साहित्य-मर्मज्ञो की दृष्टि उनकी ओर विशेषतया आकृष्ट हुई, तब उन्होने उनको विवेचनापूर्वक स्थायी भाव माना, और उन्ही के आधार से फिर रस की कल्पना की। यह कार्य्य एक काल मे नही, धीरे-धीरे क्रमश हुआ। आज भी यह विचारपरम्परा अप्रतिहत है। रसगगा-धरकार इसी सिद्धांत के थे—वे लिखते है—

"तत्र आप्रबन्धस्थिरत्वादमीषा भावाना स्थायित्वम्। न च चित्तवृत्ति-रूपाणामेषामाशुविनाशित्वेन स्थिरत्व दुर्लभ वासनारूपतया स्थिरत्व तु व्यभि-चारिष्यति प्रसक्तमिति वाच्यम्। वासनारूपाणाममीषां मुहुर्मुहुरभिव्यक्तेरेव स्थिर-पदार्थत्वात् व्यभिचारिणा तु नैव तदभिव्यक्तेर्विद्युदुद्योतप्रायत्वात्"।

'ये रति आदिक भाव किसी काव्यादिक मे उसकी समाप्ति पर्यंत स्थिर रहते है, अतः इनको स्थायी भाव कहते हैं। आप कहेंगे कि ये तो चित्त-वृत्ति स्वरूप है, अतएव तत्काल नष्ट हो जानेवाले पदार्थ है, इस कारण इनका स्थिर होना दुर्लभ है, फिर इन्हें स्थायी कैसे कहा जा सकता है? और यदि वासनारूप से इनको स्थिर माना जावे, तो व्यभिचारी भाव भी हमारे अंतःकरणो मे वासनारूप से विद्यमान रहते है, अत वे भी स्थायी भाव हो जावेगे। इसका उत्तर यह है कि यहाँ

इन वासनारूप भावों का बार-बार अभिव्यक्त होना ही स्थिरपद का अर्थ है। व्यभिचारी भावों में यह बात नहीं होती, क्योंकि उनकी चमक बिजली की चमक की तरह अस्थिर होतीहै'। —हिंदी रसगंगाधर

रस की कल्पना कैसे हुई, इस विषय में जो ज्ञात हुआ, लिखा गया। भिन्न-भिन्न रसों का विशेष वर्णन मुख्य ग्रंथ में किया गया है।

## परस्पर विरोधी रस

कुछ रसों का कुछ रसों के साथ विरोध है। जिस रस का जिस रस से विरोध नहीं है उस रस का उसके साथ अविरोध माना जाता है।

साहित्यदर्पणकार लिखते हैं—

> आद्यः करुणबीभत्सरौद्रवीरभयानकैः।
> भयानकेन करुणेनापि हास्यो विरोधभाक्।
> करुणो हास्यशृङ्गाररसाभ्यामपि तादृशः॥
> रौद्रस्तु हास्यशृङ्गारभयानकरसैरपि।
> भयानकेन शान्तेन तथा वीररसः स्मृतः॥
> शृङ्गारवीररौद्राख्यहास्यशान्तैर्भयानकः।
> शान्तस्तु वीरशृङ्गाररौद्रहास्यभयानकैः॥
> शृङ्गारेण तु बीभत्स इत्याख्याता विरोधिता।

इन श्लोकों का यह अर्थ हुआ—

विरोध है—(१) शृंगार रस का करुण, बीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक के साथ।

(२) हास्य रस का भयानक और करुण के साथ।

(३) करुण रस का हास्य, शृंगार के साथ।

(४) रौद्र रस का हास्य, शृंगार और भयानक के साथ।

(५) भयानक रस का शृंगार, वीर, रौद्र, हास्य और शांत के साथ।

(६) वीर रस का भयानक और शांत के साथ।

(७) शांत रस का वीर, शृंगार, रौद्र, हास्य और भयानक के साथ।

(८) बीभत्स का शृंगार रस के साथ।

साहित्यदर्पणकार ने शांत का विरोधी शृंगार, हास्य और रौद्र को माना है, परंतु इन तीनो का विरोधी शांत को नही माना। इसी प्रकार रौद्र का विरोधी हास्य को लिखा है, परंतु हास्य का विरोधी रौद्र को नही कहा। ऐसे ही वीर रस को शृगार रस का विरोधी माना है, परतु शृगार को वीर रस का विरोधी नही लिखा। अन्य रसो मे यह बात नही पाई जाती, जैसे हास्य रस का विरोधी भयानक को लिखा है, तो भयानक का विरोधी हास्य रस को भी बताया है, इत्यादि। रसगंगाधरकार लिखते है—

"तत्र वीरशृ गारयोः, शृंगारहास्ययोर्वीररौद्रयोः, शृ गाराद्भुतयोश्चाविरोधः। शृ गारबीभत्सयोः, शृ गारकरुणयोर्वीरभयानकयोः, शान्तरौद्रयोः, शान्तशृ गारयोश्च विरोधः" (पृ. ७३)

इसका यह अर्थ हुआ—

अविरोध है–(१) शृंगार का वीर, हास्य और अद्भुत के साथ।

(२) वीर का रौद्र के साथ।

विरोध है—(१) शृगार का बीभत्स, करुण और शांत से।

(२) वीर का भयानक के साथ।

(३) रौद्र का शांत के साथ।

दोनो प्रसिद्ध विद्वानो के सिद्धांतों मे ये अन्तर है—

साहित्यदर्पणकार ने वीर को शृंगार रस का विरोधी माना है, परतु रसगंगाधरकार ने अविरोधी। रसगंगाधरकार ने शृंगार का विरोधी शांत को माना है, परंतु साहित्यदर्पणकार ने यह नही माना, यद्यपि उन्होंने शांत का 'विरोधी शृंगार को लिखा है। रसगंगाधरकार

ने रौद्र का विरोधी शांत को लिखा है, परतु साहित्यदर्पणकार ने यह नही लिखा, यद्यपि शांत का विरोधी रौद्र को स्वीकार किया है।

अद्‌भुत के विषय मे साहित्यदर्पणकार बिल्कुल चुप है, किंतु रसगंगाधरकार ने उसको शृंगार और वीर दोनो का अविरोधी बतलाया है।

रसो के विरोध और अविरोध के विषय मे यद्यपि इस प्रकार की भिन्नता आचार्यो की सम्मतियो मे देखी जाती है, किंतु मै यह कहूँगा कि साहित्यदर्पण की सम्मति बहुत मान्य है, साथ ही अधिकतर निर्दोष और पूर्ण है।

रस-परिपाक के लिये आवश्यक है कि दो विरोधी रसो का वर्णन साथ साथ न किया जावे, क्योंकि इसका परिणाम यह होता है कि या तो वे परस्पर एक दूसरे के रस-विकास के बाधक होते है, जिससे रस-आस्वादन का आनंद कलुषित हो जाता है। अथवा यदि दोनो सबल हुए, तो संघर्ष उपस्थित होने पर दोनो का नाश हो जाता है. जिससे वह उद्देश्य विनष्ट होता है, जिसके लिये उनकी सृष्टि हुई।

## रस-विरोध का परिहार

जब दो विरोधी रस एकत्र आ जावे, तो उस समय विरोध-परिहार का उद्योग करना चाहिये, ऐसा हो जाने पर रस-व्याघात की आशका दूर हो जाती है। विरोध-परिहार कैसे किया जावे, इस विषय मे काव्य-प्रकाश की यह सम्मति है—

आश्रयैक्ये विरुद्धो यः स कार्यो भिन्नसश्रयः।<br>
रसान्तरेणान्तरितो नैरन्तर्येण यो रस॰॥<br>
स्मर्यमाणो विरुद्धोऽपि साम्येनाथ विवक्षितः।<br>
अङ्गिन्यङ्गत्वमाप्तौ यौ तौ न दुष्टौ परस्परम्॥

इन पंक्तियो का अर्थ यह हुआ—

विरोध का परिहार हो जाता है—

(१) जब दो विरोधी रसो का आधार एक हो तो उनका आधार भिन्न-भिन्न कर देने से ।

(२) दो विरोधी रसो के मध्य मे एक ऐसे रस को स्थापित कर देने से जो दोनो का अविरोधी हो ।

(३) जब विरोधी रस का आधार स्मरण हो ।

(४) जब दो विरोधी रसो मे साम्य स्थापित कर दिया जावे ।

(५) जब दो विरोधी रस किसी अन्य रस के अगांगी भाव से अंग बन गये हो ।

अब उदाहरण देता हू—निम्नलिखित दोहे को देखिये—

बान तानि कै कान लौ खैंचे कठिन कमान ।
भभरि भभरि सारे सुभट भागे भीरु समान ॥

वीर और भयानक एक दूसरे के विरोधी है, इसलिये किसी पद्य मे एक साथ नही आ सकते, परन्तु इस पद्य मे दोनो साथ आये है, फिर भी रसप्रवाह मे बाधा नही पड़ी, कारण यह है कि पहले चरण का आलबन ( आधार ) वीर और दूसरे चरण का आलंबन ( आधार ) भयातुर सुभट है । यद्यपि दोनो रसो का आधार एक ही पद्य है, किंतु दोनो के दो आलंबन हो जाने के कारण वह बाधा दूर हो गई, जो एक ही आलंबन होने से उपस्थित होती, इसलिये रस का आस्वादन अबाध रहा । पद्य पढ़कर स्वयं आपको इसका अनुभव होगा । रस-परिहार के पहले नियम मे यही बात कही गई है । अब दूसरे नियम का उदाहरण लीजिये—

का भो जो उर मै भरयो भव विराग वर वित्त ।
भुवन-बिमोहक माधुरी हरति न काको चित्त ॥

बड़े-बड़े विरागियो के चित्त को भी अलौकिक लावण्य विचलित कर देता है, यह बात अविदित नही, इस दोहे मे इसी बात का वर्णन

है। पहली पंक्ति मे विराग का निरूपण है, दूसरी पंक्ति के अंत मे माधुरी द्वारा चित्त का हरण होना, शृंगार गर्भित है, दोनो परस्पर विरोधी है, किन्तु मध्य के 'भुवन-विमोहक' वाक्य ने ( जो अद्भुत रस की अवतारणा करता है ) दोनो के विरोध का परिहार कर दिया है। भवविरागमूलक शांत रस के उपासक के चित्त को कोई माधुरी कदापि आकर्षित नही कर सकती, क्योकि विराग और आसक्ति परस्पर विरोधी है। परंतु जो अद्भुत माधुरी भुवन-विमोहक है, उसका उसके चित्त को हरण कर लेना स्वाभाविक है। इसीलिये उसके द्वारा शांत और शृंगार के विरोध का परिहार हुआ। दूसरे नियम का यही वक्तव्य था। अब तीसरे नियम का उदाहरण लीजिये—

सोहै, रुधिर भरो परो महि मे सहि-सहि वार।
कबौं कान्तकर जो हुतौ कलित कंठ को हार॥

किसी वीर रसिकशिरोमणि की भुजा को रुधिर भरी पृथ्वी पर पड़ी देखकर एक सहृदय का यह कथन है। उसकी भुजा को इस बुरी दशा मे पाकर वह समय याद आ गया, जब वह सुंदरी ललनाओ के कमनीय कंठो मे पड़ा रहकर किसी अपूर्व गजरे की शोभा धारण करता होगा, अतएव उसका शोक बढ़ गया और उसके हृदय का भाव दोहे के रूप मे परिणत हुआ। यहाँ स्पष्ट शृंगार, करुण रस का सहायक है, बाधक नही, इसीलिये यह स्वीकार किया गया है कि स्मरण किये गये विरोधी रस से विरोध का परिहार हो जाता है। चौथे नियम का उदाहरण यह है—

काल बिमुखता का कहौं मुख न कहत बर बैन।
रस बरसन पावत नहीं रस बरसनपटु नैन॥

यह एक प्रेमिक की उक्ति है, वह अपनी स्वर्गगता प्रेमिका के शरीर को सामने पड़ा देखकर भग्नहृदय है और प्रेम का उद्रेक होने से, अपने हृदय की वेदना को व्यथामय शब्दो मे वर्णन कर रहा है। यहाँ प्रत्यक्ष

नायक का प्रेम ( जो शृंगार रस का स्थायी है ) शोक का अंग बन गया है क्योंकि वह उसकी वृद्धि कर रहा है। अतएव विरोधी होने पर भी वह रस का बाधक नहीं, वरन वर्द्धक है, इसलिये चौथे नियम का संगत होना स्पष्ट है। पाँचवे नियम का उदाहरण—

कहा भयो जीते समर लहे कुसुम सम गात।
बात कहत ही मनुज जो काल गाल मे जात॥

इस पद्य के प्रथम चरण मे वीर रस और द्वितीय चरण मे शृंगार रस विराजमान है। तीसरा-चौथा चरण शांत रस-गर्भित है। 'वीर और शृगार परस्पर विरोधी है, किंतु वे दोनो शांत रस के अग बन गये है। इसीलिये उनके पारस्परिक विरोध का परिहार हो गया है। शांत रस की प्रधानता ही पद्य मे दृष्टिगोचर हो रही है, शेष दोनो रसो ने अंगांगी-भाव से उसमे अपने को विलीन कर दिया है, क्योंकि वे उसकी पुष्टि कर रहे है। इसलिये पंचम नियम की विरोध-परिहार-शक्ति स्पष्ट है।

रसगंगाधरकार कहते है—

"यत्र साधारणविशेषणमहिम्ना विरुद्धयोरभिव्यक्तिस्तत्रापि विरोधो निवर्त्तते"

'जहाँ एक से विशेषणो के प्रभाव से दो विरुद्ध रस अभिव्यक्त हो जाते है, वहाँ भी उनका विरोध-निवृत्त हो जाता है'—यथा

आहव मै आरक्त है बहि यौवन मदभार।
कर आलिगन अवनि को सोये सुभट अपार॥

उनकी यह सम्मति भी है—

"किं च प्रकृतरसपरिपुष्टिमिच्छता विरोधिनोऽपि रसस्य बाध्यत्वेन निबन्धनं काव्यमेव, तथा हि सति वैरिविजयकृता वर्ण्यस्य कापि शोभा सपद्यते। बाध्यत्वं च रसस्य प्रबलैर्विरोधिनो रसस्याङ्गैर्विद्यमानेष्वपि स्वाङ्गेषु निष्पत्तेः प्रतिबन्धः"

"प्रकरण प्राप्त रस को अच्छी तरह पुष्ट करने के लिये विरोधी रस का बाधित करना उचित है, अतः उसका वर्णन अवश्य करना चाहिये,

क्योंकि ऐसा करने से, जिस रस का वर्णन किया जा रहा है, उसकी शोभा वैरी का विजय कर लेने के कारण अनिर्वचनीय हो जाती है। रस के बाधित किये जाने का अर्थ यह है कि विरोधी रस के अंगों के प्रबल होने के कारण, अपने अंगो के विद्यमान होने पर भी रस की अभिव्यक्ति का रुक जाना। अर्थात किसी रस के अभिव्यक्त होने की सामग्री के होने पर भी, दूसरे रस की सामग्री के प्रबल होने के कारण, उसके अभिव्यक्त न होने का नाम है, रस का बाध्य होना।"

—हिंदी रसगंगाधर ( पृ० १३७ )।

## रस-दोष

रस-दोष का वर्णन काव्यप्रकाशकार और साहित्यदर्पण के रचयिता ने कविता-गत दोषो के साथ किया है, किंतु रसगंगाधरकार ने उसको रस के ही निरूपण मे लिखा है। मै भी इस विचार मे इसका वर्णन यहाँ करता हूँ कि जिसमे रस-संबंधी सब बाते इस प्रकरण मे आ जावें। साहित्यदर्पणकार ने निम्नलिखित रस-दोष बतलाये है। यही सम्मति काव्यप्रकाशकार की भी है—

रसस्योक्तिः स्वशब्देन स्थायिसंचारिणोरपि ॥
परिपन्थिरसांगस्य विभावादेः परिग्रहः ।
आक्षेपः कल्पितः कृच्छ्रादनुभावविभावयोः ॥
अकाण्डे प्रथनच्छेदौ तथा दीप्तिः पुनः पुनः ।
अंगिनोऽननुसंधानमनङ्गस्य च कीर्तनम् ॥
अतिविस्तृतिरङ्गस्य प्रकृतीनां विपर्ययः ।
अर्थानौचित्यमन्यच्च दोषा रसगता मताः ॥

ये सब रस के दोष है—

(१) किसी रस का उसके वाचक पद से अर्थात् सामान्यवाचक रस शब्द से या विशेषवाचक शृंगारादि शब्दों से कथन करना।

(२) स्थायीभाव और संचारिभावो का उनके वाचक पदो से अभिज्ञान करना।

(३) विरोधी रस के अंगभूत विभाव अनुभावादिको का वर्णन करना।

(४) विभाव और अनुभाव का कठिनता से आक्षेप हो सकना।

(५) रस का अस्थान (अनुचित स्थान) में विस्तार या विच्छेद करना—बारबार उसे उद्दीप्त करना।

(६ प्रधान को भुला देना अर्थात् अंगी का अनुसंधान न करना।

(७) जो अग नहीं है उसका वर्णन करना।

(८) अंगभूत रस को अति विस्तृत करना।

(९) प्रकृतियो का विपर्यास करना अर्थात् उन्हें उलट-पलट देना।

(१०) अर्थ अथवा अन्य किसी के औचित्य को भंग कर देना।

अब उदाहरण देकर प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करता हूँ।

१—सामान्य रस शब्द और विशेष शृंगार शब्द का शब्द-वाच्यत्व।

> काके उर उपजत न रस मृगनयनी को चाहि।
> बिधु-मुख-छबि शृंगार मै मग्न करत नहि काहि॥

इस पद्य के प्रथम भाग मे रस शब्द और द्वितीय भाग मे शृंगार शब्द आया है, पहला शब्द रस स्वय अपना वाचक है, अतएव वह सामान्य है, दूसरा शृंगार शब्द रस का विशेष वाचक है अतएव पद्य मे दोनो दोष उपस्थित है, इसलिये यह रचना सदोष है। प्रयोजन यह कि कविता मे व्यजना ही प्रधान होती है, जहां इस शक्ति से काम न लेकर अभिधा द्वारा काम निकाला जाता है, वहाँ कविता अपना महत्त्व खो देती है और उस पद से गिर जाती है, जो उसको महत्त्व प्रदान करता है, अतएव उसका सदोष होना स्पष्ट है। इस पद्य मे अभिधा द्वारा काम लिया गया है, रस और शृगार का नाम लेकर उसकी व्यजना बिगाड़ दी गई है। उसको इतना खोल दिया गया है कि उसमें

व्यंजना का अवसर ही नही रहा। यदि 'काके उर उपजत न रस' के स्थान पर 'काको उर सरसत नही' अथवा 'काको उर उमगत नही' होता, और शृंगार के स्थान पर 'आनंद' रखा जाता, तो दोष दूर हो जाता। कविता की व्यजना द्वारा ही रस का ज्ञान होना चाहिये, यदि रस ने प्रकट होकर स्वयं अपना नाम बतलाया तो उसमे कवि-कर्म कहाॅ रहा ?

२—स्थायीभाव का स्वशब्दवाच्यत्व—

भई सचरित रति हिये छबि लखि बनी निहाल।'

सचारी भाव का स्वशब्द वाच्यत्व—

'लज्जावश नव बाल के भे कपोल युग लाल॥'

पहले चरण मे रति शब्द का और दूसरे चरण मे लज्जा का प्रयोग होने से पहले मे स्थायीभाव और दूसरे मे सचारी भाव अपने शब्दो मे ही प्रकट किया गया, इसलिये दोनो मे रस-दोष आ गया। इनमे भी वही बात है, जो ऊपर कही गई है, अर्थात् जिस बात को व्यजना द्वारा प्रकट होना चाहिये था, उसे अभिधा द्वार सूचित किया गया है। रसगंगाधरकार लिखते है—

'इत्थमविरोधसपादनेनापि निबध्यमानो रसो रसशब्देन शृ गारादिशब्दैर्वा नाभिधातुमुचितोऽनास्वाद्यतोपत्तेः। तदास्वादश्च व्यञ्जनमात्रनिष्पाद्य इत्युक्तत्वात्। यत्र विभावादिभिरभिव्यक्तस्य रसस्य स्वशब्देनाभिधान तत्र को दोष इति चेत्, व्यङ्ग्यस्य वाच्यीकरणे सामान्यतो वमनाख्यदोषस्य वक्ष्यमाणत्वात्। आस्वाद्यता-वच्छेदकरूपेण प्रत्ययाजनकतया रसस्थले वाच्यवृत्ते कापेयकल्पत्वेन विशेषदोष-त्वाच्च। एव स्थायिव्यभिचारिणामपि शब्दवाच्यत्व दोषः।"

"जिस रस का वर्णन किया जावे उसके रस शब्द अथवा शृंगारादि शब्दों से बोल देना अनुचित है, क्योकि ऐसा करने से रस आस्वाद करने योग्य नहीं रहता, प्रकट हो जाने के कारण उसका मजा जाता रहता है, इसलिये पहले कह चुके है, कि रस का आस्वादन केवल व्यंजना वृत्ति से ही सिद्ध होता है। आप पूछ सकते है कि जहाॅ विभा-

वादिको से अभिव्यक्त हुए रस को उसका नाम लेकर वर्णन कर दिया जावे, वहॉ कौन दोष होता है, तो उत्तर यह है कि व्यंग्य को वाच्य बना देने से सभी व्यग्यो मे 'वमन' नामक दोष होता है। पहले तो हुई सामान्य दोष की बात। पर रसो का जिस रूप मे आस्वादन किया जाता है, वह प्रतीति वाच्यवृत्ति ( अभिधा ) के द्वारा अर्थात् उन रसो का नाम लेने से उत्पन्न नही हो सकती। अतः जहॉ रसो का वर्णन हो, उस स्थल पर ऐसा करना बंदर की सी चेष्टा है, जो अपने घाव को ठीक करने के लिये खोदकर और बिगाड़ डालता है। इसी तरह स्थायी भावो और व्यभिचारी भावो को भी अभिधा शक्ति के द्वारा वर्णन करना अर्थात् उनके नाम ले लेकर लिखना दोप है।" —हिंदी रसगगाधर (पृ० १३९)।

३—विरोधी रसो के अंग-भूत विभाव अनुभावादिको का वर्णन करना तीसरा दोष है—यथा—

'मान करत कत कामिनी है यौवन दिन चार'।

यौवन का क्षणिक वर्णन शांत रस का अंग है, वह उसका उद्दीपन विभाव है, जो शृंगार-रस का विरोधी है, अतएव शृगार-रस मे इस प्रकार का कथन सदोष है।

४—विभाव और अनुभाव का कठिनता से आक्षेप हो सकना। प्रयोजन यह कि जो वर्णन ऐसा हो जिसमे विभाव-अनुभाव का निर्देश कठिनता से हो सके, जिसके विभाव-अनुभाव का निश्चय होना दुस्तर हो तो वह वर्णन भी दोपयुक्त माना जावेगा—

हॅसत कलानिधि को निरखि मद मद मुसुकाति।
अवलोकहु नवलाबधू नयन नचावत जाति॥

इस पद्य मे कलानिधि का उद्दीपन विभाव और नवल वधू का आलबन विभाव होना स्पष्ट है, किंतु अनुभाव का आक्षेप उसमे सुगमता से नहीं किया जा सकता और यही इस पद्य का रस-दोप है। हृदय मे रस का विकास उसी समय यथार्थ रीति से होता है, जब उसकी

अनुभूति मे बाधा न पड़ती हो। जिस पद्य के विभाव, अनुभाव, आदि अबाध रीति से हृदयंगम होते है, वह पद्य जिस प्रकार सहज बोधगम्य और हृदयग्राही होता है, वैसा वह पद्य नही, जिसमे उनके बोध मे कोई बाधा आ खडी हो। इसीलिये इस प्रकार के व्यापार को सदोष माना गया है। नवला का मंद-मंद मुस्काना और उसका 'नयन नचाते जाना' अवश्य अनुभाव है, किंतु नायक के विषय मे स्पष्ट निर्देश न होने से यह विदित नही होता कि ये दोनो रति संबंधी कार्य है, अथवा साधारण विलास-मात्र। दूसरी बात यह कि 'अवलोकहु' के विपय मे यह स्पष्ट नही ज्ञात होता कि यह शब्द कौन किससे कहता है, इससे भी अनुभाव के स्पष्ट करने मे जटिलता उपस्थित हो जाती है। यदि यह किसी सखी, सखा अथवा अन्य जन की उक्ति है, तो उनका उद्देश्य विलास अवलोकन कराना मात्र है, अथवा रति उत्पादन। कष्ट-कल्पना द्वारा ही कोई बात निश्चित होगी. इसीलिये इस प्रकार की रचना को सदोप कहा गया है।

चिता की चेरी बनी बारि बिमोचत नैन।
कहा करौ बिचलित बने चूर भयो चित चैन ॥

जिस दशा का वर्णन इस पद्य मे है, शृंगार रस मे विरहिणी की भी ऐसी दशा हो सकती है और शोकग्रस्त होने पर किसी संतप्ता रमणी की भी यह करुणामयी दशा देखी जा सकती है, ऐसी अवस्था मे यह निश्चित करना कठिन है कि यह किसी विरहिणी की उक्ति है, अथवा किसी शोकमयी साधारण रमणी की। अतएव इस पद्य का विभाव-निर्णय सहज नही। यह असहजता ही रस-दोष है।

नीचे के पॉच दोष प्रकरण संबंधी हैं, समस्त संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों मे उनका उल्लेख प्रकरण-द्वारा ही किया गया है। समस्त प्रकरण नाटकों से लिये गये है, अथवा काव्य-ग्रंथों से। इधर हिंदी भाषा मे जो दो-चार ग्रंथ इस विषय के लिखे गये हैं, उनमे भी प्रकरणो के उदाहरण

संस्कृत के तत्संबंधी ग्रंथों से ही लिये गये है। मै भी उन ग्रंथों के ही उदाहरण आप लोगो के सामने उपस्थित करूँगा। यह अवश्य है कि मैंने उन्ही नाटक अथवा काव्य-ग्रंथो को लिया है, जिनका अनुवाद हिंदी भाषा मे हो चुका है। आशा है, इससे विषय के समझाने मे असुविधा न होगी।

५—रस का अस्थान मे विस्तार या विच्छेद करना, बार बार उसे उद्दीप्त करना—अकाड मे अथवा अनवसर रस का विस्तार करना—जैसा वेणीसंहार नाटक के दूसरे अक मे किया गया है। जिस समय युद्ध छिड़ा हुआ था और अनेक कौरव वीरगति को प्राप्त हो रहे थे, उस समय दुर्योधन का भानुमती के साथ शृंगार-रस-सबंधी विस्तृत वार्तालाप कराया गया है।

स्थान मे विच्छेद—इसका उदाहरण महावीरचरित मे मिलता है—विवाद के अवसर पर जिस समय परशुराम और रामचद्र आवेशपूर्ण थे, और वाद उग्र रूप धारण किये हुए था, उस समय कंकणमोचन के लिये रामचंद्र को बुलाकर विवाद का अंत कराया गया—यही स्थान अथवा अकांड-विच्छेद है।

रस का बार-बार उद्दीप्त करना। जैसा कुमारसंभव मे रति-विलाप के समय कराया गया है। इस विलाप मे करुण रस को बार-बार उद्दीप्त करने की चेष्टा की गई है—चतुर्थ सर्ग के २६ वें श्लोक तक रति का विलाप चलता है। इसके उपरांत उसके आश्वासन के लिये वसंत आता है। उसे देख रति का शोक और बढ़ता है। दो श्लोक मे यह दिखलाकर कवि फिर रति के विलाप का प्रारंभ करता है जो ३८ वे श्लोक तक चलता है। एक बार विलाप को समाप्त करके उसको फिर उद्दीप्त किया गया है, अतएव इसको दोष माना है। मेरा विचार है कि इससे रस का परिपाक हुआ है, उसमे दोष नही आया किंतु यह एक

उदाहरण है। प्रयोजन यह कि जब रस बार-बार इतना उद्दीप्त किया जावे कि जो उद्वेगजनक हो, तब वह अवश्य दूषित हो जावेगा।

६—अगी का अनुसंधान न करना—रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अक मे यह वर्णन है कि सिहलेश्वर का कंचुकी वाभ्रव्य जब आता है—तो सागरिका को ही भूल जाता है, यद्यपि नाटिका की प्रधान-नायिका वही है, उसका यह अननुसधान काव्य-दृष्टि से दोषयुक्त है, क्योकि इससे कर्तव्यपरायणता मे च्युति दृष्टिगत होती है।

७—अनग का वर्णन—प्रयोजन इसका यह है कि जो अंग नही है, उसका अयथा वर्णन कर्पूरमंजरी मे प्रधान नायिका के वसंत वर्णन का उचित समादर न करके सट्टक के प्रधान पात्र ने बंदियो की वर्णना की प्रशंसा की। बदी सट्टक के अग नही थे, उनकी तो बड़ाई की गई, और प्रधान अग का अनादर। अतएव यह अनग वर्णन हुआ, काव्य मे यह दोप माना गया है, इसलिये कि इससे वर्णनीय के प्रति वर्णन के एक प्रधान अधिकारी की उपेक्षा प्रकट होती है।

८—अगभूत रस की विशेष विस्तृति—अभिप्राय यह है कि नाटक मे जो रस प्रधान है, उसके अतिरिक्त उसके अगभूत किसी दूसरे रस का विस्तृत वर्णन। किरातार्जुनीय काव्य मे वीर रस प्रधान है। शृंगार रस इस काव्य मे वीर रस का एक अगमात्र है। परंतु कवि ने इस काव्य के आठवे सर्ग मे अप्सराओ के विलाप का विशद वर्णन किया है, अर्थात् अगभूत शृगार रस के वर्णन को विस्तृति दी। ऐसा करना इसलिये सदोप है कि अप्रधान प्रधान पद पा जाता है।

९—प्रकृतियो का विपर्यास करना—मतलब यह है कि जो जिसकी प्रकृति है, उसके विरुद्ध उसको अंकिन करना अथवा उसके कार्य-कलाप दिखलाना। साहित्यदर्पणकार लिखते है—

"प्रकृतयो दिव्या अदिव्या दिव्यादिव्याश्चेति। तेषा धीरोदात्तादिता, तेषामप्युत्तमाधममध्यमत्वम्। तेषु च यो यथाभूतस्तस्यायथावर्णने प्रकृतिविपर्ययो दोषः।

यथा धीरोदात्तस्य रामस्य धीरोद्धतवच्छद्मना बालिवधः। यथा वा कुमारसम्भवे उत्तमदेवतयोः पार्वतीपरमेश्वरयोः सम्भोगशृंगारवर्णनम्। 'इदं पित्रोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम्' इत्याहुः।"

"प्रकृतियाँ तीन प्रकार की होती हैं—दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य। इनके धीरोदात्त आदि (धीरोदात्त धीरोद्धत, धीरललित, और धीरप्रशान्त) भेद भी पहले कहे हैं। उनमें भी उत्तमत्व, मध्यमत्व और अधमत्व होता है। इनमें से जो जैसी प्रकृति का है उसके स्वरूप के अनुरूप उसका वर्णन न होने से प्रकृति-विपर्यय होता है। जैसे धीरोदात्त नायक श्रीरामचंद्रजी का धीरोद्धत की भाँति कपट से बाली का वध करना और कुमारसम्भव में उत्तम देवता श्रीपार्वती और महादेव का संभोग शृंगार वर्णन करना। इसके विषय में प्राचीन आचार्य मम्मट कहते हैं कि माता-पिता के संभोग वर्णन के समान यह वर्णन अत्यंत अनुचित है।" —हिंदी साहित्यदर्पण।

दिव्य देवताओं की, अदिव्य मनुष्य की और दिव्यादिव्य प्रकृति अवतारों और संसार के महापुरुषों की मानी जाती है। इसलिये इन लोगों का वर्णन जिस समय किया जावे, उस समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो जिस प्रकृति का हो उसका वर्णन वैसा ही हो, अन्यथा उस वर्णन में प्रकृति विपर्यय दोष आ जावेगा। असंभव कार्यों को कर दिखलाना, स्वर्ग पाताल को छान डालना, समुद्र का उल्लंघन करना, बिना किसी यंत्र के आधार के शारीरिक शक्तियों द्वारा पक्षियों के समान आकाश में उड़ना, दिव्य शक्तिवालों अथवा विशेष अवस्थाओं में दिव्यादिव्य शक्तिवालों का कार्य है, यदि अदिव्य शक्तिवालों में इस प्रकार के कर्म कराये जावें, तो वही प्रकृति-विपर्यय कहलावेगा, और यह दोष है। इसी प्रकार यदि मानवी अर्थात् अदिव्य प्रकृतियों की दुर्बलताएँ, उनकी लम्पटताएँ, उनका दुर्व्यसन, उनका भ्रम, मोह प्रमाद, दिव्य अथवा दिव्यादिव्य प्रकृतियों में दिखलाये जावें, तो यह

भी प्रकृति-विपर्यास होगा। अतएव इस प्रकार की वर्णनायें सदा गर्हित गिनी गई है और इसलिये उनको सदोष माना गया है। तब रसो से जहाॅ तक उदात्त भावो का सम्पर्क है, वहाॅ तक उसका संबंध दिव्य, अदिव्य. दिव्यादिव्य, सभी प्रकार की प्रकृतियो से है, इसलिये उसकी परिधि के अंतर्गत उनका सब प्रकार का वर्णन समुचित समझा जावेगा। किंतु रसो के जो उद्वेगजनक अथवा विरक्तिकर प्रसग है, जिनसे देश, समाज, अथवा व्यक्ति विशेष का अहित होने की संभावना हो, जो आत्मशुद्धि अथवा आंतरिक विकाश के विरोधी किंवा उत्पादक हो— जैसे शृंगार रस के अश्लील अथवा अमर्य्यादित विषय, उनसे जब अदिव्य प्रकृति ही कलुषित होती है, तो दिव्य अथवा दिव्यादिव्य प्रकृति कैसे लांछित न होगी। क्रोधांधता, कामुकता, किंकर्तव्यविमूढ़ता आदि अदिव्य प्रकृति को भी उपहास्य और निंदित बनाती है। फिर ये दिव्य और दिव्यादिव्य प्रकृतियो को कलंकित और जघन्य क्यो न बनायेगी। जिस आत्मबल की न्यूनता से अदिव्य प्रकृति भी अपनी महत्ता खो देती है, उसके ह्रास से दिव्य और दिव्यादिव्य प्रकृतियो का कितना पतन होगा, वे कितने अश्रद्धाभाजन बनेगे, इसको सभी सहृदय स्वयं समझ सकते है। इसीलिये यदि उनके चरित्र मे ऐसे वर्णन होगे, जिनमे उक्त अवगुण और दुर्भाव पाये जावेगे, तो उनमे भी प्रकृति-विपर्यय दोष माना जावेगा। इसी प्रकार और बातो को भी समझना चाहिये।

१०—अर्थ अथवा अन्य किसी के औचित्य को भंग कर देना— अर्थ के अनौचित्य के विषय मे साहित्यदर्पणकार लिखते है—

"एभ्यः पृथगलंकारदोषाणां नैव संभवः"

"एभ्य उक्तदोषेभ्यः। तथा हि उपमायामसादृश्यासंभवयोरुपमानस्य जाति-प्रमाणगतन्यूनत्वाधिकत्वयोरर्थान्तरन्यासे उत्प्रेक्षितार्थसमर्थने चानुचितार्थत्वम्"

"इन दोषो से पृथक् अलंकार दोष नहीं हो सकते, वे इन दोषो के अंतर्गत है।"

१—उपमा मे असादृश्य अर्थात् साधारण धर्म की अप्रसिद्धि और असंभव अर्थात् उपमान की अप्रसिद्धि हो—

२—उपमान में जाति या प्रमाण न्यूनता या अधिकता विद्यमान हो—

३—'अर्थांतरन्यास' अलंकार मे यदि उत्प्रेक्षित अर्थ का समर्थन किया गया हो—तो वहाँ 'अनुचितार्थ दोप' होगा। यथा—

"बिरचत काव्य कलाकरहि कला सकलन हेतु।"
"ज्वलित बारि धारा सरिस बरसत बिसिख समूह।"

इन दोनो पद्यो मे प्रथम मे काव्य का उपमान कलाकर ( चंद्रमा ) को और दूसरे मे विशिख समूह का उपमान ज्वलित वारि-धारा को बनाया है, दोनो मे अप्रसिद्ध दोप है, काव्य का उपमान चंद्रमा लोक में प्रसिद्ध नही है, इसी प्रकार वारि-धारा जलती नहीं होती, यह बात भी प्रसिद्धि के प्रतिकूल है—अतएव दोनो मे अप्रसिद्धि दोप है, इसलिये उनमे अनुचितार्थत्व है। क्योकि उनमे प्रयोग का औचित्य नहीं है।

'साहसीक है समर में नृप चडाल समान'

इस पद्य मे राजा का उपमान चांडाल है—जो अनुचित है—उसमें जातिगत न्यूनता है—

'हैं कपूर के खडसम चद्रबिब छबि देत'

'क्योकि कहाँ कर्पूर खंड और कहाँ चंद्रबिब—इस पद्य मे प्रमाणगत न्यूनता है।'

'बिलसित है हर के सरिस नीलकठ यह मोर'

इस पद्य के उपमान मे जातिगत आधिक्य है, क्योंकि कहाँ तिर्यग्योनि मयूर और कहाँ महामहिम महेश्वर; इसलिये अनौचित्य की पराकाष्ठा है—

'है तिय तेरे कुच युगल काहू अद्रि समान'।
'ललना तेरो भाल है चमकत चद्र समान'।

इस पद्य के उपमान मे प्रमाणाधिक्य है, अतएव अनौचित्य है, क्योकि कुच और पहाड़, भाल और चद्र की समता कैसी ?

दिवा भीत तम को रखत गिरि निज गुहा मझार ।
सरनागत लघु जनहुँ को बडे करत उपकार ॥

जिसकी उपमा दी जाती है, अथवा उदाहरण देकर जिसे पुष्ट किया जाता है, वह कुछ असत्य-सा प्रतीत होता है । यदि ऐसा न होता तो उसके समर्थन की आवश्यकता न होती । तम जड़ पदार्थ है, वह भीत हो नहीं सकता, फिर सूर्य से डरकर उसका गुहा मे छिपना कैसा ! यदि यह सत्य नही है, तो असत्य का समर्थन और प्रतिपादन करना उचित नही । यदि ऐसा किया जावे तो वह अनौचित्य है, इस पद्य मे यही किया गया है, अतएव उसमे अनुचितार्थ दोष मौजूद है ।

अर्थ के अतिरिक्त अन्य अनौचित्यो के विषय मे साहित्यदर्पणकार यह लिखते है—

"अन्यदनौचित्य देशकालादीनामन्यथा यद्वर्णनन्"

"इसके अतिरिक्त देशकाल आदि के विरुद्ध वर्णन को भी अनौचित्य के अंतर्गत जानना चाहिये ।" —हिंदी साहित्यदर्पण ।

एक दूसरे स्थान पर वे लिखते है—

"अनौचित्यप्रवृत्तत्व आभासो रसभावयो."

"अनौचित्य चात्र रसाना भरतादिप्रणीतलक्षणाना सामग्रीरहितत्वे प्रत्येक-देशयोगित्वोपलक्षणपर बोध्यम् ।"

"रस और भाव यदि अनौचित्य से प्रवृत्त हुए हो तो उन्हें यथाक्रम रसाभास और भावाभास कहते है ।"

"अनौचित्य पद को यहाँ एकदेशयोगित्व का उपलक्षण जानना चाहिये, अर्थात् यह पद यहाँ लक्षणा से 'एक संबंध' का बोधक है । जहाँ भरत आदि से प्रणीत, रसभावादि के लक्षण पूर्ण रूप से संगत न

हो, किंतु विभावादि सामग्री की न्यूनता के कारण कुछ एक अंश से ही संबंध रखते हो, वहाँ रसभाव का अनौचित्य जानना चाहिये।"

रसगंगाधरकार 'अनौचित्य' के विषय मे यह लिखते है—

"अनौचित्य तु रसभगहेतुत्वात् परिहरणीयम्। भङ्गश्च पानकादिरसादौ सिकतादिनिपातजनितेवारुन्तुदता। तच्च जातिदेशकालवर्णाश्रमवयोवस्थाप्रकृतिव्यवहारादेः प्रपञ्चजातस्य तस्य तस्य यल्लोकशास्त्रसिद्धमुचितद्रव्यगुणक्रियादि तद्भेदः। जात्यादेरनुचित यथा—गवादेस्तेजोबलकार्याणि पराक्रमादीनि। सिंहादेश्च साधुभावादीनि। स्वर्गे जराव्याध्यादि। भूलोके सुधासेवनादि। शिशिरे जलविहारादिनि। ग्रीष्मे वह्निसेवा। ब्राह्मणस्य मृगया। बाहुजस्य प्रतिग्रहः। शूद्रस्य निगमाध्ययनम्। ब्रह्मचारिणो यतेश्च ताम्बूलचर्वणम्। बालवृद्धयोः स्त्रीसेवनम्। यूनश्च विराग· दरिद्राणामाढ्याचरणम्। आढ्याना च दरिद्राचारः।"

"जो बाते अनुचित है, उनका वर्णन रस के भंग का कारण है, अत उसे तो सर्वथा न आने देना चाहिये। भंग किसे कहते है, उसको भी समझ लीजिये। जिस तरह शर्बत आदि किसी वस्तु मे कोई कड़ी वस्तु गिर जाने के कारण वह खटकने लगती है, इसी प्रकार रस के अनुभव मे खटकने को रसभंग कहते है। अनुचित होने का अर्थ यह है कि जिन-जिन जाति, देश, काल, वर्ण, आश्रम, अवस्था, स्थिति और व्यवहार आदि सांसारिक पदार्थो के विषय मे जो-जो लोक और शास्त्र से सिद्ध एवं उचित द्रव्य, गुण अथवा क्रिया आदि है, उनसे भिन्न होना। जाति आदि के संबंध में जो अनुचित बातें हैं, अब उनके कुछ उदाहरण सुनिये। जाति के विरुद्ध, जैसे बैल और गाय आदि के तेज और बल के कार्य, और सिंह आदि का सीधापन आदि। देश के विरुद्ध—जैसे स्वर्ग मे बुढ़ापा, रोग आदि और पृथ्वी मे अमृतपान आदि। काल के विरुद्ध—ठंढ के दिनो मे जल-विहार आदि, और गरमी के दिनो मे अग्नि-सेवन आदि। वर्ण के विरुद्ध—जैसे ब्राह्मण का शिकार खेलना, क्षत्रिय का दान लेना और शूद्र का वेद पढ़ना आदि।

आश्रम के विरुद्ध—जैसे ब्रह्मचारी और संन्यासी का पान चबाना और स्त्री ग्रहण करना। अवस्था के विरुद्ध—जैसे बालक और बूढ़े का स्त्री-सेवन और युवा पुरुष का वैराग्य। स्थिति के विरुद्ध—जैसे दरिद्रों का भाग्यवानों जैसा आचरण और भाग्यवानो का दरिद्रो जैसा आचरण।"

विद्वद्वर आनंदवर्द्धन लिखते है—

अनौचित्यादृते नाऽन्यद्रसभगस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

"रस के भंग का, अनौचित्य के अतिरिक्त, अन्य कोई कारण नही है। प्रसिद्ध औचित्य का वर्णन करना ही, रस की बड़ी सपत्ति है।"

—हिंदी रसगंगाधर पृ० १४२, १४५।

## रसाभास

ऊपर आप पढ़ आये है कि रस जब अनौचित्य से प्रवृत्त होता है, तो उसे रसाभास कहते है। रसभंग होने पर ही रसाभास होता है और अनौचित्य ही रसभग का कारण है। अनौचित्य क्या है? वह भी बतलाया जा चुका है। किंतु इससे यह सीमित नही हुआ, उसकी सख्या आगे भी बढ़ सकती है। देश, काल, पात्र एव सामाजिक आचार विचार और व्यवहार के अनुसार अनौचित्य अनेक रूपरूपाय है, फिर भी लक्ष्य की ओर दृष्टि आकर्षण के लिये, उसके कतिपय रूपो का वर्णन मिलता है। रसगंगाधरकार ने जिन अनौचित्यो का उल्लेख किया है, वे लिखे जा चुके हैं। साहित्यदर्पणकार क्या कहते है, उसे भी सुनिये—

उपनायकसंस्थाया मुनिगुरुपत्नीगताया च।
बहुनायकविषयाया रतौ तथानुभयनिष्ठायाम्॥
प्रतिनायकनिष्ठत्वे तद्वदधमपात्रतिर्यगादिगते।
शृंगारेऽनौचित्य रौद्रे गुर्वादिगतकोपे॥

शान्ते च हीननिष्ठे गुर्वाद्यालम्बने हास्ये ।
ब्रह्मवधाद्युत्साहेऽधमपात्रगते तथा वीरे ॥
उत्तमपात्रगतत्वे भयानके ज्ञेयमेवमन्यत्र ।

"नायक के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष मे यदि नायिका का अनुराग हो तो वहाँ अनौचित्य जानना। एवं गुरुपत्नी आदि मे अथवा अनेक पुरुषो मे यद्वा दोनो मे से किसी एक मे ही (दोनो मे नहीं) किंवा प्रतिनायक अर्थात् नायक के शत्रु मे या नीच पात्र मे यदि किसी की रति (अनुराग) वर्णित हो तो वहाँ शृंगार-रस मे अनौचित्य के कारण शृंगाराभास अथवा रसाभास जानना। इसी प्रकार यदि गुरु आदि पर क्रोध हो तो रौद्र रस मे अनौचित्य होता है। एवं नीच पुरुषो मे स्थित होनेपर शांत मे, गुरु आदि आलंबन हो तो हास्य मे ब्राह्मण-वध आदि कुकर्मो मे उत्साह होने पर अथवा नीच पात्रस्थ उत्साह होने पर वीर रस मे और उत्तम पात्रगत होने पर भयानक रस मे अनौचित्य होता है। इसी प्रकार और भी जानना चाहिये।"

कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते है—

उपनायकनिष्ठ रति—अथवा परपुरुषानुराग—

लखहु लपटि तरु पुंज सो ललित लता लहराहि।
पथिक जात हो कित चले इत बिरमत कत नाहि॥

इस दोहे मे किसी विलासिनी का अनुराग एक पथिक के प्रति प्रकट होता है जो उसका अपरिचित है, अतएव उसका उपनायकनिष्ठ होना स्पष्ट है।

बहुनायकनिष्ट रति—

किन नयनन मे नहि बसे को न इनहि मन देत।
बडे छबीले छयल ए काको नहि छरि लेत॥

जिसके मुख से यह दोहा निकला है उसका मन अनेक सुंदर

युवकों के सौदर्य्य-सरोज का मधुप है, इसलिये उसका बहुनायकनिष्ठ होना प्रकट है।

अनुभयनिष्ठ रति—इसका भाव यह है कि जहाँ नायिका में प्रेमभाव उत्पन्न होकर केवल नायक ही में उसका विकास हुआ हो, अर्थात् ऐसी रति जो नायक नायिका दोनों मे उत्पन्न नहीं हुई, यथा—

'पिय तन छाँह बनन चहत तिय लखि छाँह डराति।'

पति का प्रेम तो इतना वर्द्धित है कि वह प्रायः पत्नी के साथ ही रहना चाहता है, किंतु पत्नी इतनी सलज्ज और संकोचवती है कि पति की छाया देखकर भी घबराती है। रस की पूर्णता दोनों के प्रेमसाम्य ही से होती है, इसलिये यहाँ भी रसाभास है—

प्रतिनायकनिष्ठ रति—अर्थात् ऐसी रति जो नायक के शत्रु में हो, यथा—

हो सुंदर सुनयन रुचिर रुचि कामिनि चित चोर।
कत चितवति है चतुर तिय प्रियतम अरि की ओर॥

पति के शत्रु की ओर उसके सौंदर्य के कारण किसी स्त्री को बार-बार अवलोकन करते देखकर किसी बुद्धिमती सखी को यह बात असंगत जान पड़ी, अतएव वह उसको सावधान करती है। क्योंकि उसकी चितवन में उसके रूप के आकर्षण की झलक उसे दिखलाई पड़ी। यह प्रत्यक्ष रसाभास है, क्योंकि सहधर्मिणी की यह प्रवृत्ति अनौचित्य के अंतर्गत है।

अधमपात्रगत रति—अर्थात् जो पात्र रति योग्य नहीं है, उससे प्रीतियुक्त होना, यथा—

काहे लालायित बनत कोऊ द्विजकुल जात।
मानि मानि यवनीन को नवनी कोमल गात॥

एक विप्रवंश जात का किसी युवती की नवनीतकोमलांगी कहकर प्रशंसा करना और उसके प्रेमपाश में बद्ध होना कितना अनुचित है,

इसको प्रत्येक आर्यधर्मावलंबी समझ सकता है। अधमपात्रगत रति का यह रोमांचकर उदाहरण है।

तिर्यग् योनिगत रति—तिर्यग् योनि कीट पतंगादि है, इनकी प्रीति का अथवा शृंगारलीला का वर्णन करना तिर्यग् योनिगत रति कहलाती है, यथा—

जाति चमेली कुंज मैं निरखति ललित लतान।
अलिनी खोजति फिरति है, अलि को करि कलगान।

तिर्यग् योनिगत रति की वर्णना को इसलिये रसाभास माना है कि उसमें अधिकांश विकल्पना होती है, वास्तविकता कम। मानव-समाज की रति के समान उसमें पूर्णता भी नहीं होती।

रौद्र रसाभास, यथा—

बात कहा बैरीन की का मो सम बलवान।
बिगरि गये बापहू पै हौं बगारि हौं बान॥

गुरुजन पर क्रोध करना उचित नहीं, पिता सर्वप्रधान गुरु है। इस दोहे में कहा गया है कि यदि मैं बिगड़ जाऊँगा, तो बाप को भी बाण मार दूँगा, इससे बढ़कर क्या अनौचित्य होगा, अतएव इसमें प्रत्यक्ष रौद्र रसाभास है।

भयानक रसाभास—जहाँ किसी नरपुंगव अथवा वीर में भय दृष्टिगत होता है, वहाँ भयानक रसाभास होता है, यथा—

सुने असुर की असुरता सुरपुर सकल सकात।
देखि दसवदन को वदन सुरपति मुख पियरात॥

इस पद्य में वीर-शिरोमणि इंद्र के मुख का रावण के भय से पीत होना वर्णित है, इसलिये इसमें भयानक रसाभास है।

करुण रसाभास—जो करुणा अथवा दया का पात्र नहीं है, जब उस पर कृपा अथवा उसके विषय में करुणा की जाती है, तब करुण रसाभास होता है, यथा—

चहत अपावन करन सो भवपावन रस सोत ।
देख पतित की यातना जो दुख निपतित होत ॥

पाप कर्म्म मे रत रहने के कारण जिसका पतन हो गया है, उसकी यातना अथवा ताड़ना होने से ही समाज का मगल हो सकता है, अतएव वह इस योग्य होता है कि उसकी यातना हो और उसे दड दिया जावे। ऐसो का शासन होते देखकर जो दु खित होता है, वह दया का अनुचित प्रयोग करता है और उसकी करुणा उचित नही होती। इस पद्य मे इसी का वर्णन है, अतएव इसमे करुणा रसाभास है।

हास्य रसाभास—जब हास्य रस का आलंबन वृद्धजन अथवा गुरुजन होते है, अर्थात् जब वृद्धजन अथवा गुरुजन की हँसी उडाई जाती है तब हास्य रसाभास होता है, यथा—

सेत केस मिस अवनि मे पसरो कीरति सेत ।
कौन दाँत के गिर गये दाँत सुमुखि पै देत ॥

इस पद्य मे एक वयोवृद्ध की हसी उड़ाई गई है। प्राय देखा जाता है कि वृद्धावस्था मे हबरा बढ जाती है, किसी किसी का मन वृद्धावस्था मे भी युवा बना रहता है, वे दाँत गिर जाने पर भी सुमुखियो पर दाँत देते रहते है। 'दाँत गिर जाने पर दाँत देना' एक अद्भुत बात है, इसलिये पद्य मे कहा गया है कि वृद्ध ने अद्भुत कर्मी बनकर श्वेत दाढ़ी के बहाने पृथ्वी पर अपनी श्वेत कीर्ति फैलाई है। यह घोर व्यंग्य है, जो वृद्ध के चरित्र पर कुत्सित कटाक्ष करता है। चित्र सच्चा है, किंतु एक वृद्धजन का उससे संबंध होने के कारण उसे पढ़कर चित्त मे क्षोभ होता है। वृद्धजन के साथ ऐसी हसी उचित भी नही होती। अतएव यहाँ हास्य रसाभास है।

वीर रसाभास—जहाँ पर उत्साह औचित्य से गिर जाता है—वहाँ वीर रसाभास होता है, यथा—

वीर बहकि बाहत नही कबहुँ बधिक सम बान ;
बालक अबला-वधनिरत वृथा बनत बलवान ॥

किसी बालक और अबला वध में उत्साहित जन के प्रति किसी तेजस्वी महात्मा की यह उक्ति है। इसमें कहा गया है कि वीर उत्साह होने पर वधिक के समान निरीह प्राणियों पर बाण नहीं चलाता, क्योंकि यह अनौचित्य है। इसी प्रकार बालक एवं अबला पर हाथ उठाना भी कापुरुषता का परिचायक है, बलवान् द्वारा ऐसा अनुचित कार्य नहीं हो सकता। अतएव इस पद्य में स्पष्ट वीर रसाभास है।

वीभत्स रसाभास—किसी कारण से जहाँ वीभत्स में अनौचित्य दृष्टिगत होता है, वहाँ वीभत्स रसाभास होता है, यथा—

रुधिर पियत तो कत कँपत सुनत नरक को नाम।
हाड़ चिचोरत रहत तो कहत जात कत राम ॥

रुधिर पान करने के समय किसी रक्त पिपासित का नरक का नाम सुनकर कँप जाना उसकी दुर्बलता का सूचक है, अतएव अनौचित्य है। इसी प्रकार हाड़ चिचोरते समय राम-राम कहते जाना भी समुचित नहीं, क्योंकि इससे एक ओर नाम की मर्यादा नष्ट होती है, और दूसरी ओर उसकी पाप-प्रवृत्ति की चरितार्थता नहीं होती, अतएव इस पद्य में वीभत्स पूर्ण रूप से विराजमान है।

शांत रसाभास—जहाँ शांत रस के प्रवाह में अनुचित कार्य-कलाप बाधा उपस्थित करे, वहाँ शांत रसाभास होगा, यथा—

का बिराग भो जो रहे राग रंग मे लीन।
रहे रामरत जो न तो का करवा कोपीन ॥

'विरागभाजन बनकर राग रंग मे लीन होना, और करवाकोपीन धारणकर राम मे रत न होना, अनौचित्य है। अतएव यहाँ स्पष्ट शांत रसाभास है।'

अद्भुत रसाभास—जब किसी विषय का वर्णन आश्चर्य की सीमा से आगे बढ़कर असंभवना तक पहुँच जाता है, वहाँ अद्भुत रसाभास होता है—क्योंकि इस प्रकार का वर्णन उचित नहीं होता। यथा—

उछरि अंजनीसुअन ने लीलि लियो ततकाल।
निरखि बाल रविबिम्ब को सुमधुर फल सम लाल॥

'सूर्यो आत्मा हि जगत।' सूर्य्य जगत् की आत्मा है, वह हिंदू जाति का आराध्य देव है, उसके विषय में यह लिखना कि उसको नर ने नहीं वरन् बानर ने निगल लिया, कितना बड़ा अनौचित्य है। सूर्य्य के सामने अंजनीनंदन की सत्ता हिमालय के सामने एक चींटे इतनी भी नहीं, भला वे सूर्य्य को क्या निगलते। जिस कार्य का उल्लेख दोहे में है, वह अद्भुत क्या महान् अद्भुत है, परंतु प्रलापमात्र है और अनौचित्य पूर्ण भी, अतएव उसमें प्रत्यक्ष रसाभास है। एक दोहा और देखिये—

का न करति ललना, हनति पति को ले करवाल।
कँपि कलंक भय ते बनति कोख लाल को काल॥

एक ललना का कर में करवाल लेकर पतिदेव का वध करना, अपने फूल से कोमल लाल का कलंक भय से नाश कर देना, कितना विस्मयपूर्ण और आश्चर्यजनक है। किंतु दुःख है कि संसार में ऐसा होता है। दोनों कार्यों में अनौचित्य की पराकाष्ठा है, इसलिये पद्य में अद्भुत रसाभास मौजूद है।

इसी प्रकार के रसाभास के और उदाहरण दिये जा सकते हैं, किंतु मैं समझता हूँ विषय स्पष्ट हो गया, अतएव विस्तार की आवश्यकता नहीं। रसाभास का लक्षण क्या है, और वह रस ही होगा या और कुछ, इसकी मीमांसा रसगंगाधरकार ने विशेषतया की है, अभिज्ञता के लिये उनका विचार भी नीचे उद्धृत किया जाता है—

"तत्रानुचितविभावालम्बनत्वं रसाभासत्वम्। विभावादावनौचित्यं पुनर्लो-

काना व्यवहारतो विज्ञेयम्। यत्र तेषामयुक्तमिति धीरिति केचिदाहुः। तदपरे न क्षमन्ते। मुनिपत्न्यादिविषयकरत्यादेः सग्रहेऽपि बहुनायकविषयाया अनुभयानिष्ठयाश्च रतेरसग्रहात्। तत्र विभावगतस्यानौचित्यस्याभावात्। तस्मादनौचित्येन रत्यादिर्विशेषणीयः इत्थ चानुचितविभावाम्लबनाया बहुनायकविषयाया अनुभयनिष्ठायाश्च सग्रह इति। अनौचित्य च प्राग्वदेव।"

"उसके लक्षण के विषय मे कुछ विद्वानो का मत है—अनुचित विभाव को आलंबन मानकर यदि रति आदि का अनुभव किया जाय तो रसाभास हो जाता है। रहा यह कि किस विभाव को अनुचित मानना चाहिये और किसको उचित, सो यह लोक व्यवहार से समझ लेना चाहिये। अर्थात् जिसके विषय मे लोगो की यह बुद्धि है कि यह अयोग्य है, उसीमे अनौचित्य का आरोप किया जा सकता है। पर दूसरे विद्वान् इस लक्षण को सुनकर चुप नही रहते, वे कहते है—इस लक्षण के द्वारा यद्यपि मुनी-पत्नी आदि के विषय मे जो रति आदि होते है, उनका सग्रह हो जाता है, क्योकि इतर मनुष्य मुनि-पत्नी आदि को अपना प्रमपात्र माने यह अनुचित है। तथापि अनेक नायको के विपय मे होनेवाली और प्रियतम प्रियतमा दोनो मे से केवल एक ही मे होनेवाली रति का इसमे सग्रह नही होता, क्योकि वहॉ तो विभाव अनुचित नही, किन्तु प्रेम अनुचित रूप से प्रवृत्त हुआ है, अत. अनुचित विशेषण रति आदि के साथ लगाना उचित है। अर्थात् यह लक्षण बनाना चाहिये—

'जहॉ रति आदि अनुचित रूप से प्रवृत्त हुए हो वहॉ रसाभास होता है।"

इस तरह जिसमे अनुचित विभाव आलम्बन न हो, जो अनेक नायको के विषय मे हो, और जो प्रियतम प्रियतमा दोनो मे न रहती हो, उस रति का भी सग्रह हो जाता है। अनुचितता का ज्ञान तो इस मत मे भी पूर्ववत् ( लोक व्यवहार ) से ही कर लेना होगा।"

"तत्र रसाद्याभासत्व रसत्वादिना न समानाधिकरण निर्मलस्यैव रसादित्वाद-हेत्वाभासत्वमिव हेतुत्वेनेत्येके । नह्यनुचितत्वेनात्महानिरपि तु सदोषत्वादाभास व्यवहारोऽश्वाभासदिव्यवहारवदित्यपरे" । —मुख्य ग्रथ ८४ पृ० द्वि० ख०

"रसाभासो के विषय मे एक और विचार है। कुछ विद्वानो का कथन है "जहाॅ रसादि के आभास होते है, वहाॅ रस आदि नही होते, उन दोनो का साथ साथ रहना नियम विरुद्ध है, क्योकि जो निर्मल हो जिसमे अनुचितता न हो, उसीका नाम रस है। जैसे कि जो हेत्वाभास होता है, वह हेतु नही। दूसरे विद्वानो का कथन है—अनुचित होने के कारण स्वरूप का नाश नही हो सकता अर्थात् वह रस ही है, किंतु दोपयुक्त होने से उन्हें आभास कहा जाता है, जैसे कोई अश्व दोपयुक्त हो, तो लोग उसे अश्वाभास कहते है"। —हिंदी रसगगाधर २६६, २७०

मै समझता हूॅ, यह अंतिम सम्मति ही ठीक है, कुछ अनौचित्य के कारण रस कलुषित हो सकता है किंतु यह नही हो सकता कि उसमे रस का अभाव हो जावे। यह भी समझ लेना चाहिये कि सब जगह अनौचित्य से रसाभास नही हो जाता। जहाॅ अनौचित्य से किसी रस को पुष्टि होती हो, अथवा जहाॅ अनौचित्य का उद्देश चरित्र सुधार, कलक अपनोदन, किंवा दोष अवगतकरण हो, वहाॅ वह वर्जित नही होता। अनौचित्य वही निंदनीय होता है, जो रस के प्रतिकूल हो। यथा—

कचन-सचय मे निपुन रखत कचनी मान।
कैसे बनै महत नहि महि मे महिमावान॥

किसी धर्माचार्य पर कटाक्ष करना अनौचित्य है, इस पद्य मे यही किया गया है, अतएव इसमे रसाभास माना जा सकता है। किंतु महत के चरित्र शोधन के लिये ही, इस पद्य मे उनकी हॅसी उड़ाई गई है, अतएव यहाॅ अनौचित्य हास्य रस को पुष्ट करता है, उसके प्रतिकूल नहीं है, इसलिये इसमे रसाभास नही माना जायगा। इसी प्रकार अन्यों को भी समझना चाहिये।

# शृंगार रस

## शृंगार रस की परिभाषा

नाट्य-शास्त्र के आचार्य महामुनि भरत ने शृंगार की यह परिभाषा लिखी है—

"यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते ।

जो कुछ लोक में पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है, वह शृंगार रस कहलाता है।

"यथा गोत्रकुलाचारोत्पन्नान्याप्तोपदेशसिद्धानि पुंसां नामानि भवन्ति, तथैवैषां रसानां भावानां च नाट्याश्रितानां चार्थानामाचारोत्पन्नान्याप्तोपदेशसिद्धानि नामानि। एवमेष आचारसिद्धो हृद्योज्ज्वलवेषात्मकत्वाच्छृंगारो रसः।"।

जैसे गोत्र, कुल और आचार से उत्पन्न आप्तोपदेश सिद्ध पुरुषों के नाम होते हैं। उसी प्रकार नाट्याश्रित रसों और भावों के 'अर्थ के आधार पर' आचारोत्पन्न, आप्तोपदेश सिद्ध नाम है। इसी प्रकार का आचार सिद्ध, हृदयग्राही, उज्वल वेषात्मक होने के कारण शृंगार (रस) कहलाता है।

साहित्यदर्पणकार लिखते है—

शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः ।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते ॥

"काम के उद्भेद ( अंकुरित होने ) को शृंग कहते है, उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त, रस 'शृंगार' कहलाता है।"

शृंगार क्या है, उसकी परिभाषा क्या है ? मेरा विचार है, महामुनि भरत और साहित्यदर्पणकार की उक्तियों से यह बात स्पष्ट हो गई। जो कुछ संसार में दर्शनीय अर्थात् सुंदर है, साथ ही जो पवित्र, उत्तम और उज्ज्वल है, उसका जिसमें सरस एवं हृदयग्राही, वर्णन विकास

अथवा प्रदर्शन होगा, वह शृंगार रस कहला सकेगा। आचार्य भरत के 'नाट्याश्रित' वाक्य से केवल नाटको का ही ग्रहण न होगा, काव्यों और अन्य साहित्यिक विषयो का समावेश भी उसमे समझा जावेगा। कारण यह है कि शृगार रस की परिभाषा उन सब को अंतर्गत कर लेती है। आचार्य्य के सम्मुख नाटक का विषय था, इसलिये अपने सूत्र मे उसीका उल्लेख उन्होने किया, और इसका कोई दूसरा हेतु नही। काव्य दो प्रकार का होता है, दृश्य और श्रव्य। इसलिये रमणीयार्थप्रतिपादक' दोनो है, क्योकि पंडितराज कहते है, 'रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।' फिर दृश्य काव्य श्रव्य का उपलक्षण क्यो न माना जायगा। साहित्यदर्पणकार कहते है कि काम के अकुरित होने को शृग कहते है, इसलिये उसकी उत्पत्ति के आधार, उत्तम प्रकृतियो के अवलंबन, रस को शृगार कहा जाता है। इस कथन मे भी उत्तम प्रकृति का प्राधान्य है। उत्तम प्रकृति ही पवित्र, उज्ज्वल, और दर्शनीय होगी। अतएव शृगार रस की परिभापा के विषय मे हम दोनो वावदूक विद्वानो का एक ही सिद्धात और एक ही विचार अवलोकन करते है जिससे उसकी विशेष पुष्टि होती है।

## शृंगार रस का विवेचन

शृगार रस के देवता विष्णु भगवान है। नाट्यशास्त्रकार लिखते है, 'शृंगारो विष्णुदेवत्तु' यही सम्मति साहित्यदर्पणकार की भी है, वे कहते है, 'स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः'। जिस रस का जो गुण, स्वभाव और लक्षण होता है, उसका देवता प्राय. उन्ही गुणो और लक्षणादि का आदर्श होता है, क्योकि उसीके आधार से उस रस की कल्पना होती है। भगवान् विष्णु मे सतोगुण की प्रधानता है, वे सृजन कर्त्ता के भी सृजनकारी है। उन्हीकी नाभि से जो विश्व का केंद्र है, ब्रह्मा की सृष्टि हुई, जो शतदल कमल पर विराजमान थे। यह

शतदल कमल और कुछ नही, अनत जलराशि मे प्रकटीभूत क्षुद्राभ पार्थिव अश मात्र था। वे शेषशायी है, प्रयोजन यह कि विनष्टभूत अखिल ब्रह्माड के जो शेषांश सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु स्वरूप मे, शून्य मे, प्रशान्त अगाध समुद्र के समान वर्त्तमान रहते है, वे उन्हीमे विश्राम करते है। उनकी सहकारिणी वह शक्ति है जो रमा है, जो उनके समान ही सबमे ही रमण करती है, सबका पालन-पोषण करती है, और जो उन्ही लोकोत्तर के सदृश लोकोत्तरा है। वे हिरण्यगर्भ है, 'कोटिसूर्यसमप्रभ' है, अर्थात असख्य दिव लोक, अपरिमित सूर्य मडल, और अनंत-दीप्तिमान पिंडो के जनक है। उनका पवित्रतम-पद देश पुण्यसलिला भगवती भागीरथी का उत्पादक है, उस भगवती भागीरथी का, जो त्रिपथगा है, स्वर्ग, मर्त्य और पातालविहारिणी है, जो भगवान शिव के शिरोदेश की मालती माला है, और है उस कठगत कालकूट विषमता की शमन-कारिणी, जिससे त्रिलोक के भस्मीभूत होने की आशका उपस्थित हो गई थी। वे है कोटि मन्मथ मनमथन और उस निर्जीव के जीवन दाता, जो अपने किसलय कोमल करो मे सुमन शर धारण करके त्रिलोक को आयत्त करता है। फिर यदि यह कहा जावे कि लोक मे जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्जल, और दर्शनीय है, वह शृंगार रस है, तो क्या आश्चर्य ! क्योकि वह ऐसे अलौकिकता निकेतन, समानविभूति-सर्वस्व, 'रसो वै सः' का ही आदिम विकास तो है।

मै रस-प्रकरण मे अग्निपुराण के आधार से लिख आया हू; सर्व व्यापक और सर्वशक्तिमान विभु का स्वाभाविक आनद अभिव्यक्ति अवस्था मे चित्शक्ति सम्पन्न और चमत्कारमय होता है। उसके अन्य-भाव से अभिमान का आविर्भाव, और ममता संकलित अभिमान से रति की उत्पत्ति होती है। यही रति शृगार रस की जननी है इसलिये रति उसका स्थायीभाव है।

प्रकृतिवाद मे रति शब्द का अर्थ लिखा है—

रति—सं० स्त्री० स्मरप्रिया, कामपत्नी, अनुराग, आसक्ति, क्रीड़ा, रमण, संतोष। —पृ० ८११

हिंदी शब्दसागर में यह अर्थ लिखा गया है—

रति—सं० स्त्री० (३) प्रीति, प्रेम, अनुराग, मुहब्बत।—पृ० २८९३

प्रदीपकार लिखते हैं—

'रतिस्तु मनोनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदनम्'।

मन के अनुकूल अर्थों में सुखप्रसूत ज्ञान का नाम रति है।

सुधासागरकार कहते हैं—

स्मरकरम्बितान्तः करणयोः स्त्रीपुंसयोः परस्पर रिरंसा रतिः स्मृता'।

स्त्री पुरुष के कामवासनामय हृदय की परस्पर रमणेच्छा का नाम रति है।

साहित्यदर्पणकार बतलाते हैं—

'रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्'।

प्रिय वस्तु में मन के प्रेमपूर्ण उन्मुख होने का नाम रति है।

जब कहते हैं 'रतिर्देवादिविषया' तब रति का अर्थ भक्ति, प्रेम, अनुरागादि होता है, इसलिये रति शब्द का अनेकार्थक होना स्पष्ट है। जहाँ वह अनेकार्थक है वहाँ उदात्त एवं मनोरम है। क्योंकि 'प्रेम एव परो धर्म्म' प्रेम ही परम धर्म है।

भक्तिसूत्रकार कहते हैं—

'अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप मूकास्वादनवत्'।

प्रेम का स्वरूप वर्णन नहीं किया जा सकता गूँगे के आस्वादन के समान।

एक अंगरेजी का विद्वान् कहता है—

L ve and life are words with a similar meaning.

'प्रेम और जीवन एक ही अर्थ के द्योतक शब्द हैं'।

सहृदयवर हेनरी वान डाइक कहते है—

Love is not getting, but giving, not a wild dream of pleasure and a madness of desire Oh, no, love is not that. It is goodness and peace and pure living, yes, love is that, and it is the best thing in the world and the thing that lives longest.

'प्रेम आदान नहीं, किंतु प्रदान है। वह न तो भोग-विलास का सम्मोहक स्वप्न है, और न वासनाओं का उन्माद। ये सब प्रेम नहीं हो सकते। भलाई, शांति और सदाचारिता को प्रेम कहते हैं। इन सद्गुणों में प्रेम ही का निवास है। ससार में इस प्रकार का प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ और चिरस्थायी वस्तु है।

बाबू हरिश्चंद्र कहते है—

जाकौ लहि कछु लहन की चाह न चित में होय।
जयति जगत पावन करन प्रेम बरन यह दोय॥

कबीर साहब कहते है—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पण्डित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढै सो पण्डित होय॥

एक संस्कृत का विद्वान कहता है—

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरगा इव वारिधौ।
उन्मजन्ति निमजन्ति यत्र स प्रेमसंज्ञकः॥

सब रस और भाव समुद्र में लहरों के समान जिसमें उठते और लीन होते रहते है उसका नाम प्रेम है।

ऐसी महिमामयी, विश्वव्यापिनी, अनंत गुणावलंबिनी रति जिस शृंगार रस का स्थायीभाव है, वह यदि पवित्र, उज्ज्वल, उत्तम एवं दर्शनीय न होगा, तो कौन होगा; क्योंकि विभाव, अनुभाव और सचारी भावों के सहयोग से स्थायीभाव ही रस में परिणत होता है। यदि

कहा जावे कि 'स्त्री पुरुष के काम-वासनामय हृदय की परस्पर रमणेच्छा का नाम भी तो रति है! फिर वह इतना प्रशंसनीय कैसे होगा? तो उत्तर यह है कि काम का वास्तविक स्वरूप न समझने से ऐसा प्रश्न होगा, अतएव मैं काम का यथार्थ स्वरूप समझाने की चेष्टा करूँगा। ऊपर मैं लिख आया हूँ कि 'काम के अंकुरित होने का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त शृंगार रस है'। यह साहित्यदर्पणकार की सम्मति है। हृदय की सकामता क्या है? यह वह मानसिक प्रवृत्ति है, जो संसार के सृजन का हेतु है। यदि वह न हो तो संसार उत्पन्न हो जावेगा—विश्व मे प्राणियों का ही अभाव न हो जावेगा, कहीं हराभरा एक तृण भी दृष्टिगोचर न होगा। स्त्री-पुरुष की रमणेच्छा, सकामता की ही प्रक्रिया है। मंगलमय विधाता की यह वह विधि है, जिसमे संसार की सारी पवित्रता, उज्ज्वलता, उत्तमता और दर्शनीयता एकत्रीभूत है। यह वह रहस्यमय शिवसंकल्प है, जिसपर आत्मोत्सर्ग कर काम अनंग बन गया और उसकी सहधर्मिणी रति ने स्त्री-पुरुष को एक सूत्र मे बाँध दिया। दोनों की परस्पर सम्मिलनेच्छा स्वाभाविक है और उस पूत कर्त्तव्य का पालन है, जो नियति का अनुल्लंघनीय विधान है। इसी से उसका आधार उत्तम प्रकृति से युक्त शृंगार रस है—जो प्रशंसनीय है, और जिसमे किसी कुत्सित भाव को स्थान नहीं। अँगरेजी का एक विद्वान कहता है—

"The purest, noblest and most unselfish aspirations and purposes derive their strength and being from the sweet influences which have their beginning and continuance in this power which draws men and women together in happy and holy wedlock. By these sweet influences the most perfect natures are moulded and ennobled By them are formed the

strongest ties that hold humanity to the accomplishment of every high and holy endeavour."

"नर नारी जिस शक्ति के वश आनदमय विवाह-बंधन मे आबद्ध होते है, वही उन मधुर प्रभावो की सत्ता और उद्‌गम का कारण है, जिससे पवित्र से पवित्र, उच्च से उच्च और निःस्वार्थ से नि स्वार्थ भावनाओ तथा कर्मों को बल और स्थिति प्राप्त होती है। इन मधुर प्रभावो द्वारा सम्पूर्णतया आदर्श प्रकृतियो मे सुधार तथा उच्चता सपादित होती है। जिस मनुष्य का वास्ता प्रत्येक उच्च और पवित्र प्रेरणा से है, वह मनुष्यता इन्ही मधुर प्रभावो की दृढ़-से-दृढ़ गाँठों द्वारा जकडी रहती है।"

—मतिरामग्रथावली की भूमिका पृ० ४।

आर्य-संस्कृति के अनुसार विवाह का बधन पवित्र बधन है, और स्त्री-पुरुष का स्वाभाविक सयत सम्मिलन एक पुनीत विधान। इसी के लिये कहा गया है, 'पुत्रप्रयोजनाद्दारा' स्त्री पुत्र के प्रयोजन के लिये है। भाव यह कि सृजन-प्रणाली की रक्षा के लिये ही दपति-सम्मिलन की आयोजना है। पुत्रोत्पादन इतना पुण्यमय कार्य्य समझा जाता है, कि उसके विषय मे शास्त्रो मे इस प्रकार के वाक्य मिलते है 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' अपुत्र की गति नही होती। बड़े-बड़े स्मृतिकारो ने इस विषय मे जो कहा है, उसे भी सुनिये। भगवान् मनु यह कथन करते है—

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्॥ १॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रायते पितर सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥ २॥

मनुष्य पुत्र से सब लोको को पाता है, पौत्र से बहुत काल तक स्वर्ग मे रहता है और प्रपौत्र से सूर्यलोक को प्राप्त करता है। पुं नाम नरक का है, उससे पुत्र पिता को बचाता है, इसलिये स्वयं ब्रह्मा ने उसको 'पुत्र' संज्ञा प्रदान की है।

महर्षि अत्रि का यह वचन है—

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेजीवतो मुखम् ।
ऋणमस्मिन्स नयति अमृतत्व च गच्छति ॥

पुत्र का जन्म होने पर जीवित पुत्र का मुख देखने से ही पिता पितरो के ऋण से मुक्त होता है और उसी दिन शुद्ध हो जाता है, क्योंकि पुत्र पिता को नरक से बचाता है ।

वशिष्ठ देव की यह आज्ञा है—

अनन्ताः पुत्रिणा लोका नापुत्रस्य लोकोस्तीति श्रूयते ।

पुत्रवाले को अनंत काल तक स्वर्ग मिलता है, पुत्र हीन मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती ।

बौधायन स्मृति का यह वाक्य है—

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिर्ऋणी जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति ।

ब्राह्मण तीन ऋण से युक्त होकर जन्म लेता है, वह ब्रह्मचर्य धारण करने पर ऋषि-ऋण से, यज्ञ करने पर देव-ऋण से और संतान उत्पन्न करने पर पितृ-ऋण से छूटता है । —धर्मशास्त्रसंग्रह ।

मंगलमयी सृष्टि के संरक्षण के लिये किस प्रकार इन वचनों के द्वारा मनुष्य जाति को सतर्क किया गया है और कैसे एक धर्म-कार्य की ओर प्रवृत्ति दिलाई गई है और कितने रोचकभाव से, इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं । किंतु एक विशेष बात की ओर दृष्टि आकर्षण प्रयोजनीय ज्ञात होता है । वह यह कि संतानोत्पत्ति इसलिये आवश्यक है कि जिससे मनुष्य तीन ऋण से मुक्त हो सके । वे तीन ऋण है, देव-ऋण, ऋषि-ऋण, और पितृ-ऋण । देव-ऋण चुकाने का अर्थ है, अनेक यज्ञों और सदनुष्ठानो द्वारा सर्व भूत हित और लोक सेवा, ऋषि-ऋण से मुक्त होने का भाव है सच्छास्त्रों का पठन और मनन कर जनसाधारण में सद्भावों और विश्व-

हितकर विचारों का प्रचार और पितृ-ऋण से उद्धार पाने का उद्देश्य है, वंश वृद्धि, एवं देश कालानुसार कुल की शिष्टजनानुमोदित मर्यादा और परंपरा का पालन। मनुष्य का यह प्रधान कार्य है कि जब तक वह जीवित रहे तब तक इन महान् कर्त्तव्य कर्मों को स्वयं करता रहे और अपने पीछे अपना एक ऐसा प्रतिनिधि छोड़ जावे, जो इन शुभ कार्यों को यथापूर्व चलाता रहे। यह बात बिना पुत्र उत्पन्न किये नहीं प्राप्त हो सकती, इसलिये शास्त्रों में संतानोत्पत्ति का इतना महत्त्व है। संतानोत्पत्ति बिना स्त्री-पुरुष सम्मिलन के नहीं हो सकती, इस लिये उनका संयोग कितना पुनीत और महान् कार्य है। आशा है, यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो गई। एक अँगरेजी विद्वान भी लगभग ये ही बातें कहते हैं, देखिये—

"He is no longer to live for himself, but for his wife and children and in a larger sense for his descendants—for the good of the race. He is to continue by transmitting himself, that life may remain when he is gone what he does involves the interest of his wife and of those who are to come after him. Love is to conquer selfishness. He is to rise above himself and the present good and future happiness of others are to constitute his well-being"

'विवाह के बाद पुरुष की जीवन-यात्रा केवल अपने लिये नहीं होती, वरन् अपनी स्त्री और बच्चों के लिये अथवा व्यापक अर्थ में यों कहिये कि जाति-हित की दृष्टि से अपने उत्तराधिकारियों के लिये है। अपनी आत्मीयता को वह दूसरों को इस प्रकार से सौंपता है कि मर जाने पर भी वह जीवित रहता है। उसके प्रत्येक काम में उसकी पत्नी तथा

बच्चो का हित लिपटा रहता है। स्वार्थ-परता पर प्रेम की विजय होती है, पति को अहभाव के ऊपर उठना पड़ता है। उसकी सत्ता का प्रयोजन अब म दूसरो की वर्त्तमान भलाई और भविष्य आनन्द मे ही है।'

——मतिरामग्रथावली की भूमिका पृ० ७।

एक प्रकार से और इस विषय को देखिये। जिसका शृगार किया जाता है, वह उत्तम, उज्ज्वल और दर्शनीय बन जाता है। यह शृगार चाहे प्रकृति करो से किया गया हो, चाहे मनुष्य जाति द्वारा। शरद मयंक, समुज्ज्वल राका रजनी, अनत तारकावलि, विलसित नीलनभो-मंडल, लोकरंजिनी अरुणरागआरजिता ऊपा, हिम धवल गिरिशृंग श्रेणी, हरित-दल-विभूषित पादपावली अनत सौंदर्य निकेतन विकच कुसुम समूह, विचित्र चित्रित विहंग वृद और नाना रंग आकार के चमत्कारमय कीट-पतग किसको विमुग्ध नहीं बनाते, किसके लोचनो को नही चुराते और किसके हृदय को आनंदित नही करते। मानव जाति के बनाये संसार के अनेको मंदिर, सहस्रो स्तंभ, कितने ही 'पिरामिड', बहुत मे पुल, लाखो पुष्पोद्यान, असंख्य विलास-मंदिर, करोड़ो बाग-बगीचे, अनेक मूर्तियॉ और खिलौने, इतने साफ सुथरे सुंदर, मनोहर और देखने योग्य है कि उनकी जितनी प्रशसा की जाय वह थोड़ी है। ये समस्त विश्व-विभूतियॉ पवित्र इसलिये है कि उनका दर्शन निर्दोष है और वे लोकोत्तर आनंदसदन हैं। यह शृगार का माहात्म्य है।

जब इस शृंगार को रसत्व प्राप्त हो जाता है, तो सोना और सुगध की कहावत चरितार्थ होती है, उस समय वास्तव में मणिकाञ्चन योग उपस्थित होता है, निर्जीवप्राय सजीव बन जाता है और स्वर्ण कलस रवि-किरण-कात !!

क्या इन बातो पर गभीरता पूर्वक विचार करने पर यह नही स्वीकार करना पड़ता कि शृंगार रस की पवित्रता और महत्ताओ के विषय में जो कथन किया गया, वह सत्य और युक्तिसंगत है।

## श्रृंगार रस की व्यापकता

ससार मे जो पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल और दर्शनीय है, उसमे श्रृगार रस का विकास है, इस कथन मे ही श्रृंगार रस कितना व्यापक है, यह स्पष्ट हो जाता है। परंतु सूत्र-रूप मे कही गई इस विषय की व्याख्या आवश्यक है, जिसमे वह भलाभाँति हृदयंगम हो जावे।

प्राणियो मे मनुष्य सवप्रधान है। जब उसकी ओर दृष्टि जाती है तब श्रृंगार रस की व्यापकता अन्य प्राणियो की अपेक्षा उसमे अधिक पाई जाती है। किसी-किसी प्राणी मे श्रृंगार रस का कोई अंश बहुत-ही प्रबल देखा जाता है, परंतु उसका सर्वांश अथवा अधिकांश जितना मानव-जाति मे मिलता है, अन्यो मे नही। दर्शनीयता जितनी सौदर्य्य मे मिलती है, अन्य गुणो मे नही। जितना आकर्षण और हृदयग्राहिता रूप मे होती है, जितना मोहक वह होता है, दूसरा नही। इसी लिये काम लोकोत्तर कमनीय और कुसुमायुध है। उसकी सहधर्मिणी रति है, जो प्रेममयी, आसक्तिमयी, रमणशीला और क्रीड़ाकला-पुत्तलिका है। काम यदि सौदर्य्य-सरसीरुह है, तो वह उसकी शोभा, काम यदि राकामयंक है, तो रति उसकी कौमुदी; श्रृगार रस का दोनो के साथ आधार-आधेय का संबंध है। श्रृंगार रस शिशु का एक जनक है, और दूसरी जननी। मानव हृदय काम-रति-परायण है. अतएव उसके प्रांगण मे प्राय: श्रृगार रस शिशु रमण करता रहता है। जिसका परिणाम वे ललित कलाए है जिनसे सारा धरातल ललितभूत है।

सुदर-सुंदर चित्र, तरह-तरह के वसन-आभूषण, कोमल कात बिछौने, नयनरंजन सामग्री, लोकमोहन आलोक, गगनचुबी प्रासाद, सुसज्जित उद्यान, मनोहर नहरे, अनेक देव दुर्लभ विभव और बहुत-से अपूर्व सुखसाधन, मनुष्य जाति की सौदर्य्यप्रियता से ही प्रसूत है। सगीत साहित्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म आविष्कार, स्वर ध्वनियों की लाला-यितकर लहरे, विविध वाद्ययंत्रो के मधुर निनाद, नृत्य और नृत्त के

नाना विभेद, हाव-भाव कटाक्ष के महाप्रयोग, हास, विलास के क्रिया कलाप, रूप माधुरी के विविध वर्णन, प्रकृति विभूतियों के मनोहर चित्रण कवि-हृदय के सरस उद्गार, रसिक जनों के रस प्रसूत सम्बल सौंदर्य्य प्रेम प्रकरण ही के विविध संस्करण हैं। मानव किस प्रकार इनके द्वारा अपनी सकामता को चरितार्थ करता है, कैसे इनमें अनुरक्त रहकर अपने जीवन को आनंदमय बनाता है, यह अविदित नहीं. प्रत्येक सहृदय इसे जानता है।

वधिक की वीणा में कौन-सी वशीकरण विभूति होती है कि उसको श्रवण कर मृग इतना तन्मय हो जाता है कि उसके बाण पर आत्मोत्सर्ग करने में भी संकुचित नहीं होता? कृत्रिम करिणी को भी देखकर गजराज पर कौन सा जादू हो जाता है कि वह गर्त्त में ही पतित नहीं होता, उस पराधीनता के बंधन में भी बँध जाता है, जो उसको आजन्म जीवन के स्वतंत्रता सुख से वंचित कर देता है? घोड़ियों में कौन-सी आकर्षिणी शक्ति है, जिनको अवलोकन करते ही घोड़े आनंद-विह्वल होकर उछलने-कूदने ही नहीं लगते, अपने उच्चरव से दिशाओं को भी ध्वनित करने लगते हैं? मंथर गति, पीवर ग्रीव, विशाल काय बैलों में कौन-सी मोहनी रहती है कि उनको घूमते देख गाएँ आपे में नहीं रहतीं और पास पहुँच कर परस्पर लेहन करने में ही आनंद लाभ करती हैं? वह कौन-सी प्रेरणा है कि अपने बच्चों में पशु मात्र का सहज प्यार होता है? वह कौन-सा भाव है जिसके वशवर्ती होकर पशुओं के जोड़े आपस में एक दूसरे की ओर खिंचते, मुँह से मुँह मिलाते उछलते-कूदते और तरह-तरह की क्रीडाओं में रत रहते हैं? इन सब बातों का एक ही उत्तर है, वह यह कि ये सब भगवान् कुसुमायुध की विचित्र लीलाएँ हैं।

प्रात:काल ऊषा को अरुण राग रंजित और कांत रविकर आपीड से सुसज्जित अवलोकन कर विहंगवृंद जो अलौकिक-गान आरंभ करता है, जैसी कलकंठता दिखलाता है, जैसे मधुर स्वरों से दिशाओं को पूरित

कर देता है, जैसा चहकता और उमग मे भर जाता है, वह किस प्रवृत्ति का परिचायक है ? क्या उस रागमयी का अनुराग ऐसा कराता है, या उसका सौदर्य अथवा उसका विकास ? कुसुमाकर जब कुसुमावलि का माल्य धारण कर दिशाओ को सुरभित करता है, पादपपंक्ति को नवल फल दल सभार से सजाता है, तो कोयल क्यो उन्मादिनी बनती है, क्यों रात रात भर बोलती है ? क्यो कूक-कूक कर कलेजा निकाले देती है ? क्या इनका कोई पारम्परिक सबंध है ? क्या प्रेमोन्माद ही तो उसे उन्मादिनी नहीं बनाता । जब घन गगन मंडल मे घिर जाते है, मद मद गरजते है, कभी घूमते है, कभी रस बरसाते है, तब पपीहा क्यो पी-पी की रट लगाता है, मयूर क्यो मत्त होकर नर्त्तन करता है, घन-पटल को अवलोकन कर इनको कौन रस मिलता है ? कौन से आनद की धारा इनके मानसो मे बहने लगती है, क्या इन बातो मे कोई रहस्य नही ? पारावत कितना प्यारा पक्षी है, सौदर्य की तो वह मूर्त्ति है । जिस समय वह अपने नीलाभ गले को फुलाकर बोलने लगता है, अपनी पूंछ को झुका और फैलाकर नृत्य आरंभ करता है, उस समय उसकी विहंगिनी ही उस पर मुग्ध नहीं होती, वरन् उसे उस अवस्था मे जो देखता है, वही मोह जाता है । उसका यह मोहक रूप क्यो ? क्या ये सब शृङ्गार रस के ही कौतुक नही ?

भृग फूलो पर गूँजता फिरता है, कभी उनपर बैठता है, कभी उनसे रस ग्रहण करता है और कभी एक पुष्प का रज वहन करके दूसरो तक पहुँचा आता है । तितलियॉ नाचती फिरती है, चूम-चूमकर फूलो की बलाएँ लेती है । उनसे गले मिलती है, अपने रग मे उन्हें और उनके रग मे अपने को रँगती है और फिर न जाने कहॉ चक्कर काटती हुई चली जाती है । मधुमक्खी चुपचाप आती है, फूलो के साथ विहार करती है, उनसे रस सचय करती है, कुछ को पी जाती है, और कुछ को लिये सँभलती, बचती न जाने कहॉ से कहॉ पहुंच जाती है । यदि हम

आँख उठाकर देखें, तो अपने चारो ओर असख्य कीट-पतंगो को, इसी प्रकार के कार्यों में रत पायेंगे। प्राणी ही नही यदि हम अंतर्दृष्टि से काम लेंगे, तो पेड़ो और लता बेलियो क्या फल-पत्तो तक मे कामदेव के साथ रति देवी विहार करती मिलेंगी, और वहीं रस रूप में शृंगार देव भी अपना प्रभाव विस्तार करते दृग्गोचर होंगे। वास्तविक बात यह है कि ससार मे जो कुछ है, वह सब एक दूसरे के साथ अदृश्य सूत्र से ग्रथित है। यह संबंध मानव बुद्धि से परे भले ही हो, किंतु इस संबंध द्वारा कही ज्ञात और कहीं अज्ञात रूप मे संसार का सृजनादि समस्त मंगल-मूलक कार्य यथा काल होता रहता है। एक अँगरेज विद्वान् कहता है—

"All things by immortal power
To each other linked are,
Near or far, That thou canst not stir a flower.
Hiddenly Without troubling of a star"

"समस्त वस्तुएँ चाहे वे दूर-दूर हो, चाहे पास-पास, एक अनत शक्ति के द्वारा गुप्त रीति से एक दूसरे से लगाव रखती है। तुम बिना एक सितारे को प्रभावित किये हुए, एक फूल को भी नहीं तोड़ सकते।"

—'सुधा' संख्या २४ पृ० ५४८।

शृंगार रस की व्यापकता का एक मनोहर चित्र प्रसंग सूत्र से कविकुलगुरु कालिदास ने अपने कुमारसंभव नामक ग्रंथ मे बड़ी सहृदयता से अंकित किया है, उसको भी देखिये। जिस समय भगवान् भवानीपति पर आक्रमण करने के लिये, कुसुमायुध अपनी पूर्ण शक्ति का विस्तार कर प्रयाण करता है, उस समय की दशा का वर्णन वे यो करते है—

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रिया स्वामनुवर्तमानः।
शृ गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः॥

ददौ रसात् पंकजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः।
अर्द्धोपभुक्तेन बिसेन जाया संभावयामास रथांगनामा॥
पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत् प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि॥

भ्रमरगण अपनी-अपनी प्रिया का अनुगामी बनकर एक पुष्परूप पात्र मे मधुपान करने लगा, कृष्णसार मृगो ने अपने-अपने सींगो से मृगीगण के गात्र को खुजलाया, अतएव स्पर्श सुख से विमोहित होकर उन्होंने अपनी ऑखे बंद कर ली। करिणीगण ने पद्म-पराग से सुरभित सरोवर सलिल को करो के द्वारा कुंजर समूह को पिलाया और चकवा ने कमल नाल का एक टुकड़ा लेकर उसमे से आधा स्वयं खाया और आधा अपनी प्रियतमा को खिलाया। इतना ही नही, प्रभूत-पुष्प-स्तवक-स्तन और प्रवालोपम अधर-पल्लव से सुशोभित लता-वधूटियो ने भी अपनी आनत-शाखा बाहु-द्वारा पादप समूह को आलिंगन करना आरंभ कर दिया।

कविकुलतिलक गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस विपय का वर्णन जिस प्रकार किया है, वह भी दर्शनीय है—

सब के हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहि तरु शाखा।
नदी उमगि अंबुधि कहँ धाई। संगम करहि तलाव तलाई।
जँह अस दसा जड़न कै बरनी। को कहि सकहि सचेतन करनी।
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भये काम बस समय बिसारी।
देव दनुज नर किन्नर व्याला। प्रेत पिसाच भूत बैताला।
इनकी दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।

मै समझता हूँ, अब तक जो शृंगार रस की व्यापकता के विपय मे लिखा गया, वह पर्य्याप्त है। एक अँगरेज विद्वान की सम्मति और सुन लीजिए—

It is under the awakening of reproductive life that the

fields put on their verdure; the flowers unfold their beauty and fragrance, the birds put on their brightest plumage and sing their sweetest song while the chirp of the cricket, the note of the katydid, is but the call to its mate for the many tounged voices, which break the stillness of field and forest are lent myriad notes of love.

"सृजन सबधिनी प्रेरणाओ से जाग्रत् होकर ही मैदान अपनी सब्जी दिखलाते है, फूल अपने सौदर्य्य और सुगध को प्रकट करते है, पक्षी-गण अपने चमकीले से चमकीले पर धारण करते है, तथा मधुर-से-मधुर गीत गाते है। झिल्ली की झकार, कोयल की कूक अपने जोडे के आह्वान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैदान और वनो की निस्त-ब्धता को भग करनेवाले जो इन नाना प्रकार के पक्षियो के कलरव सुन पड़ते है, ये सब प्रेम के ही असख्य गीत है।"

मतिरामग्रथावली की भूमिका पृ० ४।

## शृंगार रस की प्रधानता

शृगार रस की व्यापकता के विपय मे जो कुछ लिखा गया उसे आपने अवलोकन कर लिया, दूसरी विशेपता इस रस मे यह है कि यही सब रसो मे प्रधान और आदिम माना जाता है—प्रकृतिवादकार लिखते है —

शृगार—स० पु० आद्यरस—ईहाते रति स्थायीभाव—पृ० ११२। हिदी शब्दसागर मे शृगार के विपय मे यह लिखा गया है—

शृंगार—सं० पु० साहित्य के अनुसार नौ रसो मे से एक रस जो सबसे अधिक प्रसिद्ध है, और प्रधान माना जाता है।··· ········ ····· इसका स्थायीभाव रति है।····· ··यही एक रस है जिसमे संचारी

विभाव, अनुभाव, सब भेदों सहित होता है, और इसी कारण इसे रस-राज कहते हैं। —पृ० ३३४५।

आचार्य केशवदास कहते हैं—

नवहूँ रस को भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सब को केसवदास कहि नायक है सिंगार।—रसिकप्रिया।

कविपुंगव देव कहते हैं—

भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार।—कुशलविलास।

कविवर पद्माकार कहते हैं—

नव रस में सिंगार रस सिरे कहत सब कोय।—जगद्विनोद।

भोजदेव अपने शृंगारप्रकाश नामक ग्रंथ में लिखते हैं —

शृंगारवीरकरुणाद्भुतहास्यरौद्रबीभत्सवत्सलभयानकशांतनाम्नः।
आम्नासियुर्दशरसान् सुधियोवंदति शृंगारमेव रसनाद्रसमामनाम.॥

शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, रौद्र, बीभत्स, वत्सल, भयानक और शांत नामक दस रस बुद्धिमानों ने बतलाये हैं, किन्तु आस्वादन पर दृष्टि रखकर शृंगार ही रस माना जा सकता है।

प्रकृतिवादकार शृंगार को आद्य रस बतलाते हैं, कविपुंगव देव की सम्मति यह है कि सब रसों का मूल शृंगार है, अतएव लगभग दोनों का एक ही सिद्धांत है। मैंने भी रस निरूपण में अग्निपुराण के आधार से यह प्रतिपादित किया है कि आद्य रस शृंगार ही है, और सब रसों की उत्पत्ति इसी से हुई है, अतएव शृंगार रस का प्राधान्य स्पष्ट है। कामदेव को शृंगारयोनि और शृंगारजन्मा कहते हैं, इसलिये काम का उत्पादक शृंगार है, यह स्वीकार करना पड़ता है। साहित्यदर्पणाकार की भी सम्मति यही है, पहले के पृष्ठों में इसकी चर्चा हो चुकी है। सृष्टि का सृजन काम पर ही अवलंबित है, ऐसी अवस्था में भी सब रसों में शृंगार को ही प्रधानता प्राप्त होती है।

मैंने स्थान विशेष मे काम और/रति को शृगार का जनक और जननी भी लिखा है। कारण, भरत मुनि का यह वाक्य है—

'तत्र शृ गारो' नाम रतिस्थायिभावप्रभव उज्ज्वलवेषात्मक· ।

'शृगार' रति स्थायिभाव से उत्पन्न हुआ है, और उज्ज्वल वेषात्मक है।

जब शृंगार रति से उत्पन्न है, तो वह उसकी जननी हुई, और उसका पति कामदेव उसका जनक है—यह स्पष्ट है। किंतु इस स्थान-पर शृगार से आद्य अथवा मूल शृगार से नही, वरन उस शृगार से मतलब है, जिसको दम्पति का सम्मिलन अथवा स्त्री-पुरुष का सांसारिक सृजन संबंधी कार्य कह सकते है। गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते है—

जग पि मातु महेस भवानी।
तेहि शृ गार न कहौ बखानी॥

यह शृगार भी इतना व्यापक है कि प्राणियो क्या, पेड़ो और लता वेलियो मे भी उसकी उपस्थिति पाई जाती है। जनक ही जननी में पुत्र-रूप से उत्पन्न होता है, यह सभी जानता है, 'आत्मा वै जायते पुत्र '।

महाभारतकार भी यही लिखते है—

आत्मात्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः।
तस्माद्भार्या नरः पश्येन्मातृवत्पुत्रमातरम्॥

बुद्धिमानो का कथन है कि आत्मा ही पुत्र रूप मे उत्पन्न होती है, इसलिये नर को स्त्री को मातृ-रूप मे देखना चाहिये, क्योकि पुत्र की माता वही है। ऐसी अवस्था मे मूल शृंगार से इस शृंगार मे विशेष अंतर नही पाया जाता, फिर भी कुछ अतर अवश्य है। इसी अंतर पर दृष्टि रखकर काम को उसका जनक और रति को उसकी जननी माना जाता है। अस्तु।

हिंदी शब्दसागरकार कहते है कि इसी एक रस मे सब संचारी-भाव विभावो एव अनुभावो सहित आते है, इसीलिये इसे रसराज

कहते है। मैं भी इस सिद्धात को मानता हूॅ, परंतु कुछ लोगो की सम्मति है कि सब संचारी भाव शृंगार रस मे भी नही आते, साहित्यदर्पणकार लिखते है—

त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः।

उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर सब व्यभिचारी अथवा संचारी भाव इसमे आते है।

महामुनि भरत लिखते है—

'व्यभिचारिणस्त्रासालस्योग्र्यजुगुप्सा वर्जम्'।

व्यभिचारियो मे त्रास, आलस्य, उग्रता, और जुगुप्सा शृंगार मे नही आते।

साहित्यदर्पणकार ने त्रास नही रखा, उसके स्थान मे मरण रखा है। शेष त्यज्य संचारी भावो के विषय मे दोनो आचार्य्यो की एक सम्मति है।

मै देखना चाहता हूॅ कि जिन संचारी भावो को त्यज्य बतलाया गया है, साहित्यकार उनका प्रयोग शृंगार रस मे करते है या नही। पहले तो यही देखिये कि जिस मरण संचारी को सर्वथा अमंगलमूलक माना है, जिसके विषय मे साहित्यदर्पणकार यह लिखते है—

'रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते'।

'रस का विच्छेदक होने के कारण शृंगार रस का वर्णन नही किया जाता, वही मरण काम दशा की दश दशाओ मे से एक है, क्योकि अंतिम अवस्था वही है। फिर उसका वर्णन शृंगार मे क्यो न होगा। यद्यपि वे लिखते है—

जातप्रायं तु तद्वाच्य चेतसा काङ्क्षितं तथा।
वर्ण्यतेऽपि यदि प्रत्युज्जीवनं स्याददूरत॥

"मरण तुल्य दशा का वर्णन कर देना चाहिये, और चित्त से

आकांक्षित मरण का भी वर्णन कर देना चाहिये। यदि फिर शीघ्र ही पुनर्जीवित होना हो तो मरण का भी वर्णन कर देते है"।

विशेष दशा मे ही सही, किंतु यदि मरण का वर्णन किया जाता है, तो शृंगार रस मे उसका वर्णन हो गया, फिर उसका त्याग कहाँ हुआ? चित्त से आकांक्षित मरण भी मरण दशा का वर्णन ही है, चाहे उसमे अधिक रस-विच्छेद भले ही न होता हो। भारतेंदुजी के निम्न-लिखित पद्य मे इसी भाव की व्यंजना है, परंतु है मरण का ही वर्णन—

एहो प्रानप्यारे बिन दरस तिहारे भये,
मुये हूँ पै आँखे ए खुली ही रह जायँगी॥'

कुछ लोगो की यह सम्मत्ति है कि यदि यह बात सत्य है कि वियोग-जनित पीड़ाधिक्य मरण का कारण भी होता है, तो उसका वर्णन क्यो न किया जावे। वियोग की वास्तविक अंतिम दशा पर दृष्टि रखकर ही आचार्यो ने मरण को काम की दश दशा मे स्थान दिया है, फिर उसकी उपेक्षा क्यो? कविवर बिहारीलाल ऐसे ही विचारवालो मे ज्ञात होते है। उन्होने निम्नलिखित पद्य मे मरण का वर्णन किया है—

कहा कहौ वाकी दसा हरि प्रानन के ईस।
बिरह ज्वाल जरिबो लखे मरिबो भयो असीस॥

फ़ारसी के कवि और उन्ही की देखा-देखी उर्दू के कवि मरण दशा का वर्णन बड़े जोश-खरोश के साथ करते है। मरण समय की समस्त वेदनाओं, उस काल की अदर्शनीय यंत्रणाओ, पीड़ाओं और बीभत्सकाण्डो को मजे ले लेकर कहते है। क़ब्र मे की आरजूओं और तमन्नाओं को दिल खोलकर सामने रखते है। कतल के वक़्त के तमाम नजारो को इस तरह कलमबंद करते है कि उस समय का दृश्य आँखो के सामने आ जाता है, फिर भी अमंगल कामना उनके हृदय मे घर नहीं करती—इसको विचार-विभिन्नता छोड़ और क्या कहें। कुछ उनकी तबीयतदारी देखते चलिये—

लाश पर इबरत यह कहती है 'अमीर'
आये थे दुनिया में इस दिन के लिये ॥
करीबे कब्र हम आये कहाँ-कहाँ फिर कर।
तमाम उम्र हुई जब तो अपना घर देखा ॥
खुशी न हो मुझे क्यों कर कजा के आने की।
खबर है लाश पर उस बेवफा के आने की ॥
लगी ठोकर जो पाये दिलरुबा की।
महीनो तक मेरी तुरबत हिला की ॥
कहते है आज 'जौक' जहाँ से गुजर गया ॥
क्या खूब आदमी था खुदा मगफरत करे ॥

प्रयोजन यह कि किसी प्रकार हो, परंतु मरण दशा का वर्णन शृंगार रस मे होता है। शृंगार रस के स्तंभ, रोमांच, स्वरभंग, कंप और वैवर्ण्य का भय अथवा त्रास भी हेतु होता है। प्राय. आलस्य ही जृंभा का कारण होता है, ये सब सात्विक भाव है। बिब्बोक हाव शृंगार के ही अंतर्गत है, इसमे जुगुप्सा और उग्रता दोनो संचारी भाव पाये जाते है, इसके अतिरिक्त प्रौढ़ा अधीरा और मानिनी नायिकाओ के हृदय में भी अनेक अवसरो पर दोनो संचारी भाव बड़े उग्र रूप मे प्रकट होते है—कुछ प्रमाण लीजिये—

"नख ते सिख लौ पट नील लपेटे लली सब भाँति कँपै डरपै।
मनो दामिनि सावन के घन मैं निकसै नहीं भीतर ही तरपै।"
भई भीति बस, प्रीति बस, किधौ भयो पवि पात।
उर धरकत, थरथर कँपत, कत तिय तेरो गात ॥
दर दर दौरति सदन दुति सम सुगंध सरसाति।
सेज परी आलस भरी तोरति अंग जम्हाति ॥
'जैहै जो भूखन काहू तिया को तो मोल छला के लला न बिकैहो।
'छैल छबीले छुओगे जो मोहि तो गात मै मेरे गुराई न रैहै।'

रहे देखि दग है कहाँ ? तोहि न लाज की छूत ।
मै बेटी वृषभानु की, तू अहीर को पूत ॥
कत मो ढिग आवत रहत बकत कहा बेकाज ।
तो पै कहा परी न जो गिरी लाज पै गाज ॥

ऐसी दशा मे यह स्वीकार करना पडता है कि जो वर्जित सचारी भाव है, प्रयोजनवश वे भी उसमे गृहीत होते है, फिर यह क्यो न माना जाय कि इस रस मे सब सचारी भाव आते है, । वास्तविक बात तो यह है कि जीवन-सबधी घटनाओ का जितना अधिक सबध शृगार से है, अन्य रसो से नही । दाम्पत्य-जीवन मे घटना सूत्र से जितनी मानसिक वृत्तियो का विकास एवं विविध नायिकाओ के आधार से जितने भावो का आविर्भाव शृंगार रस मे होता है, अन्य रसो मे हो ही नही सकता, क्योकि प्राय नूतन घटनाएँ उनमे संघटित नही होती, इसलिये उनमे समस्त संचारी भाव आ ही नही सकते । और रसो से शृंगार रस की यह बहुत बड़ी विशेषता है, इसलिये उसे रस-राज माना जाता है । यह भी उसकी प्रधानता की ही दलील है ।

शृंगार रस के ग्रंथो मे जहाँ रसो का वर्णन किया गया है, वहाँ सब रसो के संचारी भावो का निर्देश मिलता है । शृंगार रस को छोड़कर शेष आठ रसो में प्रत्येक मे आधे से भी कम संचारी भाव आते है, किसी-किसी मे तो चार-पाँच ही । इसीलिये भोजदेव कहते है कि रसन शक्ति जैसी शृगार रस मे है और जैसा आस्वादित वह होता है अन्य रस नही । मै पहले बतला आया हूँ कि संसार के प्राणि-मात्र इस रस के रसिक है । क्योकि जैसी ही इसकी विस्तृत व्यापकता है, वैसा ही विस्तृत इसका आस्वादन है । शांत रस का स्वाद पशु-पक्षी, कीट-पतग को क्या मिलेगा । हास्य मनुष्य को छोड़कर ससार के किसी प्राणी मे नही मिलता । विश्व का वैचित्र्य विस्मयमूलक है, यह निश्चय ही अद्भुत रस का जनक है । इस विस्मयका बोध पशु-पक्षी आदि को नहीं

होता, क्योकि इसका लक्षण उनमे नही देखा जाता। प्रात:काल की विलक्षणता पक्षियो को विमुग्ध नही करती, वरन उसका सौदर्य्य। इसी प्रकार मयूर मेघ की छटा और पिक कुसुमाकर का विकाश अवलोकन कर मत्त होता है, उनका वैचित्र्य देखकर नही। मल-मूत्र अथवा निदनीय पदार्थ देखकर घृणा करना मनुष्य की प्रकृति है, अन्य प्राणियो मे यह अनुभव शक्ति नही होती, इसलिये बीभत्स रस के पात्र भी वे नही होते। पक्षियो मे स्वच्छ रहने की प्रकृति देखी जाती है, किसी किसी पशु मे भी, किंतु इसका हेतु मल से घृणा नही, सौदर्य्य-प्रियता है, जिसका आधार शृंगार है। पशु पक्षियो मे, कई एक जलचर जन्तुओ मे शोक की मात्रा पाई जाती है, शोक करुण रस का स्थायीभाव है, अतएव इन सबो मे करुण रस का अभाव नही माना जा सकता, परंतु मनुष्य जाति मे यह रस जिस परिष्कृत और व्यापक रूप मे है, जैसा आस्वादन इस रस का वह करता है, अन्य नही। वीर और रौद्र रस के विषय मे भी यही बात कही जा सकती है, जिनके स्थायीभाव उत्साह और क्रोध है। चींटी भी दबने पर काटती है, और उत्साह की तो वह मूर्ति होती है, परंतु उनके क्रोध मे क्षमा को स्थान नही और न उनके उत्साह में परहित-परायणता है, अतएव इन दोनो रसो का आस्वादन भी जितना मनुष्य करता है, अन्य प्राणी नही, परन्तु प्रश्न यह है कि विशेषता लाभ करने पर भी क्या मानव करुण, रौद्र एवं वीर का उतना ही आस्वादन करता है, जितना शृंगार रस का? यदि नही तो अन्य प्राणियो का जीवन शृंगार-रस-सर्वस्व क्यो न होगा। हाँ, भय ही एक ऐसा रस है जिसका आस्वादन प्राणिमात्र को समान भाव से होता है। कहा भी है, 'आहारनिद्राभयमैथुन च सामान्यमेतत पशुभिर्नराणाम्' परन्तु जैसा सहचर शृंगार रस है, भय नहीं। भय कभी होता है, कभी नहीं। उसका विकराल मुख मडल सदा नही डराता रहता, परन्तु शृंगार रस मे सौदर्य्य का विकास कब नही लुभाता। यह बात समस्त प्राणियों के विषय मे कही जा सकती है।

जब इन बातो पर दृष्टि दी जाती है, तब यह स्वीकार करना पड़ता है कि वास्तव मे जितना व्यापक, उदात्त एव सर्वदेशी, शृगार रस का आस्वादन है, अन्य रसो का नहीं। यह भी उसकी प्रधानता का असाधारण प्रमाण है। फिर भी कुछ बाते ऐसी है, जिनपर और विचार होना आवश्यक है। साहित्यदर्पणकार के पितामह यह कहते है—

रसे सारश्चमत्कार. सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सवत्राप्यद्भुतोरस.॥
तस्मादद्भुतमेवाह कृती नारायणो रसम्॥

उत्तर रामचरित्रकार यह लिखते है—

एको रसः करुण निमित्तभेदाद्भिन्न. पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान्।
आवर्त्तबुद्बुदतरगमयान् विकारानम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥

इसी प्रकार कोई हास्य को प्रधानता देता है, और कोई शांत को। एक विद्वान् ने भक्ति को रस मान कर उसी को सब मे प्रधान बतलाया है।

सब रसो मे चमत्कार साररूप से प्रतीत होता है, इसलिये सवत्र अद्भुत रस पाया जाता है, इस सिद्धात पर दृष्टि रखकर पडितप्रवर नारायण एक अद्भुत रस को ही स्वीकार करते है। प्रत्येक रस जब पूर्ण विकसित अवस्था मे होता है, तभी उसकी रस सज्ञा सार्थक होती है। यदि करुण रस विकास-प्राप्त है, तो अवश्य शोक स्थायी भाव प्रबल होगा ऐसी दशा मे यदि चमत्कार के आधार विस्मय ने आकर उसको दबा दिया तो करुण का स्थान अद्भुत ने ग्रहण कर लिया, उसको रसत्व प्राप्त ही नहीं हुआ, फिर उसकी सत्ता कैसे लोप हुई। दूसरी बात यह कि यदि पूर्णता प्राप्त करुणरस मे चमत्कार का भी प्रवेश हो गया, तो विस्मय के आधार से अद्भुत रस उसका सहकारी मात्र होगा, इसलिये उसका स्थायी भाव, सचारी बन जावेगा, तब उसको रसत्व प्राप्त ही न होगा, फिर वह प्रधान कैसे बन बैठेगा। ऐसी दशा मे पडित जी का कथन युक्ति सगत नहीं। आशा है, यह बात समझ मे आ गई होगी। इस विषय में

श्रीमान् पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'काव्य मे रहस्यवाद' नामक ग्रंथ के पृष्ठ ६७ मे जो लिखा है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है, उससे भी मेरे कथन की पुष्टि होती है।

"पण्डितजी ( नारायण पण्डित ) ने इस बात पर ध्यान न दिया कि रस के भेद प्रस्तुत वस्तु या भाव के विचार से किये गये है, अप्रस्तुत या साधन के विचार से नहीं। शृगार रस की किसी उक्ति मे उसके शब्द-विन्यास आदि मे जो विचित्रता होगी, वह वर्णनप्रणाली की विचित्रता होगी, प्रस्तुत वस्तु या भाव की नहीं। अद्भुत रस के लिये स्वतः आलबन विचित्र अथवा आश्चर्यजनक होना चाहिये। शृगार का वर्णन कौतुकी कवि लोग कभी कभी वीर रस की सामग्री अलकार रूप मे रख किया करते है। क्या ऐसे स्थानो पर शृगार रस न मानकर वीर रस मानना चाहिये ?

करुण रस के विषय मे उत्तररामचरितकार ने जो लिखा है, उसके प्रतिपादन मे उन्होंने कोई युक्ति नही दी। वे केवल इतना ही कहते है।

'एक करुण रस ही निमित्त भेद से भिन्न होकर पृथक्-पृथक् परिणामो को ग्रहण करता है, जल के आवर्त्त, बुद्बुद, तरगादि जितने विकार है, वे समस्त सलिल ही होते है।'

करुण रस का स्थायी भाव शोक है, शोक उसी के विषय मे होता है, जिससे रति अर्थात् प्रीति है। प्रीति के अभाव मे शोक हृदय मे स्थान पा नही सकता। जब हम किसी प्राणी को कष्ट मे देखते है, अथवा उसको विपन्न पाते है, तो हमारे हृदय मे शोक का आविर्भाव इसलिये होता है, कि उसमे हमारी ममता होती है। ममता ही प्रेम, प्रीति अथवा स्नेह की जननी है। यही प्रीति जब द्रवणशीला होती है, तब दया कहलाती है, करुणा अधिकतर दयावलम्बिनी होती है, इसलिये यह मानना पड़ेगा कि प्रीति के अभाव मे करुणा का जन्म ही न होगा, फिर उसका विकार प्रीति कैसे होगी ? यदि कहा जावे कि प्राणी होने के

नाते प्राणियो मे स्वाभाविक आत्मीयता हो सकती है, किंतु अनेक अवसरों पर वेलि, लता, पुष्पादि की दशा पर क्यो करुणा होती है ? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य ने उन्हो मे से होकर मानव-जीवन लाभ किया है, अतएव उनके साथ भी उसकी स्वाभाविक ममता होती है। प्राणि-शास्त्र-विशारद आज इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार करते है। दूसरी बात यह है कि वनस्पतियो से मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता है, वे उसके चिर सहचर है, उनका प्रत्येक अंश उसके काम आता है। उनके पत्र पुष्प संसार सौंदर्य्य के सर्वस्व है, उनकी हरियाली लोकलोचन विभूति है, ऐसी दशा मे मनुष्य जाति का उनसे स्नेह होना स्वभावसिद्ध है।

फिर उनको म्लान और विपन्न देखकर उसका हृदय सकरुण हो तो क्या आश्चर्य ! रति से करुण रस की उत्पत्ति मै पहले भी सिद्ध कर चुका हूँ। इसलिये शृंगार रस की उत्पत्ति करुण रस से किसी प्रकार स्वीकृत नही हो सकती। अन्य रसो के बारे मे भी ऐसी बाते कही जा सकती है, परन्तु यह प्रस्तुत विषय नही है, इसलिये छोड़ता हूँ।

हास्य रस के विषय मे मै पहले लिख आया हूँ कि वह मनुष्य तक परिमित है, इसलिये न तो वह शृंगार रस के इतना व्यापक है और न उसके इतना आस्वादित होता है, उसमे सृजन शक्ति भी नही है, अतएव वह अपूर्ण और गौणभूत है। यदि शृंगार रस जीवन है तो वह है आनंद, यदि वह प्रसून है तो यह है विकास, जिससे दोनो मे आधार आधेय का संबंध पाया जाता है, आधेय से आधार का प्रधान होना स्पष्ट है। किसी-किसी का यह तर्क है कि शृंगार रस यौवन तक परिमित है, परंतु हास्य रस समान भाव से बाल्यावस्था, यौवन और वृद्धावस्था तीनो मे उदित रहता है, इसलिये शृंगार पर उसकी प्रधानता क्यों न मानी जावे। इस विचार मे एक देश-दर्शन है, क्योंकि शृंगार का एकदेशी रूप सामने रखा गया है। तर्ककर्त्ता ने सर्वदेशी शृंगार रस के व्यापक रूप पर दृष्टि डाली ही नही। यदि उसके

उद्दीपन विभावों को ही सामने रखा जाता तो ऐसी बात न कही जाती। क्या मलयानिल युवकों को ही मुग्ध बनाता है, बाल-वृद्ध को नहीं? क्या हँसता हुआ मयंक, रस बरसते हुए घन, पुष्प-संभार-विलसित वसंत, पपीहे की पिहक, कोकिल की काकली और मयूर का नर्त्तन, बालक और वृद्ध को आनंद निमग्न करने की सामग्री नहीं है? क्या ललनागण का सौंदर्य्य वृद्धजनों को विमुग्ध नहीं बनाता, क्या उनका मधुरालाप, उनका मनोहर कंठ और उनका स्वर्गीय गान; उनकी सूखी धमनियों में रक्त का संचार नहीं करता? क्या बालिकाओं के भोले-भाले रूप का बालकों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता? क्या वे उनकी ललित लीलाओं पर मोहित नहीं होते? फिर इस प्रकार की अनर्गल बातों का क्या अर्थ? किसी-किसी का यह कथन भी है कि जीवन सुख-दुःख पर ही अवलंबित है, दुःख का रोदन और सुख का हास संबल है। इसलिये जीवन का संबंध जितना करुण रस और हास्य से है, अन्य किसी रस से नहीं। किंतु शृंगार के अस्तित्व में आये बिना दुःख-सुख की कल्पना हो ही नहीं सकती; अग्निपुराण के आधार से यह बात प्रतिपादित हो चुकी है और किस प्रकार शृंगार से हास्य रस और करुण रस की उत्पत्ति होती है, यह भी बतलाया जा चुका है। फिर इस प्रकार की आपत्तियाँ कहाँ तक संगत है। मेरा विचार है जिस पहलू से विचार किया जावेगा, शृंगार पर हास्य को प्रधानता न मिल सकेगी।

शांत रस की कल्पना त्याग और विरागमय है। मनुष्य को छोड़-कर अन्य प्राणियों में इस भाव का अभाव है। मनुष्यों में भी इने-गिने लोगों में ही इसका यथार्थ विकाश देखा जाता है। अंतर्जगत से इसका जितना संबंध है, उतना बाह्य जगत से नहीं। संसार क्षेत्र में जितना कार्य्य शृंगार का है, शांत का नहीं। इसीलिये महात्मा भरत ने इसकी गणना रसों में नहीं की, उन्होंने आठ रस ही माने है। बाद के आचार्य्यों ने इसकी गणना रसों में की है, किंतु किसी ने उसको सर्व-

प्रधान रस बनाने की चेष्टा अबतक नही की, इसलिये मै भी इस बात को नही उठाना चाहता। अब रहे वीर, रौद्र, भयानक और बीभत्स। बीभत्स और भयानक 'यथा नामस्तथा गुण.' है, उनकी चर्चा ही क्या पहले मै यह लिख भी आया हू कि इनमे शृगार मे क्या विशेषता है इसलिये इनको छोड़ता हू। वीर और रौद्र रस प्रधान रसो मे है। वीर का स्थायी भाव उत्साह और रौद्र का क्रोध है। प्राणी मात्र के जीवन के लिये दोनो की बड़ी आवश्यकता है। क्रोध के अभाव मे आत्मसरक्षण नही हो सकता और उत्साह के अभाव मे जीवन यात्रा का यथार्थ निर्वाह नही हो पाता। वीर भाव जीवन को जाग्रत् और रौद्र भाव उसको सतर्क रखता है। ससार-कार्य्य-क्षेत्र उत्साह से हरा-भरा है और क्रोध से सुरक्षित। ससार की शांति वीरता का मुख देख जीती है और विश्व के दुर्जन, क्रोध की लाल आँखे देख कपित होते है। वीर के गले के विजय हार से वसुधरा सुगंधित है और रौद्र के रक्त रंजित तलवार से दानवी कदाचार कुठित। उत्साह हो चाहे क्रोध, वीर रस हो चाहे रौद्र रस, उनके जो सदेश अथवा लोकोपकारक भाव है, उनमे जो पवित्रता, उत्तमता, उज्ज्वलता और दर्शनीयता है वे सब शृंगार समर्पित विभूतियाँ है। शृगार द्वारा ही वे उन्हे प्राप्त हुई है, क्योकि 'यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वल दर्शनीय वा तच्छृगारेणोपमीयते।' ऐसी अवस्था मे शृगार ही उनका शृंगारक और उस हेतु का मूल है, जिसके लिये मंगलमय विश्व मे उनकी सृष्टि हुई। अतएव इन दोनो रसो को भी शृंगार से प्रधानता नही मिल सकती।

किसी-किसी ने वात्सल्य रस को दसवॉ रस माना है और कुछ लोगो ने भक्ति को रस मे परिगणित करने की चेष्टा की है। इतना ही नही, इनको सर्वप्रधान भी कहा गया है। वात्सल्य रस शीर्षक एक बहुत बड़ा लेख आगे आप लोगो का मिलेगा। मैन उसमे इन दोनो के रसत्व के विषय मे बहुत कुछ लिखा है, परतु इनको रसो मे स्थान नही दे

सका। कारण इसका यह है कि वत्सलता एवं भक्ति रति का ही एक रूप है। माँ का संतान विषयिणी रति वत्सलता है और भक्तो की ईश्वर विषयिणी रति भक्ति। इसलिये इनमे परस्पर ऐसी भिन्नता नहीं कि इनको अलग एक रस माना जावे। ज्ञात होता है, प्राचीन बड़े-बड़े आचार्यों ने भी यही विचार कर वत्सलता और भक्ति को अलग रस नहा माना। रति को व्यापकता कितनी है, मै भली-भाँति इसका प्रतिपादन कर चुका हूँ, ऐसी अवस्था मे भक्ति का अथवा वात्सल्य रस का उसमे अंतर्भाव होना असगत नही। जन साधारण अथवा मानव को प्रीति ही यथा काल व्यापक होकर ईश्वरीय प्रेम अथवा भक्ति मे परिणत होती है, यह भी एक अनुभूत सिद्धांत है। इससे भी भक्ति और रति की एकता ही निश्चित होती है, मात्रा मे भले ही कुछ अंतर हो। इस सिद्धांत पर उपनीत होने पर उस विवाद का निराकरण हो जाता है, जो वात्सल्य और भक्ति को अलग रस मानने मे उत्पन्न होता है। क्योंकि जब वे शृंगार के ही अंगभूत है तो फिर उनमे परस्पर प्रधान और अप्रधान होने का तर्क कैसा? एक प्रकार से और इस विषय को देखिये। देव विषयिणी रति को आचार्यों ने भाव माना है, इसलिये ईश्वर विषयक रति भी भाव है, पुत्र-प्रेम को भी भाव ही कहा गया है—काव्यप्रकाशकार कहते है—

"रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित । भावः प्रोक्त.
आदिशब्दान्मुनिगुरुनृपपुत्रादिविषया ॥"

काव्यप्रकाश के टीकाकार लिखते है—"अनुभावादिभिरपुष्टयाश्च न रसत्व किंतु भावत्वमेवेति भाव·।" अनुभावादि से जो अपुष्ट होते है उन को रसत्व नही प्राप्त होता, वे भाव ही रहते है। ऐसी दशा मे भाव से रस का स्थान ऊँचा हुआ। यदि देव एवं पुत्र रति की गणना भाव ही मे है, जैसा कि ऊपर के वाक्यो से सिद्ध होता है, तो भी शृंगार रस को वात्सल्य भाव और भक्ति ( देव रति ) पर प्रधानता ही मिलती है।

अब तक जो कुछ कहा गया उससे शृंगार रस की प्रधानता ही प्रतिपादित हुई, और यही इष्ट था।

## शृंगार रस का साहित्य

'सहितस्य भाव साहित्यम्' जिसमें सहित का भाव हो, उसको साहित्य कहते है। इस सहित की व्याख्या क्या है? उसे 'हिंदी शब्दसागर' के निम्नलिखित अवतरण में देखिये—

साहित्य—सज्ञा पु० ( संस्कृत ) (१) एकत्र होना, मिलना, मिलन। (२) वाक्य में पदों का एक प्रकार का संबंध जिसमें वे परस्पर अपेक्षित होते है और उनका एक ही क्रिया से अन्वय होता है। (३) किसी एक स्थान पर एकत्र किये हुए मिलित उपदेश, परामर्श या विचार आदि। लिपिबद्ध विचार या ज्ञान। (४) गद्य और पद्य सब प्रकार के उन ग्रंथों का समूह जिनमें सार्वजनीक मानव भाव बुद्धिमत्ता तथा व्यापकता से प्रकट किये गये हों।—पृ० ३५२६

प्रकृतिवाद में साहित्य शब्द का यह अर्थ लिखा है—

साहित्य—(सहित + य—भावे इत्यादि) सं० स्त्री० संसर्ग, मिलन। शब्द शास्त्र, काव्य शास्त्र, संबध विशेष, एकक्रियान्वयित्व।

शब्द-विवेककार कहते है—

परस्पर सापेक्षाणा तुल्यरूपाणा युगपदेकक्रियान्वयित्व साहित्यम्।

शब्द-शक्तिप्रकाशिकाकार कहते है—

तुल्यवदेकक्रियान्वयित्व बुद्धिविशेषविषयित्व वा साहित्यम्।

शब्दकल्पद्रुमकार कहते है—

मनुष्यकृत श्लोकमयग्रन्थविशेष. साहित्यम।

कवींद्र रवींद्र क्या कहते है, उसे भी सुनिये—

'साहित्य का विषय मानव हृदय एव मानव चरित्र है।

'मानवचरित्र ही नहीं। वस्तुतः वहि प्रकृति और मानवचरित्र

मनुष्य के हृदय मे अनुक्षण जो आकार धारण करता है, जो संगीत ध्वनित करता रहता है, भाषा रूप मे परिणत वह चरित्र तथा वह गान ही साहित्य कहलाता है।'
—साहित्य पृ० ५

ससार सौदर्य्यमय है, हमारी दृष्टि जिधर जाती है, उधर ही सौदर्य्य का विकाश दृष्टिगत होता है। आकाश के उज्ज्वल नक्षत्र यदि अंतस्तल मे अद्भुत भाव उत्पन्न करते है, हृदय को विमुग्ध रखते है, तो धरातल के कुसुम कदंब, हरे-भरे वृक्ष, ललित लतिकाएँ और तरह-तरह के दूसरे दृश्य मानसो को कम विमोहित नहीं बनाते। इतना ही नहीं, ललनाओ का लावण्य, बालको का लोकमोहन रूप, उनकी कलित ललित क्रीड़ाएँ, पक्षियो का सुंदर आकार प्रकार, उनका लोकोत्तरगान, नाना सुस्वरूप पशु वृंद का केलि-कलाप, अनेकानेक कीट पतंगो का अद्भुत चित्रण, उनके विविध बिहार, किसके मन नयन मे घर नहीं करते? सुंदर समय, ऋतुओ का मनोहर विकाश, सुसज्जित उद्यान, बाग-बगीचे और रमने, सैकड़ो हास-विलास के उपस्कर, मन के विकार और नाना मोहक भाव, हृदय का सौदर्य्य, मनोमुग्धकर आलाप किसको आनद मे निमग्न नही कर देते? इन सांसारिक सुदर से सुदर बाह्य एवं आंतरिक दृश्यो को देखकर लोग मोहित और आनंदित ही नही होते, उल्लसित भी होते है। उस दशा मे जो भाव हृदय मे उत्पन्न होते है, जो रस सोत की लहरे मानसो मे उठती है, आनंद उद्गार के स्वरूप मे बाहर निकलने का उद्योग करती है। यही उनका शाब्दिक रूप है। किसी विशेष सहृदय द्वारा वे जब पद्य रूप मे परिणत हो जाती है, कविता कहलाती है। गद्य मे भी वे लिखी जाती है, किंतु गद्य से उनका पद्य रूप विशेष मोहक होता है, क्योकि उसमे सगीत होता है। कवि-कर्म्म ही काव्य है और काव्य ही साहित्य। बाह्य जगत से अतर्जगत का कवि कर्म्म और साहित्य कम विमोहक और विलक्षण नहीं होता। इसीलिये उच्च कोटि का साहित्य वही माना जाता है, जिसमे दोनो ही का सुंदर

वर्णन और विश्लेषण हो। कवीद्र रवीद्र की उक्ति का मर्म, व हिंदी-शब्दसागर के कथन का निचोड़ यही है।

जब मै संस्कृत भाषा के साहित्य ग्रथो को उठाकर देखता हूॅ, महाभारत से महान और विशालकाय एवं वाल्मीकि रामायण से मधुर और सरस ग्रंथो को अवलोकन करता हूॅ, कविपुंगव कालिदासादि के काव्य-ग्रथों, महा विद्वान् मम्मट आदि के रस अलकारादि सबंधी रीति ग्रथो, पर दृष्टिपात करता हूॅ, पुराणो और आख्यान पुस्तको को पढ़ता हू, तो सब मे शृंगार रस की धारा प्रखर वेग से बहती मिलती है और सबो मे ही वह ओत-प्रोत पाया जाता है। कारण इसका यह है कि सांसारिक जीवन शृगार सर्वस्व है। सांसारिकता का आधार गार्हस्थ्य जीवन है, गार्हस्थ्य जीवन पुत्र-कलत्रावलंबित है, पुत्र-कलत्र मूर्तिमंत शृगार है, अतएव सासारिकता का सबल शृगार है। विश्व के जितने आहार-विहार उपादेय है, जितने हास-विलास वांछनीय है, जितने केलिकलाप कमनीय है, जितनी लीलाऍ लोक-प्रिय एवं ललित है, जितने आचार-विचार और व्यवहार प्रशंसनीय है, उनमे से अधिकांश शृगार रस के अंतर्गत है, इसीलिये उक्त समस्त ग्रथो मे उसका ही पूर्ण प्रसार देखा जाता है। कवीद्र रवीद्रनाथ एक स्थान पर कवि और महाकवि पर विचार करते हुए अपने प्राचीन साहित्य नामक ग्रथ ( पृ० १–२ ) मे यह लिखते है—

"काव्य को दो भागो मे बॉटा जा सकता है, किसी काव्य मे अकेले कवि की बाते होती है और किसी काव्य मे बृहत् सम्प्रदाय का इतिवृत्त। अकेले कवि की बाते कहने का यह भाव नही कि वह अन्य लोगो के लिये ज्ञेय नही। यदि ऐसा होता, तो उसे पागलपन कहा जाता। उसका यह अर्थ है कि कवि मे ऐसी क्षमता है कि जिसके भीतर से उसके सुख-दुःख, उसकी कल्पना और उसके जीवन की अभिज्ञता के सहारे,

विश्वमानव का चिरन्तन हृदयावेग और जीवन-संबंधी मर्म-कथा अपने-आप प्रकट हो उठती है।

'जैसे एक प्रकार के कवि है, वैसे ही दूसरे प्रकार के वे कवि है, जिनकी रचना के भीतर से समग्र देश, समग्र युग, अपने हृदय की अभिज्ञता को प्रकट करके उसको मानव जाति की चिरकालिक सामग्री बना देता है।

'इस दूसरे प्रकार के कवि को महाकवि कहा जाता है। समग्र देश और समग्र जातियो को सरस्वती इसका सहारा ग्रहण कर सकती है। ये लोग जो रचना करते है उनको किसी व्यक्ति विशेष की रचना नही कही जा सकती। ज्ञात होता है मानो वह किसी विशाल वृक्ष के समान देश के भूतल जठर से उत्पन्न होकर उसी देश को ही आश्रयच्छाया प्रदान करते है। शकुन्तला और कुमार-संभव मे विशेष भाव से कालिदास को निपुण लेखनी का परिचय मिलता है। किंतु रामायण और महाभारत के विषय मे यह ज्ञात होता है कि पुण्यसलिला भगवती भागीरथी और अचल हिमाचल के समान वे भारत की ही सम्पत्ति है—व्यास एवं वाल्मीकि उपलक्षण मात्र है।"

कविर रवींद्रनाथ ने जो कवि और महाकवि की विशेषता बतलाई है, उससे आपको उन लोगो का महत्त्व भलि-भॉति अवगत हो गया होगा, जो संस्कृत-साहित्य के कर्त्ता है। कवि होना ही दुस्तर है, महाकवि होना तो 'नाल्पतपसः फलम्' है। ऐसे वन्दनीय कवियो और महाकवियो की रचनाओ मे भी जो शृंगार रस का आधिक्य है, उसका क्या कारण ? जो पुण्यश्लोक है, आर्य आदर्श के स्तभ है, इस तमसाच्छन्न काल मे भी जो आलोक विकीर्ण कर हमको पथ-भ्रात नही होने देते, क्या उन्होने बहककर ऐसा किया है ? ऐसी कल्पना तो स्वप्न मे भी नही हो सकती। वास्तविक बात यह है कि शृंगार रस को प्रधानता, व्यापकता, उज्ज्वलता और दर्शनीयता ही उसको इस उच्च पद पर

आरूढ़ करती आई है। संस्कृत साहित्य ही नही, संसार के साहित्य को भी हाथ मे उठाकर यदि आप देखेगे तो उसमे भी शृगार रस इसी पद पर आरूढ मिलेगा। ऐसी अवस्था मे यदि हिदी-साहित्य मे शृंगार रस कुछ अधिक मात्रा मे है तो आश्चर्य्य क्या! जिस स्वाभाविकता सूत्र मे ससार की भाषाएँ बंधी हुई है, उसे वह छिन्न कैसे करता।

सब काल का आदर्श समान नही होता। आदर्श के अनुसार रुचि बदलती है और रुचि के अनुसार साहित्य मे भी परिवर्तन होता है। साहित्य अपने समय का दर्पण होता है, जिस काल मे उसकी रचना होती है, उस काल का अधिकांश चित्र उसमे यथातथ्य प्रतिबिंबित रहता है। किसी साहित्य की आलोचना करने के पहले, जिस काल का परिणाम वह साहित्य है, उसपर दृष्टि रखना आवश्यक है। एक काल मे भी विभिन्न विचार के लोग होते है, किंतु जो तत्व समाज द्वारा गृहीत हो जाता है, उस समय का आदर्श वही होता है। काल पाकर वह आदर्श उपयोगी न रहे, परतु अपने समय मे भी वह उपयोगी नही था, यह नही कहा जा सकता। विधवा-विवाह आर्य जाति मे कभी सम्मान की दृष्टि से नही देखा गया, विधवाओ के ब्रह्मचर्य्य पालन और आत्म-संयम की ही प्रशसा की गई है, और उनके त्याग का ही गुण-गान किया गया है। आज इस विचार की कुत्सा की जा रही है और विधवा-विवाह को ही उपकारक माना जा रहा है। विधवा-विवाह प्रचलित भी हो रहा है। किंतु जिस समय विधवा-विवाह को अनुचित ठहराया गया, उस समय वैसा करना ही समुचित नही था, यह नही कहा जा सकता। साहित्य प्राय: सत्पथ पर चलने की ही चेष्टा करता है, यह दूसरी बात है कि काल पाकर वह पथ अच्छा न समझा जावे। यह साधारण सिद्धात है, अपवाद की बात और है।

सस्कृत-साहित्य का एक काल ऐसा है, जिसमे साहित्य के प्रत्येक अग का सूक्ष्म विवेचन किया गया है और उसके विशेष अशो पर गहरी

दृष्टि डाली गई है। यह कार्य बड़े त्याग और परिश्रम से किया गया और उसमे इतनी सफलता प्राप्त की गई कि उसको देखकर आज भी पाश्चात्य विद्वान् चकित होते है। इस महान् उद्योग मे न तो स्वार्थ की गन्ध है, न वासनाओ की बास। उसमे समाज और देश की वरन् लोक की हितकामना ही निहित है, उसके द्वारा अपनी विद्या एव कला की भी चरमोन्नति की गई है। रस-सबधी गहन विचार भी ऐसा ही कार्य है। शृगार रस सब रसो मे प्रधानता रखता है, इसलिये उसके प्रत्येक अग पर साहित्य ग्रथो मे बड़ा सूक्ष्म विवेचन है। उसका नायिका विभेद-विभाग कला की दृष्टि से अपूर्व तो है ही, उपयोगिता भी उसमे कम नही है। साहित्य के जितने उद्देश मै ऊपर उद्धृत कर आया हूँ वे सब उसमे पाये जाते है। उसके कुछ अश असामयिक समझे जा सकते है, परतु वास्तव मे वे असामयिक है या नही, इसपर विचार करना होगा और विचार करते समय उस काल पर भी दृष्टि रखना होगा, जिस समय उनकी रचना हुई। इतना ही नही, उनको सामने रखकर वर्त्तमान प्रगति पर भी दृष्टि डालनी होगी और मिलान करके देखना होगा, कि वाछनीय कौन है। ऐसा मै आगे चलकर करूँगा, इस समय मै यह विचारूँगा कि सस्कृत-साहित्य मे नायिका-विभेद की कल्पना कब हुई, संस्कृत-साहित्यकारो ने उसको किस रूप मे ग्रहण किया और फिर वह कैसे पल्लवित हुआ ?

## संस्कृत-साहित्य और नायिका-भेद

समाज-नियमन सुगम नही। मनोवृत्तियाँ बड़ी प्रबल होती है, उनमे अतर्दृष्टि नही होती, अथवा वे आवरित होती है। अपना स्वार्थ उनको जितना प्यारा होता है, परमार्थ नही। उनकी उच्छृङ्खलता अन्यो की परतत्रता अथवा स्वतत्रता पर दृष्टिपात नही करती। उनकी कामुकता इतनी अधी होती है कि दूसरो की मानमर्यादा को देखती ही नही। फिर समाज कैसे चले ? यदि सब मनमानी ही करता रहे, तो समाज

मे नित्य विप्लव ही होता रहेगा, शांति रहेगी ही नही, फिर सुव्यवस्था कैसे होगी ? यदि सुव्यवस्था न होगी तो समस्त कार्यकलाप विशृङ्खल हो जावेगे, जिसका परिणाम समाज और देश का विनाश होगा। इसी लिये देशकालज्ञ विबुधो ने ऐसे नियम बना रखे है, या ऐसे नियम यथाकाल बनाते रहते है, जिनके पालन से सर्व देश सुरक्षित रहता है और समाज अथवा मानव समूह का उन्नति-स्रोत बंद नही होता। नियम बनाना उतना कठिन नही, जितना उसका पालन करना। भिन्न-भिन्न रुचि और नाना प्रकार की प्रकृति होने के कारण जब तक नियमो मे सामञ्जस्य नही होता, तब तक उनका यथारीति न तो पालन होता है, न समाज सुव्यवस्था सूत्र मे बंध सकता है। सामञ्जस्य स्थापन के लिये रुचि और प्रकृति का यथार्थ ज्ञान आवश्यक है। समाज दो भागो मे विभक्त है, स्त्री और पुरुप उसके विभाग है। स्त्री और पुरुपो के स्वभाव मे स्वाभाविक बहुत बड़ी बडी भिन्नताएँ है। इसलिये समाज की सुव्यवस्था के लिये एक को दूसरे की रुचि और प्रकृति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इसी प्रकार पुरुष का पुरुप के और स्त्री का स्त्री के भावो एव विचारो से अभिज्ञ होना वांछनीय है। जहाँ प्रकृति नही मिलती, स्वभाव का पूरा परिज्ञान नहीं होता, वहाँ पद-पद पर पतन होता है, और सफलता दूर भागती है। किंतु जहाँ मनोविज्ञान पर दृष्टि रखकर कार्य सचालन किया जाता है, वहाँ स्खलन कदाचित ही होता है, क्योकि रुचि देखकर और स्वभाव पहचानकर कार्यक्षेत्र मे अवतीर्ण होने मे असफलता प्राय सामने आती ही नही। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये अनेक साधनो की सृष्टि हुई है। सैकड़ो ग्रथ लिखे गये है, बहुत-सी कवितायें रची गई है, और नाना प्रकार की शिक्षाओं का आयोजन नाना सूत्रो से किया गया है। नाट्य-शास्त्र की रचना भी इसी उद्देश्य से हुई है, क्योकि नाटको के द्वारा मानसिक भावो का प्रत्यक्ष दर्शन कराकर जितना मानवी प्रकृति एव रुचि का परिज्ञान कराया जा

सकता है, अन्य साधनो द्वारा नही। नाटको से मनोरंजन तो होता ही है, मानवी विचारो का सूक्ष्म-से सूक्ष्म अश भी सामने आ जाता है। मेरा विचार है सबसे पहले ससार मे इस बात को महामुनि भरत ने सोचा, क्योकि उनका नाट्य-शास्त्र शायद इस विषय का पहला ग्रथ है। उन्होने अपने ग्रथ मे नाटक-सबधी सम्पूर्ण बातो का पूर्ण विवेचन कर दिखाया है, और उससे संबंध रखनेवाले प्रत्येक विपय का विशद वर्णन भी किया है। रस की कल्पना उन्होने ही की है, और अनेक मानसिक सूक्ष्म भावो का विश्लेषण भी उन्हो की लेखनी का कौशल है। उन्होंने स्थायी भाव और सचारी भावो का वर्णन तो किया ही है, नायक-नायिका सबंधी अनेक भावो और विचारो की सुंदर व्याख्या भी की है, उद्देश्य केवल मनोभावो का यथार्थ पाठ पढ़ाकर समाज का मगल साधन ही है। नाट्य-शास्त्र के कुछ अध्यायो मे उन्होने जिस प्रकार नायक-नायिकाओ के भेद बतलाकर उनके सूक्ष्म मानसिक भावो का चित्रण किया है, वह दर्शनीय है। उसमे जो कुछ वर्णन किया गया है, मै समझता हूँ वह मनोविज्ञान विपयक बहुमूल्य सामग्री है। मेरा विचार है, रस और नायिका विभेद आदि के पहले आचार्य्य वे ही है। अग्निपुराण मे उनके विपय मे यह लिखा है—'भरतेन प्रणीतत्वाद्भारतीरीति-उच्यते' इससे ज्ञात होता है कि वे उसी काल मे हुए जिस काल मे व्याकरण के आचार्य्य गौतम आदि हुए है। उस काल मे जिन विपयो का विवेचन हुआ है, वैज्ञानिक रीति से और बड़ी ही गंभीरता से हुआ है, इसीलिये नाट्य-शास्त्र का प्रत्येक वर्णन भी इसी रंग मे डूबा हुआ है।

नाट्य-शास्त्र के छठवे अध्याय मे रस का और सातव अध्याय मे भावो का वर्णन है। इन दोनो मे आठ रसो और विभाव, अनुभाव एवं सचारी भावो का बडा सरस और व्यापक निरूपण है। वे लिखते है—

"तत्राष्टौ भाव स्थायिनः। त्रयस्त्रिशद्व्यभिचारिण.। अष्टौ सात्त्विका.।

'एवमेते काव्यरसाभिव्यक्तिहेतव एकोनपचाशद्भावाः प्रत्यवगतव्या.। एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यते।''

आठ स्थायी भाव, तैंतीस व्यभिचारी भाव और आठ सात्विक भाव मिलकर ४९ भाव होते है; काव्य में रस अभिव्यक्ति के हेतु वे ही होते है। इन्ही से सामान्य गुण योग द्वारा रस बनते है।

यह लिखकर उन्होंने सब का पूर्ण वर्णन किया है और बड़े विस्तार से बतलाया है कि अभिनय के समय उनको कैसे काम मे लाना चाहिये। यद्यपि नाट्य-शास्त्र मे इनका वर्णन अभिनय के लिये ही हुआ है, किंतु पीछे इनका उपयोग श्रव्य-काव्य मे भी आवश्यकता के अनुसार किया गया। नायिका-भेद के ग्रंथो मे नायिका तीन प्रकार की मानी गई है, यह कल्पना भी नाट्य-शास्त्र से ही ली गई है—उसके २२वे अध्याय मे लिखा गया है—

सर्वासामेव नारीणा त्रिविधा प्रकृति. स्मृता।
उत्तमा मध्यमा चैव तृतीया चाधमा स्मृता॥

प्रकृति के विचार से स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती है—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

इसी अध्याय मे एक दूसरे स्थान पर आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है, वे भी इसी रूप मे यथातथ्य नायिका-भेद के ग्रंथो मे ले ली गई है—वे ये है—

तत्र वासकसज्जा वा विरहोत्कंठितापि वा।
खंडिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका॥
स्वाधीनपतिका वापि कलहांतरितापि वा।
तथाभिसारिका चैव इत्यष्टौ नायिकाः स्मृता.॥

इसी अध्याय मे काम की दश दशाओं का उल्लेख यों किया गया है—

प्रथमे त्वभिलाषः स्याद्द्वितीये चिंतनं वेभत्।
अनुस्मृतिस्तृतीये तु चतुर्थे गुणकीर्तनम्॥

उद्वेग. पचमे प्रोक्तो विलाप षष्ठ उच्यते ।
उन्माद सप्तमे ज्ञेयो भवेद् व्याधिस्तथाष्टमे ।।
नवमे जड़ता चैव मरण दशमे भवेत् ।

बाइसवे अध्याय मे हावो का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

लीलाविलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंचितम् ।
मोट्टायित कुट्टमित बिब्बोको ललितं तथा ।।
विविहृतश्चेति सयुक्ता दश स्त्रीणा स्वभावजा· ।

इसी प्रकार से किसी न किसी रूप मे नायिका भेद की समस्त सामग्री इस ग्रंथ मे मिल जाती है । नायक, नायिका, सखा, सखी और दूतियो के भेद, उपभेद और अवस्थाओ का इतना विशद वर्णन इस ग्रथ मे किया गया है कि श्रव्य-काव्य ग्रंथो मे उनका उल्लेख तक नही मिलता । हॉ, छॉटकर कुछ नायक, नायिका, सखा, सखी एव दूतियो के भेद-उपभेद को उनमे स्थान मिला है, यत्र-तत्र कुछ विशेष बाते भी लिखी गई है । कहने का प्रयोजन यह कि नायिका भेद का उद्गम स्थान नाट्य-शास्त्र ही है । जो नाट्य-शास्त्र लिखता है 'यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीय वा तच्छृगारेणोपमायते' वह नायिका भेद को कभी ग्रहण न करता, जो उसमे अभव्य भावना होती । वास्तव मे उसने लोकहित दृष्टि ही से उसका निरूपण किया है और उसको लिखकर साहित्य के उस अंग की पुष्टि की है, जिसके अभाव मे उसका शरीर पूर्ण सशक्त न बन सकता ।

नायिका भेद का कुछ वर्णन अग्निपुराण मे भी है, परंतु साहित्य-दर्पण मे उसका पूर्ण विकाश देखा जाता है । मै समझता हू आजकल जिस प्रणाली से नायिका विभेद लिखा जाता है, उसके आदि प्रवर्त्तक साहित्यदर्पणकार ही है । रसमजरी मे साहित्यदर्पण की ही छाया दृष्टि-गत होती है । यह ग्रंथ ईसवी सोलहवी शताब्दी का है और केवल नायिका भेद पर लिखा गया है । ग्रथ अच्छा है आधुनिक प्रणाली का आदर्श है । उसमे साहित्यदर्पण से कही-कही कुछ भिन्नता है, पर नाम

मात्र को। सभव है सस्कृत मे नायिका भेद के और ग्रथ भी हो, किंतु वे मेरे देखने मे नही आये परतु अधिकांश-काव्य ग्रथो मे ऐसे वाक्य यत्र-तत्र मिल जाते है, जिससे पाया जाता है कि उनके रचयिता नायिका भेद से परिचित अवश्य है और उसके प्रेमी भी है, चाहे उनकी स्वतत्र रचना नायिका भेद पर भले ही न हो। गीतगोविद इसका प्रमाण है, जिसके पॉचवे सर्ग मे अभिसारिका, छठे मे वासकसज्जा, सातवे मे विप्रलब्धा, आठवे मे खडिता, नवे मे कलहातरिता और दसवे मे मानिनी का वर्णन है। ऐसे और ग्रंथ भी बतलाये जा सकते है। कहने का प्रयोजन यह कि सस्कृत साहित्य के बड़े-बडे आचार्यो और विद्वानो द्वारा भी नायिका विभेद उपेक्षित नही हुआ और न उसकी रचना शंका की दृष्टि से देखी गई। यदि उसमे कुछ तत्व और आकर्षण न होता—उसमे कुछ उपयोगिता न होती तो ऐसा कदापि न होता।

ससार के साहित्य को उठाकर देखिये, उसमे भी यह विषय भरा पड़ा है। सस्कृत के विद्वानो के समान उन्होने इस विषय का कोई विभाग नही बनाया और न उनको नियमबद्ध कर उन पर विवेचन किया, फिर भी उनकी रचनाओ मे वे विचार और भाव पाये जाते है, जो कि हमारे नायिका विभेद मे मिलते है। संसार के मनुष्य मात्र के भाव दाम्पत्य-धर्म के विषय मे अधिकांश एक है, क्योकि प्रकृति प्राय मिलती है। इसलिये विचारो का एक होना स्वाभाविक है। मनुष्य मात्र का हृदय एक उपादान से बना है, इसलिये उनकी स्वाभाविक चिताए समान होती है। सुख-दु ख के अनुभव का भाव ससार भर का एक ढग मे ढला देखा जायगा, यदि उसमे कृत्रिमता आकर शामिल न हो गई हो। मै अपने कथन का प्रमाण दूगा।

नायिका किसे कहते है, जो लोक-सुंदरी हो, जिसका रूप देखकर आँखे अनुभव करे कि सौदर्य्य स्वयं रूप धारण करके सामने आ गया। संस्कृत-हिदी-साहित्य मे नायिकाओ के रूप का वर्णन आप लोगो ने

बार-बार पढ़ा है। एक अँगरेज विद्वान् टी० लाज की नायिका को देखिये—

With orient pearl, with ruby red,
With marble white, with sapphire blue
Her body every way is fed,
Yet soft in touch and sweet in view;
Heigh ho, fair Rosaline!
Nature herself her shape admires,
The Gods are wounded in her sight;
And Love forsakes his heavenly fires,
And at her eyes his brand doth light:
Heigh ho, would she were mine!

उसकी देह कही मोती, कही लाल मणि, कहीं श्वेत संगमर्मर और कही नीलम से पुष्ट हुई है। परंतु स्पर्श मे कितनी कोमलता है, दर्शन मे कितनी मधुरता है! स्वयं प्रकृति उसके रूप की प्रशंसा करती है। देवता तक उसे देख कर मुग्ध हो जाते है। कामदेव तो स्वर्ग को छोड़ कर उसी के नेत्रों से अपना शर तीक्ष्ण करते है। क्या वह मेरी नहीं होगी!

हमारी स्वकीया नायिका का क्या रूप है, उससे साहित्य-सेवी परिचित है। उसमे पति-दोष देखने की शक्ति नहीं होती, वह मूर्तिमती प्रेम होती है और सच्ची सहधर्मिणी बनकर रहती है—देखिये जी० डार्ली की नायिका वही है कि दूसरी?

Give me, instead of Beauty's breast,
A tender heart, a loyal mind,
Which with temptation I could trust,
Yet never linked with error find,—
One in whose gentle bosom I
Could pour my secret heart of woes,

Like the care—burthen'd honey fly
That hides his murmurs in the rose
My earthly comforter ! whose love,
So Indefeasible might be
That, when my spirit won above
Hers could not stay for sympathy.

मै सुंदरता की मूर्ति नही चाहता हूँ। मै चाहता हूँ कि ऐसा कोमल हृदय हो, ऐसी दृढ़ अविचल बुद्धि हो, जो स्पृहणीय हो। लोभ मे भी मै जिस पर विश्वास कर सकूँ, परंतु दोषनिरूपण से जिसका संबंध न हो। जिससे मै अपने गुप्त दुःखो की बाते कह सकूं और जिससे मेरी समस्त चिता और सारा संताप दूर हो जावे।

ऐसी ही नायिका यह कह सकती है—

Were I as high as heaven above the plain,
And you, my Love, as humble and as low.
As are the deepest bottoms of the main,
Whereso'er you were, with you my love should go.

यदि मै मैदान के ऊपर के आकाश की तरह ऊँची होती और तुम, मेरे प्यारे, सब से गम्भीर समुद्र-तल की तरह नीचे पड़े होते, तो जहाँ-जहाँ तुम रहते, तुम्हारे संग वही-वही मेरा प्रेम रहता।

मुग्धाधीरा वह है जो आगत अपराधी पति का भी सम्मान करे, जिसके रूखेपन मे भी स्निग्धता हो। क्या कालेरिज की निम्नलिखित नायिका ऐसी ही नही है ?

But now her looks are coy and cold,
To mine they ne'er reply,
And yet I cease not to behold,
The love-light in her eye:

वह देखती तो मेरी ओर इस ढंग से है, जिससे यह प्रकट हो कि उसमे प्रेम नही है, परंतु उसके नेत्रो मे प्रेम की ज्योति है।

अधमा वह है जो प्रेम करने पर भी प्रियतम से रुष्ट रहती है। एक पंक्तियो मे से अधमा का भाव फूटा पड़ता है—

Why so pale and wan, fond lover?
Prythee, why so pale?
Will, when looking well can't move her,
Looking ill prevail?
If of herself she will not love,
Nothing can make her.
The Devil take her!

तुम इतने पीले क्यो पड़ गये? जब तुम अच्छे रहे, तब तो उसपर तुम्हारा कुछ भी प्रभाव नही पड़ा—वह रूठी ही रही। अब इतना दु:ख करने से लाभ क्या? अगर वह स्वयं प्रेम नही कर सकती तो किसी तरह मनाने से वह राज़ी न होगी

एक व्यथिता परकीया का उदाहरण देखिये—

Wi' lightsome heart I pu'd a rose,
Frae aff its thorny tree,
And my fause luver staw the rose,
But left the thorn wi' me,

प्रोषितपतिका—जो पति के प्रवास-दुःख से दुःखिता हो उसे प्रोषितपतिका कहते है—

Come ye, yet once again, and set your foot by mine,
Whose woeful plight and sorrows great no tongue may well define.

My love and lord, alas! in whom consists my wealth,
Hath fortune sent to pass the seas, in hazard of his health.

whom I was wont t' embrace with well contended mind
Is now amid foe foaming floods at pleasure of the wind.

तुम फिर एक बार आओ और मेरे साथ रहो तुम्हारी दुःखमयी दशा और बड़े-बड़े कष्टों का वर्णन कोई जिह्वा अच्छी तरह नहीं कर सकती। मेरे प्यारे और मेरे प्रभु, मेरे जीवन-धन तुम्ही हो, स्वास्थ्य के लिये आपत्तिजनक होते हुए भी भाग्य ने तुमको समुद्र पार भेज दिया है। तुमको स्पर्श करने से मुझे संतोष होता था। हा! अब तुम समुद्र की भीषण लहरों के बीच पड़े होगे।

वासकसज्जा—जो शृंगार से सजकर अपने स्थान पर बैठी हुई पति की प्रतीक्षा करती है—

O some where, meek unconscious dove,
That sittest ranging golden hair,
And glad to find thyself so fair
Poor child, that waitest for thy love.

× × × × ×

And thinking this will please him best,
She takes a riband or a rose,

अपने बालों को संवारती हुई वह अपने प्रियतम की प्रतिक्षा में बैठी है। यह सोचकर कि वह इससे अधिक खुश होगा, वह कभी बालों में रिबन लगाती है, कभी गुलाब।

कुलहांतरिता—जो प्रिय से कलह करके पश्चाताप करती है उसे कलहांतरिता कहते है—

I loved him not; and yet, now he is gone,

I feel I am alone.

I checked him while he spoke, yet could he speak,

Alas ! I would not check.

मै उसे चाहती नही थी, पर अब वह चला गया है, तो मुझे बिलकुल सूना लगता है। जब वह बोलता था तब तो मैने उसे रोक दिया। परंतु अब यदि वह आ जाय और बोले, तो मै उसे नही मना करूँगी।

फारसी और अरबी मे भी ऐसे विचारो की कमी नहीं है, परंतु उनके पद्यो को उठाकर मै इस लेख को बढ़ाना नही चाहता। उर्दू मे उन दोनो भाषाओ के ही विचार भरे पड़े है, इसलिये कुछ उर्दू के ही इस प्रकार के पद्य आप लोगो के सामने रखूँगा। यह स्पष्ट है कि उक्त भाषाओ मे माशूक आम तौर से अमरद होता है, इसलिये उसकी शायरी मे स्त्रियो के भावो का प्रदर्शन बहुत कम है। फिर भी इस प्रकार के विचारो का अभाव नही है। मसनवियों में और यों भी ऐसे विचार मिल जाते है। उन्हीं मे से कुछ नीचे लिखे जाते है। संस्कृत मे मुझको नखशिख वर्णन कम मिला। मेरा विचार है कि हिंदी मे यह प्रणाली फारसी और उर्दू से आई है। हिंदी मे पहले-पहल नख-शिख-वर्णन 'पद्मावत' मे मिलता है, जो ग्रंथ मलिक मुहम्मद जायसी का लिखा है। यह निश्चित है कि उन्होने फारसी के 'सरापा' वर्णन का ही अनुकरण अपने ग्रंथ मे किया है। इसलिये इस विषय मे फारसी उर्दूवाले तो हिंदीवालों से भी आगे है। फिर भी उनके इस तरह के कुछ विचारो को देखिये। एक विरहिणी अथवा प्रोषितपतिका का वर्णन गुलज़ार नसीम मे यों किया गया है—

रातो को जो गिनती थी सितारे । दिन गिनने लगी खुशी के मारे ॥
करती थी जो भूख प्यास बस मे । आँसू पीती थी खा के कसमे ॥
सूरत में खयाल रह गई वह । हैयत मे मिसाल रह गई वह ॥—नसीम

एक परकीया की बाते सुनिये—

उड गई यो वफा जमाने से । कभी गोया किसी मे थी ही नही ॥
गुल है जखमी बहार के हाथो । दिल है सदचाक यार के हाथो ॥
दम बदम कता होती जाती है । उम्र लेलो निहार के हाथो ॥
इक शिगूफा उठे है रोज नया । इस दिले दागेदार के हाथों ॥—हसन

एक मुग्धा का चित्र देखिये—

कुछ जवानी है अभी कुछ है लड़कपन उनका ।
या दगाबाजों के कबजे मे है जोबन उनका ॥ —असीर

× × ×

कमसिनी है तो निराली है जिदे भी उनकी ।
इस पै मचले है कि हम दर्दे जिगर देखेंगे ॥ —फसाहत

एक रूपवती नायिका के सौदर्य का वर्णन यो किया गया है—
आया जो वह गुल चमन मे । फूले न समाये पैरहन मे ॥

दो पद्य विच्छित्तिहाव के देखिये—जहॉ साधारण वेप-रचना से शोभा बढ़ती है—वहॉ विच्छित्ति हाव होता है—

है जवानी खुद जवानी का सिंगार । सादगी गहना है इस सिन के लिये ।
शोखी बेबाकी मुकतिजा सिन का । नाक मे फक्त सीक का तिनका ॥अमीर

एक धृष्ट नायक की बाते सुनिये—देखिये आप कितने बेदहल है—

दिल मुझसे लिया है तो जरा बोलिये हँसिये ।
चुटकी मे मसलने के लिये दिल नहीं होता ॥
ऐ चश्मेयार देख तगाफुल से बाज आ ।
दिल टूट जायगा किसी उम्मेदवार का ॥ —अमीर

नायिका भेद के मूल मे जो सत्य है, वास्तविक बात यह है कि वह सार्वभौम एवं सर्वकालिक है। उसके भीतर वे स्वाभाविक मानवी भाव सदा मौजूद रहते है, जो व्यापक और सर्वदेशी है, इसलिये उसकी अभिव्यक्ति विश्व भर मे अज्ञात रूप से यथाकाल और यथावसर होती रहती है। वह मंगलमयी प्रकृति का वह गुप्त विधान है कि जिससे संसार संस्कृति सूत्र स्वतः परिचालित होता रहता है। मेरा विचार है, नाट्य-शास्त्रकार ने उसको वैज्ञानिक रीति से विधिबद्ध करके साहित्य की शोभा ही नही बढ़ाई है, लोकहित साधन का भी आयोजन किया है।

## साहित्य और कला

कुछ लोग साहित्य को कला नहीं मानते किंतु कुछ लोग उसको भी कला कहते है। महाराज भर्तृहरी का यह श्लोक कि "साहित्यसगीतकला-विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीन." यह बतलाता है, कि साहित्य कला नही है, क्योकि 'कला' का प्रयोग जिस प्रकार संगीत के साथ है, साहित्य के साथ नही, परंतु इसका उत्तर यह कहकर दिया जाता है, कि 'सङ्गीतमपि साहित्यम्'। चतुर्दश विद्या मे साहित्य को जिस प्रकार स्थान नही मिला है, उसी प्रकार चौसठ कला मे भी नही, हॉ, समस्यापूर्ति को कला माना गया है। यदि समस्यापूर्ति कला है तो कविता भी उपलक्षण से कला मानी जा सकती है, क्योकि उसके विषय मे यह स्पष्ट कही नहीं लिखा गया है कि वह कला नहीं है। दूसरी बात यह कि आजकल के विद्वानो की यह स्पष्ट सम्मति है कि कविता ललितकला है—बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् द्विजेंद्रलाल राय लिखते है—

"नियम-बद्ध होने के कारण काव्य और नाटक सुकुमार कला कहलाते है।"—कालिदास और भवभूति पृ० ८२।

पाश्चात्य विद्वान् उसको खुल्लम खुल्ला कला कहते है। चेम्बर्स कहता है—

"Poetry is the art of expressing in melodious words

the thoughts which are the creations of feeling and imagination."

"मधुर शब्दो में कल्पना और भाव-प्रसूत विचारो को प्रकट करने की कला को कविता कहते है"।

मेकाले का यह वाक्य है—

"By poetry, we mean the art of employing words in such a manner as to produce an illusion on imagination."

"शब्दो के प्रयोग की ऐसी कला को कविता कहते है, जिससे उसकी कल्पना मे चमत्कार का अविर्भाव होता है"।

आक्सफोर्ड कनसाइज् डिक्शनरी मे Poetry का अर्थ यह लिखा है।

'Poetry'—"Art, work of the poet."

'कला' कवि का किया हुआ कर्म, ( कविता )।

अतएव काव्य अथवा कविता का कला होना सिद्ध है, इस सूत्र से साहित्य को भी कला कह सकते है। किंतु इस विषय मे विशेष तर्क की आवश्यकता नहीं, क्योकि मेरा विषय काव्य और कविता ही है और उसका 'कला' होना सिद्ध है। अतएव अब मैं प्रकृत विषय की ओर प्रवृत्त होता हूँ। नायिका विभेद अधिकांश काव्य अथवा कविता रूप मे ही है, अतएव मै देखना चाहता हूँ कि कला के रूप में वह कहाँ तक संगत है। पहले काव्य और कविता के विषय में आचार्य्यों की सम्मति देखिये—

अग्निपुराणकार यह कहते है—

'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुटदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम्॥

जिसके वाक्य संक्षिप्त, जिसकी पदावली इष्टार्थ सम्पन्न हो, जिसमें सुंदर अलंकार हों, जो गुणयुक्त और दोषवर्जित हो वह काव्य कहलाता है—

'अदोषौ सगुणौ सालंकारौ शब्दार्थौ काव्यम्'।—वामन

जो दोषविहीन, गुणयुक्त और अलंकार सहित शब्दार्थ है, वे काव्य कहलाते है।

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।—पडितराज

रमणीय अर्थ प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा जाता है।

रसात्मकं वाक्यं काव्यम् ।—साहित्यदर्पणकार

रसात्मक वाक्य को काव्य कहते है—

अँगरेज़ कवि ले हट लिखते है—

Poetry is the best words in their best order"

'जिसमे सर्वोत्तम शब्द सर्वोत्तम क्रम से स्थापित हो, वही कविता है।'

"He is the best whose verse exhibits the greatest amount of strength, sweetness, unsuperfluousness, variety, straightforwardness and oneness"

'सर्वोत्तम कवि वही है, जिसके पद्यो मे सामर्थ्य, माधुर्य, रोचकता, सहज प्रवाह और भाव की सामञ्जस्यपूर्ण एकता हो।'

शेली का यह कथन है—

"Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds.

'कविता सर्वश्रेष्ठ और दृढ़तम मस्तिष्कों के श्रेष्ठ और सुखमय अवसरो की रचनाओं का समूह है।'

ड्राइडेन की यह सम्मति है—

"Poetry is articulate music."

'कविता अर्थपूर्ण संगीत है।'

इन उद्धरणों का निचोड़ यही है कि जिसका शब्द-विन्यास सर्वोत्तम हो, जिसमे माधुर्य, रोचकता और रस प्रवाह हो, मधुर भावमयी कल्पना हो, अर्थपूर्ण संगीत हो; जिसकी शब्द-योजना में चमत्कार हो,

रमणीयता हो, वही कविता अथवा काव्य है ।। कवि कर्म्म करनेवाले यह भली-भाँति जानते है कि ऐसी रचनाएँ श्रेष्ठ और सुखमय अवसरो पर ही हो सकती है और वह भी उन मस्तिष्को से जो सर्वश्रेष्ठ और दृढ़तम हो। क्या ये सिद्धात कला की ओर ही अंगुलिनिर्देश नही करते ? क्या इन वाक्यो के पठन से इस बात की पुष्टि नहीं होती कि कविता वास्तव मे एक कला है ? क्या कला की जाँच कला की दृष्टि से ही न होनी चाहिये ?

वास्तविक बात यह है कि कला की इयत्ता कला मे ही परिमित होती है, कला की सफलता और पूर्णता कला की ही निर्दोषता पर निर्भर है। विकलाग कला, कला हो सकती है, किंतु वह निर्दोष नहीं कही जा सकती। इसलिये कला की महत्ता कला की सर्वांगीण पूर्ति पर ही अवलंबित है। यदि किसी चित्रकार का बनाया कोई नग्न चित्र हस्तगत हो तो, हमको नग्नता चित्रण-चातुरी पर ही दृष्टि डालनी होगी, उसकी सर्वांगीण पूर्ति देखकर ही यह मीमांसा करनी पड़ेगी कि चित्रकार चित्रण-कला मे पारगत है या नहीं। उसमे अश्लीलता हो, अभव्यता हो, आदर्शनीयता हो, ऐसे स्थान हो जिनको सलज्ज ऑखे न देख सके, किंतु उन्हींसे उनकी शोभा है, वे ही उस चित्र की पूर्णता के साधन है। वे जितना ही पूर्ण होगे, जितनी ही स्पष्टता के साथ दिखलाये गये होगे, उतने ही चित्रकार के कौशल और उसकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के प्रदर्शक होगे। चित्रकार के चित्रण-कला की पराकाष्ठा के लिये इतना ही पर्याप्त है। उपयोगितावाद उसके अंतर्भूत नहीं, अतएव चित्र की परीक्षा के समय उस पर दृष्टि डालने की भी आवश्यकता नहीं। चित्रकार चित्र को ठीक-ठीक चित्रण करके ही सिद्धि लाभ करता है और यही पर उसके कार्य की समाप्ति हो जाती है। परीक्षक भी उसकी कृति की परीक्षा यही तक कर सकता है, और उसीके आधार से उसको योग्यता की सनद दे सकता है, आगे बढ़ने का उसको अधिकार नही।

मै जब कला की कसौटी पर नायिका भेद की कविता को कसता

हूॅ, तो उसको बावन तोले पाव रत्ती ठीक पाता हूॅ। ऊपर जितने लक्षण कविता के बतला आया हूॅ, वे सब उसमे पाये जाते है, इस विषय मे उसकी रचनाएँ ससार की किसी समुन्नत भाषा का सामना कर सकती है। इस विषय के प्रसिद्ध संस्कृत अथवा हिंदी के कवियो ने जब जिस भाव का चित्रण किया है, उस समय उस भाव का उत्तम-से-उत्तम चित्र खीचकर सामने रख दिया है। आप चाहे जिस चित्र को उठा लीजिये, और कला के विचार से उस पर दृष्टि डालिये तो आपको आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ेगा। भावुकता कविता की रीढ़ है। नायिका भेद की कविताओ मे वह कूट-कूट कर भरी है। यदि मनोभावो का स्वाभाविक विकास देखना चाहे, तो उसमे देखे। इस विषय के कवि का रसपूर्ण हृदयाबुधि जब उत्ताल तरंग माला संकुल होता है, उस समय कैसे-कैसे भाव-मौक्तिक सहृदयो पर उत्सर्ग कर जाता है, इसका अनुभव उसी को होता है, जो कला की दृष्टि से उन मोतियो की परख करता है। जिनकी दृष्टि ऐसी नहीं, वे उन्हे भले ही पोत या और कुछ समझ लेवे।

आजकल एक विचार-धारा बड़े वेग से बह रही है, पहले वह कितनी ही अतर्मुखी क्यो न रही हो, परतु आज वह बहिर्मुखी है। जिनको कवि-कर्म्म का दावा है, जो अपनी विजयिनी कविता को जन साधारण के श्रद्धा पुष्प माल्य द्वारा अर्चित देखना चाहते है, वे प्राय कहा करते है, कविता हृदय की वस्तु है। भावोद्रेक होने पर जो कविता स्रोत हृदय सरोवर से स्वभावतया फूट निकलता है, वास्तविक कविता के गुण उसी मे होते है। जिस सरस हृदय का उच्छलित प्रवाह नैसर्गिक होता है, उसी मे वह कल-कल ध्वनि मिलती है, उसी मे वह उन्मादिनी-गति पाई जाती है, जो सहृदय जन के कर्ण कुहर मे प्रवेश करके अजस्र आनंद सुधा वर्षण करती रहती है। इस प्रकार की कविता न तो किसी अलंकार की भूखी रहती है, न किसी विलक्षण शब्द-विन्यास की, वह अपने रंग मे आप ही मस्त रहती है, और अपनी इसी अलौकिक मस्ती

से मार्मिक हृदय पर अधिकार कर लेती है। इस प्रकार की कविता भावमयी होती है, भाव ही उसका सम्बल होता है, चाहे उसको कोई समझ सके या न समझ सके, चाहे उसका कुछ उपयोग हो या न हो, किंतु उसका भाव ही उसका सर्वस्व होता है। मोर जब नर्त्तनशील होता है, तो उसके मुग्धकर गुणो का विकाश स्वाभाविक होता है, वह लोगो को मुग्ध भी करता है, किंतु मयूर इस विषय मे यत्नशील नही होता। यह विचार सर्वांश मे मान्य नही, किंतु यह कहा जा सकता है कि लगभग ऐसा ही रहस्य स्वाभाविक कविता मे है, वह किसी को विमुग्ध करने की इच्छुक नही, किंतु उसके नैसर्गिक गुण अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहते। कला के विषय मे भी यही कहा जा सकता है। खग कलरव से लेकर सुकविगण की समस्त सूक्तियो तक मे कला का चमत्कार दृष्टिगत होता है। जिस दृष्टि से उसका आविर्भाव है, उसी दृष्टि से उसका अवलोकन यथार्थता है, अन्यथा विडम्बना की विकराल मूर्ति ही सामने आती है।

एक बात मै और प्रकट कर देना चाहता हूँ। वह यह कि कला मे हृदय की भावुकता ही नही होती, उसमे मस्तिष्क का कार्य कलाप भी होता है। दोनो के साहचर्य्य से ही कला पूर्णता को प्राप्त होती है। नायिका विभेद की कविता मे यथास्थान दोनो का समुचित विकाश देखा जाता है, इसलिये उसकी कविताएँ कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च-कोटि की पाई जाती है।

## शृंगार रस की उपयोगिता

शृगार रस का मै जैसा वर्णन कर आया हूँ, उसके उपरांत उसकी उपयोगिता का उल्लेख व्यर्थ जान पड़ता है। परंतु बात यह है कि नायिका विभेद की कुछ असंयत कविताओ के कारण उसका नाम इतना बदनाम हो गया है कि मुझको इस अंश का शीर्षक 'शृंगार रस की उपयोगिता', ही देना पड़ा, जिसमे उसके मिथ्या कलंक का अपनोदन

हो सके। वास्तव में इस शीर्षक मे नायिका विभेद कविताओं और भावो की उपयोगिता का ही वर्णन होगा। कला की दृष्टि से तो इस विषय की रचनाओं पर कोई दोष लगाया नही जा सकता, यह बात मैं ऊपर लिख आया हूँ। यदि यह सच है कि कला कला के लिये है, तो उपयागिता का प्रश्न उपस्थित हो ही नही सकता। किंतु इस प्रकार की रचनाओ की उपयोगिता भी अल्प नही, इसलिये मै उसपर भी कुछ लिखना आवश्यक समझता हूँ।

सस्कृति की जड़ साहित्य है, चाहे यह साहित्य कण्ठगत नागरिक अथवा ग्रामीण गीत हो, या पुस्तकगत नाना प्रकार की रचनाओ का समूह। साहित्य का वातावरण जैसा होता है, जाति तदनुकूल ही बनती है। जैसे भावो का पोषण साहित्य करता है, जाति अथवा समाज मे वैसे ही भाव स्थान पाते है। कहा जाता है, जाति के भावो और विचारों का परिचय साहित्य से मिलता है, कारण इसका यह है, कि जाति के संस्कारो के आधार वे ही होते है। मनुष्य के संस्कार धीरे-धीरे बनते है उनका प्रारभ माता की गोद से होता है, परंन्तु साहित्य और शिक्षा का प्रभाव भी उनपर कम नही पड़ता। मानस लोरियो और कथानकों से ही गठित नहीं होता, वह साहित्य के विविध रसो मे भी पगता रहता है। पुरुष हो चाहे स्त्री, दोनो ऐसे खिलौन है, जो साहित्य-कुंभकार के हाथों के गढ़े है। यह निर्माण क्रिया चिरकाल से होती आई है, और प्रलय काल तक होती रहेगी।

लड़कियाँ जब माँ के कंठ का मधुर गाना सुनती है, उस समय वे बहलती ही नहीं, कुछ सस्कृति संचय भी करती है। लड़के जब पुस्तकों का पाठ पढ़ते है, उस काल उनकी शिक्षा ही नही होती, उनके हृदय पटल भी खुलते है। युवक और युवतियो से जब कविता पाठ कराया जाता है, तब उसका उद्देश आनंद लाभ करना ही नही होता, उनके चरित्र और भावों का निर्माण भी उस समय सामने रहता है। यदि स्त्री

पतिपरायणा, लज्जावती, सहृदया, सदाचारिणी एवं उदारस्वभावा है, तो समझना चाहिये, परम्परागत सत्साहित्य के अंक मे लालित होने का ही यह सुपरिणाम है, और यदि वह कोपनस्वभावा, उच्छृंखलताप्रिया, दुराचारिणी, निर्लज्जा एवं कटुवादिनी है, तो जानना चाहिये कि किसी कुत्सित साहित्य के प्रपंच मे पड़ने का ही यह फल है। ये ही बाते पुरुष के गुणदोष के विषय मे भी कही जा सकती है।

ससार-सुखशांति गाडी के दो पहिये है, एक पुरुष दूसरी स्त्री। यदि ये दोनो पहिये ठीक-ठीक काम देते है, तो यह सुखशांति की गाड़ी यथारीति चलती रहती है, और मनुष्यजीवन आनंदमय बनता रहता है। अन्यथा जिस परिमाण में पहियाओ मे दोष आ जाता है, उसी परिमाण मे सुखशांति गाडी की गति बिगड़ती और अनेक अवस्थाओ मे नष्टभ्रष्ट हो जाती है। जब तक पुरुष को स्त्री के हृदय और उसके मनोभावो का यथातथ्य ज्ञान नही होता और जब तक स्त्री पुरुष के स्वभाव से पूर्णतया परिचित नहीं होती, उस समय तक ससार यात्रा का यथोचित निर्वाह नही होता। जब तक दोनो दोनो के गुण-दोष नहीं जानते, प्रवृत्ति को नही पहचानते, जब तक वे नही समझ सकते कि ससार सुमनमय ही नही है, उसमे कॉटे भी है, तब तक न तो वे अपने जीवन को सफल बना सकते है, और न आये दिन की आपदाओ से बच सकते है। दुनिया बहुरंगी है, जो उसके सब रंगों को पहचानता है, उसीके मुख की लाली रह सकती है, वह चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष। जहॉ सती साध्वी कुलललनाएँ है, वही प्रवंचनामयी वारवधूटियॉ भी है। जहॉ कोमलस्वभावा सरल बालिकाएँ है, वही कटुवादिनी गर्विणी मानवती नायिकाएँ भी है। जहॉ पति की परछाहीं से भीत होनेवाली मुग्धाएँ है, वही अनेक कलाकुशला प्रौढ़ाएँ भी है। कही स्वकीया है, कही परकीया, कहीं सामान्या। जब तक कोई ससारी पुरुष इन सब का यथार्थ ज्ञान न रखेगा, तब तक उसकी संसारयात्रा

का निर्वाह सफलतापूर्वक कैसे होगा। इसी प्रकार जब तक सब प्रकार के पुरुषो से ललनाए अभिज्ञ न होगी तब तक क्या पद-पद पर उनके पतन की सभावना न होगी? ससार विचित्रताओ का आकार है। हमारे सामने बिबा फल है, और रसाल भी; ईख है और नरकट भी; सुधा है और गरल भी, तब तक हम कैसे उन्हे पहचानेगे जब तक उनकी परीक्षा न करेगे। परीक्षा तब तक कैसे करेगे, जब तक हमको अनुभव न प्राप्त होगा। यह अनुभव चाहे पुस्तक द्वारा प्राप्त हो, चाहे अन्य साधनो से। अनेक दृष्टियो से पुस्तक द्वारा प्राप्त अनुभव ही सर्वोत्तम है, क्या नायिका विभेद की पुस्तके, ऐसी ही पुस्तके नही है? क्या स्त्री-पुरुप के सबध का ऐसा सूक्ष्म विवेचन किसी अन्य पुस्तक मे भी है?

रूप का मोह कामनामय होता है, किनु प्रेम त्यागमय। नायिका भेद की स्वकीया त्यागमयी होती है, क्योकि आर्य ललनाओ के त्यागमय जीवन की ही प्रशसा है। उसको वही आदर्शप्रिय है, जो उच्च है, और जिसमे लोक-हित की वासना है। वह अपने सुख से ही सुखी नही रहती, वह अपने प्राणधन के सुख पर ही उत्सर्गीकृत जीवन होती है। वह पति के कुटुंब को उसी ऑख से देखती है, जिस ऑख से उसका पति उसे देखता है। वह पति के कर्तव्य को ही अपना कर्तव्य समझती है, अतएव स्वार्थमय परिवार मे भी शांति की मूर्ति बनी रहती है। वह होती है तो मानवी, किंतु सब की दृष्टि मे देवी दीखती है, क्योकि दिव्य गुण ये ही तो है। एक स्वकीया का चित्र देखिये—

सेवा हीं मे सास औ ससुर की रहै सदैव सौतिन सों नाहि सपनेहूँ मैं लरति है।
सीलसुघराई त्यो सनेहभरी सोहति है रोस-रिस-रार ओर क्योंहूँ ना ढरति है।
'हरिऔध' सकल गुनागरी सती समान सूधे सूधे भायन सयानप तरति है।
परम पुनीत पति-प्रीति मैं पगी ही रहै, प्रानधन प्यारे पै निछावर करति है॥

नैनन को तरसैये कहाँ लौ, कहाँ लौं हियो बिरहागिनि तैये।
एको घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्रानन को कलपैये।

आवै यही अब जी मैं विचार सखी चलि सौतिहुँ के घर जैये ।
मान घटे ते कहा घटिहै जा पै प्रानपियारे को देखन पैये ॥
लखि सासुहि हास छिपाये रहै ननदी लखि ना उपजावति भीतहि ।
सौतिन सों सतराति कबौ न जेठानिन सा नित ठानति प्रीतहि ।
दासिनहूँ सों उदास न 'देव' बढ़ावति प्यारे सा प्रीति प्रतीतहिं ।
धाय सों पूछति बातें बिनै की सखीन सा सोखै सुहाग की रीतहि ॥

पाश्चात्य स्त्रियो के लिये सौत की कल्पना भी प्रकपितकरी है, किंतु भारतीय ललनाओं मे इतनी सहनशीलता होती है, कि 'सौतिन सो नाहि सपनेहूँ मैं लरति है,' वरन् एक कवि के कथनानुसार 'आपने सुहाग भरे भाल पै लगाई भटू सौतिन की मॉगहूँ मै सेंदुर भरति है,' कहा जा सकता है, यह कवि कल्पना है। मै कहूँगा कवि कल्पना नही, हमारे परम्परागत साहित्यजन्य संस्कृति का माहात्म्य है, कुलीन घरो मे जाकर देख लीजिये, ऐसी महान्-हृदया स्त्रियो का अभाव अब भी नही हुआ है। फिर जब तक समाज मे किसी भाव का प्रचलन न होगा, तब तक कवि लेखनी से उसकी प्रसूति कैसे होगी? साहित्य समाज के आचार व्यवहार का ही प्रतिबिंब होता है, वह आरंभ यों ही होता है, काल पाकर वह स्वयं आदर्श भले ही बन जावे। जिस दशा मे पाश्चात्य स्त्रियाँ 'डाइवोर्स' करने को तैयार हो जाती है, आवेदन-पत्र लेकर कोर्ट मे दौड़ जाती है, उस अवस्था मे भी हमारी कुल-बालाएँ कितने संयम से काम लेती है। यह कविता की पंक्तियाँ बतला रही है। अब रहा यह कि प्रणाली कौन अच्छी है, हमारी कुलललनाओ की अथवा योरोपियन स्त्रियों की? मै कहूँगा, जरा आँख उठाकर योरोप अथवा अमेरिका के वर्त्तमान सामाजिक हलचल को देखिये, उस समय प्रश्न का उत्तर आप ही मिल जावेगा।

मर्यादा और शिष्टता सभ्यता की सहचरी है, उनकी रक्षा से ही मानवता की शोभा होती है। उनका पालन सम्मानित तो करता ही है,

मनस्तुष्टि का कारण भी होता है। जो संमान चाहता है, उसको दूसरो का स्वयं संमान करना चाहिये। पतिपरायण स्त्रियॉ स्वयं पति द्वारा कम आदृता नही होतीं। स्त्री पुरुष का संबंध इतना घनिष्ठ है कि वे नीरक्षीर समान सम्मिलित रहते है। उनमे भेद-भाव कम होता है। कोई सेवा ऐसी नही, जिसे स्त्री पुरुष की और पुरुप स्त्री की न कर सके। हास विलास, आहार विहार मे वे दो शरीर एक प्राण होते है। फिर भी आर्य ललनाओ का पति मे पूज्य भाव होता है। इस पूज्य भाव के उदाहरण भी नायिका भेद मे कम नही मिलते। जहॉ कहीं इस भाव का निरूपण पाया जाता है, वहॉ पर आर्य आदर्शों एवं कुल-ललनाओ के चरित्र की उज्ज्वलता का बड़ा सुंदर विकाश देखा जाता है। निम्न-लिखित पद्यो मे ऐसे भावो का बड़ा पवित्र चित्रण है—

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी बाल,
भाल दीन्ही बेंदी मृगमद की असित है।
अग अग भूखन बनाइ ब्रजभूखन जू,
बीरी निज करते खवाई अति हित है।
ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के,
'सेनापति' स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाह के लगाइ रही आँखिन सों,
कही 'प्रान प्यारे यह अति अनुचित है ॥'

❀ ❀ ❀

अग राग औरै अँगन, करत कछू बरजीन।
पै मेहदी न दिवाइहौ, तुमसा पगन प्रबीन ॥
खान पान पीछू करति, सोवति पिछले छोर।
प्रानपियारे ते प्रथम, जगति भावती भोर ॥
धरती न चौकी नग जरी, याते उर मे लाइ।
छाँह परे परपुरुष की, जनि तियधर्म नसाइ ॥

देखी आपने आर्य-बाला की मर्यादाशीलता और शिष्टता ? साधारण हास विलास और क्रीड़ा मे भी वह पति को अपना चरण स्पर्श कराना पाप समझती है। पति के खा पी लेने पर खाती पीती है, उसके सो जाने के बाद सोती है, और प्रात.काल उसके उठने के पहले उठ जाती है। वह नगजड़ी चौकी इसलिये हृदय पर धारण नहीं करती कि कहीं परपुरुष की छाया उस पर पड़ने से उसके स्त्री-धर्म मे छूत न लग जावे। संभव है, आजकल इस प्रकार के विचारों में अत्युक्ति की गंध पाई जावे, और इनमे वास्तविकता न मिले। परंतु ऐसे ही सर्वाभिमुखी, देशव्यापी, एवं पवित्र आदर्शों के द्वारा ही दांपत्य भावो की महत्ता सुरक्षित एवं परिवर्द्धित होती आई है। इन कविताओ की व्यंजना कितनी भावमयी और उदात्त है, इसके लिखने की आवश्यकता नहीं। पाश्चात्य स्त्रियाँ अपने स-बूट चरणो को पतिदेव के युगल हाथो पर रखकर घोड़े पर से उतरने मे ही अपना गौरव समझती है; हास विलास और आहार विहारादि मे स्वतंत्रता ग्रहण कर अन्यो के साथ स्वच्छंद विचरने मे ही स्वाधीनता सुख का अनुभव करती है। दुर्भाग्य से हमारे देश मे भी उनका अनुकरण होने लगा है। किंतु स्मरण रहे, मायिकता से सरलता अहमहमिकता से मानवता, कटुता से मधुरता एवं उच्छृंखलता तथा मदांधता से सदाशयता सदा श्रेष्ठ मानी गई है, वह सदा श्रेष्ठ रहेगी भी, क्योकि महान गुण से ही महत्ता प्राप्त होती है।

नायिका भेद की रचनाओं मे स्त्री पुरुष के अनेक स्वकीय विचारो एवं भावो का भी बड़ा सुंदर चित्रण है। उनमे ऐसे जीते जागते चित्र है कि हृदयो पर अद्भुत प्रभाव डालते है। स्त्री पुरुष की प्रकृतियो एवं व्यवहारो मे धीरे-धीरे कैसे परिवर्तन होते है, किस अवस्था मे उनके कैसे विचार होते हैं, उन विचारो का परस्पर एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है। स्त्री पुरुष के संबंधों मे कैसे कटुता कैसे मधुरता आती है, जीवन यात्रा के मार्ग में कैसे कैसे रोड़े है, प्रेम-पथ कितना

कंटकाकीर्ण और दुर्गम है, समाज के स्त्री पुरुषों की रहन-सहन प्रणाली साधारणत. क्या है? वह कैसी विचित्रतामयी है? उसके चक्र मे पड़-कर जीवन यात्रा मे क्या क्या परिवर्तन हो जाते है? हिंदू-समाज की व्यापक रूढ़ियाँ क्या है? स्त्री पुरुषों मे क्या क्या चालबाज़ियाँ होती है? आपस मे वे एक दूसरे के साथ कैसी कैसी कुटिलताएँ करते है, वियोग-अवस्था मे उनकी क्या दशा होती है, और सुख के दिन उनके कैसे सुंदर और आनंदमय होते है, इन सब बातो का व्यापक वर्णन आपको नायिका भेद के ग्रंथो मे मिलेगा। कार्य क्षेत्र के लिये सम्यक् ज्ञान ही उपकारक है। संसार का सुख दुःख सहयोगियो के मानसिक भावो के ज्ञान अज्ञान पर ही निर्भर करता है, अतएव उनके साधनो की उपेक्षा उचित नही। किस युक्ति से उन ग्रंथो में इन बातो की अवतारणा हुई, फिर वे कैसे पल्लवित पुष्पित बनीं, कुछ इसे भी देखिये—

संसार स्वार्थमय है, दूसरे का कलंक अपने सिर पर कौन लेता है। परंतु सच्चा प्रेम अद्भुत कर्मा है, वह यह कार्य भी करता है। आप आँच सहता है, परंतु अपने प्रेमपात्र को आँच नही लगने देता। एक कुल-ललना का आत्मत्याग देखिये—उसका पति नपुंसक है, अतएव वह अपने को बाँझ कहा जाना पसंद करती है, किंतु भेद नही खोलती।

सुत हित सुनो पुरान यो लोगन कह्यो निहोरि।
चाहि चाह युत नाह मुख मुसिक्यानीं मुख मोरि।
गुरु जन दुजे ब्याह को प्रति दिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखति बहू आपुन बाँझ कहाइ।

प्राय: कहा जाता है, भारतीय सभ्यता स्त्री जाति के विषय में उदार नही है, यहाँ की पुरुष जाति स्त्री जाति का संमान करना नही जानती। यह वृथा लांछन है, जहाँ महापुरुषों के ये वाक्य है,—

प्रत्यक्ष देवता माता जाया छायास्वरूपिणी।
स्नुषा मूर्तिमती प्रीतिः दुहिता चित्तपुत्तली।

वहाँ के लोगो के विषय मे ऐसा कहना सत्य नहीं; शृंगार रस मे प्रेम-गर्विता नायिका की सृष्टि इसका प्रबल प्रमाण है। उसकी बाते सुनिये—

सपने हूँ मन भावतो करत नही अपराध।
मेरे मन ही मै रही सखी मान की साध॥

रूपजन्य मोह की आदिम अवस्था कितनी उत्कट और उत्सुकतामयी होती है। किसी बाधा के पहुँचने पर वह कितनी गंभीर और जटिल हो जाती है, कितनी वेगमयी एवं अबाधित अथच उग्र बन जाती है, इन बातो का नायिका भेद के ग्रंथो मे बड़ा विलक्षण वर्णन है। इसको पूर्वानुराग कहते है। वह चार प्रकार का होता है। कुछ उसके पद्य देखिये—

सौहैं दिवाय दिवाय सखी इक बारक कानन आन बसाये।
जानै को 'केसव' कानन ते कित ह्वै हरि नैनन माँहि समाये॥
लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मनहीं सो मिलाये।
कैसी करौ अब क्यों निकसैं री हरेई हरे हिय मे हरि आये॥

❀ ❀ ❀

जब ते कुँवर कान्ह रावरी कलानिधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।
तबहीं ते 'देव' देखी देवता सी, हँसति सी,
रीझति सी, खीझति सी रूठति, रिसानी सी।
छोही सी, छली सी, छीन लीनी सी, छकी छिन सी,
जकी सी, टकी सी, लगी थकी, थहरानी सी।
बीधी सी. बँधी सी, विष बूड़ति बिमोहति सी,
बैठी बाल बकति, बिलोकति, बिकानी सी॥

प्रश्न यह है, इन पद्यो मे कोई आकर्षण है या नहीं? कोई विमुग्धकरी शक्ति है या नहीं? कोई हृदय हिला देनेवाली माया है या नही? अवश्य है, इनमे पत्थर को मोम बना देनेवाली कला है, निर्मोह मन को मोह लेनेवाला मंत्र है, जी मे जगह करनेवाला जादू है, और है

इनमे वह महा प्रयोग, जो अधो की आँखे खोलता है, और दुराग्रही ससार को सावधान होकर चलने की शिक्षा देता है। फिर कैसे कहें कि इनमे कोई उपयोगिता नही।

स्त्री जाति और तो क्या यह भी नही चाहती कि पराई स्त्री का नाम भी पति के मुख पर आ जाये। जब मुख पर नाममात्र आ जाने से रस मे विष घुल जाता है, तो पराई स्त्री के संसर्ग से स्त्री जाति को कितना अधिक कष्ट हो सकता है, क्या यह शिक्षा नीचे के पद्य से नहीं मिलती—

दोऊ अनद सो आँगन माँझ बिराजे असाढ़ की साँझ सोहाई।
प्यारी के बूझत और तिया को अचानक नाम लियो रसिकाई॥
आई उनै मन मे हँसी कोपि तिया सरचाप सी भौंहैं चढाई।
आँखिन ते गिरे आँसू के बुंद सुहास गयो उड़ि हस की नाईं॥

जब हम किसी वियोगिनी अथवा प्रोषितपतिका के मुख से यह सुनते है—

पर कारज देह को धारे फिरो परजन्य यथारथ ह्वै दरसो।
निधिनीर बनावत हौ मधुरो सबही बिधि सज्जनता सरसो॥
'घनआनंद' जीवनदायक हो कछु मेरिऔ पार हिये परसो।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुआन को लै बरसो॥

तब क्या किसी विरहिणी की व्यथा का चित्र हमारी आँखो के सामने नही खिच जाता? क्या हमारे हृदय मे पीड़ा-सी नही होने लगती? क्या हमारा जी तड़प नही जाता? उस समय क्या हमारी आँखे नहीं खुलती? क्या हमको यह ज्ञान नही होना, कि विरह स्त्री जाति के लिये कितना वेदनामय है? यह ज्ञान अपने तथा अन्यो के लिये क्या उपयोगी नही?

नीचे की रचनाओ को देखिये। इनमे मानसिक भावों का सूक्ष्म चित्रण है, आर्य ललनाओ के स्नेहमय हृदय का रुचिर निरूपण है, प्रेम पारावार के तरंग भग का सच्चा प्रदर्शन है, और है मानव मानस

सुमन का सरस विकाश। भाव इनके इतने सुदर है कि उपयोगिता उनमे से फूटी पड़ती है। यह उपयोगिता एकदेशी नही व्यापक है, और है पवित्र पाठो से पूर्ण—

गिरि ते ऊँचे रसिक-मन, बूडे जहाँ हजार।
बहै सदा पसुनरन को प्रेम-पयोधि पगार॥
इक भीजे, चहले परे, बूडे, बहे हजार।
कितने अवगुन जग करत नय-वय चढती बार॥
बिछुरे जिये सकोच यह बोलत बनै न-बैन।
दोऊ दौर लगे हिये किये निचौहैं नैन॥
तच्यो आँच अति बिरह की रह्यो प्रेमरस भीजि।
नैनन के मग जल बहै हियो पसीजि पसीजि॥
यद्यपि सुंदर सुघर पुनि सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितो भरिये जितौ सनेह॥
जो चाहै चटकन घटै मैलों होय न मित्त।
रजराजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त॥
तनक ककरी के परे नैन होत बेचैन।
वे बपुरे कैसे जिये जिन नैनन में नैन॥

प्राय. कहा जाता है, गणिकाओ का वर्णन करके नायिका विभेद के ग्रंथो मे अनर्थ कर दिया गया है। कितु गणिका के वर्णन मे भी विशेषता है, उसमे भी उत्तम पाठ मौजूद है। देखिये—

धीरज मोचन लोचन लोल बिलोकि कै लोक की लीकति छूटी।
फूटी गये श्रुति ज्ञान के केसव आँख अनेक बिबेक की फूटी॥
छोड़ि दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति टूटी।
त्यों न करे करतार उबारक जा चितवै वह बार बधूटी॥

यदि कहा जावे कि इस पद्य मे वह नायिका रूप में वर्णित नहीं

है—इसलिये यह पद्य प्रमाण कोटि मे नही गृहीत हो सकता। तो निम्नलिखित पद्य लिया जावे—

क्यों हूँ न याम जनात है जात रिझावत ऐसी रहै रतिआन मै।
देखत ही मन टूटि परै कछु राखहि ऐसी छटा छतिआन मै।
ए 'हरिऔध' करो कितनो हूँ बिलब पै होत नही पतिआन मै।
बीस गुनी मिसिरी ते मिठास है बार बिलासिनी की बतिआन मै॥

क्या इस पद्य के पढ़ने से यह नहीं ज्ञात होता कि वैसिको का कितना पतन हो जाता है। उसके पतन का चित्र ही तो इस पद्य के पद-पद मे अंकित है, उनकी कामुकता का ही वर्णन तो इसमे है। फिर उनको कौन निदनीय न समझेगा, ऐसे ऐसे पुरुषो की ओर दृष्टि फेर कर सर्वसाधारण को सावधान करना ही तो इस पद्य का उद्देश है, फिर वह उपयोगी क्यो नही। यदि कहा जावे किसी कुलांगना के हाथ मे यह पद्य नही दिया जा सकता, तो मै कहूँगा यदि उनको अपने पति पुत्र को पतन से बचाने का अधिकार प्राप्त है, यदि उनको इस विषय मे सावधान रखना है, तो उनके सामने इस पद्य को अवश्य रखना चाहिये। जिससे उनकी आँखे खुली रहें, और वे अपने पति, पुत्र की रक्षा इस कुमार्ग से कर सके। इस पद्य मे जितना प्रलोभन है, उतनी ही उसमे सतर्कीकरण की शिक्षा है। बुराई का यथार्थ ज्ञान होने पर ही, उससे पूरी तौर पर कोई बचाया जा सकता है।

नायिका विभेद के ग्रंथो मे उच्च कोटि के पुरुषो के वर्णन के साथ जैसे अधम से अधम पुरुषो का निरूपण भी किया गया है, उसी प्रकार पूज्य पतिव्रता स्त्रियो के साथ गणिकाओं तक का विवरण है। कारण इसका यह है कि तुलना का अवसर हाथ आने पर ही हमे भले बुरे का ज्ञान होता है। राका निशा का यथार्थ ज्ञान तमोमयी अमा कराती है, और अरुण राग रंजित ऊषा की विशेषताओं को कालिमामयी सध्या ही बतलाती है। काक और पिक का क्या अंतर

है, फूल और कॉटो मे क्या भेद है, सुधा क्यो वांछनीय है और गरल क्यो निदनीय, यह मिलान करने पर ही जाना जा सकता है। जैसे पुरुप जीवन को परकीया कलंकित करती है, और गणिका नष्ट ; उसी प्रकार स्त्री जीवन को लांछित करता है उपपति, और कष्टमय बनाता है वैसिक। इसलिये एक को दूसरे के यथार्थ परिचय की आवश्यकता है। नायिका भेद के ग्रंथ इन उद्देशो को सामने रखकर लिखे गये है। यह देखा जाता है कि अनके पुरुष स्त्रियो द्वारा इसलिये आदर नही पाते, वरन् वंचित और तिरस्कृत होते है कि उनमे रसज्ञता नहीं होती, और वे उन कलाओ के ज्ञाता नही होते, जिनसे ललनाकुल को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। इसी प्रकार कितनी स्त्रियो को इसलिये दु ख भोगना और पति के प्यार को गॅवाना पडता है, कि उनमे न तो भाव होते है, जो मनो को मुट्ठी मे करते है, और न वे मनोहर ढंग, और न वे मधुर व्यवहार जो हृदय के सुकुमार भावो पर अधिकार करते और नीरस मानसो मे भी रस-धारा बहाते है। नायिका भेद के ग्रथ इन बातो का भी प्रतिकार करते है, और बड़ी सरसता से वे मार्ग बतलाते है, जिन पर चलकर स्त्री पुरुष दोनो अपने जीवन को सुखमय बना सकते है। जैसे कुछ विद्याऍ और कलाऍ ऐसी है, कि जिनका कुछ न कुछ ज्ञान होना जीवन के लिए उपयोगी है, वैसे ही साहित्य के इन अग पर भी अधिकार होना आवश्यक है। संसार मे सर्वज्ञ कौन है, अल्पज्ञ होना अच्छा नही, इसलिये जहाँ तक हो सके प्रत्येक पुरुष और स्त्री विशेष आवश्यक विपयो का विज्ञ बनने की चेष्टा अवश्य करे। विज्ञता ग्रन्थ पढ़कर ही नहीं लाभ की जा सकती। विषयज्ञो का साथ करके भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। नायिका भेद की उपयोगिता के विपय मे मै बहुत कुछ लिख चुका। मेरा विचार है, कि सदुद्देश से ही उसकी रचना हुई है। निर्दोष आमोद प्रमोद और सरस हास विलास का उत्तेजन भी उसके सृजन का हेतु हो सकता है। किंतु यह उसके

व्यापक उद्देश का एक देश मात्र है। मैंने उपयोगिता के उदाहरण ब्रज-भाषा के पद्यों को उठाकर ही दिये है, इसलिये नहीं कि संस्कृत मे इस प्रकार के पद्य नही है, वरन् इसलिये कि जिसमे व्यर्थ ग्रंथ के कलेवर की वृद्धि न हो।

## शृंगार रस और ब्रजभाषा

शृंगार रस की रचनाएँ यदि कला की कसौटी पर कसे जाने पर ठीक उतर जाती, तो भी किसी को उनपर उँगली उठाने का अधिकार न होता, क्योंकि कला की सार्थकता कला तक ही परिमित है। यदि कला की दृष्टि से कोई कला पूर्ण पाई गई तो उसको पूर्णता प्राप्त हो गई, फिर उसमे कोई न्यूनता नहीं मानी जा सकती। नायिका भेद की रचनाएँ ऐसी ही है अतएव वे अभिनंदनीय है, उपेक्षणीय नहीं। जब उनमे उपयोगिता भी पाई गई, तो उनके लिये मणिकांचन योग हो गया, वे सब प्रकार आदरणीय हो गई। इतना ही नही उनकी उद्भावना ऐसे महापुरुषों द्वारा हुई है, जो सत्यव्रत ही नही अर्चनीय भी है। भरत मुनि स्वयं आप्त है, किंतु उन्होने शृंगारादिक अष्ट रसो का आविष्कारक जिनको माना है, उनको महात्मा विशेषण दिया है, वे लिखते है एते ह्यष्टौ रसा. प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना' इसलिये नायिका भेद की कल्पना लोकहित कामना से ही हुई है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। फिर भी उसके कारण शृंगार रस आजकल अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। नायिका-भेद-सबंधिनी शृंगार रस की अधिकतर रचनाएँ ब्रजभाषा मे है, अतएव इसी सूत्र से आजकल ब्रजभाषा की छीछालेदर भी की जा रही है। विचारणीय यह है कि इस विषय मे ब्रजभाषा का उतरदायित्व कहाँ तक है—

अग्निपुराण का वचन है—

> शृ गारी चेत् कविः काव्ये जात रसमय जगत्।
> स चेत् कविर्वीतरागी नीरस व्यक्तमेव तत्॥

भाव यह है कि यदि कवि शृंगारी होता है, तो उसके काव्य से जगत

रसमय हो जाता है, किंतु यदि वह बीतरागी होता है, तो सब ओर नीरसता फैल जाती है। मै शृंगार रस की प्रधानता का प्रतिपादन कर आया हूँ, यह भी बतला चुका हूँ कि शृगार रस ही सब रसो का जनक है। यही कारण है कि संस्कृत भाषा के साहित्य मे शृगार रस का स्रोत बहता है। कवि-कुल-गुरु कालिदास के समय से लेकर पंडितराज जगन्नाथ के समय तक जितने बड़े-बड़े काव्यकार हो गये है, जितने लोगो ने लक्षण-ग्रथ, अलकार-ग्रंथ, अथवा छोटे-बड़े रस-ग्रथ, नाटक, चंपू, किंवा प्रबंध ग्रंथ लिखे है, उपन्यास, कथानक या मुक्तको की रचनाएँ की है, उनमे से अधिकांश मे शृंगार रस की ही छटा देखने मे आती है। अन्य विषयो मे भी शृगार का पुट कुछ-न-कुछ अवश्य रहता है। कारण इसका यही है कि संसार रस का ग्राहक है, और सरसता बिना शृगार के आती नही। पुराण, उपपुराण अथवा संहिताए धर्म दृष्टि से लिखी गई है, परंतु उनमे भी प्राय शृगार रस का मधुर आलाप श्रुति गोचर होता है। प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य ग्रथो की भी यही दशा है। सातबाहन की प्राकृत गाथा सप्तशती को देखकर ही आचार्य गोवर्धन ने 'आर्या सप्तशती' की रचना की। दोनो मे ही शृगार रस छलका पड़ता है। विरोध करनेवालो ने उस समय भी उसका विरोध किया और मूल पर ही कुठाराघात करना चाहा। काव्य की ही निंदा कर डाली, लिख मारा—

"असभ्यार्थाभिधायित्वान्नोपदेष्टव्य काव्यम्"

'अश्लील भावो का द्योतक होने के कारण काव्य की रचना न होनी चाहिये।'

पर इसको किसी ने न सुना—यह बात नक्कारखाने मे तूती की आवाज़ हुई, क्योंकि स्वाभाविक भावो का प्रतिरोध नहीं होता। प्रयोजन यह कि शृंगार रस का स्रोत चिर काल से प्रवाहित है, वह संस्कृत से

प्राकृत मे आया, और प्राकृत से ब्रजभाषा मे। ऐसा होना स्वाभाविक था, ब्रजभाषा ने स्वयं इसकी उद्भावना नहीं की।

कुछ लोगो का विचार है कि स्त्री जाति के अंगो का वर्णन उचित नही, क्योंकि यह एक प्रकार की अमर्यादा है। हास-विलास और प्रिया-प्रियतम की क्रीड़ाओ एवं उनके रसमय कथनोपकथन का चित्रण भी संगत नहीं, क्योंकि उसमे अश्लीलता आ जाती है। मेरा विचार है, इस कथन मे मार्मिकता नही। खोपड़ी खरोंचकर कुछ बाते कही गई है, परंतु उनमे सहृदयता का लेश नहीं। आँखे विश्व-सौंदर्य देखने के लिये बनी है, और हृदय भाव ग्रहण करने के लिये। किंतु ये बाते कहती है आखो पर पट्टी बाँध लेने और कलेजे पर पत्थर रख लेने के लिये, सौंदर्य्य देखकर पशु विमुग्ध हो जावे, चिड़ियाँ चहकने लगे, परंतु मनुष्य को विशेषकर कवि को जीभ हिलाने का अधिकार नही। यदि उसने सुदर दाँत देखकर उसे मोती जैसा कह दिया, मुख को मयक-सा, आँखो को कमल-सा बतला दिया, तो मर्यादा पर वज्रपात हुए बिना न रहेगा। यदि मर्द के दाँत मोता जैसे कह दिये जावें, तब तो शायद मर्यादा सुरक्षित भी रह जावे, किंतु स्त्री के दाँत को मोती कहा नही कि उसपर बिजली गिरी नही। यदि योरप और अमेरिका की श्वेतांग ललनाएँ अपने अंग प्रत्यंगो की वर्णना रसमयी भापा मे कर अपने रूप-यौवन का विज्ञापन देती रहें, समाचारपत्रों के कालम के कालम काले करती रहे, तो वह हमारे पाश्चात्य सभ्यतानुरागियो के लिए संगत होगा, क्योंकि वे वर्त्तमान युग की अधिष्ठातृ देवियाँ है। प्रिया-प्रियतम के हास विलास, क्रीड़ा एव कथनोपकथनो से संसार का साहित्य क्यो न भरा हो, वे क्यो न नीरस जीवन की रसधारा हो, दुःख भरे ससार के सुख-सदोह हो, किंतु उनके अश्लील हो जाने का डर है, इसलिये वे वर्णनीय नहीं। पानी इसीलिये नहीं पीना चाहिये कि वह खारा भी होता है, वायु सेवन इसलिये नहीं करना चाहिये कि उसमें

दुर्गंध भी मिलती है, व्यंजन इसलिये नही खाना चाहिये कि वह रोग-प्रवण भी होता है और आग को इसलिये काम मे नही लाना चाहिये कि उससे उँगलियाँ भी जल सकती है। ऐसे लोगो का विचार कहाँ तक मान्य है, इसको आपलोग स्वय समझ सकते है। गुण समूह मे जिनकी दृष्टि साधारण से साधारण दोष पर ही रहती है, वे हो कैसे ही, परंतु इस विचारवाले लोग भी है। अपने सिद्धातानुसार वे ब्रजभाषा के नखशिख वर्णन को अच्छी दृष्टि से नही देखते। किंतु नखशिख वर्णन भी परंपरा द्वारा ही ब्रजभाषा मे गृहीत हुआ है। तर्क करनेवालो का यह कथन है कि उसने फारसी और उर्दू से यह प्रणाली ग्रहण की है, किंतु यह सत्य नही है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने कुमारसभव के सातवे सर्ग मे हिमाचल-नंदिनी के अनेक अंगो का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। विवाह काल मे सखियो ने उनको जैसे सुसज्जित किया, उसका वर्णन बडा हो मनोमोहक है। इसके अतिरिक्त अगो के उपमानों की कल्पना ब्रजभाषा के कवियो की नही है, वे वे ही उपमान है, जो सस्कृत के आचार्यो द्वारा वर्णित है। कवि-प्रिया मे कविवर केशवदास ने इस विषय का बड़ा विशद वर्णन किया है। वे यह भी लिखते है—

नख ते सिख लौं बरनिये, देवी दीपति देखि।
सिख ते नख लौं मानुखी, केसवदास बिसेखि॥

इस नियम का उल्लेख उन्होने प्राचीन आचार्य्यो के मन्तव्य अनुसार ही किया है; इससे पाया जाता है कि नखशिख-वर्णन-प्रणाली परंपरागत है। हाँ, यह अवश्य है कि ब्रजभाषा मे उसका विस्तृत रूप देखने मे आता है। कारण इसका उर्दू एवं फारसी रचनाओ से हिंदी भाषा का उत्कर्ष साधन है, क्योकि उस काल के अधिकाश कवियो मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है। उस समय अपनी भाषा की रक्षा के लिये ऐसा करना आवश्यक था।

अब रहे स्वकीया, परकीया और गणिका के विषय। स्वकीया की

कल्पना बड़ी सुंदर कल्पना है। उसमे इतनी मोहकता है कि निर्गुण-वादी संतो ने भी उसकी ममता नही छोड़ी। जो साकारता की चर्चा होने पर कानो पर हाथ रखते है, उनको भी परमात्मा को पति और अपने को पत्नी मानकर मानसिक उद्गारो को प्रकट करते देखा जाता है। वास्तव मे स्वकीया का जीवन बड़ा ही उदात्त, त्यागमय एवं प्रेममय है। उसकी कामनाएँ बड़ी ही मधुर और भावमय है, अतएव उसके हृदयोद्गार अनेक अवसरों पर बड़े ही आकर्षक होते है। कुछ असहृदय उनको सुनकर भले ही नाक-भौंह सिकोड़े, किंतु ससार इस रस मे निमग्न है। यहाँ तक कि जो संसार-त्यागी है वे भी अपनी मानसिक व्यथाओ और आकुलताओ को पत्नी का भाव ग्रहण कर ही लोक-पति तक पहुँचाते है। कबीर कट्टर निराकारवादी है। ज़रा उनकी बाते सुनिये—उनकी उक्ति कितनी मर्मस्पर्शिनी है, और वे किस प्रकार स्वकीया-हृदय के भावो को व्यंजित करते है। यह बात उनके गान का एक-एक पद ध्वनित कर रहा है—

तोको पीव मिलेंगे घूँघट को पट खोल रे।
घट घट मै वह साईं रमता कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै झूठा पचरँग चोल रे।
सुन्न महल मे दियना बारि ले आसा सों मत डोल रे।
जोग जुगुत सो रगमहल में पिय पायो अनमोल रे।
कहै 'कबीर' अनंद भयो है बाजत अनहद ढोल रे॥ १॥

❀ ❀ ❀

मिलना कठिन है कैसे मिलौगी पिय जाय।
समुझि सोचि पग धरौं जतन से बार बार डिग जाय।
ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नही ठहराय।
लोक लाज कुल की मरजादा देखत मन सकुचाय।

नैहर बास बसा पीहर मे लाज तजी नहि जाय।
अधर भूमि जहँ महल पिया का हम पै चढो न जाय।
धन भई बारी पुरुष भये भोला सुरत झकोरा खाय।
दूती सतगुरु मिले बीच मै दीन्हों भेद बताय।
साहब कबिर' पिया सों भेट्यो सीतल कंठ लगाय ॥ २ ॥

❀ ❀ ❀

बालम आओ हमारे गेह रे।
तुम बिन दुखिया देह रे॥
सब कोइ कहै तुम्हारी नारी मोको यह संदेह रे।
एक मेक ह्वै सेज न सोवे तब लग कैसो नेह रे।
अन्न न भावै नींद न आवै गृह बन धरे न धीर रे।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी ज्यों प्यासे को नीर रे।
है कोउ ऐसा पर उपकारी पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल 'कबीर' भये हैं बिन देखे जिउ जाय रे ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀

सपने में साईं मिला सोवत लिया जगाय।
आँख न खोलूँ डरपती मत सपना ह्वै जात ॥ ४ ॥

स्वकीया के विषय मे अधिक तर्क-वितर्क भी नहीं किया जाता। अतएव मै परकीया और गणिका के विषय को लेता हूँ। कहा जाता है, इन दोनो नायिकाओ का वर्णन करके व्रजभाषा ने उच्च आदर्शों का तिरस्कार किया है। प्रश्न यह है क्या व्रजभाषा द्वारा ही इन दोनों नायिकाओं की वर्णना हुई है? यह भी तो संस्कृत-साहित्य से ही व्रज-भाषा मे आई है, इसलिये इन दोनो नायिकाओ का निरूपण भी साहित्यशास्त्र के नियमानुसार परंपरागत है, इसमे व्रजभाषा का क्या अनौचित्य? जब मै परंपरा की बात कहता हूँ तो इसका यह अर्थ न

समझना चाहिये कि मै परपरा के अंधानुकरण का पक्षपाती हूँ। परंपरा वहीं तक ग्राह्य, है जहाँ तक वह आपत्तिजनक न हो। जब उसके द्वारा समाज अथवा जाति का अमंगल होता हो, जब उसके आधार से उनमे बुराइयाँ फैलती हो तो वह इस योग्य है कि उसकी उपेक्षा की जावे। इसको मै स्वीकार करता हूँ। इसलिये जब मै परंपरा की बात कहता हूँ तो उसका इतना ही प्रयोजन होता है कि प्रस्तुत विषय की उद्भावना ब्रजभाषा द्वारा नही हुई। कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा उसे छोड़ सकती थी, यह तर्क ठीक है। अतएप अब मै यह देखूँगा कि ब्रजभाषा ने उसे क्यो नही छोड़ा—साहित्यदर्पणकार लिखते है—

'उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते ॥<br>
परोढा वर्जयित्वा तु वेश्या चाननु रागिणीम।<br>
आलम्बन नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः ॥

"अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त-रस शृंगार कहलाता है। पर स्त्री तथा अनुराग-शून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकाये तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलंबन विभाव माने जाते है"।

यह लिखकर भी साहित्यदर्पणकार ने परकीया और गणिका का वर्णन अपने ग्रंथ मे किया है। वे लिखते है—

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।<br>
यात्रादिनिरतान्योढा कुलटा गलितत्रपा ॥<br>
कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना।<br>
धीरा कलाप्रगल्भा स्याद्वेश्या सामान्यनायिका ॥

"परकीया नायिका दो प्रकार की होती है' एक अन्य विवाहिता और दूसरी अविवाहिता कन्या। उनमे से यात्रा आदिक मेले तमाशों की शौकीन निर्लज्जा 'अन्योढ़ा' कहलाती है"।

"अविवाहिता सलज्जा नवयौवना कन्या कहलती है और धीरा नृत्य गीतादि ६४ कलाओ मे निपुण सामान्या स्त्री वेश्या"।

कन्या के विषय मे लिखते है, अस्याश्च पित्राद्यायत्तत्वात्परकीयात्वम्' ; यह पिता आदि के वश मे होने से परकीया कहलाती है।

इसके बाद स्वाधीनपतिका आदि आठ प्रकार की नायिकाओ को गिनाकर वे यह भी कहते है—

इति साष्टाविंशतिशतमुत्तममध्याधमस्वरूपेण ।
चतुराधिकाशीतियुत शतत्रय नायिकाभेदाः ।

मतलब यह कि स्वीया के १३ भेदो मे जब परकीया के दो भेद और एक वेश्या को मिलायेगे तो उनकी सख्या १६ होगी। इसको स्वाधीनपतिका आदि आठ भेदो से गुणेगे तो उनकी संख्या १२८ होगी। उत्तमा, मध्यमा, अधमा के विचार से यही सख्या ८४ हो जायगी। इससे यह पाया गया कि स्वकीया, परकीया के समान गणिका के भी स्वाधीनपतिका आदि आठ भेद हो सकते है और उनमे भी 'उत्तमा' आदि का क्रम रखा जा सकता है। साहित्यदर्पण मे गणिका अथवा परकीया के इन भेदो का वर्णन नही है। परंतु 'रसमंजरी' मे इनका विलक्षण निरूपण है। 'रसमजरीकार' भानुदत्त की उपस्थिति षोड़श शताव्दी मे बतलाई जाती है।

नाट्य-शास्त्रकार ने अपने ग्रंथ मे स्वीया, परकीया, एवं सामान्या का वर्णन इस प्रकार से नहीं किया है, जिस प्रकार से उक्त ग्रंथो मे पाया जाता है। किंतु उन्होंने इतनी नायिकाएँ अपने ग्रंथ में लिखी है कि उनमे इन सबका अंतर्भाव हो जाता है। बाईसवे अध्याय में वे लिखते है—

वेश्याया कुलटाया वा प्रेष्याया वा प्रयोक्तृभिः ।
एभिर्भावविशेषैस्तु कर्तव्यमभिसारणम् ॥२१८॥

तेइसवे अध्याय में आठवें श्लोक मे वे यह कहते है—

दिव्या च नृपपत्नी च कुलस्त्री गणिका तथा ।
एतास्तु नायिकाज्ञेया नाना प्रकृतिलक्षणाः ।

इसी अध्याय मे १५, १६, १७ श्लोको मे उन्होने स्त्रियो के सत्तरह भेद बतलाये है। वे ये है—महादेवी, देवी, स्वामिनी, स्थापिनी, भोगिनी, शिल्पकारी, नाटकीया, नर्त्तकी, अनुचारिका, परिचारिका, सचारिणी, प्रेषणचारिका, महत्तरी, प्रतीहारी, कुमारी, स्थविरा, आयुक्तिका फिर अनुरक्ता, विरक्ता आदि कुछ और नायिकाए उन्होंने गिनाई है और सबो के लक्षण बतलाये है। उनके देखने से लगभग सब नायिकाएँ उनमे आ जाती है। जिनका वर्णन उक्त ग्रंथकारो ने किया है। इससे पाया जाता है कि परकीया अथवा गणिका की वर्णना आधुनिक नही है, वरंच बहुत प्राचीन है। प्राचीन होने से ही कोई विषय श्लाघनीय अथवा अभिनंदनीय नही होता, इसलिये विचारणीय यह है कि साहित्य मे परकीया और गणिका का ग्रहण कहाँ तक युक्ति संगत है।

जब मै किसी विषय के परंपरागत अथवा प्राचीन होने पर जोर देता हूँ तो उसका अर्थ यह होता है कि उनके उद्भावक वे है, जो विश्वबंधु और सत्यव्रत कहे जा सकते हैं। ऐसी अवस्था मे वे तर्क योग्य नही। फिर भी मै प्रस्तुत विषय की ओर प्रवृत्त होता हूँ। कहा जाता है कि परकीया का आदर्श ही बुरा है, यह ऐसा आदर्श है जो कुलांगनाओ को मार्गच्युत कर सकता, उनको भ्रांत बना सकता और निष्कलंक कुल मे कलंक लगा सकता है। जो कुछ कहा गया उसमे सत्यता का अंश है, किंतु सांसारिकता बिल्कुल नहीं। प्रेम बड़ा रहस्य-मय है, प्रेमपरायण हृदय समाज का बंधन क्या किसी बंधन को नही मानता, ऐसे उदाहरण नित्य हमारी आँखों के सामने आते रहते है। हम आँखे छिपा सकते है, किंतु घटना बिना हुए नही रहती। हृदय से हृदय का सम्मिलन स्वाभाविक है, सत्य है, विधि का अनुल्लंघनीय विधान है। लौकिक नियम उसका नियन्त्रण कर सकता है, किंतु उसकी सीमा है। जहाँ सीमोल्लघन होता है वहाँ यह नियम टूट जाता है। इन बातो पर दृष्टि रख कर ही सिद्धांतो अथवा आदर्शो की मीमांसा हो

सकती है। यदि परकीया एक सत्य व्यापार है, और समाज मे चिरकाल से गृहीत है, तो उसका उल्लेख गर्हित क्यो ? हिंदू समाज का वरन् संसार का सर्वोच्च आदर्श स्वकीया है। परंतु उसके नीचे ही परकीया का स्थान है, उसका प्रेम भी उदात्त है, और एक प्रेमी ही तक परिमित है। उसमे त्याग की मात्रा भी न्यून नही, उसके प्रेम-पथ मे विघ्न बाधाओ के ऐसे दुरारोह पर्वत खड़े मिलते है जिनका सामना स्वकीया को करना ही नही पड़ता, तो भी वह अपने व्रत मे उत्तीर्ण होती है, और प्रेम-कसौटी पर कसे जाने पर उसी के समान ही ठीक उतरती है, फिर उसकी अवहेलना क्यो ?

परकीया नायिका में जो प्रेमजन्य व्याकुलता होती है, उसमे जो अधीरता, उत्सुकता, प्रेमोन्माद और तड़प देखी जाती है, वह बड़ी ही अदम्य एवं वेदनामयी होती है। पहाड़ी नदियो की गति मे बड़ी प्रखरता, बड़ी ही सबलता, बड़ा वेग और बड़ी ही दुर्दमनीयता होती है, क्योकि उसके पथ मे विघ्न बाधा स्वरूप अनेक प्रस्तर खंड, अनेक संकीर्ण मार्ग और बहुत से पहाड़ी दर्रे होते है। परकीया नायिकाओं का पथ भी इसी प्रकार विपुल संकटाकीर्ण होता है। उसको लोक-लाज की बेड़ी काटनी पड़ती है, वंशगत बंधन तोड़ना पड़ता है, गुरुजनो की भर्त्सना, गॉववालो का उत्पीड़न और सखियों का तिरस्कार सहना पड़ता है. अतएव उसकी गति भी पहाड़ी नदियों की सी उद्वेलित होती है। उसके हृदय के भावों का चित्रण टेढ़ी खीर है, साथ ही बड़ा ओजमय द्रावक और मर्मस्पर्शी भी है। उसमे सत्यता है, सौंदर्य है, और है प्रेम-पथ का भीषण दृश्य। उसमें वह अटलता है जो हथेली पर सर लिये फिरनेवालों में ही देखी जाती है। प्रत्येक भाषा की लेखनी का चमत्कार इस भाव के प्रदर्शन में देखने योग्य है, वह साहित्य की एक अपूर्व सम्पत्ति है। थोड़े-से पद्य आप लोगों के अवलोकन के लिये यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

अति गीन मृनाल क तारहुँ ते तहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह तें द्वार सँकीन तहाँ परतीत को टाडो लदावनों है।
कबि बोधा अनी घनी नेजहुँ ते चढि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पथ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है ॥ १ ॥

❀ ❀ ❀

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि, कलंकिनी, कुनारी हौं।
कैसो परलोक, नरलोक, बर लोकन में,
लीनी मै अलीक. लोक लोकन ते न्यारी हौं।
तन जाव, मन जाव, देव गुरुजन जाव,
जीव क्यों न जाव टेक टरति न टारी है।
बृंदाबन वारे बनवारी के मुकुट पर,
पीतपट वारी प्यारी सूरति पै वारी है ॥ २ ॥

एक विजातीया परकीया की बातें सुनिये—

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त हा बिकानी बदनामी भी सहूँगी मै।
देव पूजा ठानी मैं निवाज हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मै।
साँवरा सलोना सिर ताज दिए कुल्लेदार,
तेरे नेह दाग मैं निदाग हो दहूँगी मै।
नंद के कुमार कुरबान ताडी सूरत पै,
ताड नाल प्यार हिंदुआनी हो रहूँगी मै ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀

क्या इन आँखिन सा निरसक है मोहन को तन पानिप पीजै।
नेकु निहारें कलंक लगै यहि गाँव बसे कहो कैसे कै जीजै।
होत रहे मन यो मतिराम कहूँ बन जाय बडो तप कीजै।
है बनमाल हिये लगिये अरु है मुरली अधरा रस लीजै ॥ ४ ॥

❀ ❀ ❀

भेस भये बिख भावते भूखन भूख न भोजन की कछु ईछी।
मीच की साध न सोंधे की साव न दूध सुधा दधि माखन छीछी।
चंदन तौ चितयो नहीं जात चुभी चित माँहि चितौनि तिरीछी।
फूल ज्यो सूल सिला सम सेज बिछौनन बीच बिछी जनु बीछी॥ ५ ॥

इस भाव के कुछ फ्रेंच भाषा के पद्य भी देखिये—

Oh ! que l'amour est charmante !
Moi, si ma tante le vent bieu,
J'y suis bien consentante,
Mais si ma tante ne vent pas
Daus un convent J'y entre.
Ah due l'amour est charmante !
Mais si ma tante ne vent pas,
Daus un convent J'y entre,
J'y prierai Dilu four mes parents,
Mais non pas four man tante

"आह! प्रेम करने में कैसा सुख है! यदि मेरी चाची सिर्फ इसके लिए आज्ञा दे दे। हाय! इस बात को मैं कितना चाहती हू! यदि चाची ने आज्ञा न दी तो मै उपासना मंदिर मे जाऊँगी"

"आह प्रेम मे कैसा सुख है! किंतु यदि मेरी चाची मुझे इसकी आज्ञा न देगी, तो मै किसी उपासना मंदिर मे जाऊँगी वहाँ ईश्वर से सब के (सब संबंधियों के) लिये प्रार्थना करूँगी, पर अपनी चाची के लिये नही।"

Mon per' me dit tonjours,
Marie toi, ma fille !
Non, non, mon, pere,
Je ne venx plus aimer,

Car mon amant est l earmeea
Elle s'est habıleec
En brance mılıtaıre,
Ell'fıt conper prıser ses blonds chevenx
A la facon d'son amourenx

"पिता नित्य मुझसे कहते है कि बेटी ! दूसरे से व्याह कर ले। नही नही, पिता मै फिर से दूसरे से प्रेम नही कर सकती, क्यो मेरे हृदय का देवता सेना मे है।"

"( प्रेमी के लोटने की संभावना न देखकर ) बालिका ने पुरुषोचित वेष बनाया, प्रेमी की ही भॉति अपने सुदर, मुलायम, घूँघरवाले बाल कटवा दिये। इसके बाद उसने सेना की ओर यात्रा की।"

कुछ उर्दू के पद्यो को भी देखिये।

गुल है जखमी बहार के हाथो। दिल है सदचाक यार के हाथो।
दम बदम कता होती जाती है। उम्र लैलो निहार के हाथों।
जॉ बलब हो रहा हूॅ मिस्ले हुबाब। मै तेरे इन्तजार के हाथो।
इक शिगूफा उठे है रोज नया। इस दिले दागदार के हाथो।
यह जो खटके है दिल मे कॉटा सा। मिजा है नोकेखार है क्या है ?
चश्मे बददूर तेरी ऑखो मे। नशा है, या खुमार है क्या है ?

❀ ❀ ❀

कैसी वफा ! कहॉ की मुहब्बत ! किधर की मेह्र !
वाकिफ ही तू नही है- कि होता है यार क्या ?

ससार की जितनी प्रेम कहानियॉ है, उनमे से अधिकांश का आधार परकीया है। चाहे वे भगवान् श्रीकृष्ण अथवा श्रीमती राधिका संबधिनी कथाएॅ हो, चाहे लैला मजनूॅ, चाहे शीरी फरहाद आदि की दास्ताने। किसी भाषा के साहित्यिक ग्रंथो, काव्यो, उपन्यासो और नाटको को उठा लीजिये, उनमे से अधिकतर मे प्रेमिक एवं प्रेयसी. आशिक-माशूक, और लवर एवं बिलवेड् की कथाएं वडी रसीली और

ओजस्विनी भाषाओं में लिखी मिलेगी। कारण इसका यह है कि इस प्रकार की रचनाओं में बड़ी हृदयग्राहिता होती है। स्वकीया का मार्ग कंटकाकीर्ण नहीं होता; और न उसके मार्ग में आदिम प्रेम के पचड़े होते, इसलिए उसके मानस में वे भाव नहीं उदित होते जो परकीया के हृदय में नाना प्रकार की विघ्न-बाधाओं का सामना करने के कारण उत्पन्न होते हैं। अनेक संकटों में पड़ने, नाना दुःख झेलने और सैकड़ों झंझटों से टक्कर लेने पर जो सफलता मिलती है वह बड़ी सुखकरी और आनंदमयी होती है। उसका वर्णन बहुत ही चमत्कारक और मनोहर होता है, इसलिए हृदयों को मोह लेने की उसमें अपूर्व सामग्री मिलती है। उस वर्णन में आपत्तिपतिता, प्रेमोन्मादिता, विह्वला और नितांत उत्कंठिता का जो द्रावक क्रंदन सुना जाता है, जो मर्मवेधी पीड़ा देखी जाती है, जो उद्भ्रांत भाव दृग्गोचर होता है, उससे कौन ऐसा सहृदय है जो प्रभावित नहीं होता, और कौन ऐसा हृदय है जो द्रवीभूत नहीं बनता। यही कारण है कि उसकी कथाएँ रोचक होती हैं, चाव से पढ़ी सुनी जाती हैं और सब उन्हें प्यार करते हैं। यदि परकीया में वास्तविकता न होती, उसकी बातें सत्य न होकर कल्पित होतीं; तो उसमें इतनी स्वाभाविकता न मिलती। इसी स्वाभाविकता के कारण संसार के साहित्य में उसका आदर है, और यह व्यापक आदर ही उसके अस्तित्व के महत्त्व का प्रतिपादक है।

साहित्य-दर्पणकार कहते हैं; परकीया दो प्रकार की होती है, एक वह अविवाहिता कन्या जो माता पिता अथवा किसी दूसरे अभिभावक के अधिकार में रहते किसी पुरुष से स्वतंत्र प्रेम करती है, और दूसरी वह जो पति के आधीन होते पर-पुरुषानुरागिणी बनती है। रसमंजरी-कार भी यही लिखते हैं—

अप्रकटपरपुरुषानुरागा परकीया। सा द्विविधा परोढा कन्यका च। कन्यायाः पित्राद्यधीनतया परकीयता।

पहली गुरुजन का बंधन तोड़ती है, और दूसरी पतिदेव का। वर्त्त-मान सभ्य जगत की ललनाएँ आज कल यही तो कर रही हैं। यूरोप और अमेरिका की कन्याएँ माता-पिता को परवा न करके आप स्वयं किसी पुरुष को वरण कर लेती है। वहाँ की पतिवती ललनाएँ पति का त्याग कर जब जी में आता है किसी अन्य को प्रियतम बना लेती है। उन सभ्य देशो मे ऐसा करना अनुचित नही समझा जाता, वरन् यह स्त्री जाति का स्वत्व समझा जाता है और माना जाता है कि ऐसा करने ही मे स्त्री जाति की मर्यादा और महत्ता सुरक्षित रहती है। क्योकि इस प्रणाली से उनकी पराधीनता की बेड़ी कटती है, और स्वतंत्रता का सच्चा सुख उन्हें प्राप्त होता है। आज कल भारत की सुशिक्षिता ललनाएँ भी इन प्रथाओ की ओर सतृष्ण नेत्रो से देख रही है, और स्वयवरा होने की ही इच्छा दिन-दिन प्रबल नही हो रही है, पतियो के परित्याग का अधिकार प्राप्त करने का उद्योग भी चल रहा है। यदि वांछनीय यही है, तो परकीया को नायिकाओं मे स्थान देकर प्राचीन साहित्यकारो ने स्त्री-जाति के स्वत्व की ही रक्षा तो की है, उन्होने प्रकृति की नाड़ी टटोल-कर उस समय उनके इस अधिकार का स्वीकार किया, उनकी वेदनाओ और उत्कंठाओ का मार्मिक भाषा मे उल्लेख किया, जिसे समग्र समाज उनको जैसी चाहिये वैसी अच्छी दृष्टि से नही देखता था। इतना निवेदन करने के बाद क्या यह बतलाने की आवश्यकता रही कि परकीया का वर्णन युक्तिसंगत है या नहीं!

अब रही गणिका। समाज मे गणिका का भी उपयोग है। नाट्य-शास्त्रकार महात्मा भरत ने अपने ग्रथ मे बड़े विस्तार से यह लिखा है, कि नाटको मे गणिका की उपयोगिता से कहाँ-कहाँ कौन सा लाभ उठाया जा सकता है। एक नीतिशास्त्रकार गणिका के विषय मे यह कहता है—

देशाटन पण्डितमित्रता च वारागना राजसभाप्रवेशः।
अनेक शास्त्राणि विलोकितानि चातुर्यमूलानि भवन्ति पच॥

"देशाटन, पंडित की मित्रता, वारांगना का सहवास, राजसभा-प्रवेश, अनेक शास्त्रो का अवलोकन, ये पॉचो चातुर्य्यकला सीखने के मूल है।"

महाराज भर्तृहरि ने नृप-नीति को वारांगना के समान लिखा है, इस पद्य मे उन्होंने वारांगनाओ के कुछ गुणो का भी उल्लेख किया है। देखिये—

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च।
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरावदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च।
वारागणेव नृपनीति अनेकरूपा॥

"सत्या है, अनृता भी, परुषा है, प्रियवादिनी भी, हिंस्रा है, दयावती भी; अनुदारा है, वदान्या भी, नित्यव्यया है, प्रचुर धनागमा भी; वास्तविक बात यह है कि वारागना के समान नृप-नीति अनेक रूपा है।"

साहित्यदर्पणकार भी उसको 'क्वापि सत्यानुरागिणी' लिखते है, मृच्छकटिक की बसन्तसेना इसका प्रमाण है। वे यह भी लिखते है—

तस्कराः पडका मूर्खाः सुखप्राप्तधनास्तथा।
लिगिनश्छन्नकामाद्या आसा प्रायेण वल्लभाः॥

"चोर, नपुंसक, मूर्ख, जिनको अनायास धन मिल गया है वे और छद्म वेषधारी, प्रच्छन्न कामुक पुरुष प्रायः वेश्याओं के वल्लभ होते है।" कम से कम इस पद्य से यह तो ज्ञात होता है, कि दुष्टो के एक बहुत बड़े दल से कुलांगनाएँ वेश्याओ के कारण सुरक्षित रहती है। कभी-कभी दुष्टजनो और बदमाशो का जो आक्रमण कुल ललनाओ पर होता रहता है, वही इसका प्रमाण है। छावनियो के सैनिको के लिये जिस प्रकार उनका उपयोग होता है, वह भी अविदित नही।

इन बातो पर विचार करने से यह नहीं कहा जा सकता कि समाज मे गणिकाओं का कुछ उपयोग नही। वास्तविक बात यह है कि इन्हीं दृष्टियो से नायिकाओ मे उनकी गणना है। शरीर मे कुछ ऐसे अंग है,

जिनका नाम लेना भी अश्लीलता है, फिर भी वे शरीर मे है और उपयोगी है। इसी प्रकार वेश्याएँ कितनी ही कुत्सित क्यो न हो, पर वे समाज का एक अंग है और उनका भी उपयोग है। इसीलिये साहित्य मे उनकी चर्चा है। किंतु यह स्मरण रहे कि जहाँ उनका वर्णन है, वहाँ उनकी कुत्सा ही की गई है। नायिका विभेद के ग्रंथो मे उनको स्वार्थ-परायण ही अंकित किया गया है। उनके कपटमय मानसिक भावो के चित्रण मे जैसी उच्च कोटि की कविताएँ की गई है, कला की दृष्टि से उनकी जितनी प्रशंसा की जावे, थोडी है। कामुको के ऑख खोलने, और लम्पटो को सावधान करने की भी पर्याप्त सामग्री उनमे पाई जाती है जब एक वेश्या के मुख से कोई कवि कहलाता है—'नाथ हमै तुमै अतर पारत हार उतारि इतै धरि राखो'—उस समय जहॉ वह कवि कला का कमाल दिखलाता है, एक स्वार्थमय मानस का विचित्र चित्र खीचता है, वही यह भी बतलाता है कि किस प्रकार गणिकाओ की मधुरतम बातो मे प्रतारणा छिपी रहती है, और कैसे वह प्रेम का कपट जाल फैलाकर कामुको को फॉस लेती है। इस पद्य मे विवेकियो के लिये यह सुंदर शिक्षा है, और असावधानो के लिये सावधानता का मत्र। इसलिये जिस दृष्टि से देखा जावे साहित्य मे गणिकाओ का नायिका रूप मे ग्रहण असंगत नही ज्ञात होता।

एक बात और सुनिये। हाल मे अमेरिका की किसी कौंसिल मे यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि वहॉ की गणिकाये नगर के बाहर बसाई जावे, और नगर मे रहने का उनका अधिकार हरण कर लिया जावे। प्रस्ताव उपस्थित होने पर यह तय पाया कि पहले यह निश्चित कर लिया जावे कि किन आधारों से कोई स्त्री गणिका मानी जा सकती है। यह बात स्वीकृत हुई और आधार निश्चित किये जाने लगे। किंतु कौन गणिका है और कौन अगणिका यह निश्चित करने मे इतना विवाद बढ़ा कि कोई बहुसम्मत आधार ही निश्चित न हो सका। परिणाम यह हुआ कि प्रस्तावक

को प्रस्ताव उठा लेना पड़ा। यह वर्तमान सभ्य जगत के सर्वप्रधान देश का हाल है, तर्क करने वाले महाशय इस रहस्य का उद्घाटन करके स्वयं सोचें कि गणिका का नायिकाओं में स्थान पाना संगत है या असंगत।

साहित्यकारों ने स्वयं यह बतलाया है कि कौन-कौन विषय अश्लील और जुगुप्सा-जनक हैं। यदि उन की दृष्टि में नायिका-भेद अमर्यादित और जुगुप्सा-मय होता तो कभी वे अपने ग्रंथों में उसे स्थान न देते और न उसे शृंगार रस मानते। प्रायः ब्रजभाषा की नायिका-भेद की रचनाओं पर कटाक्ष करते हुए यह कहा जाता है कि जिस समय भारत का पतन हो रहा था, और वह दुर्व्यसनों और भोग लिप्साओं में फँस गया था, उन्हीं दुर्दिनों में नायिका भेद की कल्पना की गई, और विषय-प्रिय लोगों के उत्साह दान से वह लालित, पालित और परिवर्द्धित हुई। किंतु इतिहास में ऐसा पाया नहीं जाता। नायिका भेद का इतिहास आप लोग सुन चुके। जिस काल में उसकी उद्भावना हुई, उस समय ब्रजभाषा का कंठ भी नहीं फूटा था, फिर उस पर इस प्रकार का कटाक्ष कहाँ तक संगत है।

## शृंगार रस का दुरुपयोग

संसार में उत्तम से उत्तम और पवित्र से पवित्र कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसका दुरुपयोग न हो सके। सुधा स्वर्गीय पदार्थ है, और उसमें जीवनप्रदान क्षमता है। किंतु यदि किसी संसार-उत्पीड़क को जीवन दान करने के लिये उसका उपयोग होगा, तो यह उपयोग सदुपयोग न होगा, दुरुपयोग कहलावेगा। जल का नाम जीवन है, यदि उसका उपयोग उचित मात्रा में होगा, तो वह स्वास्थ्यरक्षा का प्रधान साधन बनेगा, किंतु यदि वह आवश्यकता से अधिक पी लिया जावे, तो व्याधि का कारण और कष्टदायक होगा। इसलिये सब वस्तुओं का सदुपयोग ही वाञ्छनीय है। शृंगार रस क्या है, यह मैं बतला चुका हूँ, उसकी उपयोगिता संसार-व्यापिनी है, किंतु दुःख है, उसका दुरुपयोग भी हुआ।

संस्कृत के कुछ महाकवियो ने भी ऐसा किया, और ब्रजभाषा के अनेक कवि एव महाकवियो ने भी। महाकवि कालिदास की कुछ रचनाएँ अश्लील है। कुमार संभव के अष्टम सर्ग मे उन्होने पार्वती देवी के साथ भगवान् शिव का जो विहार-वर्णन किया है वह अवर्णनीय था। अनेक सस्कृत के विद्वानो ने इसकी निदा की है। साहित्यदर्पणकार लिखते है—

यो यथाभूतस्तस्यायथावर्णने प्रकृतिविपर्ययो दोष.—यथा कुमारसभवे उत्तमदेवतयोः पार्वतीपरमेश्वरयोः सभोगश्रृ गारवर्णनम्।

"जो जैसी प्रकृति का है, उसके स्वरूप के अनुरूप वर्णन न होने से प्रकृति विपर्यय दोष होता है, जैसे कुमारसंभव मे उत्तम देवता श्रीपार्वती और महादेव का संभोग श्रृंगार वर्णन करना।

आचार्य मम्मट भी यही कहते है—

'रतिः संभोगश्रृ गाररूपा उत्तमदेवताविषयान वर्णनीया, तद् वर्णनं हि पित्रोः सभोगवर्णनमिवात्यमनुचितम्।"

"उत्तम देवता विषयक सभोग श्रृगार वर्णन करना योग्य नही, उसका वर्णन माता-पिता के सभोग वर्णन समान अत्यन्त अनुचित है।"

उनका मघदूत बड़ा ही अपूर्व ग्रथ है, किंतु कभी-कभी सुरुचि पर उसके द्वारा भी वज्रपात होता है। श्रृगार-लतिका का कोई-कोई पद्म-पुष्प भी जैसा चाहिये वैसा सुगंधित नहीं। नैषध हो, चाहे माघ, चाहे किरातार्जुनीय—लगभग सभी काव्य-ग्रथो मे कुछ न कुछ पद्य ऐसे हैं जो परिमार्जित रुचि के नही कहे जा सकते। गीत-गोविन्द की कोमल कांत पदावली की जितनी प्रशसा की जावे थोड़ी है, उस विषय मे कोई काव्य ग्रथ उसका समकक्ष नहीं। पद्यो [illegible] पाठ्ये [illegible] [illegible] [illegible] एक-एक शब्द सुधा वर्षण कर रहा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। किंतु इस रस सरोवर मे कुछ [illegible] भावरुचि [illegible] [illegible] [illegible] कमनीय नहीं मानती। नाटकों मे [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] है, जो सुरुचि संगत नहीं कहे जा सकते। वास्तविक बात यह [illegible]

सस्कृत-साहित्य अश्लीलता तो मानता है, किंतु जहॉ कोई विषय किसी भाव के न वर्णन करने से अपूर्ण रह जाता है, अथवा जहॉ कोई आशय प्रसग प्राप्त सत्य है, वहॉ वह उसकी पूर्ति को ही प्रधानता देता है। उस समय वह अश्लीलता के फेर मे नही पडता। क्योकि अश्लीलता की भी सीमा है। वैद्यक ग्रंथो मे जहॉ नाना रोगो की व्याख्या है, क्या वहॉ गुप्तांगों के रोगो का वर्णन न होगा, अवश्य होगा और यदि अवश्य होगा, तो उन अंगो के एक-एक अंश का क्या खुला निरूपण उसमे न मिलेगा? यदि मिलेगा, तो क्या इससे ग्रंथ मे अश्लीलता आ जावेगी? कोषो में वे शब्द मिलते है, मुख से जिनका उच्चारण करते संकोच होता है। उनमे ऐसे शब्द मिलते ही नही, उनका पूरा विवरण भी होता है, तो क्या इससे कोष निंदनीय बन जाता है? स्त्री के वे अंग जो सदा गुप्त रखे जाते है, जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखना भी अभद्रता समझी जाती है, जिनकी चर्चा भी कलंकित करती है। डाक्टर उन्हीं अंगो की जॉच पड़ताल करता है, उनका स्पर्श करता है, आवश्यकता होने पर उनको टटोलता है. उनको चीरना-फाड़ता है, तरह-तरह से उन्हें देखता-भालता है, परन्तु यह कार्य गर्हित नहीं माना जाता और न डाक्टर ही को कोई बुरा कहता है; क्योंकि उसका उद्देश्य सत् है। ऐसा करने के समय वह मनोविकार-ग्रस्त नही होता, और न उसकी निर्दोष मनोवृत्ति पापवासना-मूलक होती। विशेषज्ञ लोग कला की सर्वांग पूर्णता के लिये साहित्य-कारो के अश्लीलता उपेक्षा-संबंधी कार्य को इसी प्रकार का मानते हैं। मत-भिन्नता को कहॉ स्थान नहीं, परन्तु एक हद तक वह सिद्धांत स्वीकार किया जा सकता है। मैं समझता हूॅ. सस्कृत-साहित्य की इस प्रकार की बहुत सी रचनाऍ इस हद के अंदर आ जा सकती है। परंतु उसमे भी ऐसे कवि पाये जाते हैं, जिनकी काम-वासनामय प्रवृत्ति उनसे ऐसी अश्लील रचना कराने मे समर्थ हुई है, जो किसी भॉति

अनुमोदनीय नहीं। कुछ ऐसी ही रचनाएँ ब्रजभाषा में भी हैं।

श्रीमती राधिका का पद बहुत ऊँचा है, उनको वही गौरव प्राप्त है, जो किसी लोकाराधनीया ललना को दिया जा सकता है। भगवान श्रीकृष्ण यदि लोक-पूज्य महापुरुष हैं, तो श्रीमती राधिका सर्वजन आदृता रमणी। वे यदि मूर्तिमान् प्रेम हैं, तो ये मूर्तिमती प्रेमिका। वे यदि विष्णु के अवतार हैं, तो ये हैं लक्ष्मी स्वरूपिणी। वे यदि हैं देवादिदेव, तो ये हैं साक्षात् स्वर्ग की देवी। अपने सच्चे प्रणय और निःस्वार्थ प्रेम के कारण ही उनके नाम को भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र नाम के प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। कहा जाता है, श्रीमद्भागवत में उनका नाम नहीं, रामानुजाचार्य्य ने भी ईश्वरीय युगल मूर्ति की कल्पना के समय उनका स्थान रुक्मिणी देवी को दिया, इसलिये उनको अथवा उनके नाम को वह महत्ता नहीं प्राप्त होती, जो अन्य देव-विभूतियों को मिलती है। भागवत में भले ही उनका नाम न हो, किंतु ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण-खंड और खिल हरिवंश पर्व में उनका नाम मिलता है। महात्मा विष्णु स्वामी और निम्बार्काचार्य्य ने राधा नाम की प्रतिष्ठा की है, महाप्रभु वल्लभाचार्य्य ने भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना के साथ श्रीमती राधिका के स्वर्गीय प्रेम का प्रचार भी किया है। स्वामी हित हरिवंश ने तो राधा-वल्लभी एक संप्रदाय ही बना डाला, जिसमें उन्होंने उन्हीं को सर्वाराध्या बतलाया। चैतन्यदेव स्वयं मूर्तिवान राधा थे, उन्होंने श्रीमती राधिका के उदात्त प्रेम का जो आदर्श उपस्थित किया वह अभूतपूर्व है। बंग कवि चंडीदास, मैथिल-कोकिल विद्यापति, पीयूषवर्षी महापुरुष जयदेव और प्रज्ञाचक्षु महाकवि सूरदास ने जिस विश्वव्यापी स्वर में श्रीमती राधिका का गुणगान किया, वह लोक विश्रुत है। उत्तरीय भारत और गुजरात के लक्षाधिक मंदिरों में भगवान श्रीकृष्ण के साथ श्रीमती राधिका की मूर्त्ति आज भी प्रतिष्ठित है। लगभग सहस्र वर्ष से वे करोड़ों हिंदुओं के भक्ति-मंडित हृदय-

सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके विषय में उनके सम्प्रदाय वालों और संस्कृत के कुछ प्रधान ग्रंथों ने जो लिखा है, वह तो उनको सर्व लोकों से उच्च गोलोक की अधिष्ठातृ देवी और जगदंबिका बतलाता ही है, किंतु नव शिक्षा-दीक्षा दीक्षित लोगों ने वर्तमान काल में उनके विषय में जो लिखा है, वह भी उनकी महत्ता का पूर्ण द्योतक है—बंगभाषा और साहित्य-कार बाबू दीनेशचंद्र सेन बी० ए० अपने ग्रंथ के पृष्ठ २४४ में यह लिखते हैं—

'अपूर्व प्रेम और भक्ति के उपकरण से श्रीमती राधिका सुंदरी निर्मित हैं, वे आयशा अथवा कुंदनंदिनी नहीं हैं—जो उनके विरहजन्य कष्ट की एक कणिका वहन कर सकें, अथवा उनके सुख-समुद्र की एक लहरी धारण करने में समर्थ हों, इस प्रकार का नारी चरित्र पृथ्वी के काव्योद्यान में कहाँ है।"

बंग प्रांत के प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक श्रीयुत पूर्णचंद्र वसु अपने 'साहित्य चिंता' नामक ग्रंथ में श्रीमती राधिका के विषय में यह लिखते हैं—

"आर्यों के भक्ति शास्त्र में एक और भी आदर्श प्रेम है, राधा उस प्रेम की प्रतिमा है, गोपियाँ उस प्रेम की सहचरी हैं। राधिका मधुर गोपिका-प्रेम का प्रकृष्ट निदर्शन है। पति-पत्नी का प्रेम जहाँ तक उन्नत हो सकता है, उस उन्नतावस्था को राधिका का प्रेम पहुँचकर कृष्ण भक्ति से परिपूर्ण हो गया था। इसीसे इस भक्ति का नाम प्रेमा-भक्ति है। दाम्पत्य प्रेम की परिपूर्णता को भगवदर्पण करना ही इसका उद्देश्य है; क्योंकि भगवान ही प्राणवल्लभ हैं। राधिका और गोपियों के अतिरिक्त और कोई नहीं कह सकता कि भगवान् हमारे प्राणवल्लभ हैं। सत्यभामा ने ऐसा कहा था, पर राधिका-प्रेमी कृष्ण ने उनका यह दर्प चूर्ण कर दिया था। सत्यभामा का प्रेम दर्पित भक्ति का रूप था, वह राधिका की आत्मसमर्पण-कारिणी प्रेमासक्ति की तुलना नहीं कर सकता। रुक्मिणी की भक्ति में प्रेम की मधुरता दाम्पत्य प्रेम की मधुरता में मिल

गई थी, जिससे उनका प्रेम पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। राधिका उसी प्रेम भक्ति में उल्लासिनी और कृष्ण लीलामयी हो गई थी। उनके लिये कृष्ण का प्रेम ही संसार था, वही उनका सर्वस्व था। कृष्ण ही राधा के धन, सुख और चिंता थे, वे श्याम के प्रेम में ही मत्त थी।"

श्रीमती राधिका की इस महिमामयी मूर्ति को व्रजभाषा के थोड़े से ही कवियों अथवा महाकवियों ने पहचाना, अधिकांश ने उनकी एवं भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को साधारण दृष्टि से ही देखा और साधारण दृष्टि से ही उनको अंकित किया। इस प्रकार के कविगण भी अधिक उपालंभ योग्य नहीं, क्योंकि फिर भी उनकी रचनाएँ अमर्यादित नहीं। दुःख उन कवियों के कृत्य पर है, जिन्होंने साधारण विषयी पुरुष स्त्री के समान उनके चरित्रों को अंकित किया और इस प्रकार पवित्र शृंगार रस का दुरुपयोग करके व्रजभाषा को भी कलंकित बनाया। माता-पिता की विहार संबंधी अनेक बातें ऐसी हैं, जिनको पुत्र अपने मुख पर भी नहीं ला सकता, उनके विषय में अपनी जीभ भी नहीं हिला सकता क्योंकि यह अमर्यादा है। देखा जाता है आज भी कोई पुत्र ऐसा करने का दुस्साहस नहीं करता। फिर भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीमती राधिका के हास-विलास का नग्न चित्र क्यों अंकित किया गया? क्या वे जगत् के पिता माता नहीं और हम लोग उनके पुत्र नहीं? क्या ऐसा करके बड़ा ही अनुचित कार्य नहीं किया?

खेद है कि ऐसी धृष्टता उन्हीं कवियों के हाथ से अधिकतर हुई जिन्होंने नायिका भेद के ग्रंथ लिखे। उन्हीं लोगों के कारण ही आज-कल नायिका भेद की रचनाओं की इतनी कुत्सा हो रही है। नायक के रूप में मुरली-मनोहर और नायिका के रूप में श्रीमती राधिका का ग्रहण किया जाना, उनके लिये अनर्थों का मूल हुआ। इस अविवेक का कहीं ठिकाना है कि करते हैं छीछालेदर जगत् के माता-पिता की और समझते हैं, उसको पवित्र भगवत् सुयश गान! उत्तर काल में यह

भाव इतना प्रबल हुआ कि सत्-असत् का ज्ञान ही जाता रहा। मंदिरो मे भजन करने के लिये बैठे है, श्रोतृमंडली भगवत् गुणानुवाद सुनकर पुण्य-संचय करने के लिये एकत्र है। किंतु हम प्रारंभ करते है, ऐसे गान और पढ़ने लगते है ऐसी कविताएँ जिनको सुनकर निर्लज्जा के कान भी खड़े हो। परंतु सोचते है यही कि स्वर्ग का द्वार उन्मुक्त हो रहा है और हम पर पुष्प-वृष्टि करने के लिये गगन-पथ मे देवताओ के विमान चले आ रहे है। इससे बढ़कर दूसरा अज्ञान क्या होगा? कहते मर्मपीड़ा होती है कि यह अज्ञान हम लोगो मे इतना घुसा कि उससे समाज का बहुत बड़ा अपकार हुआ, आज भी हो रहा है, किंतु हमारी आँखे ठीक-ठीक कहाँ खुली।

यह मै स्वीकार करता हूँ कि प्रेम-देव भगवान् श्रीकृष्ण और प्रेम-प्रतिमा श्रीमती राधिका को लाभ कर ब्रजभाषा-साहित्य मे वह जीवन आया और उसका ऐसा शृंगार हुआ कि न भूतो न भविष्यति। ब्रजभूमि ने यदि उसे भव्य बनाया, तो कलिंदतनया ने उसमे वह रस-धारा बहाई, उसको उन ललित लहरियो से लसाया, उन कल-कल रवो से और मनोहर दृश्यो से सुशोभित किया कि जिसका प्रशंसा शत मुख से भी नही हो सकती। कहाँ है वृन्दावन सा वन और कहाँ है ब्रज की कलित कुंजो-सी कुंजे। किस भाषा की कविता मे वह अलौकिक मुरलिका बजी, वह विश्व विमुग्धकर गान हुआ, जिसको सुन पशु पक्षी तक विमुग्ध हो गये, वृक्ष का पत्ता-पत्ता पुलकित हो गया। किस काव्य संसार को मनमोहन-सा रसिक शिरोमणि, माधव-सा मधुर हृदय, कोटि काम कमनीय कृष्ण-सा लोकमोहन और अखिल-कलाकुशल केशव सा कामद कल्पतरु प्राप्त हुआ। किस साहित्य ने श्रीमती राधिका-सी लोकललाम रमणी, वृषभानु-नंदिनी-सी प्रेमपरायणा, सरल-हृदया, त्यागमयी, आनंद की मूर्ति युवती पाई। किंतु दुःख है कि कुछ अविवेकी कवियो ने इस महत्त्व को नहीं समझा और उलटी ही गंगा बहाई।

मै यह भी मानता हूँ कि जिस समय अपने सूफी धर्म के प्रेम की मधुरता और मोहकता की ओर कुछ मुसलमान धर्म के उन्नायक हिंदुओ के हृदय को आकर्षित कर रहे थे, मलिक मुहम्मद जायसी जैसे सत्कवि प्रेम कहानियाँ हिंदी मे लिखकर हिंदुओ के मानसचित्रपट पर लैला-मजनूँ, शीरी फरहाद एव यूसुफ-जुलेखा का प्रेम प्रणाली का चित्र अंकित कर रहे थे। जब निर्गुणवादी संतो के चेले खंजरी पर विराग के गीत गा-गा हिंदू जनता का घर-बार छोड़ने के लिये उत्सुक बना रहे थे, उसके हृदय मे देवी देवता की अप्रीति उत्पन्न कर उसे निरुद्देश्य बनाने में दत्त-चित्त थे, उस समय विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य्य और विशेष कर महात्मा वल्लभाचार्य्य ने प्रेममय श्रीकृष्ण की उपासना के लिये श्रीमती राधिका का अनुराग और त्याग-पूर्ण-आदर्श उपस्थित कर जो उपकार हिंदू-जाति का किया वह स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। उसके प्रभाव ने जहाँ ऐसे लोग उत्पन्न किये, जिन्होंने समझा कि भगवद्भक्ति अथवा ईश्वरानुराग प्राप्ति के लिये गृह-त्याग आवश्यक नही, वहाँ चैतन्य देव जैसे महापुरुष और मीराबाई जैसी पवित्र-चरित्रा रमणी को भी जन्म दिया। जिन्होंने श्रीमती राधिका के आदर्श पर प्रेममय जीवन व्यतीत कर अपना ही नही, भारतवर्ष के अनेक प्राणियों का उद्धार किया। आज भी बंगाल प्रांत मे करोड़ो स्त्री-पुरुष चैतन्य देव के आदर्श पथ के पथिक है। मीराबाई के हृदय मे प्रेम की कैसी प्रबलधारा बही, उसको निम्नलिखित पद्यो मे देखिये—

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति नयना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजित उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्तबछल गोपाल॥ १ ॥

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई।
भाई तजा बधु तजा तजा सग सोई।
साधुन सँग बैठि-बैठि लोकलाज खोई।
भगत देख राजी भई जगत देख रोई।
अँसुवन जल सींचि-सीचि प्रेम-बेलि बोई।
अब तो नात फैल गई जानै सब कोई।
मीरा को लगन लगी होनि हो सो होई॥ २॥

कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिह उपनाम नागरीदास ने राधाकृष्ण-प्रेम-पथ के पांथ बनकर ही राज्य को तृण समान त्यागा और प्रेम-रस निचुड़ती हुई ऐसी सरल कविताएँ की जिनको पढ़कर आज भी सुधा-रस का आस्वादन होता है। रसखान जाति के मुसलमान थे, उन पर युगल-स्वरूप की माधुरी ने ऐसा जादू डाला कि वे अपना धर्म त्याग कर वैष्णव बन गये और ऐसी सच्ची वैष्णवता दिखलाई कि गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपनी २५२ वैष्णवो की वार्ता में उनको भी सादर स्थान दिया। देखिये, निम्नलिखित पद्यों मे उनके हृदय का सच्चा प्रेम कैसा छलका पड़ता है—

मानुस हो तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जो धर्‌यो कर छत्र पुरदर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौ मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥ १॥

❀ ❀ ❀ ❀

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।
आँखिन सो रसखान कबै ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं॥ २॥

यह राधा-कृष्ण-प्रेम का प्रवाह हिंदी-साहित्य संसार में इतना व्यापक है कि जो प्रेम के रंग में सच्चे जी से रँगा, वही इस युगल-मूर्त्ति की प्रीति-डोरी में बँध गया। हित हरिवंश और हरिदास आदि महात्मागण, अष्ट छाप के वैष्णव और घनआनंद आदि सुकविगण ने इस रंग में रँगकर जो रचानाएँ की है वे बड़ी ही भावमयी एवं मधुर है; स्थान-स्थान पर उनमें सच्चे प्रेम का सुंदर चित्रण पाया जाता है—कुछ रचनाएँ घनआनंद की देखिये—

गुरुनि बतायो राधा मोहन हूँ गायो सदा
सुखद सुहायो बृंदाबन गाढे गहु रे।
अद्भुत अभूत महि मंडन परे तें परे
जीवन को लाहु हा! हा! क्यों न ताहि लहु रे।
आनँद को घन छायो रहत निरंतर ही
सरस सुदेय सों पपीहापन बहु रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर
ऐसे पावन पुलिन पै पतित परि रहु रे॥

❀ ❀ ❀ ❀

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेको सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साचे चलैं तजि आपनपौ झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं।
घन आनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढे हो लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

❀ ❀ ❀ ❀

हमसों हित कै कितकों नित ही चित बीच बियोगहि पोइ चले।
सु अखैबट बीज लौं फैलि पर्‌यौ बनमाली कहा धौं समोइ चले।
घन आनँद छाँह बितान तन्यो हमें ताप के आतप खोइ चले।
कबहूँ तहि मूल तौ बैठिये आइ सुजान जो बीजहि बोइ चले॥

इतना ही नहीं, इस युगल मूर्ति के प्रेम और मधुर लीलाओं के रस का प्रवाह मर्यादित एवं सयत रामावत संप्रदाय मे भी बहा। पहले पहल 'हरि' नामक संस्कृत के एक सुकवि और सहृदय विद्वान् ने 'जानकीगीतम्' नामक एक गीति काव्य लिख कर 'गीतगोविंद' का सफल अनुकरण किया। अभी इनका काल निश्चित नही हुआ, किंतु इन्हें विलास वर्णन और सरस पद विन्यास मे गीतगोविंदकार का समकक्ष कहा जा सकता है। उनका एक पद्य देखिये—यह पद्य गीतगोविंद के 'ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे' गीत के आधार पर लिखा गया है—

मृदुल रसाल मुकुल रसतुंदिल पिकनिकरस्वन भासे।
माधविका सुमना नव सौरभ निर्भर सकलिताशे॥

❀ ❀ ❀ ❀

बिलसति रघुपति रति सुख पुंजे।
निर्मल मलयज कुंकुम पाटल तनुरिह वरतनु पुंजे।
विषम विशिख कर नखरानचयसम किंशुक कुसुम कराले।
मानवतीगणमानविदारिण चञ्चलमधुकरजाले॥
धूत मकरन्द सुगंध गंधवह भाजि विराजित शोभे।
विविध वितान कान्ति परिशीलन जनित युवति जन लोभे।
हार परिष्कृतमिह मधुवर्णन मनु रघुनाथमुदारम्।
पिबत बुधा मनु मधुर पदावलि निरुपम भजनसुधारम्॥

ऐसा करना उचित हुआ अथवा अनुचित, यह अन्य विषय है। किंतु इसका अनुकरण बहुत हुआ। साकेतपुरी—लक्ष्मण टीला के प्रसिद्ध महंत युगलानन्यशरण इसके प्रभाव से विशेष प्रभावित हुए। उन्होंने श्रीमती जानकी देवी और उनकी सखियो को लेकर भगवान् रामचंद्र का रास-मंडल तक लिख डाला। उनकी एवं इन्ही की मंडली के कतिपय सहृदय कवियो की रचनाएँ अष्टछाप के वैष्णवो की रचनाओं-सी ही सरस हैं। किंतु उनमें वास्तविकता कहाँ, काया काया है और छाया

छाया। हाँ, राधा कृष्ण की माधुर्य उपासना का रग उनमे लबालब भरा है।

यह सब जानते और मानते हुए भी यह कहना पड़ता है कि ब्रज-भाषा मे कुछ ऐसी रचनाएँ है जिनमे वीभत्स कांड की पराकाष्ठा हो गई है। मै उदाहरण के लिये कुछ ऐसी कविताएँ उद्धृत कर सकता हूँ, किंतु ऐसा करना युक्तिसंगत नही ज्ञात होता। जिस अश्लीलता की निंदा की जा रही है, उसी से इस ग्रंथ के कलेवर को कलंकित करना क्या उचित होगा? ऐसी रचनाये प्राय. नायिका भेद के रीति ग्रंथों में पाई जाती है। प्रेम के रंग मे रँगकर केवल प्रेम के निरूपण अथवा वर्णन में जो कविताएँ की गई अथवा ग्रंथ रचे गये उनमें इस प्रकार का दोप बहुत कम मिलता है।

हृदय के उद्गार मानसिक भावो के चित्र होते है। मनुष्य जैसा सोचता विचारता है, वैसे ही भाव अवसर आने पर प्रकट करता है। जो व्यसन-प्रिय है, जिसको नग्न चित्र अंकित करना ही प्यारा है, उससे यह आशा नही हो सकती, कि वह परमार्जित रुचि की बाते लिखेगा, अथवा कहेगा। संसार विचित्रतामय है, उसमे सभी प्रकार के लोग है। इसलिये यह नही सोचा जा सकता कि कभी इस प्रकार के लोग पृथ्वी मे न रहेंगे। यदि यह सत्य है तो यह भी सत्य है, कि अश्लीलता का किसी काल मे लोप न होगा, वह सदा रहेगी, समयानुकूल उसमे थोड़ा बहुत परिवर्तन भले ही होता रहे। कोई देश ऐसा नहीं जिसमे इस प्रकार के मनुष्य न हों, कोई समाज ऐसा नहीं, जिसमे यह रोग न लगा हो, और कोई साहित्य सुमन ऐसा नहीं, जिसमे यह कंटक न हो। विश्व में सुरुचि के लिये ही जगह है, कुरुचि के लिये नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। 'त्यागभूमि' के तीसरे वर्प के छठे अंक पृष्ठ ६८३ में महात्मा गांधी का एक लेख 'नव-जीवन' से उद्धृत हुआ है, उसमे वे लिखते है—

'कोई देश और कोई भाषा गंदे साहित्य से मुक्त नहीं है। जब तक

स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनिया में रहेंगे, तब तक गंदा साहित्य प्रकट करनेवाले और पढ़नेवाले भी रहेंगे'।

उर्दू-साहित्य अश्लीलतामय है, उसमें चिरकी और जाफ़र जटल ऐसी कुत्सित प्रवृत्ति के कवि हो गये हैं, कि जिनकी जितनी कुत्सा की जावे थोडी है। चिरकी का एक दीवान है, जो मलमूत्र के वर्णन से भरा पड़ा है। जाफ़र जटल भी उनसे पीछे नहीं है, गंदा मजमून लिखने में वह अपना सानी नहीं रखता। इसीलिये मौलाना हाली यह लिखने के लिये विवश हुए—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सजा है।
अबस झूठ बकना अगर नारवा है।
तो वह महकमा जिसका काजी खुदा है।
मुकर्रर जहा नेको बद की सजा है।
गुनहगार वा छूट जावेंगे सारे।
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे।

जब इन बातों पर दृष्टि डाली जाती है, तो ब्रजभाषा के अपरिमार्जित रुचि के कवियों के अपराध की मात्रा अपेक्षाकृत न्यून हो जाती है, क्योंकि उनका इतना पतन नहीं हुआ। फिर भी वे क्षमा नहीं किये जा सकते। क्योंकि जिनको जगत् का पिता माता माना, उनका सुरत वर्णन करते उनकी लेखनी कुंठित नहीं हुई। साहित्यदर्पणकार ने यह लिखा है—

'सुरतारम्भगोष्ठ्यादावश्लीलत्व तथा पुन.'

'जहाँ कामगोष्ठी हो वहाँ अश्लीलत्व गुण होता है'

कुछ लोग इस सूत्र के आधार से यह अनर्गल प्रलाप करते हैं, कि जब कामगोष्ठी में अश्लीलत्व गुण होता है, तो सुरत वर्णन में जो अश्लीलता मिले, वह सदोष नहीं कही जा सकती। ज्ञात होता है संस्कृत के कुछ साहित्यकारों ने सुरत वर्णन में जो अनुचित स्वतंत्रता ग्रहण की है, उसका आधार इसी प्रकार का कोई प्राचीन सूत्र होगा। परंतु वास्त-

विक बात यह है कि साहित्यदर्पण के सूत्र का यह भाव कदापि नही है। वह तो यह कहता है कि यदि सुरत वर्णन के समय गुप्त स्थानों का खुला नाम अश्लीलता बचाने के लिये न लिखकर उसका पर्यायवाची ऐसा कोई शब्द उसके स्थानपर लिख दिया जावे, जिसका दूसरा अर्थ भी हो तो वह शब्द अश्लील न समझा जावेगा, क्योकि उसका प्रयोग दोष दूरीकरण के लिये ही हुआ। ऐसी अवस्था मे साहित्यदर्पण का उक्त सूत्र सुरत वर्णन मे अश्लीलता का प्रतिपादक नही, वरन् विरोधी है। दूसरी बात यह कि जब स्पष्ट शब्दो मे कह दिया गया कि—

'अश्लीलत्व व्रीडाजुगुप्साऽमगलव्यजकत्वात् त्रिविधम्'

"लज्जा, घृणा और अमंगल व्यंजक होने से अश्लील तीन प्रकार का होता है।" साहित्यदर्पण।

तो फिर बात गढ़ कर उस पर पर्दा डालने से हास्यास्पद हो बनना होगा, इष्ट सिद्धि न होगी। अश्लीलता का रूप इतना व्यापक है कि जो वर्णन लज्जाजनक, घृणाव्यंजक, और अमंगलमूलक होगा, वह सब अश्लीलता दोष से दूषित हो जावेगा। सुरत का वर्णन ही लज्जाजनक और घृणाव्यजक है, यदि साहित्य का अंग समझ कर उसका वर्णन किया जावे ही तो उसको संयत से संयत होना चाहिये, न यह कि खुल खेला जावे, और कोढ़ मे खाज पैदा की जावे। यह तो साधारण सुरत वर्णन की बात है। माता-पिता का सुरत वर्णन तो हो ही नहीं सकता। नायिका के अग प्रत्यग और उनके हास-विलास और क्रीड़ादि का वर्णन भी किसी किसी कवि ने असयत भाव से कर अपनी रचना को कामुकता का अखाड़ा बना दिया है। ये ऐसे दोष हैं कि इन पर पर्दा नही डाला जा सकता। फिर क्यो न कहा जावे कि इस प्रकार की रचनाओं मे शृंगार रस का दुरुपयोग हुआ।

## शृंगार रस और वर्त्तमानकाल

एक दिन था, जब भारतवर्ष मुसलमान सम्राटो के प्रबल प्रभाव से

प्रभावित था, और उनकी सभ्यता धीरे धीरे उसके अंतस्थल मे वैसे ही प्रवेश कर रही थी, जैसे आजकल पाश्चात्य रहन-सहन की प्रणाली उसके हृदय में स्थान ग्रहण कर रही है। मुसलमानो के साम्राज्य का सबसे अधिक प्रभाव भारतवर्ष पर अकबर के समय मे पडा; जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में वह अक्षुण्ण रहा, औरंगजेब के समय में उसका ह्रास प्रारंभ हो गया। व्रजभाषा के प्रसार, विस्तार और समुन्नति का प्रधान काल यही है। इन डेढ़ सौ बरसो मे जैसा उसका शृंगार हुआ, जैसा वह फूली फली, जैसे सहृदय कवि उनमें उत्पन्न हुए, फिर वैसा नहीं हुआ। जैसा आजकल के शासकों का प्रभाव उनकी सभ्यता रंग-ढंग एवं उनकी रीति नीति का असर भारत की भाषाओ और भावो पर पड़ रहा है उस समय वैसा ही प्रभाव मुसलमान शासकों की प्रत्येक बात का व्रजभाषा के साहित्य पर पड़ा था। कारण यह कि—यथा राजा तथा प्रजा। मुसलमान जाति विलास-प्रिय है। उसका साहित्य विलासिता के भावो से मालामाल है। प्रेम की कहानियो और प्रेमी एव प्रेमिकाओं के रंग रहस्यो, और चोचलो की उसमें भरमार है। फारसी की कविताओ मे क्या है, इस बात को आप मुसलमानों की उर्दू कविताओ को पढ़कर जान सकते हैं, क्योकि वही इसकी उद्गम भूमि है। उर्दू में जो हास, विलास, जो प्रेम के ढकोसले, पचड़े, बखेड़े मिलते हैं, उसमें जो लंपटता कामुकता, लिप्सा और वासनाओ के बीभत्स कांड दृष्टिगत होते हैं, वे सब फारसी ही से उसे मिले हैं, फारसी के ग्रंथ ही मुसलमान साहित्य के सर्वस्व है। उसपर अरबो की संस्कृति का भी बहुत बड़ा प्रभाव है, परंतु फारस की संस्कृति का रंग ही उसका निजस्व है। इन दोनों संस्कृतियो से जैसी खिचड़ी पकी, उसका आस्वाद फारसी के साहित्य ग्रंथो में खूब मिलता है। वास्तविक बात यह है कि मुसलमान उनसे प्रभावित है और वे उनकी चिर सस्कृतियों के दर्पण है। जो अकबर बड़ा सभ्य और शिष्ट समझा जाता है, उसके मीनाबाजार की बातो को सुनकर

विलासिता भी कंपित होती है। जहाँगीर और शाहजहाँ की बातें किससे छिपी हैं। औरंगज़ेब जो बड़ा मज़हबी आदमी समझा जाता है, उसकी सेना के वर्णन में एक अंगरेज़ ने लिखा है कि वह रंडी, भड़ुवों से भरी रहती थी। सिपहसालारों और सिपाहियों की यह अवस्था थी कि हथियार पीछे रह जावे तो मुजायका नहीं, पर क्या मजाल कि 'साज़ेतरब' हाथ से छूटे। प्रायः लोग नशे में चूर और मख्मूर मिलते। सुबह को दवा खाते, और रात में नींद न आने की शिकायत करते पाये जाते। परिणाम यह हुआ कि औरंगज़ेब की आँख बंद होते ही राजकुल की विलासिता इतनी बढ़ी कि उसने बादशाही को ही निगल लिया। मुसलमानों की विलासिता की पराकाष्ठा वाजिदअलीशाह में दृष्टिगत होती है, जिसने उसपर अपने 'तख्तोताज' तक को निछावर कर दिया।

यह विलासिता व्रजभाषा में भी घुसी, और उसने उसके साहित्य ग्रंथों के कुछ अंगों को उपहास योग्य बना दिया। कारण सामयिक प्रभाव और उस काल के लोगों का मनोभाव है। जैसा समाज होता है, अधिकांश साहित्य का रूप वैसा ही होता है। शासक जब विलासिता-प्रिय है, और उसके साधनों को प्रश्रय देता है, तो अनेक कारणों से शासित में उसका प्रसार हुए बिना नहीं रहता। शासित को कुछ तो उसकी मन-स्तुष्टि के लिये उसके जैसा बनना पड़ता है, कुछ अपने स्वार्थ-साधन के लिये और कुछ उसके संसर्ग प्रभाव से प्रभावित होकर। औरंगजेब के बाद का सौ वर्ष का काल ले लें, तो ज्ञात हो जावेगा कि इन सौ वर्षों में भी व्रजभाषा को लांछित करनेवाली कम कविताएँ नहीं हुईं। मैं यह स्वीकार करूँगा कि इस प्रकार की कुछ कविताए अपनी भाषा की मान रक्षा के लिये भी हुई हैं, क्योंकि प्रतिद्वंद्विता का अवसर आने पर कोई कितना ही दबा क्यों न हो पर अपने धन-मान की रक्षा का उद्योग करता ही है। कहा जाता है कि कविवर बिहारीलाल के अधिकांश दोहे उर्दू अथवा फारसी शेरों की बलदपरवाज़ियों को नीचा दिखाने के लिये ही

लिखे गये है। यह सत्य भी हो सकता है, क्योकि उनकी ना.ज़ुकखयाली बंदिश, मुहावरो की चुस्ती, और कलाम की सफाई बड़े-बड़े उर्दू शोअरा के कान खड़े कर देती है। फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि ब्रज भाषा की अधिकाश अमर्यादित रचनाएँ सामयिक प्रवृत्तियो और प्रवाहो का फल है।

एक वह समय था, जिसने ब्रजभाषा की इस प्रकार की कविताओ को जन्म दिया, आज वह समय उपस्थित है, जब ऐसी कविताओ की कुत्सा की जा रही है, साथ ही ब्रजभाषा को भी भला बुरा कहा जा रहा है और शृंगार रस का नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ी जा रही है। किंतु यह भ्रांति है। ब्रजभाषा साहित्य बहुत विस्तृत है, कबीर साहब के समय से लेकर आज तक जितने संत हो गये है, उन सब संतो की वाणी लगभग ब्रजभाषा मे है। जिस मुसलमान शासन काल मे ब्रजभाषा मे अवांछित कविताएँ हुई, उसी काल मे देश मे महाराणा प्रताप, गुरु-गोविंदसिंह, और वीर छत्रसाल आदि ऐसे-ऐसे नरकेशरी उत्पन्न हुए, जिन्होने निगले हुए कौर को शत्रु के गले मे उंगली डालकर निकाल लिया। इतना ही नही, उनके उत्तेजन से ब्रजभाषा साहित्य मे वीर रस तथा अन्य रसो के ऐसे उत्तमोत्तम ग्रंथ बने, जिनका जितना गौरव किया जावे थोड़ा है। शृंगार रस की ही पवित्र प्रेम-संबंधिनी इतनी अधिक और अपूर्व कविताएँ उस समय हुई है, जिनके सामने थोड़ी-सी अमर्यादित कविताएँ नगण्य और तुच्छ है, फिर क्या ब्रजभाषा की कुत्सा करना उचित है? रहा शृंगार रस—उसका नाम सुनकर जो कान पर हाथ रखता है, वह आत्म-प्रतारणा करता है, वह जानता ही नही कि शृंगार रस किसे कहते है। मै जानता हूँ कि समय क्या है? और इस समय समाज और देश को किन बातो की आवश्यकता है, परंतु भ्रांत बनने से काम नही चलेगा, उचित पथ ग्रहण करने से ही सिद्धि प्राप्त होगी। देशानुराग के गीत गाये जावे, सोये देश को जगाया जावे, खीसू

धमनियों मे उष्ण रक्त का प्रवेश कराया जावे, बंद आँखें खोली जावे, भूलो को रास्ता बतलाया जावे, देशद्रोहियों को दबाया जावे, और एकता मंत्र का अपूर्व घोष किया जावे। ऐसी ओजमयी रचनाएँ की जावे, ऐसे मार्मिक पद्य लिखे जावे, ऐसे उत्तेजित करने वाले कवित्त बनाये जावे, ऐसे भावमय ग्रंथ रचे जावे और ऐसी ज्वलंत उत्साहमयी ग्रंथ-मालायें निकाली जावे जिनसे इष्ट-सिद्धि हो, उद्देश की प्राप्ति हो और भारतीय भी संसार मे अपना मुख उज्ज्वल कर सके, इसमे किसको आपत्ति है? वरन् आजकल का यह प्रधान कर्त्तव्य है। किंतु बातुल बनकर न तो सुधा को गरल कहा जावे, न चिंतामणि को काँच। शृंगार रस जीवन है, जिस दिन आप उसका त्याग करेंगे, उसी दिन आप का स्वर्ण-मंदिर ध्वंस हो जावेगा, और आप रसातल चले जावेंगे। आवश्यकता है कि आप शृंगार रस के मर्म को समझें और दूसरे को समझावे। शृंगार रस ही वह रस है, जो निर्जीव को सजीव, नपुंसक को वीर, क्रियाहीन को सक्रिय और अशक्त को सशक्त बनाता है। शृंगार रस ही वह मंच है, जिस पर चढ़कर आप उन मर्मस्थलों को देख सकेंगे, जिनकी रक्षा से आप समुन्नति सोपान पर चढ़ उस श्रेय को प्राप्त कर सकेंगे, जो मानव जीवन का प्रधान उद्देश है। मै यह स्वीकार करूँगा कि शृंगार रस के नाम पर कुछ ऐसे कार्य हुए है, जो हमको अविहित मार्ग की ओर अग्रसर करते है। परंतु परमात्मा ने बुद्धि-विवेक किसलिये दिये है? वे किस दिन काम आवेंगे? जो देश का अथवा लोक का उद्धार करना चाहता है, और बुद्धि विवेक को ताक पर रख देता है, वह चाहता तो है स्वर्ग सोपान पर चढना, किंतु उसके पास वे दोनो आँखें कहाँ है जिनके बिना संसार की यात्रा भी नहीं हो सकती।

आजकल हिंदी काव्य-क्षेत्र मे तीन प्रकार के कवि देखे जाते है। एक वे है, जो बिलकुल प्राचीनता के प्रेमी है। आज भी वे उसी रंग मे रँगे हुए है, जिसमे कविवर देव, सहृदयवर बिहारीलाल एवं रसिक-

प्रवर पद्माकर आदि रंगे हुए थे। ब्रजभाषा ही उनकी आराध्या देवी है, और वे उनकी अर्चना मे ही निरत है। उनकी अधिकांश रचनाएँ नायक नायिकाओं पर ही होती है, या वे अपने ढंग पर भगवान कृष्ण-चंद्र अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र का गुण गा-गाकर अपनी संसार-यात्रा समाप्त कर रहे है। आज कल देश की क्या दशा है, देश मे क्या हो रहा है, देशवासियो पर क्या बीत रही है, और किस प्रकार दिन-दिन हिंदू जाति का पतन हो रहा है, उनको इन बातो से प्रयोजन नही। देख कर भी इन बातो को वे नही देखते, और सुनाने पर भी उनको सुनना नही चाहते। वे अपने रंग में मस्त है, अपने धुन के पक्के है, उनको दुनिया के झगड़ो मे प्रयोजन नही। खड़ी बोली की कविता कितनी ही सुंदर क्यो न हो, परंतु उनकी दृष्टि मे इसका कोई आदर नही, वे उसे रूखी-सूखी भाषा समझते है, फिर अपनी रसमयी ब्रजभाषा को छोड़ कर उसकी ओर क्यो दृष्टिपात करें। वे अपनी शांति को भंग करना नही चाहते। परंतु जब कोई प्राचीन कवियो पर आक्रमण करता है, ब्रजभाषा को खरी-खोटी सुनाता है, तब उनके धैर्य का बाँध टूट जाता है, और उस समय जो कुछ मुँह मे आता है कह डालते है। वे छायावाद की कविताओं को फूटी आँखो से भी देखना नही चाहते, चाहे उनमे स्वर्ग-सौंदर्य ही क्यो न भरा हो। वे छायावादियो को कवि भी नही मानते, क्योकि वे समझते है कि ऊटपटांग बकने के सिवा उनको आता ही क्या है। उनमें अजब बेपरवाई है, और कुछ ऐसी अकड़ भरी हुई है, कि वे अपनी रूई सूत में ही उलझे रहते है, दूसरी बातो की ओर आँख उठाकर भी देखना नही चाहते। इस समय देश के प्रति समाज के प्रति, जाति के प्रति और मानव समुदाय के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है, इन बातो को वे विचारना भी नही चाहते, या विचार ही नहीं सकते। वे किसी राह के रोड़े भी नहीं, यदि कोई दूसरा उनको अपनी राह का रोड़ा न बना ले। इस दल में अधिकतर वयोवृद्ध है जो निश्चित

भाव से रहकर अपने स्वच्छंद जीवन को व्यतीत कर देना चाहते है।

दूसरे दल में अधिकतर वे अल्पवयस्क अल्हड़ कविजन है, जो इस समय हिंदी-साहित्य क्षेत्र में नवीनता का आह्वान कर रहे हैं। उनके हृदय मे उमंगे लहर मार रही है, उत्साह उनमे कूट-कूट कर भरा है, 'नूतनम् नूतनम् पदे पदे' उनका महामंत्र है। वे प्राचीन लकीरो को पीटना नही चाहते, वे अपना एक प्रशस्त मार्ग अलग निर्माण करने की ही धुन में है। उनको प्राचीनता से घृणा है, चाहे वह भारतीय आदर्श रत्न का भंडार ही क्यो न हो। ये प्राचीन प्रतिष्ठित कवियो की पगड़ी उछालते रहते है, और प्राचीन ब्रजभाषा को रसातल पहुंचाकर ही दम लेना चाहते है। उनकी भाषा नई, उनका भाव नया, उनकी सूझ नई, उनका विचार नया, रंग नया, ढंग नया, छंद नया, प्रबंध नया, रीति नई, नीति नई, कोष नया, व्याकरण नया. उनका जो-कुछ है सब नया-ही नया है—चाहे वह सच न हो। वे हिंदी-भाषा के प्रेमी है, किंतु वह भी प्राचीना है, शायद इसीलिये उसको बे-तरह नोच खसोट रहे है। पुराने मुहावरे लिखना पसंद नहा, या लिख ही नही सकते, किंतु नये मुहावरो का ढेर लगा रहे है। वाक्यो का कुछ अर्थ हो या न हो, परंतु वे गढ़े जावेगे अवश्य। यदि ब्रह्मा भी आकर कहें यह क्या, तो उनका कान भी मल दिया जावेगा, यदि किसी संकोच से ऐसा न किया जा सकेगा तो कान मलने को हाथ तो अवश्य उठ जावेगा। बात करते समय उससे भले ही काम लिया जावे, पर कविता लिखने के समय क्या मजाल कि बोलचाल की कोई कल ठीक रहने पावे। वे बातें करेगे बड़ी लम्बी लम्बी, तोड़ेगे आसमान के तारे ही, चाहे वे किसी की समझ में भले ही न आवें, और उनका हाथ भले ही वहां तक न पहुँच सके। वे प्राचीनो की रचनाएं सुनकर कान पर हाथ रखेगे, होठ काटेगे, चाहे उनकी कविताएं इस योग्य भी न हो कि किसी के कानो में पड़े। देश-प्रेम से उनका भी कोई संबंध नही; ऐसा करना वे

विश्वप्रेमतत्त्व के विरुद्ध समझते है। वे कौड़ी बड़ी दूर की लाना चाहेंगे, पर घर की लुटती गुदरी के बचाने से बचेगे। आँसू की लड़ियो को लेकर मोती पिरोवेंगे, पर भारतमाता के आँसुओ की उन्हें परवा नही। वे राग गावेंगे ससार भर के भ्रातृभाव का, किंतु अपने भाई का गला कटता देखकर आँखे बंद कर लेंगे। वे शिक्षा देंगे अहिंसा वृत्ति की परन्तु उनके हृदय में प्रतिहिंसा—वृत्ति ही चक्कर लगाती रहती है। जाति का स्वर बिगड जावे, देश का गला न चले, समाज की घिग्घो बँध जावे, तो वे क्या करेंगे, वे तो अपनी टूटी वीणा उठावेंगे, और मस्त होकर उसे बजाते रहेंगे, चाहे उसको कोई सुने या न सुने। यदि कही से वाह-वाह की आवाज आ गई तो फिर क्या माँगी मुराद मिल जावेगी।

तीसरे दल मे कुछ प्राचीन और कुछ युवक कवि है। उनकी सख्या थोड़ी है, परतु मातृ-भाषा के सच्चे सपूत वे ही है। वे ब्रजभाषा को सर आँखो पर रखते है, और खड़ी बोली को गले लगाते है, उनको दोनो से प्यार है। वे हिंदी-भाषा की दोनो मूर्तियो को सर नवाते है, और दोनो को ही अर्चनीय समझते हैं। उनका विचार है, प्रतिभा किसी एक की नही, ब्रजभाषा मे भी उसका विकाश देखा जाता है, और खड़ी बोली में भी। उन्हें भाव चाहिये, चाहे वह ब्रजभाषा मे मिले, चाहे खड़ी बोली में। वे ब्रजभाषा के प्राचीन कवियो को गुरु मानते है, और कहते है कि ये ही वे महापुरुष है, जिन्होंने हिंदी-भाषा को अलकृत किया, उसे रत्नो से सजाया, उसमे जीवन डाला, उसको सुधामयी बनाया, और उसकी वह सेवा की जो अलौकिक कही जा सकती है। ये उन नवयुवक सुकवियो का भी आदर करते है जो खड़ी बोली को सुरभित सुमन प्रदान कर रहे है, उसे सरस, मधुर और भावमयी बना रहे हैं, उसमे वह शक्ति ला रहे हैं, जिससे वह ज्योतिर्मयी, नव-नव उक्तिमयी, अनुपमयुक्तिमयी, रागमयी और देशानुरागमयी, बन सके। वे सोचते है, मातृ-भाषा के सेवकों में परस्पर कलह-विवाद

अच्छा नही, ये तो भाई-भाई है। उनके क्षीर-नीर समान मिले रहने में ही भलाई है। प्राचीनो के लिये यदि स्थान है, तो आधुनिक लोगो के लिये भी। यदि गुरु का स्थान है, तो शिष्य का भी। किसी काल मे गुरु भी शिष्य था, काल पाकर शिष्य भी गुरु हो सकता है। योग्य शिष्य ससार मे कभी-कभी गुरु से भी अधिक चमके, पर वे गुरु की गुरुता को कभी नही भूले। परमात्मा ने जिनको प्रतिभा दी है, वे प्रकाशमान होकर ही रहे। उनको यह इच्छा कभी नही हुई कि गुरु की कीर्ति को लोप कर हम अपना मुख उज्ज्वल करे। जो प्राचीनो की कुत्सा इसलिये करते है कि उनकी कीर्ति को मलिन कर अपनी कीर्ति का विकाश करे, वे भूलते है। मयंक यदि सूर्य के प्रकाश की महत्ता स्वीकार न करेगा तो उसकी सत्ता ही न रह जावेगी, उनका विचार है कि जो सहृदय है, उसकी असहृदयता अच्छी नही, जो रस-धारा बहा सकता है, वह नीरस क्यो बने?

इन तीनों दलों मे कैसा रुचि वैचित्र्य है, और कैसी विचार भिन्नता। परंतु शृंगार रस के प्रभाव से तीनो ही प्रभावित है। पहले दलवाले आज भी उसी नशा की झोंक मे है, जिस नशा ने उनकी परंपरा वालो को आज से तीन चार सौ बरस पहले बदमस्त बनाया था। न आज वह महफिल है, न वह साकी, न वह पैमाना है, न वे दूसरे सामान। फिर भी उनको नशा आता है, और वे ऐसी बाते बक जाते है, जिनको अब जबान पर न आनी चाहिये। भगवद्गुणानुवाद गाये जाये, नीति की बातें कही जावे, शृंगार रस का सयत भाव से वर्णन किया जावे, इसमे किसको क्या आपत्ति हो सकती है; परंतु अब ऐसी रचनाए न की जावे, जो शृंगार रस के साथ ब्रजभाषा को भी कलंकित करती है। मातृ-भूमि की सेवा करना सब का धर्म है, उसके गाढ़े दिनो मे काम आना प्रधान कर्त्तव्य है। यदि यह न हो सके और लेखनी इस प्रकार का विचार लिखने मे कुंठित हो, तो समाज मे गंदगी फैलाने से

बचा जावे। जो बात किसी विशेष काल मे विशेष कारणो से हो गई, जो चूक विषयासक्त राजा-महाराजाओ के ससर्ग से, थोड़े या बहुत धन के लालच से की गई, उसकी पुनरावृत्ति व्यर्थ न होनी चाहिये। परंतु वे आज भी सावधान नही है, वही अपना पुराना राग गाये जा रहे हैं।

दूसरे दलवाले शृगार रस के नाम से ही चिढ़ते है, व्रजभाषा से उनको विशेष घृणा इसलिये है कि वे उसको उसका जननी समझते है। उनकी इस चिढ़ की उत्पत्ति विशेषकर शृंगार रस की उन असयत रचनाओं के कारण हुई, जो सर्वसाधारण मे प्राय. उन्होने सुनी या शृगार रस की प्राय: प्रचलित पुस्तको मे देखी। जिस शृंगाररस पर वे खड्गहस्त है, वह शृगाररस का बीभत्स रूप है। शृगार रस का वास्तविक रूप वह है, जो स्वयं उनकी सब से अच्छी रचनाओ मे पाया जाता है, परंतु इस बात को वे समझ नही पाते। वे न समझे, परंतु शृगार रस से उनकी रचनाएँ ओतप्रोत है। उसको मै ही नही कहता, आजकल के अधिकांश हिंदी के साहित्य-सेवियो की यही सम्मति है। इन लोगो के जो दस-बीस ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है, उनमे से किसी को उठा लीजिये, उस समय यह ज्ञात हो जावेगा कि मेरा कथन कहाँ तक सत्य है। उसके अधिकांश भाग मे अवलोकन करने पर शृंगार रस की धारा ही बहती मिलेगी।

अब रहा तीसरा दल, इस दल मे ही, सामयिकता अधिक है। युवकजन ही देश के प्राण है, उन्हीका मुख अवलोकन कर मातृभूमि की सूखी नसो मे गर्म लोहू प्रवाहित होता है। फिर यदि वे ही इस महामंत्र का मर्म न समझें, तो इससे बढ़कर दुःख की बात दूसरी कौन होगी? यह दल ही इस बात को भलीभाँति समझता है, और इसीलिये उसकी सेवा मे तनमन धन से रत रहता है। उसकी अधिकांश कविताए भी देशानुरागमयी होती हैं, फिर भी वह शृगार रस की कविताओ का अनादर नहीं करता। वह यथावसर उसकी सेवा भी करता रहता है, और ऐसी रचनाएं उपस्थित करता है, जिनसे हृदय की

कलिकाएँ खिल जाती है, क्योकि वह जानता है कि मनुष्य-जीवन से उसका कितना सरस संबंध है।

आजकल हिंदी-साहित्य के सामने एक और विषम समस्या उपस्थित है, चाहे गद्य हो चाहे पद्य, उसमे इन दिनो एक विचित्र ऊधम मचा हुआ है। कुछ स्वतत्र विचार के जीव इस उच्छृंखलता के विधाता हैं। उनका संबध इन तीनो दलो मे से किसी से नहीं है, वे निरंकुश है, और है अपने मन के, परन्तु देश-प्रेम के पर्दे मे अपने को छिपाये हुए है। किसी के पास जाति-सुधार का बल है, और किसी को समाज-सेवा की लगन। कोई प्रचलित रूढ़ियो के मिटाने का दीवाना है, और कोई हिदुओ की वशगत बुराइयो के दूर करने का कामुक। एक स्कूल-कॉलेजो के अध्यापको और छात्रो के दुश्चरित्रो की आलोचना करता है, तो दूसरा स्त्री-जाति की दुर्दशाओ का हृदय-विदारक चित्र अंकित करने मे लग्न है। कोई जाति-बंधन तोड़ना चाहता है, कोई अछूतो के उठाने का प्रयत्न करता है; परन्तु इनमे कितने प्रति-हिसापरायण है, और कितने अर्थलोलुप। कितने वृत्ति के दास है, कितने कुचरित्र। कितने दुर्जन और दुष्ट-प्रकृति है, कितने अपवित्र हृदय और लपट। कितने नाम चाहते है, कितने दाम। कितने अपने पत्र का प्रचार चाहते है, कितने अपनी पुस्तको का प्रसार। वेष उनका मराल का है, परन्तु चाल बगलो की। वे मुख से और लेखनी से सदुद्देश का प्रचार करते है, परंतु हृदय से है वायसवृत्ति, मलिन पदार्थ को ही प्यार करते है। उनके हाथ मे झंडा है उपकार का, कितु उनका मन है अपकार। ऐसे लोगो के हाथो मे पड़ कुछ पत्रो और पत्रिकाओ मे आजकल ऐसे लेख निकल रहे है, जिससे स्त्री पुरुष के द्वंद्व की मात्रा प्रति दिन वर्द्धनोन्मुख है, कितु इन दिनो ऐसे लेख लिखना समाज-सेवा समझा जाता है। यदि कुछ स्त्रियाँ पुरुषो के अत्याचार के लेख लिख-लिखकर कालम के कालम काले करती है, तो स्त्रैण पुरुप उनका कान भी

काटते है—वे पुरुष जाति को भरपेट गालियाँ दे डालते है। इस तरह के लेख आद्योपांत अश्लीलतामय होते है, परंतु यह है इस काल का प्रधान कर्त्तव्य, और पुरुष जाति को निष्पक्षपातिता का प्रमाण पत्र लाभ करने का प्रधान अवसर। चाहे समाज ध्वंस क्यो न हो जावे, और पाश्चात्य देश के समस्त दुर्गुण पवित्र भारतवर्ष मे क्यो न फैल जावे। इतना ही नही, आजकल कुछ ऐसे गंदे उपन्यास निकल रहे है, और उनमे ऐसे कुत्सित और घृणित चरित्र अंकित होते है कि अश्लीलता उनको स्पर्श नहीं कर सकती, और बेहयाई उनकी ओर ऑख उठाकर देख नहीं पाती। परंतु उनमे है हिंदू जाति की बुराइयो का कच्चा चिट्ठा, जिनके प्रदर्शन बिना सुधार हो ही नही सकता, फिर उनको क्यो न फड़कते शब्दो मे लिखा जावे; कोई पागल 'घासलेटी' 'घासलेटी' भले ही चिल्लाये, उसकी सुनता कौन है। ऐसी और बाते बतलाई जा सकती हैं, जिनसे दिन दिन हिंदी-साहित्य की समस्या जटिल हो रही है, किंतु क्या उसका उचित प्रतीकार हो रहा है। व्रजभाषा मे शृंगार रस का दुरुपयोग हुआ, और यह निस्संदेह सामयिक दुर्गुण था, जो विलासप्रिय बादशाहो, राजाओ, महाराजाओं के कारण उसमे आया। इस एक दुर्गुण के कारण, अनेक गुण गौरवशालिनी व्रजभाषा की निंदा हो रही है, और वर्त्तमान काल का पठित समाज यह कार्य कर रहा है। परंतु आज यह क्या हो रहा है? उस समय मे जिस समय विश्वमोहिनी पाश्चात्य सभ्यता की विमुग्धकर ज्योति से भारत वसुंधरा प्रकाशित है, यह महा अश्लील साहित्य का घना अंधकार उसमें क्यो फैल रहा है?

मै समझता हूँ सामयिक दुर्गुणो का ज्ञान प्रायः समय पर नहीं होता। काल पाकर जब दुर्गुणो के दोष प्रकट होने लगते है, उस समय उसका यथार्थ ज्ञान होता है। मुसलमान राज्य के कारण जो दुर्गुण व्रजभाषा मे आये, उस समय कई कारणो से वे ही उपयोगी जान पड़े, इसी लिये वे अधिकांश लोगो मे गृहीत हुए। क्या उस समय दुर्गुणो के विरोधी यहाँ

थे ? अवश्य थे, परंतु स्वार्थ मनुष्य को अंधा बना देता है। स्वार्थी मनुष्य स्वार्थ के सामने रहने पर न तो दुर्गुणो को देखता है, और न किसी हित की बाते सुनता है। यह स्वार्थ कई प्रकार का होता है, यह धन सम्पत्ति की प्राप्ति तक ही परिमित नही होता, इसमे यश, मान की कामना, मर्यादा की रक्षा, कार्योद्धार, गौरव-लाभ, एवं विपत्ति निवारण आदि सभी बाते, सम्मिलित रहती है। दूसरी बात यह कि जब समाज के अग्रणी अथवा प्रधान किन्ही कारण से उनकी ओर आकर्षित हो जाते है, तो साधारण मनुष्य उनका निराकरण समष्टि रूप मे नहीं कर सकते, व्यष्टि रूप मे भले ही कर ले। आजकल की भी यही अवस्था है। अंग्रेज जाति हमारी शासक है, पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा से ही इन दिनो अधिक लोग शिक्षित दीक्षित है, नाना रूप और नाना मार्गों से पाश्चात्य भाव यहाँ के लोगो के हृदय मे स्थान पा रहे है, इस लिए वहाँ की सभ्यता ही लोगो को पसद आ रही है, और वहाँ की रहनसहन प्रणाली ही प्यारी लग रही है। आज का नव शिक्षित समाज, स्त्री स्वतत्रता, युवती-विवाह, सहभाज, विधवा-विवाह आदि का पक्ष-पाती, और बाल-विवाह, जाति-पाँति एव धर्म-बंधन आदि का विरोधी है, यह यथातथ्य शासक जाति और पाश्चात्य भावो का अनुकरण है। ये बाते जिस रूप मे गृहीत हो रही है भारत की हितकारिणी है; या नही, इनका क्या परिणाम होगा, इसको बतलाने पर भी आज कोई नही सुनता। समय का प्रवाह आज इन बातो के अनुकूल है, अतएव इन्हीं विचारो मे उन्नतिशील या सुधारकजन बह रहे है और दूसरो को भी अपना साथी बना रहे है। जो लोग इनका विरोध कर रहे है, उनकी गत बनाई जा रही है, और उनके प्रतिकूल घृणित से घृणित बाते कही जा रही है। समाचार-पत्रो मे उनके विरुद्ध जो कार्टून निकाले जा रहे है, होली इत्यादि के अवसरो पर जैसी गालियाँ उनको पत्रों मे दी जाती है, जैसा उनको कोसा जाता है, जैसी बेहूदा बाते उन्हें कही जा रही है, उनमे अश्ली-

लता की भरमार होती है, और निर्लज्जता की ही पराकाष्ठा। इसी प्रकार शिक्षा दोष अथवा नवीन सभ्यता के संसर्ग से जो दुर्व्यसन और चरित्र गत कुसंस्कार छात्रो, मास्टरो, एवं नव शिक्षितो मे प्रतिदिन वर्द्धनोन्मुख है, समाज के प्रबन्धको के आचार-व्यवहार से जो निंदनीय बाते देश मे फैल रही है, असयत, उच्छृंखल, और ढोंगियो के प्रपंचो से जो बुराइया जाति मे स्थान पा रही है, रंगे सियारो और नाम के नेताओ के कारण जो अपकार हिंदुओ का हो रहा है उनका वर्णन आजकल जिन शब्दो मे होता है, जिस प्रकार उनका खुला चिट्ठा जनता के सामने रक्खा जाता है, जैसे उनके कुत्सित कार्यो का पर्दाफाश किया जाता है, उसकी अधिकाश प्रणाली भी बड़ी ही घृणित और हेय है। परंतु सुधार का उन्माद और जातिगत एव व्यक्तिगत द्वेष इन बातो के विचारने का अवसर ही नहीं देते। लेखनी हाथ मे आने पर पेट का कुल मल बाहर निकाल देने मे ही चैन आता है चाहे पत्र के कालम कितने ही कलंकित क्यो न हो जावे। जी की कुढन अश्लील से अश्लील वाक्यो मे ही निंदनीयो का स्मरण करती है, चाहे वे नरक-कुंड भले ही बन जावें।

जो सच्चे और ईमानदार होते है, उनका भाषण परिमित होता है और उनकी लेखमाला मर्यादित। पर ऐसे लोग कितने है? अधिकतर ऐसे ही लोग दुनियाँ मे देखे जाते है, जो हवा का रुख देखकर चलते है, और पेट पालने के लिये, चार पैसा कमाने के लिये, अपना मतलब गाँठने के लिये, दिल की कसर निकालने के लिये, या झूठमूठ की वाहवाही लूटने के लिये, कुछ से कुछ बन जाते है। वे लोग अपना कच्चापन अथवा नकली भाव छिपाने के लिये अपनी बातो को इतना रंजित करते है, उनमे इतना नमक-मिर्च लगाते है, कि असलीयत गधे के सीग की तरह गायब हो जाती है। ये बाते यदि हजो की, निंदा की अथवा भड़ैपन की होती है, तो वे उनकी इन कारखाइयो से इतनी निंदनीय बन जाती है, कि मूर्तिमान वीभत्स का अकांड ताडव उनमे दृष्टिगत होने

लगता है। परंतु किसमे शक्ति है कि आज की इस आवश्यक बहक को थता बता सके। आज जो इसके सामने पड़ेगा, उसीका कचूमर निकल जावेगा। जो इससे टकरायेगा वही चूर-चूर हो जायेगा। स्त्री-स्वतंत्रता के पक्ष और विपक्ष मे इन दिनो कुछ पत्र-पत्रिकाओं मे ऐसे गंदे लेख निकल रहे है, कि अगला समय होता, तो कोई उनको अपनी बहू-बेटियों को छूने भी न देता। परन्तु आजकल वे पत्र-पत्रिकाएँ मूल्य देकर मँगाई जा रही है और आदर के साथ कुलांगनाओं को अर्पण की जा रही है। कारण इसका सामयिक प्रवाह और वर्त्तमान काल का उत्तेजित मनो-भाव है। इस यमय उनका विरोध करना, असफलता को निमंत्रण देना है। यह समय न रहने पर और प्रचलित आंदोलनो का दोप प्रकट होने पर ही उनके दुर्गुणो का यथार्थ ज्ञान हो सकता है। चाहे जो हो, इस समय इन बातो के कारण हिंदी-साहित्य कितना कलुषित हो रहा है,; यही प्रकट करना, इन विपयो की चर्चा का उद्देश है।

आशा है, मेरे भावो के समझने मे भूल न की जावेगी। मैंने जो कुछ लिखा है, उसका मतलब उचित आंदोलन की निंदा नहीं है। सुधार-संबंधी अथवा देशोद्धार मूलक जितने आदोलन ईमानदारी से सच्चे लोगो के द्वारा हो रहे है, न तो वे निंदनीय है, न आक्षेप योग्य। बाल-विवाह का विरोध अथवा विधवा-विवाहादि का जो प्रचार मर्यादित रीति से किया जा रहा है, वह सर्वथा अनुमोदनीय है। मैं स्वयं उनसे सहानु-भूति रखता हूँ। मैंने निंदा की है भ्रष्टाचार की, और उस प्रणाली की जो घृणित भावों से भरी है। मैंने बुरा कहा है, उन लोगों को जो बनते है सुधाकर परन्तु है राहु, जो वेष रखते है साधु का, परन्तु है कालनेमी। जो आर्य-संस्कृति के शत्रु है, किंतु सुधार के बहाने उसके मित्र बनते है। मेरा लक्ष्य उस नीति की कदर्थना है, जिसके आधार से पाश्चात्य दुर्गुण, सद्गुण के रूप मे गृहीत हो रहे है, और विजातीय भाव समादृत होकर जातीयता को ठोकरे जमा रहे है। जो मेरे भाव को न समझकर व्यर्थ

आस्फाल न करेंगे, अथवा टट्टी की ओट में शिकार खेलना चाहेंगे, वे अपने चित्त के कल्मष को प्रकट करेंगे, मेरे मानस के उद्गारों को नहीं।

क्या लिखते क्या लिख गया, विषयान्तर हो गया। परंतु अपने वक्तव्य को स्पष्ट करने के लिये ही मुझको इस पथ का पथिक होना पड़ा। कहना यह है कि प्रायः सामयिकता के नाम पर बहुत-सी बुराइयाँ, भलाइयाँ बनकर समाज में गृहीत हो जाती हैं। वर्त्तमान काल का हिंदू-समाज और उसका अधुनिक कुत्सित साहित्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वास्तविक बात यह है कि जितना कलुषित आजकल हिंदी-साहित्य का कुछ अंश हुआ अथवा हो रहा है, ब्रजभाषा उतनी कलुषित कभी नहीं हुई। घृणित बाल-प्रेम के आधार से शृंगार रस की इन दिनों जैसी मिट्टी पलीद हो रही है, उसके जैसे नारकीय चित्र उपन्यासों में अंकित किये जा रहे हैं, मासिक पत्रों और पुस्तकों में हिंदू जाति के घर की भीतरी बातों का जैसा कच्चा चिट्ठा लिखा जा रहा है, वे रोमांचकर हैं, उनको इस रूप में देश और समाज के सामने लाना अनुचित है। बिना दोष प्रदर्शन किये दोष का चालन नहीं हो सकता, यह सत्य है, परंतु जुगुप्सा का नग्न नृत्य कदापि वांछनीय नहीं। उसके द्वारा वर्त्तमान हिंदी-साहित्य जितना लांछित हुआ, ब्रजभाषा वैसी कलंकित कभी नहीं हुई। ब्रज-भाषा में जो शृंगार रस का दुरुपयोग हुआ, और उसमें अश्लील रचनाएँ हुईं, इसका कारण समय है। उस समय उसको अपनी इस प्रकार की रचनाओं से सुरक्षित रखना असंभव था, उसी प्रकार जैसे कि आजकल खड़ी बोली के गद्य पद्य अपने को उन सामयिक दोषों से नहीं बचा रहे हैं, जो उसमें सुधार के बहाने प्रवेश कर रहे हैं। ब्रजभाषा में जो दोष हैं—हैं, उन-पर उँगली उठाना व्यर्थ है, उनसे यह शिक्षा क्यों नहीं ली जाती, कि खड़ी-बोली भी चहले में न फँसे। ब्रजभाषा पर कीचड़ किस मुख से उछाला जा रहा है, जब खड़ीबोली उससे भी गई बीती बन रही है। दोनों अपनी ही सम्पत्ति हैं, उनकी उज्ज्वलता हमारा मुख उज्ज्वल करेगी, उनकी कालिमा

हमें कलंकित बनावेगी। आपस का वितंडावाद अच्छा नही, पारस्परिक कलह बुरा है। ब्रजभाषा के सेवको की संख्या आज भी कम नही है, उनका धर्म है कि वे प्राचीन बुरी प्रणाली को त्यागकर उसको उत्तमोत्तम नवीन आभरणो से सजावे। हिंदी-साहित्य-क्षेत्र आजकल खड़ीबोली के उन्नायकों के हाथ मे है, उन्हें चाहिये कि वे जिस प्रकार उसको सुसज्जित कर रहे है, उसी प्रकार उसको कूड़े-करकट से भी बचावे। उचित दृष्टि होने पर एक दूसरे के मार्ग का कंटक न बनेगी, और अपना उचित स्थान लाभकर समुचित कीर्त्ति प्राप्त करने मे समर्थ होगी। वर्त्तमान समय शृंगार रस के अपने वास्तविक रूपमे विकसित होने का है, इस तत्व को हिंदी संसार जितना समझेगा, उतना ही शृगारित और सुसज्जित होगा और वह स्थान लाभ कर सकेगा, जिसको संसार की समुन्नत भाषाएँ प्राप्त कर सकी है। कला के साथ उपयोगिता सम्मिलित होकर कितना उपकारक बन जाती है, मै समझता हूँ इस विषय मे विशेष कुछ लिखने की आवश्यकता नही।

## वात्सल्य रस

बालक परमात्मा का अधिक समीपी कहा जाता है, उसमे सांसारिक प्रपंच नहीं पाया जाता। जितना वह सरल होता है, उतनाही कोमल। छल उसे छूता नही, कपट का उसमे लेश नहीं। उसके मुखड़े पर हँसी खेलती रहती है, और उसकी चमकीली आँखो से आनंद की धारा बहती जान पड़ती है। उसके मुसकुराने मे जो माधुर्य्य है, वह अन्यत्र दृष्टिगत नही होता। वह जितना ही भोला-भाला होता है, उतना ही प्यारा। उसकी तुतली बाते हृत्तंत्री मे संगीत उत्पन्न करती है, और उसके कलित कंठ का कलनाद कानो मे सुधा बरसाता है। वह दांपत्य सुख का सर्वस्व है, भाग्यवान् गृहस्थ-गृह का उज्ज्वल प्रदीप है, और है स्वर्गीय लीलाओं का ललित निकेतन। परमात्मा का नाम आनदस्वरूप

है, बालक इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक उत्फुल्ल बालक को देखिये, इस मधुर नाम की सार्थकता उसके प्रत्येक उल्लास से हो जावेगी। बालकों की इस आनंदमयी मूर्ति का चित्रण अनेक भावुक कवियो ने बड़ी ही मार्मिकता से किया है। इस रससमुद्र मे जो जितना ही डूबा, वह उतना ही भाव-रत्न संचय करने मे समर्थ हुआ। एक अंग्रेज सुकवि की लेखनी का लालित्य देखिये। वह लिखता है—

'I have no name .
I am but two days old',
What shall 'I call thee ?'
'I happy am,
Joy is my name.'
'Sweet joy befall thee !
Pretty Joy !
Sweet Joy, but two days old,
Sweet Joy I call thee :
Thou dost smile
I sing the while,
Sweet joy befall thee !! —W. Blake.

मेरा नामकरण अभी नही हुआ है, मै दो दिन का बच्चा हूँ। तो हम तुमको क्या कहकर पुकारे ? मै मूर्तिमान् उल्लास हूँ, मेरा नाम आनन्द है। तो तुमको मधुरतर आनंद प्राप्त हो !

मेरे प्रियतर आनंद ! मेरे मधुरतर आनंद ! मेरे दो दिन के प्यारे बच्चे ! तुमको मधुर से मधुर आनद प्राप्त हो !

तुम मधुर हँसी हँसो, मुसकुराओ, मै भी स्वर्गीय गान आरंभ करता हूँ—भोले-भाले बच्चे, तुमको अधिकाधिक आनंद प्राप्त हो !

बालभावो का चित्रण करने मे, उनके आनंद और उल्लासों के

-वर्णन मे कविकुलशिरोमणि सूरदासजी की सुधावर्षिणी लेखनी ने बड़ी मार्मिकता दिखलाई है—आहा ! देखिये—

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि-लेप लिए ।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए ।
लट लटकनि, मनो मत्त मधुपगन मादक मदहि पिए ।
कठुला कंठ, बज्र, केहरि नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य 'सूर' एको पल या सुख का सत कल्प जिए ॥ १ ॥

* * *

हौ बलि जाऊँ छबीले लाल की ।
धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगनि बोलन बचन रसाल की ।
छिटिक रहीं चहुँ दिसि जु लटुरियाँ लटकन लटकति भाल की ।
मोतिन सहित नासिका नथुनी कंठ कमल-दल-माल की ।
कछुके हाथ कछू मुख माखन चितवनि नैन बिसाल की ।
'सूर' सु प्रभु के प्रेम मगन भई ढिग न तजनि ब्रज बाल की ॥ २ ॥

* * *

हरिजू की बाल छबि कहौं बरनि ।
सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा-हरनि ।
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूखन भरनि ।
मनहुँ सुभग सिंगार सुरतरु फऱ्यो अद्भुत फरनि ।
लसत कर प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि चरनि ।
जलज संपुट सुभग छबि भरि लेत उर जनु धरनि ।
पुन्य फल अनुभवति सुतहि बिलोकिकै नँदघरनि ।
'सूर' प्रभु की बसी उर किलकनि ललित लरखरनि ॥ ३ ॥

हिंदी-साहित्य-गगन-मयंक गोस्वामी तुलसीदासजी का कवित्व-संबंधी सर्वोच्च सिंहासन बाललीला-वर्णन मे भी सर्वोच्च ही रहा है। क्या भाव-

सौंदर्य्य, क्या शब्दविन्यास, सभी बातो मे उनकी कीर्तिपताका भगवती वीणापाणि के उच्चतर करकमलों में ही विद्यमान है। देखिये, रससमुद्र किस सरसता से तरंगायित है—

नेक बिलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृपघरनि।
बाल भूखन बसन तन सुदर रुचिर रज भरनि।
परसपर खेलनि अजिर उठि चलनि, गिरि गिरि परनि।
फुकनि झाँकनि छाँह सो किलकनि नटनि, हठि लरनि।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि, मोहनी मनहरनि।
चरित निरखत बिबुध 'तुलसी' ओट दै जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भए चहै तरनि॥ १॥

*　　　*　　　*

छँगन मँगन अँगना खेलत चारु जारयो भाई।
सानुज भरत लाल लखन राम लोने लरिका लखि मुदित मातु समुदाई।
बाल बसन भूखन धरे नखसिख छबि छाई।
नील पीत मनसिज सरसिज मजुल मालनि मानो है देहनि ते दुति पाई।
ठुमुक ठुमुक पग धरनि नटनि लरखरनि सुहाई।
अजनि मिलनि रूठनि तूठनि किलकनि अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई।
सुमिरत श्रीरघुबरन की लीला लरिकाई।
'तुलसिदास' अनुराग अवध आनँद अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई॥ २॥

*　　　*　　　*

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी
नखजोति मोती मानो कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं ठुमुक ठुमुक चलैं,
झुंझनु, झुँझनु पाय पैंजनी मृदु मुखर॥

किंकिनी कलित कटि हाटकजटित मनि,
मंजु कर कंजन पहुँचियाँ रुचिरतर ॥
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर ॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झूँडूले केस,
मेढ़ी लटकन मसि बिंदु मुनि मनहर।
अंजन रंजित नैन, चित चोरै, चितवनि मुख-
सोभा पर वारौ अमित कुसुमसर ॥
चुटकी बजावति नचावति कौसल्या माता
बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि किलकि हँसै, द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं
'तुलसी' के मन बसैं तोतरे बचन बर ॥ ३ ॥

कैसा सरस और अद्भुत बाल-केलि वर्णन है। ऐसे और कई एक पद गीतावली में हैं, किंतु सबके उद्धृत करने का स्थान कहाँ? इच्छा होने पर भी उनको छोड़ता हूँ। कुछ रचनाएँ खड़ीबोली की भी देखिये। सामयिक रुचि की रक्षा के लिये ही ऐसा किया जाता है, नहीं तो अमृतरस-पान कराकर इक्षुरस पिलाने का उद्योग कौन करेगा?

## लड़कपन

भोला-भाला बहुत निराला लाखों आँखों का उँजियाला।
खिले फूल सा खिला फबीला बडे छबीले मुखडेवाला ॥ १ ॥
हँसी खेल का पुतला प्यारा बड़ा रँगीला नोखा न्यारा।
जगमग जगमग करनेवाला उगा हुआ चमकीला तारा ॥ २ ॥
स्वर्ग लोग में रहनेवाला रस सोतों में बहनेवाला।
जी को बहुत लुभानेवाला बात अनूठी कहनेवाला ॥ ३ ॥
रस के किसी पेड़ से टूटा फल उमंग हाथों का लूटा।
समय बड़ी सुथरी चादर पर कढा सुनहला सुंदर बूटा ॥ ४ ॥

महँक भरे फूलों का दोना हँसती हुई आँख का टोना।
लेनेवाला मोल मनों का खरा चमकनेवाला सोना ॥ ५ ॥
साथ रंग-रलियों के खेला मीठा बजनेवाला बेला।
मनमानापन का मतवाला बड़ा लड़कपन है अलबेला ॥ ६ ॥

## चंद-खिलौना

चंदा मामा दौड़े आओ दूध कटोरा भरकर लाओ।
उसे प्यार से हमें पिलाओ मुझपर छिड़क चाँदनी जाओ ॥१॥
मै तेरा मृगछौना लूँगा उसके साथ हँसूँ खेलूँगा।
उसकी उछल कूद देखूँगा उसको चाटूँगा चूमूँगा ॥२॥
तू है अगर चाँदनीवाला तो मै भी हूँ लाल निराला।
जो तू अमृत है बरसाता तो मैं भी रस-सोत बहाता ॥३॥
जो तेरा किरणें हैं न्यारी तो मेरी बातें है प्यारी।
तू है मेरा चंद खिलौना मैं हूँ तेरा छुन्ना मुन्ना ॥४॥

## बाल-विभव

बालकों मे कैसी आकर्षणी शक्ति होती है, उनके भाव कितने भोले होते है, उनमें कितनी विनोदप्रियता, रंजनकारिता और सरसता होती है, ऊपर की रचनाओं को पढ़कर यह बात भली-भाँति हृदयंगम हो गई होगी। ऐसे बालक किसके वल्लभ न होंगे, कौन उन्हें देखकर उत्फुल्ल न होगा, कौन उन्हें प्यार न करेगा, और वे किसके उल्लास-सरोवर के सरसीरुह न बनेंगे? माँ-बाप के तो बालक सर्वस्व होते हैं, ऐसी अवस्था मे उनको देखकर उनके हृदय में अनुराग संबंधी अनेक सुंदर भावों का उदय होना स्वाभाविक है। माँ-बाप अथवा गुरुजनो का यह भाव परिपुष्ट होकर विशेष आस्वाद्य हो जाता है, वही, कुछ सहृदय जनो की सम्मति है कि वात्सल्य रस कहलाता है। अधिक-तर आचार्यों ने नौ रस ही माने है वे वात्सल्य भाव को अलग रस

नहीं मानते। इस भाव ही को नहीं, बड़ो का छोटो के प्रति जो अनुराग होता है, उन सबको वे वात्सल्य कहते है और 'रति' स्थायी भाव मे उनका अंतर्भाव करते है। उन लोगो का विचार है कि रस का जितना परिपाक शृंगार मे होता है, वात्सल्य मे नहीं, अतएव इसको वे 'भाव ही मानते है, रस नहीं। कुछ सम्मतियाँ देखिये—

काव्यप्रकाशकार ने रसो का नाम उल्लेख करने के पहले लिखा है—"तद्विशेषानाह"। इसकी व्याख्या करते हुए, 'बालबोधिनी' टीकाकार लिखते है—

"केचिदाहुरेक एव शृंगारो रस इति। केचिच्च प्रेयासदांतोद्धतैः सह वक्ष्यमाणा नवेति द्वादशरसाः। तत्र स्नेहप्रकृतिकः प्रेयासः। अयमेव वात्सल्य इति बोध्यम्। धैर्य्य स्थायीभावको दांतः, गर्वस्थायीभावक उद्धतः। तन्मतनिरासाय सामान्यज्ञानोत्तर विशेषजिज्ञासोदयाच्च वृत्तिकृदाह—तद्विशेषानाहेति—तद्विशेषान् तस्य रसस्य विशेषान् भेदान्। रससामान्यलक्षण तु रसत्वमेव, न च तत्र मानाभावः, रसपदशक्यतावच्छेदकतया तत्सिद्धेः"।

किसी की सम्मति है कि एक शृंगार रस ही रस है। किसी ने प्रेयास दांत, उद्धत के साथ वर्णित नवरस को द्वादश रस माना है। जिस रस का स्थायी स्नेह हो उसको प्रेयांस कहते है, इसीका नाम वात्सल्य है। जिसका स्थायी धैर्य्य है, उसको दांत, जिसका स्थायी गर्व है उसको उद्धत कहा गया है। इन मतो के निरसन के लिये और सामान्य ज्ञान के उपरांत विशेष जिज्ञासा उदय होने पर वृत्तिकार कहते है "तद्विशेषानाह"—उस रस के विशेष भेदो को बतलाता हू। रस का सामान्य लक्षण रसत्व है, इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, रस पद की शक्यता से ही वह सिद्ध है।

एक दूसरे स्थान पर वे लिखते है—

प्रेयासादित्रयस्तु भावांतर्गता इति भाव। एतेनाभिलापस्थायिको लौल्यरस-

'श्रद्धास्थायिको भक्तिरसः स्पृहास्थायिकः कार्पण्याख्यो रसोऽतिरिक्त इत्यपास्तम्। त्रयाणामपि भावांतर्गतत्वात्।

"प्रेयांसादि तीनो को 'भाव' के अंतर्गत माना है। जिसका स्थायी अभिलाष है उसको लौल्य रस, जिसका स्थायी श्रद्धा है उसको भक्ति रस, जिसका स्थायी स्पृहा है उसको कार्पण्य रस कहा है, किंतु ये तीनो भी भाव ही के अंतर्गत है"।

सोमेश्वर की सम्मति निम्नलिखित बतलाई गई है—

"स्नेहो भक्तिर्वात्सल्यमिति रतेरेव विशेषाः। तेन तुल्ययोरन्योन्य रतिः स्नेहः, अनुत्तमस्योत्तमे रतिर्भक्तिः उत्तमस्यानुत्तमे रतिर्वात्सल्यम् इत्येवमादौ भावस्यैवास्वाद्यत्वमिति"।

स्नेह, भक्ति, वात्सल्य, रति के ही विशेष रूप है। तुल्यो की अन्योन्य रति का नाम स्नेह, उत्तम मे अनुत्तम की रति का नाम भक्ति और अनुत्तम मे उत्तम की रति का नाम वात्सल्य है। आस्वाद्य की दृष्टि से ये सब 'भाव' ही कहे जाते है।

एक अन्य विद्वान् की अनुमति यह है—

"स्नेहो भक्तिर्वात्सल्य मैत्री आवंध इति रतेरेव विशेषाः। तुल्ययोर्मिथोरतिः स्नेहः प्रेमेति यावत्। तथा तयोरेव निष्कामतया मिथो रतिर्मैत्री, अवरस्य वरे रतिभक्तिः सैव विपरीता वात्सल्यम्। सचेतनानामचेतने रतिरावध इति।"

स्नेह, भक्ति, वात्सल्य, मैत्री, आबंध, रति के ही विशेष रूप है। तुल्य लोगो की परस्पर रति, स्नेह अथवा प्रेम, उनकी परस्पर निष्काम रति 'मैत्री', श्रेष्ठ मे साधारण की रति 'भक्ति', छोटो में बड़ो की रति 'वात्सल्य' और अचेतन मे सचेतन की रति 'आवंध' कहलाती है।

ऊपर के अवतरणों के देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि वात्सल्य को रति का ही रूप माना गया है, और यह बतलाया गया है कि वह 'रस' नही 'भाव' है। साहित्यदर्पणकार 'भाव' का लक्षण यह बतलाते है—

"सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः ।
उद्बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥"

"प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेदादि संचारी तथा देवता, गुरु आदि के विषय में अनुराग एवं सामग्री के अभाव से रस रूप को अप्राप्त उद्बुद्धमात्र रति, हास, आदिक स्थायी, ये सब 'भाव' कहाते हैं"।

दूसरे स्थान पर वे लिखते हैं—

"देव-मुनि-गुरु-नृपादिविषया च रतिरुद्बुद्धमात्रा विभावादिभिरपरिपुष्टतया रसरूपतामनापद्यमानाश्च स्थायिनो भावा भावशब्दवाच्याः ।"

"देवता, मुनि, गुरु और नृपादि-विषयक रति (अनुराग) भी प्रधानतया प्रतीत होने पर 'भाव' कहलाती है, और उद्बुद्धमात्र अर्थात् विभावादि सामग्री के अभाव से परिपुष्ट न होने के कारण रस रूप को अप्राप्त हास, क्रोधादि भी 'भाव' ही कहलाते हैं"।

काव्यप्रकाशकार की भी यही सम्मति है । वे लिखते हैं—

'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः—भावः प्रोक्तः ।"

बालबोधिनी टीकाकार की व्याख्या यह है—

"रतिरिति सकलस्थायिभावोपलक्षणम् । देवादिविषयेत्यपि अप्राप्तरसावस्थोपलक्षणम् । तथा शब्दश्चार्थे । तेन देवादिविषया सर्वप्रकारा, कांतादिविषयापि अपुष्टारतिः, हासादयश्च अप्राप्तरसावस्था., विभावादिभिः प्राधान्येनाञ्जितो व्यंजितो व्यभिचारी च भावः प्रोक्तः भावपदाभिधेयः ।"

भावार्थ इसका यह है कि देवता, मुनि, गुरु, नृप अथच पुत्रादि-विषयक अनुराग (रति) कांतादि विषयिणी अपुष्ट रति, विभावादि के प्राधान्य से व्यंजित व्यभिचारी, और रस अवस्था को अप्राप्त हासादिक स्थायी की 'भाव' संज्ञा होती है ।

'भाव' का लक्षण आप लोगों ने देखा, अब 'रस' का लक्षण देखिये । नाट्यशास्त्रकार भरत मुनि लिखते हैं—

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' ।

विभाव, अनुभाव, और व्यभिचारी भाव के सयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

काव्यप्रकाशकार की यह सम्मति है—

"कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।
रत्यादे. स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो ॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण. ।
व्यक्त. स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसस्मृतः ॥"

नाट्य और काव्य मे रति आदिक स्थायी भावो के जो कारण. कार्य और सहकारी होते है, उनको विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी क्रम से कहते है। इन विभावादि की सहायता से व्यक्त स्थायी, भाव की रस संज्ञा होती है।

विभावादिको की व्याख्या 'बालबोधिनी' टीकाकार ने यह की है—

'वासनारूपतयातिसूक्ष्मरूपेणावस्थितान् रत्यादीन् स्थायिन. विभावयति आस्वादयोग्यता नयतीति विभावाः ।'

वासना रूप से अति सूक्ष्म आकार मे स्थित रति आदिक स्थायी भावो को जो आस्वादन योग्य बनाते है, उनको विभाव कहते है—यथा नायक नायिका, पुष्पवाटिकादि ।

'रत्यादीन् स्थायिन अनुभावयति अनुभवविषयीकुर्वतीति अनुभावाः ।'

रति आदिक स्थायी भावो को जो अनुभव का विषय बनाते है, उन को अनुभाव कहते है—यथा कटाक्षादि ।

"विशेषणाभितः ( सर्वांगव्यापितया ) रत्यादीन् स्थायिन. काये चारयति संचारयति मुहुर्मुहुरभिव्यजयतीति वा व्यभिचारिणः ।" "स्थायिन्युन्मग्ननिमग्नाः कल्लाला इव वारिधौ ."

सर्वांग मे व्यापित होकर जो रति आदिक स्थायी भावो के शरीर मे सचरण करते है, समुद्र मे कल्लोल-समान उठते और विलीन होते है, उनको सचारी भाव कहते है—हर्ष, उद्वेग. चपलता आदि इसके उदाहरण है।

रस की यह परिभाषा अथवा लक्षण साहित्यिक है, इससे जैसा चाहिये वैसा प्रकाश प्रस्तुत विषय पर नहीं पड़ता। काव्यप्रकाशकार ने रस की जो निम्नलिखित व्याख्या की है, वह सर्वबोधगम्य एवं मानव अवस्था की सूचक है।

"पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः पुर इव परिस्फुरन् हृदयमिव प्रविशन् सर्वांगीण-मिवालिंगन् अन्यत् सर्वमिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिक-चमत्कारकारी शृंगारादिको रसः।"

"पानक रस के समान जिनका आस्वाद होता है, जो स्पष्ट झलक जाते हृदय मे प्रवेश करते, व्याप्त होकर सर्वांग को सुधारससिंचित बनाते, अन्य वेद्य विषयो को ढक लेते, और ब्रह्मानंद के समान अनुभूत होते है वे ही अलौकिक चमत्कारसंपन्न शृंगारादि रस कहलाते है।"

भाव किसे कहते है ? रस मे क्या विशेषता है ? ऊपर के अवतरणो को पढ़कर यह बात आप लोगो ने समझ ली होगी। वास्तविक बात यह है कि विशेष उत्कर्षप्राप्त, हृदयग्राही, व्यापक, अनिर्वचनीय आनंदप्रद अधिकतर मनोमुग्धकर भाव ही रस कहलाता है। दुग्ध की स्वाभाविक सरसता और मधुरता कम नहीं, किंतु अवट जाने पर जब वह अधिक गाढ़ा हो जाता है, सुस्वादु मेवो के साथ जब उसमे सिता भी सम्मिलित हो जाती है, तो उसका आस्वाद कुछ और ही हो जाता है, रसो की भी कुछ ऐसी ही अवस्था है। नाट्यशास्त्र-प्रणेता कहते है—

"न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत्।"

"रस के बिना भाव नहीं और भाव के बिना रस नहीं होते। इन रस और भावो की सिद्धि एक दूसरे पर निर्भर है।"

रस और भावो मे इतनी स्पष्टता होने पर भी रस और भाव के निरूपण मे एकवाक्यता नहीं है। विभिन्न मत इस विषय मे भी है, और अब तक कोई ऐसा सिद्धांत निश्चित नहीं हुआ, जो सर्वमान्य हो। ऊपर

आप यह वाक्य देख चुके है, "केचिदाहुरेक एव शृगारो रस इति" जिससे पाया जाता है कि कोई-कोई आचार्य शृंगार रस को ही रस मानते है, और किसी रस को रस मानना ही नहीं चाहते। साहित्यदर्पणकार लिखते है कि उनके पितामह पंडितप्रवर नारायण अद्भुत रस को ही रस मानते है अन्य रसो को वे स्वीकार ही नही करते। यथा—

"रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः॥
तस्माददद्भुतमेवाह कृती नारायणो रसम्।"

"सब रसो मे चमत्कार साररूप से प्रतीत होता है। और चमत्कार (विस्मय) के साररूप (स्थायी) होने से सब जगह अद्भुत रस ही प्रतीत होता है, अत पंडित नारायण केवल एक अद्भुत रस ही मानते है।"

उत्तररामचरितकार करुण रस को ही प्रधान मानते है, वे लिखते हैं—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान्।
आवर्त्तबुद्बुदतरगमयान् विकारान् अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥

"एक करुण रस ही निमित्तभेद से भिन्न होकर पृथक्-पृथक् परिणामो को ग्रहण करता है। जल के आवर्त्त, बुद्बुद, तरंगादि जितने विकार है, वे समस्त सलिल ही होते है।"

नाट्यशास्त्रकार ने आठ ही रस माने है। यथा—

"शृगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसञ्ज्ञो चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥"

"नाट्य मे शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत आठ रस माने गये हैं।"

काव्यप्रकाशकार ने नवॉ शांत रस भी माना है। यथा—

"निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शातोऽपि नवमो रसः।"

"नवम रस शांत है जिसका स्थायी भाव निर्वेद है।"

रसगंगाधरकार कहते हैं—

"अथ कथमेत एव रसा ? भगवदालंबनस्य रोमांचाश्रुपातादिभिरनुभावितस्य हर्षादिभिः परिपोषितस्य भागवतादिपुराणश्रवणसमये भगवद्भक्तैरनुभूयमानस्य भक्तिरसस्य दुरपह्नवत्वात्। भगवदनुरागरूपा भक्तिश्चात्र स्थायिभावः। न चासौ शांतरसेऽन्तर्भावमर्हति, अनुरागस्य वैराग्यविरुद्धत्वात्। उच्यते—भक्तेर्देवादि-विषयरतित्वेन भावांतर्गततया, रसत्वानुपपत्तेरिति।"

"क्या रस इतने ही है ? भगवान् जिसके आलंबन है, रोमांच अश्रु-पातादि जिसके अनुभाव है, भागवतादि पुराणश्रवण के समय भगवद्भक्त भक्तिरस के उद्रेक से जिसका अनुभव करते है, वही भगवदनुरागरूपा भक्ति यहाँ स्थायी भाव है। शांत रस मे इसका अंतर्भाव नही हो सकता, क्योंकि अनुराग और वैराग्य परस्पर विरोधी है। किंतु भक्ति देवादि रति विषय से संबंध रखती है, अतएव वह भाव के अंतर्गत है, उसमे रसत्व नही माना जा सकता।"

रसगंगाधरकार पंडितराज जगन्नाथ असाधारण विद्वान् थे। वे स्वयं प्रश्न उपस्थित करते है कि क्या रस इतने ही है ? प्रश्न उपस्थित करने के उपरांत पूर्व पक्ष का प्रतिपादन बड़ी योग्यता से करते है। जिन विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावो के आधार से स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होता है, उसका निरूपण भी यथेष्ट करते है, उनकी पंक्तियों को पढ़ते समय ज्ञात होने लगता है कि आप भक्ति को रस स्वीकार करेंगे, किंतु उन्होंने उसको देवादि-विषयिनी रति कहकर 'भाव' ही माना और यह भी नही बतलाया कि देव-विषयक रति को रसत्व क्यो नहीं प्राप्त होता। परमात्मा का नाम रस है, श्रुति कहती है, 'रसो वै सः'। रस शब्द का अर्थ है, 'यः रसयति आनन्दयति स रस'। वैष्णवो की माधुर्य उपासना परम प्रिय है, अतएव भगवदनुरागरूपा भक्ति को वे रस मानते है। यह विषय पंडितराजजी के लक्ष्य मे था, इसलिये उन्होने पूर्व-पक्ष मे उसको ग्रहण किया, किंतु प्राचीन आचार्यो की सम्मति को प्रधान मानकर उसको भाव ही बतलाया।

आगे के पृष्ठो मे आप पढ़ चुके है कि कुछ रसनिर्णायकों ने प्रेयांस, दांत, उद्धत, लौल्य, भक्ति और कार्पण्य को भी रस माना है। ज्ञात होता है कि इन लोगो का विचार भी पंडितराजजी के ध्यान मे था, और इसलिये भी सबमे भक्ति को प्रधान समझकर उन्होने उसके रस होने के विरुद्ध अपनी लेखनी चलाई। जो हो, मेरे कथन का अभिप्राय यह है कि रस-निरूपण का विषय निर्विवाद नही है। जैसा आप लोग देख चुके, इस विषय मे भी भिन्न-भिन्न आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत है। हॉ, यह अवश्य है कि अधिक सम्मति नवरस सबंधिनी है। जिस प्रकार यह सत्य है, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि कुछ मान्य विद्वानो ने वात्सल्य रस को भी दसवॉ रस माना है। उनमे मुनींद्र और साहित्यदर्पणकार का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। साहित्यदर्पणकार लिखते है—

"स्पष्ट चमत्कारक होने के कारण वत्सल को भी रस कहा गया है।"

"स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदुः ❀ "

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने भी अपने नाटक नामक ग्रथ मे 'वत्सल' को रस माना है। उन्होने रसो के नामो का उल्लेख इस प्रकार किया है–

"शृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, बीभत्स, शांत. भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य्य, सख्य, वात्सल्य, प्रमोद वा आनंद।"

'प्रकृतिवाद' बॅगला का एक प्रसिद्ध कोष है। उसके रचयिता वग भाषा के एक प्रसिद्ध विद्वान् है। वे रस शब्द का अर्थ बतलाते हुए लिखते है—

---

❀ भोजदेव ने भी अपने 'शृंगारप्रकाश' नामक ग्रंथ में 'वत्सल' को रस माना है, और रसों की सख्या दस बतलाई है। वे लिखते है—

शृंगारवीरकरुणाद्भुतहास्यरौद्रबीभत्सवत्सलभयानकशातनाम्न.।

आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वदन्ति शृंगारमेव रसनाद्रस मामनामः॥

शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, रौद्र बीभत्स, वत्सल, भयानक, और शात नामक दश रस बुद्धिमानों ने बतलाये हैं, किन्तु आस्वादन पर दृष्टि रखकर शृंगार ही रस माना जा सकता है।

"केहो केहो वात्सल्यकेओ रस बलियाथाकेन, तन्मते रस दश प्रकार।"—"कोई-कोई वात्सल्य को भी रस कहते है, उनके मत से रस दश प्रकार का होता है।"

साहित्यदर्पणकार ने वत्सल को रस मानने का कारण उसका स्पष्ट चमत्कारक होना बतलाया है, साथ ही उसको मुनींद्रसम्मत भी लिखा है। मेरा विचार है कि वत्सल मे उतना स्पष्ट चमत्कार नहीं है, जितना भक्ति मे, किंतु उसको उन्होने भी रस नहीं माना। बाबू हरिश्चंद्र ने भक्ति वा दास्य लिखकर उसको दास्य तक परिमित कर दिया है, किंतु भक्ति बहुत व्यापक और उदात्त है, साथ ही उसमे इतना चमत्कार है, कि शृंगार रस भी उसकी समता नहीं कर सकता। वैष्णव विद्वानो ने भक्ति को रस माना है, और अन्य सब रसो से उसको प्रधानता दी है। आचार्यवर मधुसूदन सरस्वती अपने 'भक्तिरसायन' नामक ग्रंथ मे लिखते हैं—

"रसांतरविभावादिसंकीर्णा भगवद्रति.।
चित्ररूपवदन्यादृग्रसतां प्रतिपद्यते ॥
रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजितः।
भावः प्रोक्तो रसो नेति यदुक्तं रसकोविदैः ॥
देवांतरेषु जीवत्वात् परानंदाप्रकाशनात्।
तद्योज्य—परमानंदरूपेण परमात्मनि ॥
कांतादिविषया वा ये रसाद्यास्तत्र नेदृशम्।
रसत्वं पुष्यते पूर्णसुखास्पर्शित्वकारणात् ॥
परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रतिः।
खद्योतेभ्य इवादित्यप्रभेव बलवत्तरा ॥"

'अन्य रसो के समान विभावादि से युक्त होकर भक्ति चित्र-फलक के सदृश मनोरंजन बनकर रसत्व को प्राप्त होती है। रसकोविदो ने देवादिविषयक रति और अंजित व्यभिचारी को भाव बतलाया है—रस नही, किंतु इस विचार को अन्य देवताओ तक ही परिमित समझना

चाहिये, क्योंकि उन लोगों की रति अलौकिक आनन्ददायिनी नहीं होती, परमानंदस्वरूप परमात्मा की भक्ति के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। कांतादिविषयक रसों में रसत्व का पोषण यथेष्ट नहीं होता, क्योंकि उनको पूर्ण-सुख स्पर्श नहीं करते। प्राकृत क्षुद्र रसों से परिपूर्णरसा भगवद्भक्ति वैसी ही बलवती है, जैसी खद्योतों में आदित्य की प्रभा।

संभव है, इस उक्ति को रंजित माना जावे, किंतु अभिनिविष्ट चित्त से विचार करने पर वह सत्य समझी जावेगी। भक्ति नव प्रकार की होती है।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥"

भारतेंदुजी ने जिन नवीन रसों की चर्चा अपने लेख में की है, लगभग उन सब का अंतर्भाव भक्ति में हो जाता है। भक्ति दास्य ही नहीं है, यह बात इस श्लोक में स्पष्ट हो गई। आचार्यप्रवर मधुसूदन 'सरस्वती' की उक्ति का समर्थन भी अधिकांश में नवधा भक्ति करती है। पादसेवन से लेकर दास्यं, सख्य, आत्मनिवेदनं तक भक्ति का चमत्कार है। दाम्पत्य धर्म का सर्वस्व भी दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन है। यों तो भगवदाज्ञा है, कि 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्', किंतु व्यापक भगवदुपासना तीन ही रूप में होती है। १—पिता-पुत्र भाव, २—स्वामी-सेवक भाव और ३—पति-पत्नी भाव में। शृंगार रस में प्रधान नायक पति और नायिका स्वकीया होती है। ऐसी अवस्था में शृंगार रस का भी अधिकांश भक्ति के अंतर्गत आ जाता है। कबीर साहब निर्गुण उपासक माने जाते हैं। कुछ लोग उनको आधुनिक संत मत के निर्गुण उपासकों का आचार्य भी समझते हैं। निर्गुण उपासना का अधिकांश संबंध ज्ञानमार्ग से है, उसका आध्यात्मिक उत्कर्ष बहुत कुछ बतलाया जाता है। किंतु जब भक्ति अथवा प्रेम का उद्रेक हृदय में होता है, तब सगुण उपासना ही सामने आती है, और उपासना के उक्त तीनों रूपों में से किसी एक का अथवा तीनों का आश्रय चित्त की वृत्ति के अनुसार

ग्रहण करना पड़ता है। निर्गुणवादी होकर भी कबीर साहब को इस पथ का पथिक होना पड़ा है। उनको तीनो रूपो मे परमात्मा को स्मरण करते देखा जाता है, किंतु पत्नी भाव की उनकी उपासना बहुत ही हृदयग्राहिणी है। यह उपासना माधुर्यमयी है, इसकी वेदनाएँ मर्म-स्पर्शिनी होती है, अतएव उनमें विचित्र रस-परिपाक पाया जाता है। कबीर साहब की निम्नलिखित रचनाओ मे कितनी मार्मिकता है, आप लोग स्वयं उसका अनुभव कीजिये—

बिरहिन देय सँदेसरा सुनो हमारे पीव।
जल बिन मछली क्यो जिए पानी मे का जीव ॥
अँखियाँ तो झाईं परी पथ निहार निहार।
जीहड़ियाँ छाला पड़ा नाम पुकार पुकार ॥
बिरहिन उठि उठि भुइ परै दरसन कारन राम।
मूए पाछे देहुगे सा दरसन केहि काम ॥
मूद पाछे मत मिलौ कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिल गया तब पारस केहि काम ॥
सब रग ताँत रबाब तन बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुन सकै कै साईं कै चित्त ॥
पिया मिलन की आस रहौ कब लौ खरी।
ऊँचे नहि चढ़ि जाय मने लज्जा भरी ॥
पाँव नहीं ठहराय चढ़ूँ गिरि गिरि परूँ।
फिरि फिरि चढ़हुँ सम्हार चरन आगे धरूँ ॥
अग अम थहराय तो बहुबिध डरि रहूँ।
करम कपट मग घेरि तो भ्रम मे परि रहूँ ॥
बारी निपट अनारि तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुम्हार मिलन कस होइ है ॥

अतर पट दे खोल सब्द उर लावरी।
दिल बिच दास कबीर मिलै तोहि बावरी ॥

इन पंक्तियो मे कैसा आत्मनिवेदन है, उसे बतलाना न होगा। प्रत्येक शब्द मे वह व्यंजित है। आत्मनिवेदन का अर्थ आत्मोत्सर्ग लीजिये, चाहे आत्मदशानिवेदन, दोनों ही भाव उनमें मौजूद है। अतएव उनमे भक्ति रस का प्राचुर्य स्पष्ट है। काव्य-प्रकाशकार ने रस का जो व्यापक और मानसिक अवस्था-प्रदर्शन संबधी लक्षण लिखा है, भक्ति में वह जितना सुविकसित पाया जाता है, अन्य रस मे उसका उतना विकाश नही देखा जाता। वे लिखते है—'पानक रस के समान रस को आस्वाद्य होना चाहिये' उनके कहने का भाव यह है कि जैसे पीने का रस चीनी, दूध, केवड़ा, इलायची आदि भिन्न-भिन्न पदार्थों से बनकर उन सबसे पृथक् एक विचित्र स्वाद रखता है, और अधिक स्वादिष्ट भी होता है, उसी प्रकार, विभावादि के मिश्रण से जो रस बनता है, उसका आस्वादन भी अपूर्व और विलक्षण होना चाहिये। भक्ति में यह गुण और रसों से अधिक पाया जाता है। जब भगवद्-प्रेम विषयक स्थायी भाव, परमानंद-स्वरूप परमात्मा आलंबन विभाव को पाकर पुलक, अश्रुपात आदि अनुभावों एवं हर्ष, आवेग, विबोध, औत्सुक्य आदि संचारी भावो के सहारे भक्ति मे परिणत होता है, उस समय भक्त जनो के हृदय मे जिस अलौकिक रस का आविर्भाव होता है, वह कितना लोकोत्तर तथा दैवी विभूति-सम्पन्न देखा जाता है, क्या यह अविदित है। क्या उसीके आस्वादन-जनित आमोद का वर्णन इन शब्दो मे नहीं है ?

"त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे।
सुखानि गोष्पदायन्ते ...............॥"—भागवत

"तुम्हारे साक्षात्करण आह्लाद के विशुद्ध समुद्र मे स्थित होने के कारण मुझको समस्त सुख गोष्पद समान ज्ञात होते हैं।"

क्या उसी रसास्वादनकारी की अद्भुत दशा का उल्लेख यह नहीं है ?—

क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसति नंदंति वदत्यलौकिका: ।
नृत्यति गायत्यनुशीलयत्यज भवंति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥

"अच्युत का चिंतन करके कभी रोते हैं, कभी हँसते, आनंदित होते और अलौकिक बाते कहते है । कभी नाचते, गाते, भगवान् का अनुशीलन करते और परमात्मा को प्राप्त कर संतोष लाभ करने के उपरात मौन हो जाते हैं ।"

क्या उसी रस का प्याला पीकर भक्तिमयी मीरा ने यह नही गाया ?—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति सोई ।
साधुन सँग बैठि बैठि लोकलाज खोई ।
अब तो बात फैल गई जानै सब कोई ।
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई ।
मीरा को लगन लगी होनि हो सो होई ॥

क्या उसी रस की सरसता के स्वाद ने उनके समस्त राजभोगो को भी नीरस नही बनाया था ?

क्या उसी रस का भांड लेकर भक्ति-अवतार गौरांग ने बंगाल प्रांत को प्रेमोन्मत्त नही बनाया ? स्वयं उस रस से सिक्त होकर क्या उन्होने वह रस-प्लावन नहीं किया, जिसमें भारत का एक विशाल प्रांत आज भी निमग्न है ? आज से चार सौ वर्ष पहले इस पुण्यभूमि ने जो स्वर्गीय गान सुना, जो त्रिलोकमोहन नर्तन देखा, जो अभूतपूर्व भक्तिउद्रेक अवलोकन किया, क्या वह उसी रस की महत्ता नहीं थी ?

क्या इसी रस से सराबोर मंसूर ने सूली पर चढ़कर यह नहीं पुकारा—

'यह उसके बाम का जीना है आए जिसका जी चाहे ।'

क्या उस रस के रोम-रोम में, रग रग मे भीनने का ही यह निरूपण नहीं है—

'बाद मरने के हुआ मनसूर को भी जोशे इश्क।
खून कहता था अनल हक दार के साया तले।'

कोई सामने आये और बताये कि दूसरे किस रस का आस्वाद ऐसा है!

रस की और विशेषता क्या है? यह कि वह स्पष्ट झलक जाता है, हृदय में प्रवेश कर जाता है, सर्वांग को सुधारस सिंचित बनाता है और अन्य वेद्य विषयों को तिरोहित कर देता है। अन्य रसों पर भी यह लक्षण घटित हो सकता है, दूसरे रसों में भी यह विशेषता पाई जा सकती है, किंतु भक्ति रस में तो इस लक्षण और विशेषता की पराकाष्ठा हो जाती है, वरन् कहना तो यह चाहिये कि भक्ति रस में ही इन विशेषताओं की वास्तविक सार्थकता होती है। जब भक्ति अन्य वेद्य विषयों को तिरोहित कर देती है, तभी तो वह स्पष्ट झलक जाती है, तभी तो हृदय में प्रवेश करती है और तभी तो सर्वांग सुधारस-सिंचित होता है। यदि ऐसा न होता तो यह क्यों कहा जाता—"प्रेम एव परो धर्म्म." "God is love, love is God"? क्यों गोस्वामीजी महाराज कहते 'जेहि जाने जग जाय हेराई' और वेद्य विषयों की बात ही क्या जब भक्ति रस के प्रभाव से 'रसो वै स' का ज्ञान हो जाता है, तो संसार स्वयं तिरोहित हो जाता है, स्वयं खो जाता है, क्योंकि जिसको उसकी खबर हो जाती है, उसको स्वय अपनी खबर नहीं रहती। "आंरा कि खबर शुद खबरशबाज नयामद"। और तो और, वेचारी मुक्ति को भी कोई नहीं पूछता। जब भक्ति हृदय में प्रवेश कर गई तो मुक्ति को उसमें स्थान कहाँ। उसका तिरोधान तो हो ही जावेगा—

"राम-उपासक मुक्ति न लेहीं। तिन कहँ राम भक्ति निज देहीं।"

श्रीमद्भागवत का भी यही वचन है। सुनिये—

"न किंचित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकांतिनो मम।
वाछन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥"

'मेरे एकांत भक्त धीर साधुजन कुछ नहीं चाहते, मम प्रदत्त कैवल्य और अपुनर्भव की भी कामना नहीं रखते।' रहा सर्वांग का सुधारस सिंचित होना, इसका अनुभव किस भावुक पुरुष को नहीं है? जिस समय किसी देवालय तथा किसी सात्विक स्थान-विशेष में भक्तिमय भगवद्-सुयश का गान प्रारंभ होता है, अथवा जब किसी भक्तिरस-पूर्ण हृदय के मुख से उनकी कथामृत की वर्षा होने लगती है, उस समय कौन है जो सुधास्रोत में निमग्न नहीं हो जाता? परम भागवत राजा परीक्षित भक्ति-अवतार श्रीशुकदेवजी से क्या कहते हैं, सुनिये—

"नैषातिदु:सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबंतं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥"

'परम दु:सह क्षुधा और पिपासा भी मुझको बाधा नहीं पहुंचा रही है, क्योंकि आपके कमल-मुख से नि:सृत सुधा मैं पान कर रहा हूं।' जो क्षुधा अंग-अंग को शिथिल कर देती है, शरीर को निर्जीव बना देती है, जो पिपासा यह बतला देती है, कि जीवन का आधार जीवन ही है, राजा परीक्षित कहते हैं, कि वही क्षुधा और वही पिपासा, सो भी साधारण नहीं, परम दु:सह, उनको बाधा नहीं पहुँचाती है, उनकी आकुलता अथवा निरानंद का कारण नहीं होती है, इस कारण कि वह एक भक्ति-भाजन महात्मा के मुख से निकले हरिकथामृत का पान कर रहे हैं। आपने देखा, भक्ति-रस का सर्वांग में सुधा-सिंचन। यदि भक्ति में यह शक्ति न होती तो क्या राजा परीक्षित के मुख से ऐसी अपूर्व बात कभी निकल सकती? आपमें यदि कभी भक्ति का उद्रेक होता है, या यदि कभी आपने किसी भक्ति-उद्रिक्त प्राणी को अभिनिविष्ट चित्त में देखा है, तो आपको इस बात का अनुभव होगा कि जिस समय हृदय में भक्ति-स्रोत प्रवाहित होता है, उस समय उसकी क्या दशा होती है। क्या उस समय समस्त अंगों में अलौकिक रस-सिंचन नहीं होने लगता? क्या यह नहीं ज्ञात होता कि शरीर पर कोई अमृत-कलस ढाल रहा है

कोई रग-रग मे किसी ऐसे आनद की धारा प्रवाहित कर रहा है जिसका आस्वादन सर्वथा लोकोत्तर है? यही तो सवाग मे सुधारस सिचन है। ब्रह्मानद का अनुभव ऐसे ही अवसरो पर तो होता है। भक्ति रस के अतिरिक्त दूसरा कौन रस है, जिसके द्वारा ब्रह्मानंद की प्राप्ति यथा-तथ्य हो सके? रस को ब्रह्मानंद-सहोदर कहा है, किंतु भक्ति रस मे ही इस लक्षण की व्याप्ति है। सांख्यकार ने त्रिविध दु:ख की अत्यन्त निवृत्ति को परम पुरुषार्थ कहा है। किंतु भक्तिरस-सिक्त मनुष्यो को दु:ख का अनुभव होता ही नही, क्योंकि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' वह जानता है, "सर्व खल्विद ब्रह्म'। वह समझता है 'आनंदाद्ये न खल्विमानि भूतानि जायंते आनदेन जातानि जीवति 'आनद प्रयान्त्यभिसविशति'। आनद ब्रह्मणो विद्वान् तस्यैवानदस्यान्ये मात्रामुपजीवति' और किस रस मे इस सिद्धांत के अनुभव की शक्ति है? भक्ति ही वह आधार है जिसके आश्रय से इस भाव का विकाश होता है। भक्तिमान को छोड़कर कौन कह सकता है, 'राम-सिया-मय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरि युग पानी॥' कौन कह सकता है— बर्गे दरख्तान सब्ज दरनजरे होशियार। हरवरक दफतरेस्त मारफते किर्दगार॥' 'द्रष्टा की दृष्टि मे हरे वृक्षो का एक-एक पत्ता परमात्मा के रहस्य-ग्रंथ का एक-एक पन्ना है'। कितनी गहरी भक्तिमत्ता है। गुरु नानक देव कहते हैं—

गगन तल थाल रवि चद दीपक बने तारकामडला जनुक मोती।
धूप मलयानिलो पवन चॅवरो करै सकल बनराय फूलत जोती॥
कैसी आरती होय भव खडना।

"गगनतल के थाल मे तारकमंडल मोती के समान जगमगा रहे हैं, सूर्य चंद्र उसमें दीपक सदृश शोभायमान है। मलयानिल धूप का काम देता है, समीर चमर झलता है; समस्त तरु पुष्प लेकर खड़े हैं, इस प्रकार भवभयनिवारण करनेवाली परमात्मा की अखंड आरती होती रहती है"।

कैसी उदात्त और आनदमयी कल्पना है। जिसकी भक्ति के उच्छ्वास ने संसार को परमानंदमय बना दिया है, उसी के प्रफुल्ल हृदय का

यह उद्गार है। ब्रह्मानंद का अनुभव यही तो है। यही है वह भक्तिभाव जिसे पाकर कुर्वति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम्'

अब रही चमत्कार की बात। भक्ति का चमत्कार और विलक्षण है। भक्तिरस के रसिक ही के विषय मे यह कहा गया है—

"न पारमेष्ठ्यं न महेंद्रधिष्ण्य न सार्वभौम न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भव वा वाञ्छन्ति यत्पादरज· प्रपन्ना·॥"—भागवत

'परमात्मा के चरणरज के प्रेमिक न तो कैलाश की कामना करते है, न स्वर्ग की, न सार्वभौम की, न राज्य की. न योगसिद्धि की, न अपुनर्भव की।' कैसा अलौकिक चमत्मार है! और सुनिये भगवान उद्धव से क्या कहते है—

"न साधयति मा योगो न साख्य धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥"—भागवत

'न तो मै योग से मिलता हूँ न साख्य धर्म से. न स्वाध्याय से. न तप से, लोग मुझे ऊर्जित भक्ति से ही पा सकते है।' ऐसा चमत्कार किस रस का है? और भी सुनिये। भगवद्वाक्य है—

"यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि॥
सर्व मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेञ्जसा।"—भागवत

'जो कर्म से, तप से, ज्ञान से, वैराग्य से, योग से, दान से, धर्म से एवं दूसरे श्रेयो से पाया जा सकता है, वह सब मेरा भक्त एक भक्ति-योग द्वारा ही पा जाता है।' भक्ति की कैसी अपूर्व चमत्कृति है।

वैदिक काल से प्रारंभ करके पौराणिक काल तक का जितना साहित्य है, उसके बाद के जितने काव्य अथवा अन्य धार्मिक किवा ऐतिहासिक ग्रथ है, वे समस्त भक्ति के चमत्कार से भरे पड़े है। वैदिक साहित्य के प्राकृतिक देवतो और ईश्वर की भक्ति का चमत्कार ही संसार के ज्ञान-

भांडार का विकाश है। महाभारत, रामायण और पुराणो के महामहिम पुरुषो की उदात्त देवभक्ति, गुरुभक्ति, पितृभक्ति आदि का चमत्कार क्या भारतवर्ष का पवित्र और जकदादर्शभूत महान् आत्मत्याग और अलौकिक सदाचार नही है। बुद्धदेव और बौद्धधर्म मे अशोक की अनन्य भक्ति का चमत्कार उसका वह बौद्धधर्म-प्रचार है, जिसके आलोक से लगभग समस्त एशिया महादेश आलोकित है, और जिसकी छाया आज-कल दूरवर्ती यूरोप और अमेरिका आदि अन्य महादेशो पर भी पड़ रही है। महात्मा ईसा की, जगत्पिता की, उदात्त भक्ति का चमत्कार वह ईसवी धर्म है, जिसके माननेवालो की संख्या आज संसार मे सबसे अधिक है।

ससार के अनंत धर्ममदिर अपने गगनस्पर्शी गुबदो और मीनारो द्वारा क्या ईश्वरभक्ति के चमत्कारो का ही उद्घोष नहीं कर रहे है? क्या उसी के गुणगान मे धर्म-संबंधी विविध बाजे और गगनभेदी गंभीर निनाद नहीं सलग्न है? संसार के तीर्थों की अपार जनता का समारोह, धार्मिक असंख्य कार्य्य-कलाप, धर्मयाजकों अथच उपदेशको का विश्व-व्यापी धर्मप्रचार क्या किसी अचिंत्य शक्ति की भक्ति के चमत्कार का ही परिणाम नही है? संसार में आजकल जो नाना परिवर्तन हो रहे हैं, विविध आविष्कार और उद्योग किये जा रहे है, क्या वे विश्वभक्ति, देशभक्ति, समाजभक्ति जाति-भक्ति और आत्मभक्ति के ही चमत्कार नहीं है? यदि इन बातो का उत्तर स्वीकृति है, तो यह स्पष्ट है कि भक्ति जैसा चमत्कार किसी रस मे नहीं है, इस दृष्टि से भी उसकी सब रसो पर प्रधानता है।

काव्यप्रकाशकार ने जो व्यापक लक्षण रसो के बतलाये थे, उसके आधार से विचार करने पर भी भक्तिरस का स्थान उच्च ही नही उच्च-तर सिद्ध हुआ। भक्ति-साहित्य भी किसी अन्य रस के साहित्य से अल्प नहीं, हिंदी-संसार मे तो संतो की वाणियों ने उसका भांडार भली-भांति

कहा जाता। इस विषय में पंडितराज जगन्नाथजी ने भी उसका पक्ष नहीं लिया। तो भी अनेक वैष्णव विद्वानों ने उसके रस-प्रतिपादन का उद्योग किया है और यह बड़े हर्ष की बात है।

वात्सल्य रस के प्रसंग में भक्तिरस पर कुछ लिखना विषयांतर था। किंतु मैंने वात्सल्य रस का पक्ष पुष्ट करने के लिये ही यह कार्य्य किया है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि जब भक्ति जैसे प्रधान रस की उपेक्षा हो सकती है, तो वात्सल्य रस का उपेक्षित होना आश्चर्यजनक नहीं। मैं पहले दिखला आया हूँ कि वात्सल्य को कुछ प्रसिद्ध विद्वानों ने रस माना है। अब मैं देखूँगा कि उसमें रस होने की योग्यता है या नहीं। किसी भाव को रस मानने के लिये यह आवश्यक है कि वह विभाव, अनुभाव और संचारी भावों द्वारा परिपुष्ट हो। यह बात वत्सल रस में पाई जाती है। साहित्यदर्पणकार लिखते हैं—

> "स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
> स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालंबनं मतम्॥
> उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः।
> आलिंगनांगसंस्पर्शशिरश्चुंबनमीक्षणम्॥
> पुलकानंदवाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।
> संचारिणोऽनिष्टशंकाहर्षगर्वादयो मताः॥"

"प्रकट चमत्कारक होने के कारण कोई-कोई वत्सलरस भी मानते हैं। इसमें वात्सल्य स्नेह स्थायी होता है। पुत्रादि इसके आलंबन और उसकी चेष्टा तथा विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव हैं। आलिंगन, अंगस्पर्श, सिर चूमना, देखना, रोमांच, आनंदाश्रु आदि इसके अनुभाव हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी माने जाते हैं।"

यदि कहा जावे कि अपने विभाव, अनुभाव आदि के द्वारा स्थायी वत्सलता स्नेह उतना परिपुष्ट नहीं होता जो रसत्व को प्राप्त हो तो यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। यह सच है कि उद्बुद्धमात्र कोई

स्थायी भाव तब तक रस नहीं माना जा सकता जब तक उसमें स्थायिता और विशेष परिपुष्टि न हो, किंतु जो रस माने जाते हैं, उनसे वत्सलरस किसी बात में न्यून नहीं है, उसमें भी विशेष स्थायिता और रस-परिपुष्टि है। काव्यप्रकाशकार ने रस के जो व्यापक और मनोभावद्योतक लक्षण बतलाये हैं, उनपर मैं वात्सल्य रस को कसता हूँ। आशा है उससे प्रस्तुत विषय पर यथेष्ट प्रकाश पड़ेगा। वे लक्षण ये हैं—

(१) रसों का आस्वाद पानक रस समान होता है, (२) वे स्पष्ट झलक जाते हैं, (३) हृदय में प्रवेश करते हैं, (४) सर्वांग को सुधारस-सिंचित बनाते हैं, (५) अन्य वेद्य विषयों को ढक लेते हैं, ६) ब्रह्मानंद के समान अनुभूत होते हैं और (७) अलौकिक चमत्कृति रखते हैं।

पानक रस किसे कहते हैं, पहले मैं यह बतला चुका हूँ। अनेक वस्तुओं के सम्मिलन से जो रस बनता है, उसका स्वाद जैसे उन भिन्न-भिन्न वस्तुओं से भिन्न और विलक्षण होता है उसी प्रकार विभाव, अनुभावादि के आधार से बने हुए रस का आस्वाद भी उन सबों से अलग और विलक्षण होना चाहिये। वात्सल्य रस में यह बात पाई जाती है। बालकों की बालक्रीड़ा देखकर माता पिता में जो तन्मयता होती है, वह अविदित नहीं। उनकी तोतली बातों को सुनकर उनके हृदय में जो रस-प्रवाह होता है, क्या वह अपूर्व और विलक्षण आस्वादमय नहीं होता? माता पिता को छोड़ दीजिये, कौन मनुष्य है जिसे बाललीला विमोहित नहीं करती? देखिये, निम्नलिखित पद्य में इस भाव का विकास किस सुंदरता से हुआ है—

> बर दंत की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
> चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की।
> घुंघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
> निवछावर प्राण करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की॥

वात्सल्य स्नेह विभाव, घुंघुरारी लटें, बोलन आदि उद्दीपन मधुर

छवि-अवलोकन आदि अनुभाव, और हर्ष संचारी भाव के मिलन से जिस रस का आस्वाद आस्वादनकारिणी को हुआ है, जो पद्य के प्रति पदों में छलक रहा है, क्या पानक रस के आस्वाद से कहीं विलक्षण नहीं है? क्या विमुग्धता का स्रोत उसमें, नहीं बह रहा है?

सरित्, सरोवर आदि में लहरें उठती ही रहती हैं किंतु सब लहरें न तो स्पष्ट होती हैं, न यथातथ्य दृष्टिगोचर होती हैं। यही बात मानस-तरंगों अथवा हृदय के भावों के विषय में भी कही जा सकती है। अनेक लहरें हृदय में उठती हैं, और तत्काल विलीन हो जाती हैं। किंतु कुछ भावों की लहरें ऐसी होती हैं, जो स्पष्ट झलक जाती हैं, और उनमें स्थायिता भी होती है। रस-प्राप्त भाव ऐसे ही होते हैं। वात्सल्य-रस भी ऐसा ही है। सहृदय शिरोमणि सूरदासजी के निम्नलिखित पद्य में उसका बड़ा सुंदर विकाश है। अंतिम वाक्य 'कीन्हें सात निहोरे' ने तो इस पद्य में जान डाल दी है—

जेंवत नंद कान्ह इक ठौरे।
कछुक खात लपटात दुहूँ कर बालक हैं अति भोरे।
बड़ो कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टुक तोरे।
तीछन लगी नयन भरि आए रोवत बाहर दौरे।
फूँकति बदन रोहिनी माता लिये लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम को मधुर कौर दे कीन्हें सात निहोरे।

बालक समान हृदयवल्लभ कौन है? वही तो कलेजे की कोर है, वही तो कलेजे का टुकड़ा (लख्त-जिगर) है, फिर उसके भोले भाले भाव हृदय में प्रवेश क्यों न करेंगे। बालकों के समान हृदयविमोहन, संसार में कौन है? कुसुमचय भी बड़े मनोहर होते हैं, किंतु बालकों जैसी सजीवता उनमें कहाँ। देखिये हृदय-प्रविष्ट भाव की सरसता! गोस्वामीजी निम्नलिखित पद्य लिखकर, मैं तो कहूँगा कि, रस की रसता भी छीने लेते हैं—

पौढ़िए लालन पालने हौं झुलावौं ।
कर पद मुख चख कमल लसत लखि लोचन भँवर भुलावौं ।
बाल विनोद मोद मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं ।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं ।
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराय फुलावौं ।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चित लावौं ॥

बालक का मयंक सा मुखड़ा आँखों में सुधा बरसाता है, उसकी तुतली बातें कानों में अमृत की बूंद टपकाती हैं, उसके चुम्बन के आस्वाद के संमुख पीयूष ऊख बन जाता है, और उसका आलिंगन अंग अंग पर चाँदनी छिड़क देता है। जब वह हँसता-खेलता आकर शरीर से लपट जाता है, या किलकारियाँ भरता हुआ गोद में आ बैठता है, तब क्या उस समय 'सर्वांगीणमिवालिंगन्' का दृश्य उपस्थित नहीं हो जाता ? यह वात्सल्य भाव की रस में परिणति ही तो है, और क्या है। देखिये सुधा निचोड़ती हुई एक माता क्या कहती है—

मेरे प्यारे बेटे आओ।
मीठी मीठी बातें कहके मेरे जी की कली खिलाओ।
उमग उमग कर खेलो कूदो लिपट गले से मेरे जाओ।
इन मेरी दोनों आँखों में हँसकर सुधा बूँद टपकाओ ॥

जिसने कभी बालकों के साथ खेला है, वह जानता है कि उस समय कितनी तन्मयता हो जाती है। बालक उस समय जो कहता है, वही करना पड़ता है। उस समय वास्तव में अन्य वेद्य विषय तिरोहित हो जाते हैं, यदि न हो तो खेल का रंग ही न जमेगा। यदि खेल का रंग न जमा तो बाल-विलास का आनंद ही जाता रहेगा। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ग्लाडस्टोन एक दिन अपने पौत्र के साथ खेल रहे थे। आप घोड़ा बने हुए थे, और पौत्र उनकी पीठ पर सवार होकर उनसे घोड़े का काम ले रहा था। उसी समय उनसे मिलने के लिये एक सज्जन आये, और

उनका यह चरित्र देखकर उनके पास ही कुछ दूर पर खड़े हो गये। किंतु वे अपनी केलि-क्रीड़ा मे इतने तन्मय थे, कि बहुत देर तक उनका ध्यान ही उधर नही गया। खेल समाप्त होने पर जब यह बात उनको ज्ञात हुई, तो वे हँस पड़े। बोले, आशा है आपके यहाँ भी लड़के होगे। इसीको कहते है वेद्य विषय का तिरोभाव। इसी तन्मयता का चित्र महात्मा सूरदासजी किस सहृदयता से खींचते है, देखिये। अंतिम पद्य मे 'श्याम को मुख टरत न हिय ते' बड़ा मार्मिक है—

आँगन स्याम नचावही जसुमति नँदरानी।
तारी दै दै गावही मधुरी मृदु बानी
पायन नूपुर बाजई कटि किंकिनि कूनै।
नन्ही एड़िअन अरुनता फलबिंब न पूजै।
जसुमति गान सुनै स्रवन तब आपुन गावै।
तारि बजावत देखिकै पुनि तारि बजावै।
नचि नचि सुतहि नचावई छबि देखत जिय ते।
सूरदास प्रभु स्याम को मुख टरत न हिय ते।

रस का परिपाक ब्रह्मानंद समान अनुभूत होता है, इसकी वास्तवता चिंतनीय है। बीभत्स रस एवं भयानक और रौद्र रस मे इसकी चरितार्थता तादृश नही होती। हाँ! शात, शृंगार, करुण, अद्भुत और विशेष दशाओ मे हास्य और वीर मे भी इस लक्षण की सार्थकता हो सकती है। भक्तिरस मे तो यह लक्षण पूर्णता को पहुँच जाता है; वत्सलरस मे भी उसका पर्याप्त विकाश दृष्टिगत होता है। संसार मे जो आनंद-स्वरूप परमात्मा का कोई मूर्तिमान् आकार है, तो वह बालक है। ब्रह्म के संसार से निर्लिप्त होने का भाव जो कही मिलता है, तो बालक मे मिलता है। दुःख सुख मे सम बालक ही देखा जाता है, निरीहता उसीमे मिलती है। फिर वात्सल्य रस ब्रह्मानंद-सहोदर क्यो

न होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी का इसी भाव का एक बड़ा सुंदर पद है, जो अपने रंग मे अद्वितीय है—

माता लै उछंग गोबिंद मुख बार बार निरखै।
पुलकित तनु आनद घन छन छन मन हरखै।
पूछत तोतरात बात मातहिं जदुराई।
अतिसय सुख जाते तोहि मोहि कहु समुझाई।
देखत तव बदन कमल मन अनद होई।
कहै कौन ? रसन मौन जाने कोई कोई।
सुन्दर मुख मोहि देखाउ, इच्छा अति मोरे।
मम समान पुन्यपुज बालक नहि तोरे।
तुलसी प्रभु प्रेमबस्य मनुज रूपधारी।
बाल-केलि-लीला-रस ब्रज जन हितकारी।

तुतलाकर लीलामय ने माता से पूछा, तुमको अपार सुख किसमे है ? माता ने कहा—तेरा कमलवदन देखकर मन आनंदित होता है। कैसा आनद होता है, इसको कौन कहे, रसना तो चुप है, इसको कोई-कोई जानता है। लीलामय ने कहा—वह सुन्दर मुखड़ा मुझे दिखला। माता ने कहा—मेरे समान तेरा पुण्यपुंज कहाँ ! यहाँ पर ब्रह्मानंद को भी निछावर कर देने को जी चाहता है। संसार मे बालक के मुख अवलोकन के आनद का अनुभव माता ही को हो सकता है। और कोई संसार मे इस अनुभव का पात्र नही, पिता भी नहीं। बालक-कृष्ण भी पिता ही के वर्ग का है, इसीलिये माता ने कहा तेरा पुण्यपुंज ऐसा कहाँ ! फिर जो आनंद ऐसा अलौकिक और अनिर्वचनीय है, कि जिसको रसना भी नही कह सकती, जिसको कोई-कोई जानता ही भर है, किंतु कह वह भी नही सकता, उसे वे कैसे कहें। यही तो ब्रह्मानंद है। जिसकी अधिकारिणी कोई कोई यशोदा जैसी भाग्यशालिनी माता ही हैं,

स्वयं अवतारी बालक कृष्ण भी नहीं। अपने मुख को आप कोई कैसे देख सकता है, जब तक विमल बोध का दर्पण सामने न होवे।

चमत्कार के विषय मे तो वात्सल्य रस वैसा ही चकितकर है, जैसा कि स्वयं बालक। जब बालक-मूर्ति ही चमत्कारमयी है तब उससे संबंध रखनेवाले भाव चमत्कृतकर क्यो न होगे! बालक का जन्मकाल कितना चमत्कारमय है और उस समय चारो ओर कैसा रस का स्रोत उमड़ पड़ता है, इसका अनुभव प्रत्येक हृदयवान् पुरुष को प्राप्त है। उस समय के गीतो के गान मे जो झंकार मिलती है, सोहरो मे जो विमुग्धकरी ध्वनि पाई जाती है, वह किसी दूसरे अवसर पर श्रुतिगोचर नहीं होती। संतान ही वंश-वृद्धि का आधार, पिता का आशास्थल, माता का जीवन-सर्वस्व और संसार-बीज का सरक्षक है। उसीमे यह चमत्कार है कि जैसी ममता उसकी पशु पक्षी कीट पतंग को होती है वैसी ही देवता मनुष्य और दानवो को भी। उसकी लीलाएँ जितनी मनोरंजिनी हैं, जितनी उसमे स्वाभाविकता और सरलता मिलती है, मानव जीवन की किसी अवस्था मे उतनी मनोरंजन आदि की सामग्री नहीं पाई जाती। ये बाते भी चमत्कारशून्य नहीं, तो भी नीचे मै वात्सल्य रस के कुछ पद्य देता हूँ। आप देखे, इनमे कैसा स्वभाव-चित्रण और कविता-गत-चमत्कार है। बालक जैसे सरल और कोमल होते है, वैसे ही उनके भाव और विचार भी सरल और कोमल होते है, उद्धृत कविताओ मे आपको उनका बड़ा ही मनोहर स्वरूप दिखलाई पड़ेगा।

मैया! मै नाही दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देख तुही छीके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मै कैसे करि पायो।
मुख दधि पोंछि कहत नँदनदन दोना पीठ दुरायो।
डारि साँट मुसुकाइ तबहि गहि सुत को कठ लगायो।

बाल विनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप दिखायो ।
सूरदास प्रभु जसुमति के सुख सिव विरंचि बौरायो ॥

शिव विरंचि बावले बने हों या न बने हों, किंतु महात्मा सूरदासजी का बड़ी ही सजीव भाषा में सहज बाल-स्वभाव का चित्रण अत्यंत मार्मिक और हृदयग्राही है। एक-एक चरण में विमुग्धकारी भाव है और उनको पढ़कर रसोन्माद-सा होने लगता है। चमत्कार के लिए इतना ही बहुत है। शिव विरंचि का उन्माद तो बड़ा ही चमत्कारक है, संभव है हमारे दिव्यचक्षु महाकवि ने इसको अवलोकन किया हो। बालक कृष्ण की विचित्र लीला क्या नहीं कर सकती !

अबहि उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई ।
सुनु मैया ! तेरी सौं करौ याको टेव लरन की सकुच बेंचि सो खाई ॥
या ब्रज मैं लरिका घने हौं ही अन्याई ।
मुँहलाए मूँडहि चढी अंतहु अहिरिन तोहि सूधी कर पाई ॥
सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई ।
तुलसिदास ग्वालिनि ठगी, आयो न उतर कछु कान्ह ठगौरी लाई ॥

अहीरिन ने भी अच्छे घर बैना दिया था, बेचारी दो दो बार उलाहना देने आई, पर फिर भी उसीको मुँह की खानी पड़ी। उसने मुँह की ही नहीं खाई, भोले-भाले बालक द्वारा ठगी भी गई। दूध दही तो गया ही था, उल्लू भी बनी, जवाब तक न सूझा। बालक कृष्ण ने ऐसी बातें गढ़ीं कि यशोदादेवी को मुसकाना ही पड़ा। इन गढ़ी बातों को सुनकर किसके दाँत नहीं निकल आयेंगे ! हमारे कृष्ण भगवान् ने चाहे जो किया हो, किंतु गोस्वामी तुलसीदासजी की लेखनी का चमत्कार इस पद्य में चमत्कृतकर है।

जो कसौटी मैंने वात्सल्य रस के कसने की ग्रहण की थी, मेरे विचार से उसपर कस जाने पर वात्सल्य रस पूरा उतरा। इसके अतिरिक्त जब मैं विचार करता हूँ तो वात्सल्य रस उन कई रसों से अधिक व्यापक

और स्पष्ट है, जिनकी गणना नवरस में होती है। हास्य रस का स्थायी भाव हास है; हास्य मनुष्य-समाज तक परिमित है; पशु-पक्षी-कीट-पतंग नही हँसते, किंतु वात्सल्य रस से ये जीवजंतु भी रहित नही. चीटी तक अपने अंडे-बच्चों के पालन मे लगी रहती है, मधुमक्खियाँ तक इस विषय मे प्रधान उद्योग करती दृष्टिगत होती है। यदि वनस्पति-संबंधी आधुनिक आविष्कार सत्य है, और उनमे भी स्त्री पुरुष मौजूद है, तो वत्स और वात्सल्य भाव से वंचित वे भी नही है, फिर भी 'हास्य' को रस माना गया, और 'वात्सल्य' इस कृपा से वंचित रहा। बीभत्स मे भी न तो वत्सल इतनी रसता है, न व्यापकता, न संचरणशीलता, फिर भी वह नव रस मे परिगणित है और 'वत्सल' को वह सम्मान नही प्राप्त है। बीभत्स रस भी मानव-समाज तक ही परिमित है। इतर प्राणियो मे उसके ज्ञान का अभाव देखा जाता है, इस दृष्टि से भी वत्सल की समानता यह नही कर सकता, तथापि वह उच्च आसन पर आसीन है। वत्सलरस का साहित्य निस्सदेह थोड़ा है, इस विषय मे वह रस-संज्ञक स्थायीभावो का सामना नही कर सकता। हिंदी-भाषा के किसी आचार्य्य अथवा प्रतिष्ठित विद्वान् ने 'वत्सल' को रस नही माना, इस-लिये उसकी कविता साहित्य-ग्रंथो मे प्राय दुष्प्राप्य है। केवल बाबू हरिश्चंद्र ने उसको रस माना है, किंतु उनकी भी इस रस की कोई कविता मुझे देखने मे नहीं आई। जितने हिंदी भाषा मे रस-संबंधी ग्रंथ है, उन सबमे आवश्यकतावश नव रस की कविता मिलती है, किंतु यह गौरव वत्सल को नहीं मिला। साहित्य से किसी भाव की व्यापकता का पता चलता है, क्योंकि इससे जनसमुदाय की मानसिक स्थिति का भेद मिलता है। अतएव यह स्वीकार करना पड़ता है, कि इस विषय मे वत्सल रस उतना सौभाग्यशाली नही है। फिर भी मै यह कहूँगा कि हिंदी संसार मे जितना साहित्य वात्सल्य रस का पाया जाता है, वह अद्भुत, अपूर्व और बहुमूल्य है। कविशिरोमणि सूरदास और कविचूड़ामणि गोस्वामी

तुलसीदासजी की वत्सलरस-सबधी रचनाएँ अल्प नही है, और इतनी उच्च कोटि की है, कि उनकी समानता करनेवाली कविता अन्यत्र दुर्लभ है। वत्सलरस के साहित्य के गौरव और महत्त्व के लिये मै उनको यथेष्ट समझता हूँ, क्योकि वे जितनी है उतनी ही अलौकिक मणि समान हिंदी ससार-क्षेत्र को उद्भासित करनेवाली है। आजकल बाल-साहित्य के प्रचार के साथ वत्सलरस की विभिन्न प्रकार की सरस रचनाओ का भी प्राचुर्य्य है। ज्ञात होता है, कुछ दिनो मे शृगार, हास्य, वीर आदि कतिपय बड़े-बड़े रसो को छोड़कर इस विषय मे भी वात्सल्य रस अन्य साधारण रसो से आगे बढ़ जावेगा। यदि इस एक अंग की न्यूनता स्वीकार कर ले तो भी अन्य व्यापक लक्षणो पर दृष्टि रखकर मेरा विचार है कि वत्सल की रसता सिद्ध है, और उसको रस मानना चाहिये। मतभिन्नता के विषय मे कुछ वक्तव्य नहीं, वह स्वाभाविक है।

'हरिऔध'

# 'रसकलस' की रचना में सहायतार्थ पुस्तकों की सूची

| गणनांक | पुस्तक का नाम | पुस्तक प्रणेता का नाम | भाषा |
|---|---|---|---|
| १ | अग्निपुराण | महर्षि व्यास | संस्कृत |
| २ | श्रीमद्भागवत | " | " |
| ३ | नाट्यशास्त्र | महामुनि भरत | " |
| ४ | भक्तिसूत्र | देवर्षि नारद | " |
| ५ | शब्दविवेक | कश्चित् | " |
| ६ | शब्दकल्पद्रुम | कश्चित् | " |
| ७ | शृंगारप्रकाश | भोजदेव | " |
| ८ | धर्मशास्त्रसंग्रह | कश्चित् | " |
| ९ | काव्यप्रकाश | आचार्य्य मम्मट | " |
| १० | रसगंगाधर | पंडितराज जगन्नाथ | " |
| ११ | साहित्यदर्पण | आचार्य विश्वनाथ | |
| १२ | रघुवंश | महाकवि कालिदास | " |
| १३ | कुमारसंभव | " | " |
| १४ | उत्तररामचरित | महाकवि भवभूति | " |
| १५ | भक्तिरसायन | मधुसूदन सरस्वती | " |
| १६ | रसमंजरी | कश्चित् | " |
| १७ | गीतावली रामायण | गोस्वामी तुलसीदास | हिंदी |
| १८ | सूरसागर | प्रज्ञाचक्षु सूरदास | " |
| १९ | रामचंद्रिका | आचार्य केशवदास | " |

| गणनांक | पुस्तक का नाम | पुस्तक प्रणेता का नाम | भाषा |
|---|---|---|---|
| २० | कविप्रिया | आचार्य केशवदास | हिंदी |
| २१ | रसिकप्रिया | " | " |
| २२ | देवग्रंथमाला | कविपुंगव देवदत्त | " |
| २३ | रहिमनशतक | रहीमखाँ खानखाना | " |
| २४ | मतिराम-ग्रंथावली | मतिराम | " |
| २५ | बिहारी सतसई | कविवर बिहारीलाल | " |
| २६ | जगद्विनोद | पद्माकर भट्ट | " |
| २७ | कबीर-ग्रंथावली | कबीर साहब | " |
| २८ | हरिश्चंद्र-ग्रंथावली | भारतेंदु-हरिश्चंद्र | " |
| २९ | हिंदी-शब्दसागर | कतिपय प्रसिद्ध विबुध | " |
| ३० | काव्यप्रभाकर | बाबू जगन्नाथप्रसाद भानु | " |
| ३१ | काव्यकल्पद्रुम | बाबू कन्हैयालाल पोद्दार | " |
| ३२ | नवरस | पं० बाबूराम बित्थरिया | " |
| ३३ | हिंदी-रसगंगाधर | पं० पुरुषोत्तम शर्मा | " |
| ३४ | रसकुसुमाकर | महाराज अयोध्या | " |
| ३५ | मीरा-भजनावली | मीराबाई | " |

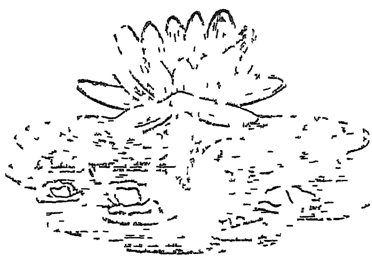
इन ग्रंथो के अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाओ और अनेक अँगरेजी, फारसी, उर्दू और बंगला ग्रंथों से भी इस ग्रंथ की रचना मे सहायता ली गई है।

# विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

# रसकलस

'हरिऔध'



# रस-कलस

## मंगलाचरण

### मनहरण

कुंठितकपालन की कालिमा कलित होति
अवलोके सुललित लालिमा पदन की।
सुंदर - सिदूर - मंजु गात सुख बितरत
दरत दुरित-पुंज दिव्यता रदन की॥
'हरिऔध' सकल अमंगल बिदलि देति
मंगल-कलित कांति मंगल-सदन की।
संकट-समूह-सिधु-सिधुता बिलोपिनी है
बंदनीय सिधुरता सिधुरबदन की॥ १॥

तुरत तिरोहित अपार उर-तम होत
पग - नख - तारक - प्रसूत जोति परसे।
रुचिर बिचार मंजु सालि वहु बिलसत
जन-अनुकूलना बिपुल बारि बरसे॥
'हरिऔध' सब-रस-बलित बनत चित
दयावान मन के सनेह-साथ सरसे।
सकल अभाव, भाव भूति भव-भूति होति
भारती-बिभूति भूतिमान मुख दरसे॥ २॥

सुकबि - समूह - मंजु - साधना-बिहीन जन
लोक-समाराधना को साज कैसे सजिहै ।
बिभु की बिभूति ते बिभूतिमान बनि बनि
भाव-साथ कूर क्यों सुभावना को भजिहै ॥
'हरिऔध' असरस उर क्यों सरस ह्वैहै
कैसे अरुचिरता अचारु-रुचि तजिहै ।
मेरी मति-बीन तो मधुर ध्वनि पैहै कहाँ
एरी बीनवारी जो न तेरी बीन बजिहै ॥ ३ ॥

बचन-बिलास ते न जाको मन बिलसत
छहरत छबि ते न जाकी मति छरी है ।
बिबिध रसन ते न जाको चित सरसत
रुचि की रुचिरता न जाहि रुचिकरी है ॥
'हरिऔध'-भारती न भूलिहूँ लुभैहै ताहि
जाके उर माहिं भारतीयता न अरी है ।
बैभव मैं जाके है अभाव मंजु भावन को
भावुकता नाहिं जाकी भावना मैं भरी है ॥ ४ ॥

कोकिल की काकली को मान कैसे कैहै काक
भील कैसे मंजु मुकतावलि को पोहैगो ।
कैसे बर बारिज बिलोकि मोद पैहै भेक
बादुर बिभाकर-बिभव कैसे जोहैगो ॥
'हरिऔध' कैसे 'रस-कलस' रुचैगो ताहि
जाको उर रुचिर रसन ते न सोहैगो ।
आँखिन मैं बसत कलंक-अंक ही जो अहै
कोऊ तो मयंक अवलोकि कैसे मोहैगो ॥ ५ ॥

# स्थायी भाव

# स्थायी भाव

जिसकी रस मे सदा स्थिति होती है अथवा रसानुकूल हृदय में जो विकार ( भाव ) उत्पन्न होता है उसे स्थायी भाव कहते है। उसके निम्नलिखित नव भेद है—

१–रति २–हास, ३–शोक, ४–क्रोध. ५–उत्साह, ६–भय, ७–ग्लानि. ८–आश्चर्य और ९–निर्वेद।

## १—रति

प्रिय वस्तु में मन की प्रेमपूर्ण परायणता का नाम 'रति' है। इसके तीन भेद है—उत्तम, मध्यम और अधम।

### ( क ) उत्तम रति

सदा एकरस रहनेवाली अनन्य प्रीति को 'उत्तम रति' कहते हैं। यह अधिकाश स्वार्थशून्य होती है। इसमें सेव्य-सेवक-भाव की प्रधानता रहती है।

कवित्त—

✓ नैन मैं मधुरता मनोहरता भावन मैं
चावन मैँ चारुता-बिकास दरसत है।
जानति न रीति अनरीति औ अनीति की है
पूत परतीति रोम-रोम परसत है॥
'हरिऔध' पति-प्रीति-पाग-पगी अंगना के
भाग-भरे भाल पै सुहाग बरसत है।
देह मैं सदेह बिलसति सुकुमारता है
नेह-भरे उर मैं सनेह सरसत है॥१॥

चंद - मुख की हो बनी रहति चकोरिका है
सरस-सनेह-स्वाति-बूँद की है चातकी ।
प्यारो तन कारो करि राखति नयन - तारो
वारति गोराई वा पै गोरे-गोरे गात की ॥
हरिऔध' औगुनी को औगुनहूँ गुन होत
देति है कुबातहूँ को उपमा नबात की ।
पात लौं हिलति पवि-पात सिर पै है होत
पातक-निरत पतिहूँ को कहे पातकी ॥२॥

वंदनीय-बिरद बिलोकि पुलकति बाल
पावन बिचार की प्ररोचना मैं बोरी है ।
बिमल बिबेक की बिमलता बखानति है
कीरति-कलित - रस - कनक - कमोरी है ॥
हरिऔध गौरव निहारि गौरवित होति
गुन-गन-गान ते गरीयसी न थोरी है ।
चावमयी पिय-चाव-स्वाति-जल-चातकी है
रुचिर-चरित-चारु-चंद की चकोरी है ॥३॥

नाग भोग-राग ते सोहाग को सराहति है
सजिकै सहज साज बनति सजीली है ।
फूल ते फबति न फबति कनफूल ते है
मन की फबन ही ते फबति फबीली है ॥
हरिऔध' भावमयी भाव-सिंधु-इंदिरा है
माधव-मधुर-छबि-छकित छबीली है ।
गौरव गनति है अगौरव-दरब काँहि
पति - प्रेम - गौरव - गरब - गरबीली है ॥४॥

सवैया—

पौर-परोसिनी पै पति को सुनि प्यार-पगी कबौं टोकत नाहीं।
भीतर-भौन अलीनहूँ मैं परे कामहूँ के कछु ठोकत नाहीं॥
रोस किये 'हरिऔध' के बाल वे बैन सुधा-सने रोकत नाहीं।
लाज-भरी अँखियान उठाइ मयंकहूँ को अवलोकत नाहीं॥ ५॥

## (ख) मध्यम रति

अकारण परस्पर प्रीति को 'मध्यम रति' कहते है। इसमे मैत्रीभाव की प्रधानता होती है। इसका स्वार्थ तरल और एकदेशीय होता है।

कवित्त—

दोऊ दुहूँ चाहैं दोऊ दुहुँन सराहैं सदा
दोऊ रहैं लोलुप दुहूँन छबि न्यारी के।
एकै भये रहैं नैन-मन-प्रान दोहुँन के
रसिक बनेई रहैं दोऊ रस-क्यारी के॥
'हरिऔध' केवल दिखात द्वै सरीर ही है
नातो भाव दीखै हैं महेस-गिरिबारी के।
प्रानप्यारे चित मैं निवास प्रानप्यारी रखै
प्रानप्यारो बसत हिये मैं प्रानप्यारी के॥ ६॥

सवैया—

चूमत पी को कपोल तिया तिय को पियहूँ अधरा-रस चाखै।
अंक गहै 'हरिऔध' को कामिनि पी नवला को भुजा भरि भाखै॥
आपने जीवन-प्रान-समान लला को लली करिबो अभिलाखै।
लालहूँ नेहमयी नव बाल को आँखिन की पुतरी करि राखै॥ ७॥

## (ग) अधम रति

जिस प्रीति मे स्वार्थ की प्रधानता होती है उसे 'अधम रति' कहते है। सासारिक व्यवहार में यही प्रीति अधिकतर सर्वत्र दृष्टिगत होती है।

कवित्त—

काके बाल बाल लोक-कालिमा-निकेतन हैं
काके मंद-भाल पै कलंक-अंक आँके हैं।
काकी केलि सकल प्रवंचना-सहेलिका है
काके हाव-भाव पाप-पंथ के पताके हैं॥
'हरिऔध' वार-वनिता-सी को बिलासिनी है
छल-छंद-छुरे काके अंग छबि-छाके हैं।
गरल-भरित काके बयन सलोने अहैं
लोने-लोने नयन लहू मैं सने काके हैं॥ ८॥

उबरि उबरिहूँ न उबरि सकत कोऊ
वार-बार बारिधि-बिपत्ति महिं बोरै है।
सुधा-सने बैन कहि कबहूँ निहोरति है
तेह करि नेह के तगा को कबौं तोरै है।
कबहूँ चुरैल की चची बनि चिचोरति है
कबौं चाव चौगुनो दिखाइ चित्त चोरै है।
रंच न सकाति कै अकिंचन कुबेरहूँ को
कंचन-से तन कॉहिं कंचनी निचोरै है॥ ९॥

सवैया—

बैन बिचारि बिनै सों कहै तबहूं पत बापुरे की न बची रहै।
ताकि सकै नहिं सौहैं पिया तऊ त्योर चढ़े रहैं तेह-तची रहै॥
जी उचटावन मैं 'हरिऔध' चुरैलहूँ की बनी खासी चची रहै।
रोस रहै रस की बतियाहुँ मैं प्यारहू मैं महा रार मची रहै॥१०॥

## २—हास

विचित्र वचन-चातुरी अथवा विनोदपूर्ण रूप-रचना के प्रभाव से आनन्द-युक्त मनोविकार को 'हास' कहते हैं।

कवित्त

बिना पूँछ बानर बनाइ मत पीछूँ परै
पूछत न बात तो पकरि न पछारि दै।
कारो हौं कुरूप हौं मैं तू तो रूपवारी अहै
चूमन न देत तो कबौं तो चुमकारि दै॥
'हरिऔध' सूधो कहा साधहूँ रखत नाहिं
तू तो सुघरी है मेरी बिगरी सुधारि दै।
घरी-घरी घूरन चहत घरवारो तोहि
एरी घरवारी नेक घूँघट उघारि दै॥ १॥

नेक ही नजर बदले पै ना परत कल
कौन कहै ताको होत हाल झिरके पै जौन।
हुकुम के मारे सदा नाक मैं रहत दम
आनन बिलोकत ही होत दिन-रैन गौन॥
'हरिऔध' एतेहूँ पै बचत न क्यौं हूँ प्रान
मुख ते कढ़त याते नहिं रहि जात मौन।
मरद बिचारो जाते हारो सो रहत होस
ऐसी सबला को काहैं अबला कहत कौन॥ २॥

कैसे तो न तुपक निहारि आँखि तोपि लेहिं
बार-बार छाती जो छुरी के छुए धरके।
कैसे उतपात नाम ही ते ना सकात रहैं
थर-थर गात काँपि जात पात खरके॥
'हरिऔध' कहै कैसे कबौं अरि सौंहैं होहिं
जात हैं रसातल जो पाँव ही के सरके।
कैसे डरे दौरि कै न द्वार के किवारे देहिं
का करैं बिचारे हैं दुलारे बीरबर के॥ ३॥

सरिता-सलिल है बहत कल-कल नाहिँ
खिलखिल हँसि है हुलास-पगो हुलसत ।
दारिम-फलन दंत-राजि है निकसि लसी
खोलि मुँह बिकच-सुमन-बृंद सरसत ॥
'हरिऔध' हेरि-हेरि राका रजनी को हास
मुदित दिगंत है विकास-भरो बिलसत ।
हँसि-हँसि लोटि-लोटि जात चारु चाँदनी है
मंजुल मयंक अहै मंद-मंद बिहँसत ॥ ४ ॥

सवैया—

हौं मन को, मन ही को मनाइहौं मानिहौं बात नहीं बहसी की ।
ना रहिहौं कस मैं कबौं काहु के कान न कैहौं कही अकसी की ॥
लोक की लाज ते काज कहाजब लाज रही हरिऔध' न सी की ।
है हँसी होति तो होति हँसी रहै है न हमैं परवाह हँसी की ॥ ५ ॥

दोहा—

सुछबि छई छिति-तल-जयी बिजयी छितिप समान ।
है बसुधा को मोहती सुधामयी मुसुकान ॥ ६ ॥

बिसराए बिसरति नहीं मोहति तन - मन - प्रान ।
जन - मन - नयनन मैं बसी मनमोहन मुसुकान ॥ ७ ॥

[ हसन-क्रिया के छः भेद ]

उत्तम—स्मित और हसित

मध्यम—विहसित और उपहसित

अधम—अपहसित और अतिहसित

## ( क ) स्मित

जब नेत्रो तथा कपोलों पर कुछ विकास हो और अधर आरंजित तब 'स्मित' होता है, इसमें दाँत नहीं निकलते। आश्रय-स्थान—गभीर और शिष्ट-जन-मुख मडल।

सवैया—

अनखान भरे सब सौतिन के उर मैं बिख-धार बहावति-सी।
तम-पूरे अनहिन के हिय-भौन मैं चाँदनी चारु उगावति-सी॥
रसिया 'हरिऔध' के अतर मैं रस कौ सुभ सोत लसावति-सी।
मुसुकावति आवति है ललना अखियान सुधा बरसावति-सी॥ ८॥

दोहा—

अहै बनावति रस बरसि मानस को मधु-मान।
विकसित ललित कपोल करि अधर-बसी मुसुकान॥ ९॥

## ( ख ) हसित

यदि नेत्रो और कपोलों के विकास के साथ दाँत भी दिखलाई पड़े तब वह 'हसित' होता है। इसका आविर्भाव भी प्राय: गभीर और शिष्ट मुखमडल पर ही देखा जाता है।

दोहा—

दरसावनि दमकत दसन लालहिं करति निहाल।
हँसि बरसावति है सुधा बरसाने की बाल॥१०॥

## ( ग ) विहसित

नेत्रों और कपोलों के विकास के साथ दाँत दिखलाते हुए जब आरंजित मुख मे कुछ मधुर शब्द भी निकलें तब 'विहसित' होता है।

दोहा—

हँसि मंजु मुख मोरि कै किलकी बनी ललाम।
बदन-राग-रंजित भई रागमयी बर बाम ॥११॥

(घ) उपहसित

विहसित के लक्षणों के साथ जब सिर और कंधे कँपने लगते हैं, नाक रुक जाता है, तिरछे ताका जाता है, तब 'उपहसित' होता है।

दोहा—

तिरछी अँखियन ते चितै चित चोरति चलि चाल।
खिलि-खिलि आनन खोलिकै खिलखिलानि है बाल ॥१२॥

(ङ) अपहसित

आँसू टपकाते हुए उद्धत हास को 'अपहसित' कहते हैं।

दोहा—

बहु हँसि-हँसि हाँसी करति कहति रसीले बैन।
सिर हिलि-हिलि सरसत रहन मोती बरसत नैन ॥१३॥

(च) अतिहसित

आँसू बहाते हुए ताली देकर ऊँचे स्वर से ठठाकर हँसने को 'अतिहसित' कहते हैं।

दोहा—

तिय तारी दै-दै हँसति हिलति लता लौं जाति।
पुलक-बारि लोयन भरे पुलकित बिपुल लखाति ॥१४॥

## ३—शोक

हित की हानि अथवा इष्ट-नाश किंवा प्रिय पदार्थ की अप्राप्ति से हृदय में जो दुःख होता है उसका नाम 'शोक' है।

कवित्त—

छन-छन छीजत न देखहिँ समाज-तन
हेरहिँ न विधवा छू टूक होत छतियान।
जाति को पतन अवलोकहिँ न आकुल ह्वै
भूलि ना विलोकहिँ कलंकी होत कुल-मान।।
'हरिऔध' छिनत लखहिं ना सलोने लाल
लुटत निहारहिँ न लोनी-लोनी ललनान।
खोले कछु खुलीं पै कहाँ हैं ठीक-ठीक खुलीं
अधखुली अजौं हैं हमारी खुली अँखियान।। १ ।।

काहू की ठगौरी परे ठग ह्वै गये हैं सग
बन गये परम बिमुख मुख कौर कौर।
जाति को है ठोकर पै ठोकर लगति जाति
काठ सी कठोरता पुकारति है और-और।।
'हरिऔध' करत कठिन ठकठेनो काल
ठुकराई ठकुराइनें हैं ठाढ़ी पौर-पौर।
है न वह ठाट वह ठसक न वह टेक
ठिटके दिखात ठूठे ठाकुर हैं ठौर-ठौर।। २ ।।

तावा के समान है तपत उर तापवारो
गरम हमारो लोहू सियरो भयो नहीं।
पीर लहि मुख पियरानो पीर वारन को
बदन दिखात तबौं पियरो भयो नहीं।।
'हरिऔध' जोहि-जोहि निरजीव जीवन कौ
जीवन-विहीन मीन जियरो भयो नहीं।
जाति टूक-टूक भई टूकौ ना मिलत माँगे
टूक-टूक तऊ हाय हियरो भयो नहीं।। ३ ।।

नाविक जो नाविकता-नियम बिसारि दैहै
बनि वीर वीरता-बिरद जो न बरिहै।
नाव को सवार ही जो कैहै छेद नाव माहिं
सकल बचाव के उपाव ते जो अरिहै॥
'हरिऔध' बहि-बहि प्रबल विरोध-बायु
बार-बार पथ जो उबार को बिगरिहै।
कैसे जाति-उपकार-पोत मँझधार परो
आपदा-अपार-पारावार पार करिहै॥ ४॥

## मर्मवेध

मुनिन-सरोज को दिनेस अथयो अकाल
गुनिन-कुमुद-चंद राहु-मुख परि गो।
'हरिऔध' ज्ञानिन को चितामनि चूर भयो
मानिन-प्रदीपहूँ को तेज सब हरि गो॥
पारस हेराइ गयो हीन-जन-हाथन कौ
भारती को प्यारो एकलौतो तान मरि गो।
सागर सुखानो आज सतजन-मीनन कौ
दीनन को हाय देव-पादप उखरि गो॥ ५॥

सवैया—

बातैं सरोस कबौं कहिकै हित मौं कबहू समझाइबो तेरो।
मेरे घने अपराधन को बहु ब्यौंत बनाइ दुराइबो तेरो॥
कोह किये कपटी 'हरिऔध' के रचकहूँ न रिसाइबो तेरो।
मारिबो पी कौ न सालत है पर सालत सौत बचाइबो तेरो॥ ६॥

दोहा—

खोले ना अँखिया खुलति बनि दुखिया है मूक।
होति बिपति बतिया सुने छतिया नाहिं छ टूक॥ ७॥

दिन-दिन छीजत जाति है रही न पति छिति माहिं।
रेजो - रेजो होत है कठिन करेजो नाहिं॥ ८॥

## ४—क्रोध

शत्रु के अपमान, आग्रह और दंभ से उत्पन्न हुए हर्ष के प्रतिकूल मानसिक भाव को 'क्रोध' कहते है। हृदय के प्रिय और अनुकूल भावों पर आघात होने से भी 'क्रोध' का प्रादुर्भाव होता है।

कवित्त—

जैहै जो बिगरि तो पकरि कै रगरि दैहौं
देखि अनखैहै तो अनख बनि जैहौं मैं।
सूधे जो न बोलिहै तो ठोंकि-ठोंकि सूधो कैहौं
बात जो बनाइहै तो लातहू लगैहौं मैं॥
'हरिऔध' ऐंठिहै तो ऐंठिबो रहैगो नाहिं
दाँत पीसिहै तो दौरि दाँत तोरि दैहौं मैं।
आँख फोरि डारिहौं दिखाइहै जो आँख मोहि
कोऊ आँखि काढिहै तो आँखि काढ़ि लैहौं मैं॥ १॥

रोस भये अरि को मसक-सम मीसि दैहै
रार मचे सूर-साधना को ना सरेखिहै।
भीर परे भीरुता न भरिहै रगन माहिं
लाग लगे पवि को पतौआ सम लेखिहै।
'हरिऔध' अरे ह्वै है अचल हिमाचल लौं
भिरे पुरहूत को पतंगम लौं पेखिहै।
लोहा लिये कालहू के काल ते सकैहै नाहि
लाल-लाल आँखि कोऊ लाल कैसे देखिहै॥ २॥

मनमानी किये कबौं मानिहौं मनाये नाहिं
बड़े-बड़े मानिन को मान मोरि देहौं मैं।
प्रतिकूल परम-प्रबल-दल-पोत काँहिं
निज बल-बारिधि मैं बोरि-बोरि देहौं मैं॥
'हरिऔध' गारिहौं गरब मगरूरिन कौ
बड़े दगादार कौ तगा लौं तोरि देहौं मैं।
गाल मारिहै तो अरि-गाल फारि मोद पैहौं
आँख दिखराई है तो आँख फोरि देहौं मैं॥ ३॥

आग बरसाइहौं अरिन के अगारन मैं
गरल सुधारस-सरोवर मैं घोरिहौं।
बाँके-बाँके बीरन की बीरता बिगारि देहौं
छिति के छितिप की छितिपता को छोरिहौं॥
'हरिऔध' तेह भये पूरिहौं पयोनिधि कौ
बड़े-बड़े तरु को तिनूका सम तोरिहौं।
फोरिहौं गिरिन को उतारि लैहौं तारन को
रबि को बिथोरि देहौं ससि को निचोरिहौं॥ ४॥

सवैया—

सूधियै नीकी लगै सबको भला बंकता भौंहन को कत दीजत।
नूतन लालिमा लाभ किये कत गोल कपोल की है छबि छीजत॥
चूक परी न चलै 'हरिऔध' पै नाहक ही इतनो कत खीजत।
बाल हौं यौंहीं निहाल भई अब लाल कहा अँखियान को कीजत॥ ५॥

दोहा—

चिनगी लाइ चितै-चितै हरहिं चारु चित-चैन।
दहत नेह की देह हैं तेह-तये तिय-नैन॥ ६॥

रिसहूँ में सरसत रहत बरबस बनत रसाल।
ललना-लोचन लाल ह्वै लालहिं करत निहाल ॥ ७ ॥

## ५—उत्साह

शूरता, दान और दया में उत्पन्न हुई प्रबल इच्छा के आविर्भाव को 'उत्साह' कहते हैं। बल, विद्या, प्रताप, दयालुता, दान-सामर्थ्य, कार्यकारिणी शक्ति और धर्म-उद्रेक इसके आधार हैं।

कवित्त—

जागि-जागि केहूँ जे न जागहिँ जगाइ तिन्हैं
सूखी धमनीन मैं रुधिर-धार भरिहौं।
सुधरि सुधारि कै समाजहिं उधारि लैहौं
परम-अधीरता निवारि धीर धरिहौं ॥
'हरिऔध' उबरि उबारि बरिहौं विभूति
बीरता अबीरता अवनि मैं बितरिहौं।
धोइ दैहौं कुजन-मयक को कुअंक-पंक
जाति-भाल-अंक को कलंक सब हरिहौं ॥ १ ॥

बास-हीन बिरस असंयत सनेह कोंहिं
बासवारे-सुमन-सुबास सो बसैहौं मैं।
सकल सुपास सुख-संचन कसौटिन पै
रंच न सकैहौं चाव-कंचन कसैहौं मैं ॥
'हरिऔध' जाति-हित करि हारिहौं ना कबौं
बैर-धूरि कोंहिं बारि-पात ह्वै नसैहौं मैं।
विविध बिरोध-वारिनिधि बारि को सुधारि
बारिधर की-सी बारिधारा बरसैहौं मैं ॥ २ ॥

पीछे जो हटैगे तो पगन काँहिं पगु कैहौं
कर जो कँपैंगे तो करन को कटैहौं मै ।
छिलि जैहै जो न जाति-उर के छतन ते तो
छल-धाम छाती काँहिं छलनी बनैहौं मै ॥
'हरिऔध' जो न कढ़ि पैहैं चिनगारियाँ तो
लोचनता लोचनन केरि छीनि लैहौं मै ।
भीति ते भरैगो तो रहैगो भेजो भेजो नाहिं
काँपिहै करेजो तो करेजो काढ़ि दैहौ मै ॥ ३ ॥

सवैया—

पारि सकौ अपने परपच की देरी परीनहूँ के बर पायन ।
आनि सकौ मसिहूँ की कला अपने कल कौसल और उपायन ॥
कामिनि कौन तिहूँ पुर मैं 'हरिऔध' हो जाकौ सकौ अपनाय न ।
आन तियान की बात कहा ठगि लाऊँ कहो दिवि की ठकुरायन ॥४॥

दोहा—

छ्वै उछाह-कर बनत है मरु-छिति छबिमय कुंज ।
कनक कनकता लहत है रजत होत रज-पुंज ॥ ५ ॥
उर उमगे उधरति धरा नभ बिचरत नभ-यान ।
नख पै ते गिरि नहिं गिरत जल पै तिरत पखान ॥ ६ ॥

## ६—भय

अपराध, भयकर शब्द, विकृत-चेष्टा और रौद्रमूर्ति जीवादि द्वारा जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसका नाम 'भय' है ।

कवित्त—

संका की चुरैल है बनावति दुचित-चित
भूत-अभिभूत भाव उर को गयो नहीं ।
भूरि भीरुता है होति भीति-अनुभूति ही ते
भरि जात जी मै कब भभर नयो नहीं ॥

'हरिऔध' पात खरकत हैं कँपत गात
कब छिति माहिं छोभ रहत छयो नहीं।
उभय नयन माँहिं भय अजहूँ है भरो
सभय हमारो मन, अभय भयो नहीं ॥ १ ॥

काको चार बाँह है बड़ो हैं बलवान कौन
का न हमैं बीरता-बिभूति को सहारो है।
काहें फिर अरि अवलोकत बजत दाँत
काहे भूत-अभिभूत होत भाव सारो है ॥
'हरिऔध' काहे रोम-रोम है भभर-भरो
काहे भीति-पूरित विलोचन को तारो है।
धरकत उर काहे खरकत पात ही के
थर-थर काहे गात काँपत हमारो है ॥ २ ॥

सवैया—

हाँस-भरी गगरीन भरे हौं चली हरुये 'हरिऔधहिं' हेरी।
बावरो बानर औचक आइ गह्यो अचरा मग मैं अरि एरी ॥
काँपि उठी भभरी चली भाजि हौं टूटी गिरे गगरी सिर केरी।
बीर अजौं बतिया न कढ़ै धरकी छतिया रतिया भर मेरी ॥ ३ ॥

दोहा—

है न देस हित भय भरो है न भयावह बात।
उभरि-उभरि कत चित्त तू भभरि-भभरि भजि जात ॥ ४ ॥

भव-जन-मानस भय-भरे क्यों न भभरि भहराहिं।
है न भूत-भावन-भजन भूत-भावना माँहि ॥ ५ ॥

## ७—जुगुप्सा

किसी अपराध के हृदय में उदय होने, किसी दोष के स्मरण करने, घृणित वस्तु के देखने, छूने और किसी नारकीय वचन की बातों के सुनने से जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसे 'ग्लानि' अथवा 'जुगुप्सा' कहते हैं।

कवित्त—

चेरो हौं न तेरो, तेरो मोल हूँ लियो हौं नाहिं
तानिहै हमैं तो हौं तिगूनो तोहिं तानिहौं।
नीचपन कैहै तो नचैहौं तो को नाना नाच
साँच तजे काँच इतनो ना सनमानिहौं॥
'हरिऔध' बदि-बदि बाद जो बढ़ैहै मोसों
बादी के समान तोको बद तो बखानिहौं।
मान करिहौं ना, मान कीनेहूँ मनैहौं नाहिं
एरे मन तेरी मनमानी मैं न मानिहौं॥ १॥

चित की अबलता अबलता रही तो कबौं
कैसे जर सबल सबलता की खनि है।
ताव-हीन तन जो बनैगो तावबारो नाहिं
कैसे तो न तमकि तमकवारो तनिहै॥
'हरिऔध' कैसे जाति धँसिहै धरा मैं नाहिं
मानस-अधीर जो न धीरता मैं सनिहै।
कैसे दूरि ह्वै है बैरि-विविध-विरोध-धूरि
आँसुन की धारा बारि-धारा जो न बनिहै॥ २॥

पंच बनि वधिक-बिपंची के करत काम
कब परपंची ह्वै प्रपंच मैं फँसे नहीं।
बोरि-बोरि बारि मैं तगा के सम तोरि-तोरि
छोरि-छोरि बंधन गये कब कसे नहीं॥

'हरिऔध' मुख-लाली रखत न लाली रखि
कब भाल-अंक के कलंक सो लसे नहीं ।
धीरता रही न डूबी धरम-धुरीनता है
उधरी धरा न पै धरा में तो धँसे नहीं ।।३।।

कहा दुख पावै पछतावै अकुलावैं महा
नैनन तें नीर कौन काज ढारियत है ।
कौन-से सपूत के नसे ते कौन प्रान राखै
याते ऐसी इनकी दसा निहारियत है ।।
'हरिऔध' भली भई जो पै अंध दियो साप
पापिन के ऐसे ही प्रमाद टारियत है ।
तू तो इतनाहूँ ना बिचार्‌यो मन एरे मूढ़
तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है ।।४।।

दोहा—

कैसे करुनाकर कहँहिं करहु कृपा की कोर ।
चित आकुल ह्वै जात चितवत अपनी ओर ।।५।।
पावन चित मैं बहत है परम अपावन सोत ।
कैसे मुख सौंहैं करहि मुख सौंहैं नहि होत ।।६।।

## ८—आश्चर्य

विस्मयजनक पदार्थों के देखने, अलौकिक सामर्थ्य-सपन्न विभूतियों के अवलोकन करने अथवा उनका वर्णन सुनने वा उन्हें स्मरण करने से जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसका नाम 'आश्चर्य' है ।

कवित्त—

गगन के न्यारे-न्यारे तारन-कतार देखे
करत कलोल देखे मीनन कौ जल मैं।
रतन-अमोल अवलोके रतनाकर मैं
जगमग जोति देखे जगत अनल मैं॥
'हरिऔध' वाको चित चकित बनत नाहिं
लाल-लाल फूल देखे हरे-हरे दल मैं।
बहरन कारे-कारे घन की घटा निहारि
छहरत छाई छटा देखे छिति-तल मैं॥१॥

बिपुल-बिनोद सों कढ़े हैं दंत दारिम के
विहँसि रही है चाँदनीहूँ निसिकंत की।
कल-कंठ कौसल सों करत मधुर-गान
थिरक रही है कला मदन-महंत की॥
तेरी ही अनूठी छटा हेरि 'हरिऔध' प्यारे
कलित कलीन को ठनी है बिकसंत की।
भोर-भीर भाँवरैं भरत उनमत्त ह्वै कै
फूली आज मंजु फुलवारी है बसंत की॥२॥

तेरी ही कला ते कलानिधि है कला-निधान
है सकेलि तेरी केलि कलित पतंग मैं।
गुरु-गिरि-गन है तिहारी गुरुता के लहे
पावन-प्रसंग है तिहारो दूत संग मैं॥
'हरिऔध' तेरी हरियाली ते हरे हैं तरु
तू ही हरि बिहर रह्यो है हर अंग मैं।
तेरो रंग ही है रंग-रंग के प्रसूनन मैं
तू ही है तरंगित तरंगिनी-तरंग मैं॥३॥

भव-वारि-वाह-व्यूह-वृंद-सो वसुधरा है
नाना-वायु नाना-वायु-मंडल सहारे है।
आकर अनंत हैं अनंत हैं निसाकरहूँ
रस-रासि-रस ते सरस रस-सारे है॥
'हरिऔध' मिल्यो ना अपार-पारावार-पार
सीमित असीम की असीमता ते हारे है।
प्रभु मंजु-तेज को विकास है पतंग-पुंज
विभु-तनु-तोयधि-तरंग नभ-तारे है॥ ४॥

सवैया—

मंद ही मंद सुगौन कै सूरज चंद ह्वै मौन तुमै निरधारैं।
कानन को तृनहूँ सदा साँवरे तोको अनंत अचिंत उचारैं॥
धीर-पयोधिहूँ 'औध-हरी' मरजाद सो तोको गभीर पुकारैं।
सीतल या मलयानिलहूँ अपनी-तल तेरो प्रताप पसारैं॥ ५॥

दोहा—

देखत ही कितनो गुनो लोचन तिल ह्वै जात।
कैसे नभ तारन-सहित तारन माँहि समात॥ ६॥
सरसित मानस मैं बहै सरस प्रेम-रस सोत।
गागर मैं सागर भरत नागर सागर होत॥ ७॥

## ९—निर्वेद ( शम )

विशेष ज्ञान द्वारा सांसारिक विषयों में विराग—क्षणभंगुर पदार्थों को देखकर हृदय में त्याग का विकास—होने से जो एक प्रकार का मनोविकास उत्पन्न होता है उसका नाम 'निर्वेद' है।

कवित्त—

कुसुमाकर सदा ना वनत कुसुमाकर है
बारिद सदैव बारिधारा ना वहत है।
सब दिन ललित दिखात नाहिं लोनी लता
लहलहे तरु ना सदैव उलहत है॥
'हरिऔध' कौन काल-कवलित होत नाहिं
सदा कल-नाद कल-नादी ना लहत है।
फली-फूली बेली फूली-फली ही लखात नाहिं
फूल-फूले फूलहू न फूले ही रहत है॥ १॥

गारी दै दै गजब गुजारत गरीवन पै
ऐसो मन गौरव गुमान गरस्यो परै।
लोभ बढ़े पूजित पिता औ प्यारे तातहूँ को
प्रान लेत तनकौ न प्रीति परस्यो परै॥
सरवस और को हरत 'हरिऔध' भाखै
सदा उर सौगुनो सनेह सरस्यो परै।
जीवन अदीरघ भयेहूँ देखो देहिन मैं
कैसो दोह-दुसह-दिमाग दरस्यो परै॥ २॥

दौरि-दौरि दीनता दिखावत दिमागिन को
दीह-दुख होत है दया-निधि के टेरे मैं।
आपनी भलाई को भरोसो भूतभैरव सो
तेरो भाव होत भूत-भावन न मेरे मैं॥
'हरिऔध' तीनो लोक प्रकट-प्रताप तऊ
कैसहूँ न पूरन-प्रतीति होति तेरे मैं।
सूरज उगेहूँ तम बूझत चहूँघा नाथ
सूझत न मोकौ आँखि आछत उजेरे मैं॥ ३॥

माधुरी परी है मंद कमनीय कदहूँ की
मिसिरीहूँ बिसरि गई ना रही काम की।
सूखी ऊख निपट निकाम ह्वै गयो मयूख
गरिमा नसी है आमहूँ-से रस-धाम की॥
'हरिऔध' दाख फूटी आँख सो न देखी जाति
गोरसहूँ गुरुता गँवाई गुन-ग्राम की।
चीनी बसुधा मैं ह्वै गई है औगुनी तो कहा
सौगुनी सुधा सो है मिठाई हरि-नाम की॥ ४॥

पाहन भये पै चाहैं पद-रज प्रेमिन को
बिहग भये पै बसैं बंदनीय बन मैं।
फल-फूल परसैं पगन पादपादि भये
पसु भये पावैं थान संतन-सदन मैं॥
'हरिऔध' कीट भये काहू भाँति भावैं तोहिं
नर भये तेरो पूत-प्रेम रमै मन मैं।
जाने कहा योग औ जुगुत एक जानैं तोहिं
जीवितस जाइ जौन योनि माँहिं जनमैं॥ ५॥

सवैया—

भूलि कै औरन की सुधि अंध ह्वै जाकी सुगंध पै भौर लुभानो।
संभु के सीस पै जो बिलस्यो 'हरिऔध' जू जाते सरो सरसानो॥
त्यों सुखमा कहि जाकी अजौं मनहूँ ना कबीनहूँ को अनुलानो।
सोई सरोरुह धूर भरो परो भू पै गरो बगरो कुम्हिलानो॥ ६॥

दोहा—

धोखो है, काको बिभव, है काको यह भौन।
है काको यह धन, धरा, अहै धराधिप कौन॥ ७॥

अरत रहत बिगरत बनत लरत-भिरत करि रार ।
कत सोचत नहिं बावरे है जीबो दिन चार ॥ ८ ॥

है घन-छाया ओस-कन है तरु पीरो पात ।
तू का है कितनो अहै कत इतनो इतरात ॥ ९ ॥

धूलि माँहि रावन मिल्यो गई रसातल लंक ।
कहा कलंकित होत कोउ सिर पर लेइ कलंक ॥ १० ॥

का धन, का जन, का बिभव, का महि, का परिवार ।
सपने की संपति अहै सब आहार बिहार ॥ ११ ॥

---

# संचारी भाव

# संचारी भाव

जो भाव रस के उपयोगी होकर जल के तरग की भाँति उसमे सचरण करते है उनको सचारी भाव' कहते है। ऐसे भावो की सख्या तैंतीस है। क्रमशः उनका उल्लेख किया जाता है—

## १—निर्वेद

विपत्ति, ईर्षा और ज्ञानादि के कारण अपने शरीर अथवा सासारिक विषयो में जो विराग भाव उत्पन्न होता है उसे 'निर्वेद सचारी' कहते हैं। दीनता, चिंता, आँसू, विवर्णता, उच्छ्वास, आकुलता आदि इसके लक्षण हैं।

कवित्त—

भूलि ना निहारैं पर-नारि ए हमारे नैन
रूखे बैन भाखन ते रसना 'भगी रहै।
पर-अपवाद सो न कान हित राखैं कबौं
मान-ममता मै मेरी मति ना पगी रहै॥
'हरिऔध' चित ना प्रपंचन सों प्यार राखै
सदाचार-संचन मै सुरुचि जगी रहै।
मगन सदा ही रहै मनुआँ हमारो राम
पगन तिहारे मेरी लगन लगी रहै॥१॥

सवैया—

कारज सोस को होत सबै पद-पंकज की रज को अपनाये।
स्वारथ होत है नैन दोऊ छबि साँवरी सूरत की दिखराये॥
पातकी कान पुनीत बनै 'हरिऔध' की प्यारी कथान सुनाये।
पावन होति है जीह अपावन भावन सो हरि के गुन गाये॥२॥

पाप ही मै सब जन्म गयो हित सो न कबौ हरि के गुन गाये।
नेह कियो पर-नारिन सो जग-बंचन को बहु बेस बनाये॥

झूठ कह्यो 'हरिऔध' सदा सब काज किये अपने मन भाये।
क्यों अजहूँ नहिं चेतत मूढ़ चिता पर पौढ़न के दिन आये ॥३॥

खोट कियो कितनो हित पेट के क्रूर कर्मीनन को संग दीनो।
पीर-सी होन लगी उर जो 'हरिऔध' कहूँ नबला लखि लीनो ॥
ताप भयो पर को हित देखत पाप मैं बीति गयो पन तीनो।
ना करनी करनीन कियो कबहूँ करुनाकर याद न कीनो ॥४॥

दोहा—

मन तू कत भटकत फिरत बिपिन बबूरन माँह।
तजि बहु-फलद मुकुंद-पद कलित-कलपतरु-छाँह ॥५॥
कामिनि सुत हित नात सो कहा जुरत जिय जात।
भजन देहिं बल-तात के ए न चरन-जलजात ॥६॥

## २—ग्लानि

मनस्ताप, श्रम, दुःख क्षोभ आदि से उत्पन्न हृदयजनित विकलता, शिथिलता अथवा असहनशीलता को 'ग्लानि' कहते है। इसके लक्षण कार्य करने में अनुत्साह, घृणा, उपेक्षा आदि हैं।

कवित्त—

हहरत हियरो अधिक अधमाई हेरि
हहरन वाको कै जुगुत कौन हरिये।
मेरो बार-बार अहै बिबिध-बिकार-भरो
होवे क्यों उबार बार-बार क्यों उबरिये ॥
'हरिऔध' पातकी है पातक-पयोधि परो
कैसे पाप-पीनता गलानि ते न गरिये।
सौंहै करि कहत रिसौंही अँखियान देखि
सौंहै होत नाहिं कैसे सौंहैं मुँह करिये ॥१॥

पामर ह्वै पामरता-पुंज के पयोनिधि ह्वै
प्रकटत रहत प्रभाव पुरहूती के।
परम अबुध ह्वै बिबुधता दिखावत है
कायर ह्वै बरत बिरद रजपूती के॥
'हरिऔध' जाति-भाल-अंक है कलंक-भरो
धूत ह्वै कै बसन रखत अवधूती के।
पूत को है पूत पै अपूत-पाग मैं है पगो।
बनत सपूत काम करत कपूती के॥ २॥

सवैया—

मोल है जैसो जवाहिर को यह जानत जौहरी ना बनजारो।
रीति कुलीन की जानैं कुलीन ही ना 'हरिऔध' कबौं चरवारो॥
क्यों इतनो बिलपै-कलपै जो कियो पहले अरि कै पतियारो।
रे मन कूर न तोसो कही कब नंद-कुमार है कामरीवारो॥ ३॥

## ३—शंका

बहुत बड़े अनिष्ट अथवा इष्ट-हानिके विचार को 'शंका संचारी' कहते हैं। इसके लक्षण विवर्णता, कंप, स्वरभंग, इधर-उधर दृष्टिपात करना, मुँह सूखना आदि हैं।

कवित्त—

आँखि जो न खुली तो बिगरि जैहै सारो खेल
खलता सफलता की खाल खिंचवाइहै।
काल ह्वैहै कलह बिबाद विकराल ह्वैहै
बिन जैहै बाल-बाल बैर अधिकाइहै॥
'हरिऔध' जान जो न ऐहै तो अजान जन
जीवन-बिहीन जाति-जीवन बनाइहै।
भरत कुमार भेट ह्वैहै महा-भरत की
भारत की भूमि भारतीयता गँवाइहै॥ ४॥

सूखतो न बदन बिकंपित न गात होतो
हाथ-पॉव चलतो प्रगति अनुसरती।
जाति-हित-रत ह्वै विहित-रुचि-पूत होते
बनति बनाये बात कीरति पसरती॥
'हरिऔध' चित का न चेतनता दूर होति
परम अधीर-मति धीर क्यों न धरती।
भय भूत करतो प्रभूत अभिभूत नाहिँ
शंका की चुरैल जो चुरैलता न करती॥ ५॥

सवैया——

मुख कैसे दिखैहो सहेलिन को उनकी दिसि कैसे कहो चहिहौ।
यह मोल की बानि हमारी जरौ अब गारी हजारहूँ सहिहौ॥
मोहि बेर बड़ी 'हरिऔध' भई कब लौ या निकुंजन मैं रहिहौ।
कढ़िहो किमि गैल मैं गोकुल की कोऊ पूछिहै तो हौ कहा कहिहौ॥ १॥

## ४—असूया

दूसरे के उत्कर्ष का असहन और उसके हानि पहुँचाने की इच्छा को 'असूया' कहते है। दोषकथन, भृकुटिभंग, तिरस्कार और क्रोध आदि इसके साधन हैं।

कवित्त——

कहा भयो जो है मधु-माधव-सनेही महा
का भयो जो सौरभ-समूह-सहचर है।
का भयो जो परम-रसिक है रसालता को
का भयो जो कामुक सु-कुसुम-निकर है।
'हरिऔध' कहा भयो जो है कल-गान-कारी
का भयो जो पद्मिनी को प्रेमिक प्रवर है।
तन कारो मन कारो रंग कारो रूप कारो
परम नकारो यह कारो मधुकर है॥ १॥

होवै काम-कमनीय मोहक मयंक सम
होवै मधु-सरिस मधुरता वितरतो।
माहवी सुरेस-सी धनिकता धनेस की-सी
धर्मराज जैसो धर्म-भाव होवै धरतो।
'हरिऔध' होय सुरगुरु-सम गौरवित
महिमा त्रिदेव-सी मही मैं होवै भरतो।
माननीय होवै पै अमाननीयता है इति
मानव ह्वै मानवी को मान है न करतो ॥ २ ॥

सवैया—

मंजु मनोहरता कल-कीरति बेलि सदा अवनी महँ बोतो।
रूप-अनूपमता 'हरिऔध' निहारि कोऊ सुख-नींद न सोतो।
साँची कहौ मधुराई लखे मम आननहूँ अपनी पत खोतो।
मानती हौं हूँ तिहारी कही जो मयंक मैं बीर कलंक न होतो ॥ ३ ॥

दोहा—

हावै दल कोमल कलित सब फल भरे पियूख।
होय फबीले फूलहूँ तऊ रूख है रूख ॥ ४ ॥

## ५—श्रम

अधिक कार्य करने अथवा मार्ग चलने आदि से उत्पन्न शैथिल्य ( थकान ) का नाम 'श्रम' है। इसके लक्षण साँस फूलना, नींद आना, पसीना निकलना और आलस्य आदि है।

कवित्त—

आँखि मूँदि परे है उठायेहूँ उठहिं नाहिं
छाले भरे पग छाँह छोरि-छोरि छके है।
दूर है अवास, बास-थल है न बास जोग,
थोरो रह्यो दिन पास रहे नाहिं टके हैं ॥

'हरिऔध' होनि है सरीर माँहि पीर घनी
पीरे परे ऐसे मानो पान-दल पके है।
कुपथ विपथ की कथानहू कहहिं नाँहिं
चले कौन पथ क्यो पथिक ऐसे थके है ॥ १ ॥

सवैया—

मुख पै श्रम के कन छाये अहै खुलि गालन पै अलकैं है परी।
सिथिलाई भई सब-अगन मै कुम्हिलाई लसै मनो फूल-छरी ॥
निरखो 'हरिऔध' चहूँघा लखै अलबेली अजौ अलसान-भरी।
मन-मारे सहारे तमालन के बन-बीथिन मैं थकी प्यारे खरी ॥२॥

दोहा—

ओस-भरित-तरु-पात लौं सेद-सलिल-मय-गात।
बतरावत है विपथ-गत थकित-पथिक की बात ॥ ३ ॥
बिधु-बदनी के बदन पै है बिलसत श्रम-बिंदु।
किधौं सुधा-सीकरन-मय है राका-निसि-इंदु ॥ ४ ॥
सेद स्रवै कर पग कँपै बनै सिथिल-तन छाम।
तजत काम वारो नहीं तऊ आपनो काम ॥ ५ ॥
मलिन बनै छिदि भिदि नुचै श्रम-कर ते तन-ग्रंथ।
छोरत नहिं पूरो पथिक पथ रुकेहू पथ ॥ ६ ॥

## ६—मद

जिसमें मोह के साथ आनद का मिश्रण हो, उस दशा को 'मद' कहते हैं, मद-पान इसका साधन है। इसके लक्षण अनर्गल प्रलाप, अनुचित बर्ताव, आरक्त नयन, मुसकान मे विशेष मधुरता, वक्रोक्ति मे रमणीयता आदि हैं। किसी-किसी ने मद सचारी मे धन, यौवन, रूपादि के अभिमान ( मद ) को भी माना है।

कवित्त—

कंचन-रचित मनि-मंडित-महल-मंजु
दीन-उर-दाह दावानल माहिं दहिहै।
त्रिभुवन-पूरित प्रतीति-प्रतिभू-प्रताप
पातक के प्रबल-प्रवाह माहिं बहिहै॥
'हरिऔध' वा दिन गिरैगो गिरि गौरव को
जा दिन गरीब की गोहार गिरो गहि है।
कान मूँदि मूँदि कान करि है न बात को लौं
मद-वारो आँखि मूँदि-मूँदि कौ लौ रहि है॥१॥

औरन की आनि को न कैसे सनमान हो तो
मोल मति-मानता को ममता न खोती जो।
लालिमा मलिन कैसे होति लोक-आनन की
कलह-कुबीज मन-कालिमा न बोती जो॥
'हरिऔध' मेदिनी की मंजुता महान होति
समता गुमान-कदाचार से न रोती जो।
मानवता-मंदिर को मंजुल-महंत होतो
मानव में मादकता मद की न होती जो॥२॥

सवैया—

मधुराई मनोहरता मुसुकानि मैं औचक आइ समानी नई।
रस की बतिआनहूँ मैं 'हरिऔध' अनेक-गुनी निपुनाई ठई॥
मद छाके छबीली-बिलासन हूँ सुबिलासिता की बर बेलि बई।
छलकी-सी छटा अँखियान परै छबि आननहूँ पै छगूनी छई॥३॥

दोहा—

मान राज-मंदिर-रुचिर नहिं मिलतो रज माहिं।
ओले-जैसे बरसते जो मद-गोले नाहिं॥४॥

लसित नवल - लतिकान सी बहु - लालसा उमंग।
दलित होति किमि, नहिं दलत जो मद-मद-मतंग ॥५॥

अनुचित उचित विचार करि चित न कौन अकुलात।
गौरव गिरि पै होत लखि पल-पल मद-पवि-पात ॥६॥

जा मैं लसत कुलालसा कला - कलित - सुख -सोम।
तामस - मानस - गगन - गत - मद है वह तम तोम ॥७॥

बर - रस - कामुक कहि सके जाहि न कबौं रसाल।
अकमनीय - मन - बिपिन को है मद वह तरु-ताल ॥८॥

## ७—धृति

तत्त्वज्ञान, साहस, सत्संग आदि के प्रभाव से विपत्ति-काल में अविचलित-चित्त होना 'धृति' कहलाता है। तृप्ति, चित्त की स्थिरता, धीरता, बुद्धि की गहनता इसके लक्षण हैं।

कवित्त—

तमके गगन-तल के तारन को तोरि लैहै
उमगे तरंगमान-तोयधि को तरिहै।
उचके चकित कैहै चंद को खेलौना करि
सपरे स-कौतुक तरनि-तेज हरिहै॥
'हरिऔध' कहा धारु बाँधि कर पैहै नाहिं
धीर जो अधीरता विहाई धीर धरिहै।
लपके कचरि चूर करिहै हिमाचल को
पके पाकसासन को पकरि पछरिहै ॥१॥

तीर-सम-सिसिर-समीर बेधि दैहै नाहिं
मंद-मद-मलय-पवन पुनि बहिहै।
कारे-कारे-तोयद-कतार दिखरैहै नाहिं
भाग-नभ हँसत-बिमल-बिधु लहिहै।

'हरिऔध' आकुल अनाकुल बिपुल ह्वैहै
दुख—तूल—पुंज को अदुख-दावा दहिहै।
प्रतिकूलता मैं अनुकूलता निवास कैहै
काल पा के काल की करालता न रहिहै॥ २॥

सवैया—

पास परोसिन आइ नितै परतीन की नाना-कथान को जोरैं।
बात चले सखियाँ सिगरी परदेस गये की दिखावत खोरैं॥
नेह रखै 'हरिऔध' नहीं अपनायतहूँ ते सदा मुख मोरैं।
लाला रहै पतिओं की तवौ पति को पतिनी परतीत न छोरैं॥३॥

है दुख औ सुख दोऊ जहान मैं कोऊ नहीं दुख-ही-दुख पैहै।
बीति गये अँधियारी निसा 'हरिऔध' दिवाकर होत उदै है।
क्यों इतनो मन आतुर होत है औसर पै सब ही बनि जैहै।
पीतम को मुखचंद लखे फिर या दुखिया अँखिया सुख पैहै॥४॥

दोहा—

भये तिरोहित रजनि-तम रंजित गगन दिखात।
पल-पल आकुल ह्वै बिपुल तू अलि कत अकुलात॥ ५॥
रहिहै चोरत कब तलक घन तेरो चित-चोर।
चौंकि चौंकि चितवत कहा चारों ओर चकोर॥ ६॥

## ८—आलस्य

श्रांति और जागरणादि-जनित निश्चेष्टता तथा सामर्थ्य होने पर भी उत्साह-हीनता को 'आलस्य' कहते हैं। पड़े रहना, जँभाई लेना, एक जगह बैठे रहना आदि इसके लक्षण है।

कवित्त—

आँखि अवलोकिहूँ सकत अवलोकि नाहिं
कान चाव साथ बात कान है न करतो।

वचन उचारत बिरस रसना है होति
मन है न बहुत उभारेहूँ उभरतो ॥
'हरिऔध' आलस रमित रोम-रोम मैं है
उर मैं उमग है न मंजु भाव भरतो ।
हाथ पर हाथ धरे बासर बितीत होत
परि-परि भूतल पै पाँव है न परतो ॥ १ ॥

पलक उठति तो न पल मैं पतन होतो
तिल जो तुलत हानि होती क्यो अतुलतो ।
चलति चलाये जो न तन-कल काहिली के
कैसे बन जात कांति-हीन कात-कुल तो
'हरिऔध' होतो जो न आलस लिलार-लिपि
कैसे तो हमारो ना कलंक-अंक धुलतो
मुँह जो खुलत तो अभाग खुल खेलतो क्यो
आँख जो खुलति भाग कैसे तो न खुलतो ॥ २ ॥

सवैया—
अरुनाई अकास मै छाई लखाति दिवाकर हूँ निकरोई चहै ।
'हरिऔध' गुलाब-कलीहूँ खिली सुखदाइनि-सीरी-बयार बहै ।
परी सेज कहा अँगिरात जम्हात तू लोयन को उठि लाहु लहै ।
पलकै न खुलै अलकै बिथुरी इतनो क्यो अली अलसानी अहै ॥३॥

दोहा—
तब कैसे उठि कछु करहिं चलहिं फिरहि कहुँ जाहि ।
जब पग - पग पै पग अरत परत परगहूँ नाहिं ॥४॥

## ९—विषाद

इष्ट न प्राप्त होकर अनिष्ट होने से जो दुःख अथवा उपायाभाव के कारण पुरुषार्थ-हीनता जन्य जो मानसिक कष्ट होता है, उसको 'विषाद' कहते हैं । इसके लक्षण निश्वास, उच्छ्वास, मनोवेदना आदि है ।

कवित्त—

पकि पकि रहिहै पकरि कै करेजो कौ लौं
कलपि-कलपि कौ लौं बासर बिताइहै।
कौ लौं विधवा-पन-बधिक बेधि-बेधि दैहै
कौं लौ बेभो बनि-बनि बिपुल बिलखाइहै ॥
हरिऔध' कौ लौं अनुकूल-काल पैहै नाहिं
कौ लौं कालिमा के लगे पलक न लाइहै।
कौ लौं ह्वैहैं बलि बलवान-रुचि-बेदिका पै
भारत की बाला कौ लौं अबला कहाइहै ॥ १ ॥

करि-करि कलह कलंकित करत कुल
सबल-करन लाभ कर बने लूले हैं।
फल की है चाह पै सफलता मिलति नाहिं
फूले-फूले फिरत अजौं न फले-फूले हैं ॥
'हरिऔध' सोचि-सोचि व्यथित बनत चित
बिललात रहत बिलात ज्यों बलूले हैं।
लाले परे सुख के, कसाले सहे, भाले, सहे
भोलेपन माहिं भोले-भाले हिंदू भूले है ॥ २ ॥

सवैया—

अनजानता जोहि कै या जग की नित जीवन के दिन जोरै लगी।
अपमान औ मान की बात कहा है अपानहूँ ते मन मोरै लगी ॥
'हरिऔध' अमोही भये अँखियान के आँसुन हूँ को निहोरै लगी।
तन की सुधि होति नहीं तन कौ अब तो बन के तृन तोरै लगी ॥३॥

दोहा—

है वाके हित तिमिरमय आज अवनि सब ओक।
लोक समालोकित हुतो लहि जाको आलोक ॥ ४ ॥

बहु ललकित लोचन हुतो हेरि जेहि कलित-केलि ।
है विदलित भूतल परी वह अलबेली बेलि ॥ ५ ॥

## १०—मति

भ्रान्ति का कारण रहते भी यथार्थ ज्ञान बना रहना 'मति' है। इसके लक्षण मुस्कुराहट, धैर्य, संतोष और आत्मावलबन हैं।

कवित्त—

लाल ह्वै कै काहू के विलोचन न काल होते
छिनै मुँह-कौर ना करेजो कोऊ छिलतो।
कुंचित, कुतेवर, बनावतो ढुंचित नाहिं
कहत उचित बातहूँ ना मुँह सिलतो।
'हरिऔध' सदन सदन सुखसाज होतो
वदन सरोज मंद-मंद हँसि खिलतो।
प्रेम होतो कैसे तो न मिलते मिलाये मन
मेल होतो कैसे तो न मेल-फल मिलतो ॥ १ ॥

पावन परम कैसे बनतो अपावन तो
भेद जो पतित-जन-पावन को जानतो।
रहतो अकाम तो सकामता सतावति क्यो
कैसे कुसुमायुध कुसुम-सर तानतो।
'हरिऔध' कुमति बनति कमनीय कैसे
मतिमानता को जो सदैव सनमानतो।
ममता मनन की जो होति मनमानी छोरि
मानव को मन तो मनाये क्यों न मानतो ॥ २ ॥

सवैया—

लोग भले ही सिकोरि कै आपनी भौहन काहि लखावै कलंकहि।
कामी कुसंगी निसाचर हूँ अनुमानि सदा कितनो किन सकहिं॥

एक ही भाव सों ए 'हरिऔध' करै अनुरंजित राव औ रंकहिं ।
सीतलता हितकारिता हेरिकै को द्विजराज कहै न मयंकहिं ॥३॥

दोहा—

उचित जतन करि हेरतो जो घन-रुचि-तन ओर ।
क्यो मोहित होतो न तो मोहि-मोहि मन मोर ॥ ४ ॥
क्यो होतो कमनीय-तम सकल-अवनि-तल नाहिं ।
कमल-नयन जो निवसते लोयन-कोयन माहिं ॥ ५ ॥

## ११—चिंता

हित की अप्राप्ति के कारण उत्पन्न आधि को 'चिन्ता' कहते है। इसके लक्षण उद्विग्नता, ताप और उन्निद्रता आदि है।

कवित्त—

काहे गुन भारत को गुनहूँ न मानो जात
काहे गुन होत जात औरन को औगुनो ।
काहे सुख लेसहूँ रह्यो न सुख-पूरित मे
सहत कलेस क्यो कलेस-हीन सौगुनो ।
'हरिऔध' काहे भूल मे है नित भूल होति
काहे अनुकूल प्रतिकूल होत नौगुनो ।
दुख भरपूर बार-बार है विसूर होत
सोचि-सोचि चित चूर-चूर होत चौगुनो ॥ १ ॥

कैसे भला दिन दिन दूनो दुख ह्वैहै नाहि
ऑखिवारो जो न ऑखि खोलि भलो करिहै ।
आपनो हितू ही मारिहै जो हाथ मारि-मारि
कैसे नाहि कोऊ तो बिना ही मौत मरिहै ॥
'हरिऔध' गाज जो गिराइहै गरजवारो
कैसे तो गरीब पै न गाज गिरि परिहै ।

याही भाँति अन्न भाव रैहै जो अभाव भरो
कैसे पेट भूरि-भूखे भारत को भरिहै ॥ २ ॥

दोहा—

लोल लोचनन को किये ललना परम अलोल ।
कहा करति है कल्पना कर पर रखे कपोल ॥ ३ ॥

## १२—मोह

भय, दुख, घबराहट और भ्रमजनित चित्त की साधारण अचेतनता और भ्रांति को 'मोह' कहते है। इसके लक्षण मूर्छा, अज्ञान, पतन, सिर घूम जाना आदि है।

कवित्त—

छिति-छबि-पुजता अमोल-मुकुतावलि को
मंजु-दृग-तारन मै पोहत रहत है ।
मलय-अनिल नभ-तल-नीलिमा मै लसि
चित चोरिबे को पंथ जोहत रहत है ॥
'हरिऔध' चारुता-निकेतन-मयंक माहिँ
तारन-कतारन मै सोहत रहत है ।
होवै महा-महिम महान मतिमान होवै
काको मन मोह नाहिँ मोहत रहत है ॥ १ ॥

प्रेमी-जन कैसे प्रेम-पथ को पथिक होतो
प्रेम के हिंडोरे माहिँ प्रेमिका क्यो झूलती ।
दीपक पै गिरिकै पतंग क्यो दहत गात
मृगी क्यो बधिक की बधिकता कबूलती ॥
'हरिऔध' मोहकता होति जो न मोह माहिँ
मोहित करति क्यो लवंग-लता फूलती ।
बँधि-बँधि कोमल कमल के उदर माहिँ
मधुप-अवलि क्यो मधुपता को भूलती ॥ २ ॥

दोहा—

देह गेह को नेह तजि चित-आकुलता रोकि।
ललना है ललकति रहति लाल-बदन अवलोकि ॥३॥

नयनन ते सूझत नहीं मुँह मैं रहे न दाँत।
अपनो तन अपनो नहीं मनको मोह न जात ॥४॥

## ११—स्वप्न

निद्रा में निमग्न पुरुष के विषयानुभव करने का नाम 'स्वप्न' है। इसका व्यापार कोप, आवेग, भय, ग्लानि, सुख, दुःख से पूर्ण होता है।

कवित्त—

धोखे को महल कैसे मिल जातो धूर माहिं
मति की तुला पै कोरी बंचना क्यो तुलती।
खोलते तो कैसे समाधान-नख-कमनीय
पल-पल बहु कलकानि गाँठ घुलती।
'हरिऔध' कैसे चित्रकारी सपने की सब
लहिकै विबोध-बारि-धर-धारा धुलती।
भेद खुल गये सारो खेल कैसे खेल होतो
जो न खुल जाति आँखि आँखि कैसे खुलती ॥ १ ॥

आये कंत गात कछु अंक अवलोकन कै
मान मन ठानि उठि कंठ सो लगायो ना।
सहमि सकानो खरो हेरत पिया को हेरि
जिय कै कठोर दया हिय मै बसायो ना।
प्रानप्यारो पर्ग्यो पगन 'हरिऔध' पै
तऊ न पतियाई औ सुबोलहूँ सुनायो ना।
सपना समझि सब अपनो नसायो चैन
नैन के खुले पै आली बैन कहि आयो ना ॥ २ ॥

सवैया—

रोगन सोगन भोगन मै परि, तापन ते तिगुनो तपनो है।
है अपने अपने हित के हित कौन हितू जग मै अपनो है।
औधि को भूलत क्यो 'हरिऔध' तू साँस के नापन को नपनो है।
कोऊ सजीवन कौ लौ जिआइहै जीवन जीवन को सपनो है ॥३॥

दोहा—

सुख-मय दुख-मय भूति-मय सरस विरस बहुरूप।
सपने की संपति सरिस है ससार सरूप ॥ ४ ॥
सब कछु है कछु है नहीं अवलोकन भर सार।
अपनो है अपनो नही है सपनो ससार ॥ ५ ॥

## १४—विबोध

निद्रा दूर करनेवाले कारणों से उत्पन्न चैतन्य-लाभ को 'विबोध' कहते है। इसके लक्षण जँभाई, अँगड़ाई, आँख खोलना, अंगों का अवलोकन करना आदि होते है।

कवित्त—

भाग-भाग कहि सो बनैगो कैसे भागवारो
भभरि-भभरि जो अभाग ते है भागतो।
जो है लोक-सेवा की लगन नाहिं साँची लगी
कैसे लाभवारो ह्वैहै लोगन को लागतो।
'हरिऔध' नाना-अनुराग को कहा है फल
देस-राग मे है जो न मन अनुरागतो।
कहा जागि कियो कहा लाभ है जगाये भयो
जागे हूँ जो जी मै जाति-हित है न जागतो ॥ १ ॥

बीर जन-बीरता वसुंधरा-विबोधिनी है
साहसी ही साहस दिखाइ होत आगे है।

सबल के सामने सरोवर पयोनिधि है
सावधान सामने धरनि-धुरे धागे है।
'हरिऔध' सारी सिद्धि तिनकी सहोदरा है
सिद्ध-पाग मे जो सच्ची साधना के पागे है।
भाग जागे भू मै कौन भोग भोग पाये नही
जाग गये जग मे न काके भाग जागे है ॥२॥

दोहा—

खुलत न आँखे अधखुली बार-बार अँगिरात।
जगत जगाये क्यो नही रही नहीं अब रात ॥३॥
फिरत तमीचर देखियत है तम चारो ओर।
जागहु-जागहु जगत-जन मूस रहे है चोर ॥४॥

## १५—स्मृति

सदृश वस्तु के अवलोकन तथा चितन, विहार-स्थल के परिदर्शन आदि से जो पूर्वानुभूत बात याद हो जाती है, उसे 'स्मृति' कहते हैं। इसके लक्षण चाचल्य और भौंह चढ़ाना आदि होते है।

कवित्त—

बीरता रही न बंदनीयता बिलोप भई
सदा के सपूत ह्वै कपूत निबहत है।
देवराज देखि सुख जिनको सिहात हुतो
वेई आज सारी दैव साँसत सहत है।
'हरिऔध' बिधि-अबिधान को कहाँ लौ कहै
अविधि-प्रवाह माँहि बिबुध बहत है।
चारो फल लहि जे सफल लोक-पाल हुते
तिनके सलोने लाल लोन ना लहत है ॥१॥

जहाँ हुती एकता, बिबुधता बिराजमान
तहाँ बैर, कलह, बिबाद को बसेरो है।
जहाँ हुतो बिमल-विचार-बिधु को बिकास
तहाँ छल कपट-सघन सघन घन घेरो है
'हरिऔध' बिगरे अतीत वैभवन हेरि
बार-बार उर होत व्यथित-घनेरो है।
बंस-अचेतनता बिलोकि चारु-चेतन को
चेत करि बनत अचेत चित मेरो है ।।२।।

सवैया—

कै हमहूँ कबौ लोक-ललाम लौ लोक-ललामता के रखवारे।
कोमलता-कमनीयता-लालित गात-मनोहरता मतवारे ।।
भाल के अंक रहे भव के 'हरिऔध' रहे दिवि-देव-दुलारे।
लाल रहे कमला-कल-अंक के भूतक-भारती-लोयन-तारे ।।३।।

दोहा—

सुख लालित कलरुचि कलित कुलकलंक के काल।
कबहूँ हमहूँ लोक के रहे अलौकिक लाल ।।४।।
कबौ न हम ऐसे हुते बोध-बिहीन बराक।
बँधी धरा-तल धाक ते बँची नाक-पति नाक ।।५।।

## १६—अमर्ष

दूसरे के अहकार को न सहकर उसके नष्ट करने की कामना, अथवा आक्षेप और अपमानजन्य चित्तविक्षेप का नाम 'अमर्ष' है। आँखों में लाली, शिरकंप, भ्रूभग और तर्जन आदि इसके लक्षण है।

कवित्त—

भूतल जो भव की बिभूति को ढुराइहै तो
बिगरि बिगरि ताको बारिधि मै बोरिहौ।

गिरि निज-गौरव-गरूर दिखराइहै तो
करि कै प्रहार काँचे-कुंभन लौं फोरिहौं।
'हरिऔध' तपि-तपि ताप जो अतुल दैहै
तरनि-किरिन को तो तगा सम तोरिहौं।
चितचोरि चोरि चारु-सुधा को चुराइहैं तो
चूर-चूर करिकै मयंक को निचोरिहौं॥ १॥

हरिहौं कलंक-सारो कुल के कलंकिन को
रखि मुख-लाली लोक-कालिमा निवारिहौं।
कलह-ललक को ललकि लहू गारि लैहौं
बद को सुधारि बदी-हृदय बिदारिहौं।
'हरिऔध' करिकै मिलाप ह्वै सबल जैहौं
फैली फूट पापिनी को उर फारि डारिहौं।
उघरि-उघरि जाति-बैर को पछारि दैहौं
कचरि-कचरि कै कचूमर निकारिहौं॥ २॥

दोहा—

करत बिबिध उत्पात जो नेकौ नाहिं सकात।
तो मन कत बिललात तू लगे लोक की लात॥ ३॥

हम कैसे इनको नहीं मूदि रखहि दिन रात।
मेरे लोचन लालची रूप देखि ललचात॥ ४॥

लगर को संकित करहिं हरहिं चपल - चित - चैन।
है मुँह की लाली रखत लाल-लाल मम-नैन॥ ५॥

कैसे नहिं फरकै अधर बक बनै नहिं भौंह।
अकलंकित-चित होत नहिं करत कलंकित सौंह॥ ६॥

## १७—गर्व

अपने प्रभाव, ऐश्वर्य विद्या तथा कुलीनता आदि का अहंकार करना, अन्य से अपने को अधिक मानना गर्व' कहलाता है। अन्य मे तुच्छ दृष्टि, अविनय, ओष्ठ का कपन, अंगुष्ठ का अनुचित रीति से दिखलाना आदि इसके लक्षण हैं।

कवित्त—

लोक-हित-सुरसरि-सलिल सनेही महा
जाति-हित-पूत बेदिका को बर-बलि है।
देस-सेवा-नव-मेघ-माला को मुदित-मोर
कुमति - मलिन - महि - पादप अवलि है।
'हरिऔध' रस-मान-सर को मराल-मंजु
भाव-सर-वारिजात कल्पना को कलि है।
ललना-ललित-चरितावलि को लोलुप है
कविता-कलित-कुसुमावलि को अलि है॥ १॥

सवैया—

है धन गो-धन मंजुल मंदिर है सजी सेज औ साज सँवारे।
चाव है चारु, बिचार है सुंदर भावुकता भरे भाव है सारे।
मो सम कौन सुखी 'हरिऔध' है हैं ललना दृग लोल हमारे।
है लली लोयन की पुतरी बनी लाल बने अहै लोयन-तारे॥२॥

पंखी बताइ हँसी करै हंस की केहरि को है पसून मैं लेखो।
मंजुल मानै न मीनन कौ 'हरिऔध' बखानै न बारिज बेखो।
आपने रूप ही की उपमा करै और की चाहै न राखन रेखो।
दाग को दोख दिखावत चंद मैं या तरुनी को दिमाग तो देखो॥३॥

दोहा—

है ऐसी कमनीयता नहिँ कनकाचल माँहि।
भारत - भूतल - रज - सरिस है रजताचल नाहिं॥ ४॥

जासु भावमयता कहत गहत भारती मौन।
भूतल मै भारत-सरिस भूरि-भाग है कौन ॥५॥

## १८—उत्सुकता

अभीष्ट की प्राप्ति में विलंब का असहन 'उत्सुकता' कहलाता है। इसके लक्षण चित्त संताप, आतुरता, आकुलता, निःश्वास, पसीना आदि है।

कवित्त—

रस सरसाइ बरसाइ बर सुधा कब
मानस-गगन मै मयक-सम खिलिहौ।
कब उर मॉहि जमी मादकता-मैल कॉहि
निज अनुकूलता सु छूरिका ते छिलिहौ।
'हरिऔध' कब बैनतेयता-बनक लैकै
मेरे पाप-पुंज पन्नगाधिप को गिलिहौ।
पलक-पलक पर लालसा सतावति है
सौगुनी ललक भई लाल कब मिलिहौ ॥१॥

सवैया—

मानव की मति दानवता तजि मानवता कब मजु लहैगी।
नीति कुनीति कहैहै नहीं कब सुदर-नीति सुपंथ गहैगी।
आकुल है 'हरिऔध' महा कब आकुलता कतहूँ न रहैगी।
प्रेम-सुधाकर के करते कब शांति-सुधा बसुधा मै बहैगी ॥२॥

दोहा—

रहत रैन-दिन अति-दुचित चित नहिँ पावत चैन।
कब मुख कमल दिखाइहौ अमल-कमल-दल नैन ॥३॥
काहें नाहिं कृपायतन करत कृपा की कोर।
लाखन अँखियाँ है लगी तव अँखियन की ओर ॥४॥

## १९—अवहित्य

भय, लज्जा और गौरवादि के कारण अपनी अवस्था अथवा किसी बात को छिपाना 'अवहित्य' कहलाता है। इसके लक्षण बात बराना, दूसरी ओर देखना, अनभीष्ट कार्य में प्रवृत्त दिखाना आदि है।

सवैया—

मानत हार है हार भये पर पै मन मै अनुमानत जीतै।
है हरुओ पर चाहत है सुनो औरन ते गरुओपन गीतै।
प्रीति को बानो रखै 'हरिऔध' पै पावत मोद किये अनरीतै।
आँखि चुरावत राति सिराति है बात बरावत बासर बीतै॥१॥

दोहा—

कुल-ललना सकुची सहमि मिले नैन ते नैन।
मुँह के मुँह मे ही रहे कहे अधकहे बैन॥२॥
चित-चंचलता देखि कै पिय-चचल-दृग माँहि।
लागी गिनन कमल-मुखी केलि-कमल-दल काँहि॥३॥

## २०—दीनता

विविध दुःख तथा विरह आदि के कारण चित्त के ओज-रहित होने का नाम 'दीनता' है। खिन्नता, मलिनता, साहस-हीनता आदि इसके लक्षण है।

कवित्त—

मानत न मन मनमानी ही करत नित
तनहूँ हमारो नाहिँ बस मै हमारे है।
बहु दुख बार-बार दुखित बनावत है
दादिर-दमामो-दीह बाजत दुआरे है।

'हरिऔध' मान महनीयता को देत नाहिं
मति कमनीयता ते रहति किनारे है।
दीनबंधु तो सो दीनबंधु कौन दूसरो है
दीनता हमारी दीनबंधुता सहारे है॥ १॥

कैसे मुख जोहतो सुजनता-बिमुख-जन को
साँसत-दुसह कैसे बार-बार सहतो।
कर जोरि-जोरि क्यो निहोरतो अनेहिन को
तेहिन के तेह की तरंग मै क्यों बहतो।
'हरिऔध' कैसे बलवानन की बलि होतो
कैसे खल-गौरव के रौरव मै रहतो।
दयानिधि तू जो दयानिधिता दिखावतो तो
कैसे दीन दीनता-दवागिनि मै दहतो॥२॥

दोहा—

निरखि निरखि निज दीनता क्यो न दीन बिलखाहिं।
दीनबंधु मै देखियत दीनबधुता नाहिं॥३॥

दीनबंधु कौ दीन को बंधु जानि मन माहिं।
नित फूले-फूले फिरत पै फल पावत नाहिं॥४॥

## २१—हर्ष

इष्ट की प्राप्ति से चित्त को जो आनद होता है उसे 'हर्ष' कहते हैं। इसके लक्षण गद्गद स्वर, पुलकावलि, उत्फुल्लता आदि है।

कवित्त—

मन के बिलास ही ते ललित बिलासिता है।
मन सुधार-धार ही सुधानिधि मै बही है।
मन-रस ही ते है रसिकता सरस होति
मन-माधुरी ते रुचि माधुरी की रही है।

'हरिऔध' मंजु मन ही है मंजुता को मूल
लोने-मन ही ते लता लोनी लहलही है।
मन के प्रमोद ही ते दिसा है प्रमोदमयी
मनोमोद ही ते मोदमयी सारी मही है ॥१॥

सवैया—

मोहन मोहमयी मुरली सुनि मोहित ह्वै तिय है सुधि खोती।
मोदमयी बतिया उर-भूमि मैं है बर बीज बिनोद के बोती।
हेरि मनोहरता 'हरिऔध' की नैनन ते बरसावति मोती।
लालन की अलकावलि को लखि है तन मै पुलकावलि होती ॥२॥

दोहा—

ललकित-पुलकित-नयन ते करि रस-पान अथोर।
हँसत निरखि नभ-चंद को है बिहँसत मन-मोर ॥३॥

किलकत हँसत ललकि - ललकि जात जननि की गोद।
मोद होन काको नहीं निरखत बाल-बिनोद ॥४॥

कवित्त—

कोमल-कलित-कंठ-गान ते निहाल होत
सुनि बर बादन बिनोदित रहत है।
अवलोकि लोने लाल ललना-ललाम-मुख
प्रति-पल पुलक-प्रवाह मै बहत है।
'हरिऔध' भागवान चौगुनो-उमाह-भरो
चंद चाँदनी को चाहि-चाहि उमहत है।
पुलकित बनत बिलोकि बिटपावलि को
मोद कुसुमावलि ते बिपुल लहत है ॥५॥

## २२—व्रीड़ा

कारणविशेष से जिस लज्जा का हृदय में संचार होता है उसे 'व्रीड़ा' कहते हैं। इसके लक्षण मानव संकोच, सिर का नीचा होना आदि है।

कवित्त—

पानी गिर गयो जिन आँखिन को कैसे तिन्हें
पानी वारी करिकै अपानिपता हरिहै।
भली जो बनति है भली कहि बुराइन को
कैसे भाव उनमैं भलाइन को भरिहै।
'हरिऔध' जाति-मुख-लालिमा रहैगी किमि
कुल-कामिनी ही जो न कालिमा ते डरिहै।
आवत समीप जो लजाति अहै लाज ही तो
लाज वारो लाज को इलाज कहा करिहै॥१॥

घरनी जो घर को बनाइहै न साँचो घर
घर वारो घर की बिपति कैसे सहिहै।
कामिनी जो कैहै काम नाहिं कुल-कामिनी को
कामुक को कुल तो कुलीनता क्यों लहिहै।
'हरिऔध' पय जो पिआइहै न पय वारी
कैसे कबौ अ-पय उरो ते पय बहिहै।
लाज-वारी यदि लाज करत लजाइहै तो
कोऊ लाजवारो कैसे लाज-वारो रहिहै॥२॥

दोहा—

लाज गँवावति जाति की नेक न आई लाज।
गजब गुजारत दीन पै सिर पै गिरी न गाज॥३॥
सुंदरता के सजन को है अति सुंदर साज।
है कुलीनता की तुला कुल-ललना की लाज॥४॥

काहे घूँघट खोलि कै नहिं करि लेति निहाल।
लालन - लोयन - ललक को कत ललकावति बाल ॥५॥

## २३—उग्रता

स्वार्थ, रोष तथा अपराधादि के कारण उत्पन्न हुई निर्दयता और चडता का नाम 'उग्रता' है। इसके लक्षण शिरकंपन, तर्जन-गर्जन और ताड़नादि हैं।

कवित्त—

भारत को जन भरि-भरि भारतीयता मैं
जा दिन उभरि जाति भीरुता भगाइहै।
भूरि-भाग बनि भूति मान ह्वै है भूतल मैं
सकल-भुवन कॉहिं भवन बनाइहै
'हरिऔध' साहस दिखाइहै तो सारो लोक
सहमि-सहमि सारी सूरता गॅवाइहै।
डोलि जैहै आसन महेस कमलासन को
सासन बिलोकि पाकसासन मकाइहै ॥१॥

दीन-दुख देखि-देखि दुखत करेजो नाहिं
दूनो दाम मॉगहिं दुखन की दवाई के।
औरन को गरो दाबि-दाबि गरुआई गहै
पोर-पोर मै है भरे भाव करुआई के।
'हरिऔध' क्रूरन की क्रूरता कहा लौं कहै
चित्त ना कसहिं काम करहिं कसाई के।
पेरि-पेरि औरो पीर देहिं पीरवारन को
पिसे कॉहिं पीसि पैसे मॉगहिं पिसाई के ॥२॥

दोहा—

कोऊ चित मम चैन को पीसि-पीसि है जात।
जो पाहन होतो न तो पाहनपन न लखात ॥३॥

तिनके मानस देखियत कालहुँ चाहि कराल।
निज लालन के हित हनहिं जे औरन के लाल ॥ ४ ॥

## २४—निद्रा

परिश्रम, क्लान्ति, ग्लानि और मादक-द्रव्य-सेवन आदि से उत्पन्न चित्त के बाह्य विषयों से निवृत्ति का नाम 'निद्रा' है। इसके लक्षण जँभाई, आँख मींचना, उच्छ्‌वास और अँगड़ाई लेना आदि है।

कवित्त—

अलसात, जात, अग तोरि-तोरि अँगिरात
बहुत जम्हात रात बीति गई सारी है।
बुरे-बुरे सपन बिलोकि कै बिकल होत
सुरति भये हूँ नाहिँ सुरति सँभारी है।
'हरिऔध' काहू के जगाये हूँ जगत नाहिँ
बिपुल पुकारे हूँ न पलक उघारी है।
अधखुली आँखिन को खोलि-खोलि मूँद लेत
खुलि-खुलि आँखि नहिँ खुलति हमारी है ॥१॥

खोलत न मुख देह गेह की नहीं है सुधि
सूरज उगे हूँ सारी सुरति बिगोये है।
हिलत न डोलत न बोलत बुलाये नेक
होत न सचेत अचेतनता समोये है।
'हरिऔध' हारि गयो उठत उठाये नाहिँ
कहा काहू बेदना ते राति भर रोये है।
खुलि खुलि केहूँ नींद खुलि है सकति नाहिँ
कब के उनीदे हैं कि ऐसी नींद सोये है ॥२॥

दोहा—

मन अनुरंजन करत है अनुरंजित-नभ-राग।
जागि गयो सिगरो जगत जागनवारो जाग॥ ३॥
परे कब नहीं कूप मैं अपनो रूप बिसारि।
कव बरबस खोये नहीं सोये पाँव पसारि॥ ४॥

## २५—व्याधि

शरीर मे विविध रोग के सचार का नाम 'व्याधि' है। इसके लक्षण काम-आकुलता, मूर्छा, विकलता आदि हैं।

कवित्त—

कलही कलंक-धाम कुल के कपूतन ते
धूत अवधूतन ते सारो देस भरो है।
जन-जन-जीवन प्रमाद-परिपूरित है
घर-घर बहु बाद पाँव रोपि अरो है।
'हरिऔध' हेरि-हेरि पकरि करेजो लेत
सहमे सहमि गात-रोम होत खरो है।
अतन-समान है समाज को पतन होत
तन बिन गयो तन जाति-मन मरो है॥१॥

दूबरो सरीर अंग-अंग है कसर-भरो
सूखो सो बदन सादी रहन-सहन है।
चारु है बिचार है चकित-कर चितवन
चाव है बचाव-भरो रुचिर बचन है।
'हरिऔध' को है भाव बिबिध-बिभाव-भरो
परम-प्रभाव-भरो कलित कथन है।
उर अनुराग-भरो मानस बिराग-भरो
जीवन बियोग-भरो रोग-भरो तन है॥२॥

सवैया—

मोपै न मंत्र प्रयोग भयो कोऊ मोहि डस्यो न भुअंगम कारो ।
भूत की बाधा न मोपै भई नहिं बावरो-सो भयो चित्त हमारो ।
तू उपचार के ब्योंत करै कहा जानै कहा 'हरिऔध' बेचारो ।
बान-सी मारि गयो उर मैं अरी बीर बड़ी-बड़ी आँखिनवारो ।।३।।

दोहा—

सारे सुख मैं बहत हैं बिबिध दुखन के सोत ।
है सब योग-बियोग-मय भोग-रोग-मय होत ।। ४ ।।
सुख चाहे नहिं सुख मिलत सहे बनत दुख-भोग ।
मेरो रोगी तन भयो कबहूँ नाहिं निरोग ।। ५ ।।

## २६—मरण

कारणविशेष से शरीर से प्राण-वायु निकल जाने का नाम 'मरण' है। इसके लक्षण श्वास-हीनता, निष्प्राणता आदि है।

कवित्त—

काल-गति अवलोकि धरिबो धरा पै पग
कीरति कमाइबो है काल-बल हरिबो ।
लोक-पति-लाह अहै लहिबो अमर पद
लोमसता अहै लालसान ने उबरिबो ।
'हरिऔध' ह्वैबो बलि लोक-हित-बेदिका पै
मान के सहित जाति-मान रखि मरिबो ।
जीवन गँवाइ जीबो अहै जगती-तल मैं
अहै वसुधा-तल मैं सुधा-पान करिबो ।। १ ।।

सकल मही-तल मैं महिमा-निकेतन की
महनीय-महिमा निहारि उहमत है ।

जल थल अनल अनिल को विकास बनि
विकसित अवनि अकास मैं रहत है।
'हरिऔध' कर के निकर की बिभाकरता
बारिधता बूद की निबाहि उमहत है।
एकता बिचारि जग-जीव जग-जीवन की
जीवन गॅवाइ जन-जीवन लहत है॥ २॥

दोहा—

वह न अमर है तो अहै अमर अमर-सम कौन।
जिअत मरत मरि-मरि जिअत जगती-तल मैं जौन॥ ३॥
परो काठ-सम तन रहत सुत तिय हा हा खात।
तजि धन जन प्यारो सदन प्रान कहूॅ चलि जात॥ ४॥

## २७— अपस्मार

अवस्थाविशेष के कारण मिरगी-रोग के समान चित्त का विक्षेप होना 'अपस्मार' कहलाता है। भूमि-पतन, कंपन, प्रस्वेद, मुख से झाग और लार का निकलना इसके लक्षण है। भूत बाधा अथवा प्रयाग आदि के कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है।

कवित्त—

विधि-बामता है कै करालता कपाल की है
किधौं पाप-दव है प्रपंच-पूरि दहतो।
किधौं फल अहै रुज बिबिध असंयम को
कै है या मैं नियति-रहस्य कोऊ रहतो।
'हरिऔध' कछु भेद होत ना तौ कैसे जीव
कर पग पटकि दुसह-दुख सहतो।
धूल मैं लुठत कैसे कमल-मृदुल-तन
फूल-जैसे आनन ते फेन कैसे बहतो॥ १॥

सवैया—

कै अहिफेन भख्यो कै डस्यो अहि भूत भिर्यो कै कहूँ भभरी है।
आनन ते बहु फेन बहावति काँपत गात बेहाल-खरी है।
ए 'हरिऔध' जनात न का भयो सूखति जाति क्यों बेलि हरी है।
फूल-छरी-सम धूरि-भरी यह भूतल पै परी कौन परी है ॥२॥

दोहा—

खोये रतनन सुरति करि हहरत हा हा खात।
अवनि-लुठत काँपत, हिलन, फेनिल जलधि लखात ॥३॥
कै दुख-बस महि परि कँपति फेन तजति अकुलाति।
कै मिरगी मुँह मैं परी है मृगदृगी दिखाति ॥४॥

## २८—आवेग

अचानक इष्ट वा अनिष्ट की प्राप्ति मे चित्त की आतुरी को 'आवेग' कहते हैं। इसके आकुलता, स्तंभ, कंप, हर्ष और शोक आदि लक्षण हैं। इष्ट-जन्य आवेग में हर्ष ओर अनिष्ट-जन्य में शोक होता है।

कवित्त—

निज बेस बसन बिसारि है बिराने बने
बस होते बेबसी बितान क्यों तनत हैं।
जानि जानि सकल-सजीवन जरी को गुन
जीवन गँवाइ जाति-जर क्यों खनत है।
'हरिऔध' सदा के चतुर चातुरी बिहाइ
आतुर कहाइ आतुरी मैं क्यों सनत हैं।
बावले कहावत क्यो बान बावलो-सी कहि
क्यो करि उतावली उतावले बनत है ॥ १ ॥

परग-परग चले पारग पथी के होत
थोरो-थोरो किये काम होत बहुतेरो है।
खिन-खिन सूखे मूखे जात है सरित-सर
छिन छिन छीजे छूटि जात घन-घेरो है।
'हरिऔध' पल-पल बीते राति बीति जात
धीरे-धीरे दूर होत अवनी-अँधेरो है।
होत ना उबार तो उबार कहा हैहै नाहिं
कत अकुलात बार-बार मन मेरो है ॥ २ ॥

अकुलानि भरो माप-फन सहकारी भाव
उर मैं उफान-जैसो कत उफनत है।
सारी साहसिकता क्यों रंकता-समान भई
सूरता-विहीनता मैं सूर क्यों सनत है।
'हरिऔध' धीर को तजति कत धीरता है
बार-बार सुधि क्यों सिधारत अनत है।
पुरु के सरिस तरु कैसे मरु होत जात
गिरि-ऐसो गरुओ क्यों हरुओ बनत है ॥ ३ ॥

सवैया —

छबि रावरी हेरि छबीली छकी मिगरे छल-छंदन छोरै न लगी।
अलकावली लाल तिहारी लखे कुल-कानि हू ते मुख मोरै लगी।
'हरिऔध' निहारि कै नैन सुहावने देवन हूँ को निहारै लगी।
तरुनाई तिहारी निहारि तिया उकतान-भरी तृन तोरै लगी ॥४॥

दोहा —

लरखरात पग कर कँपत थरथरात है गात।
तितनी आकुलता बढ़ति जितनो जिय अकुलात ॥ ५ ॥

कत कछु को कछु है कहति कत अगिराति जम्हाति।
काहे चञ्चलता-मयी चचल-नयनि लखाति ॥ ६ ॥

## २९—त्रास

किसी अहित भावना से हृदय मे जो भय उत्पन्न होता है उसे 'त्रास' कहते हैं। कम्प, व्याकुलता आशका आदि इसके लक्षण हैं।

कवित्त—

बनिकै अमर करि समर बचैहौ मान
कसिकै कमर काम करिहौ अँगेजो मै।
यमदड केरी दंडनीयता निवारि दैहौ
करि दैहौ खंड-खंड काल हू को नेजो मै।
हरिऔध कैसो त्रास त्रास मानिहौ ना कबौ
रहन न दैहौ पास भीति-भरे भेजो मै।
खरे ह्वै है रोम रोम-रोम तो उखारि दैहौ
काँपिहै तो रेजो रेजो करिहौ करेजो मै ॥ १ ॥

दोहा—

है न हँस-हित भय-भरो है न भयावह बात।
उभरि-उभरि कत चित्त तू भभरि-भभरि भजि जात ॥ २ ॥
गिरति उठति उठि-उठि गिरति सिहरति भजति जम्हाति।
कत भामिनि भय ते भरी भभरी भूरि दिखाति ॥ ३ ॥

## ३०—उन्माद

काम शोक, भय आदि के प्राबल्य से चित्त मे जो एक प्रकार का विक्षेप और व्यामोह होता है उसे 'उन्माद' कहते हैं। हँसना, रोना, गाना, व्यर्थ बकना आदि इसके लक्षण है।

कवित्त—

दुख के समूह ते करत हित-कामना है
मोहित ह्वै मोह ते बजावत बधावरो।
बोझो राखि सीस पै बिबिध सहबासिन को
ढोअत है कंधन पै अंधन को काँवरो।
'हरिऔध' बनो घर बारन को घोरो रहै
बनै कबौ भोरो कबौ गोरो कबौ साँवरो।
हारो हारो रहत सहारो है लहत नाहिं
रावरो बनत ना हमारो मन बावरो॥ १॥

नूठे रहे झूठे झूठे भावन ते भोरे बनि
तिनके अँगूठे देखे जो नित तने रहे।
जग को प्रपंच मानि छूटे ना प्रपचन ते
जाल तोति-तोरि जाल जकरे बने रहे।
'हरिऔध' साँसन की आस को न आस मानि
साँसत-समूह माँहिं सतत सने रहे।
साँवरे बजत रहे बहॅक बधावरे ही
रावरे कहाये तऊ बावरे बने रहे॥ २॥

दोहा—

बहु बिरुझत बहॅकत बकत बिगरत बनत बिमोहि।
बार-बार मन बावरो करत बावरो मोहि॥ ३॥
रोवत गावत बहु हँसत रीझत खीझत जात।
बहॅकत बिगरत बावरो बहरावत बतरात॥ ४॥

## ३१—जड़ता

विवेकशून्य और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ चित्तवृत्ति को 'जड़ता' कहते हैं। इसके लक्षण टकटकी लगा के देखना, चुप होना, चलने-फिरने मे असमर्थ होना आदि हैं।

कवित्त--

जहाँ के तहाँ हैं परे कर पग अंगना के
तन भयो काठ ना उघारति पलक है।
बिपुल घुलति जाति हिलत-डुलत नाहिं
कलित कपोल पै न लुरति अलक है।
'हरिऔध' कहा भयो कहत बनत नाहिं
कामिनी को भई आज कौन-सी कलक है।
लोयन-ललक है कै झलक लगन की है
छल है छलावा है कि छोह की छलक है ॥ १ ॥

चलत न हाथ पाँव सुनत न कोऊ बात
खुलति न आँखि गात-सुरति बिसारी है।
कहा होत अहै कहा ह्वै है कहा कीबो अहै
याहू को न ज्ञान सारी सुधि हूँ सिधारी है।
'हरिऔध' मूकता है मन मूक हूँ ते घनी
मानो महामोह भये गई मति मारी है।
पाइकै सजीवता सजीव है बनति नाहिं
जीवन-बिहीन कैसी जड़ता हमारी है ॥ २ ॥

दोहा—

देह गेह के नेह ते साँसत सहत अतोव।
तऊ तजत जड़ता नहीं यह मेरो जड़ जीव ॥ ३ ॥
चकित भई अचपल भये लोचन चपल रसाल।
चितै चितेरे को बनी चित्र-पूतरी बाल ॥ ४ ॥

## ३२—चपलता

'मत्सर, द्वेष, रागादि के कारण अनवस्था तथा अस्थिरता सहित कार्य करने को चपलता कहते हैं। इसके साधन धमकाना, कठोर शब्द कहना और उच्छृंखल आचरण करना आदि है।

कवित्त —

पल-पल दौरक करत मनमानी रहै
जतन किये हूँ मोह मन को गयो नहीं।
परि-परि बस माँहिं वासना विसासिनी के
कब तन पापी नाना ताप ते तयो नहीं।
'हरिऔध' हारि परे नेको हित होत नाहिं
कब सुख-चाह सुख चाहत नयो नहीं।
वाल-मति आकुलता-अंचल तजत नाहिं
मेरो चित चंचल अचंचल भयो नहीं ॥ १ ॥

बैरि-दल जाते बार-बार बलवारो बनै
लोप होवै ऐसी लोक-लोपिनी अबलता।
दिन-दिन दूनो जाते दानवी-दमन होवै
धूरि माँहिं मिलै ऐसी मानवी सरलता।
'हरिऔध' जाते नर-विपुल बिफल होवै
धरा माँहिं धँसै ऐसी सकल-बिफलता।
जाते लहै चौगुनी बिकलता बिकल जन
चूर-चूर होवै ऐसी चित्त की चपलता ॥ २ ॥

सवैया —

कुंज मै राजति ही मुख-मंजु ते कै कल-कंजन की छबि औगुनी।
बात वहै तहाँ तौ लौ भई नहिं जाहि रही मन माहिं कबौ गुनी।
चौकि परी 'हरिऔध' को चाहि उमाहि चली बनि आकुल-चौगुनी।
नौगुनी चावमयी-चपला भई लोचन-चंचलता भई सौगुनी ॥ ३ ॥

दोहा—

चाव भरे चित-चोर को लखि चितवत ललचात।
चंचल-नयनी को भयो चित चलदल को पात ॥ ४ ॥

चली जाति कल-कुंज मैं चौंकति खरके पात।
चपला निज-गति-चपलते करि चपला को मात ॥ ५ ॥

## ३३—वितर्क

किसी प्रकार का विचार उठते ही चित्त में सदिग्ध भावों का उदय होना और इत कुत में लग जाना तर्क कहलाता है। इसके लक्षण भ्रकुटी भग, सिर हिलाना और उँगली उठाना आदि है।

कवित्त—

सुनि सुनि केहूँ है सुनत हित-बात नाँहि
जानि गुन-औगुन गुनन मैं न सने है।
जिनहीं ते जान है परगति जान-हीनन मैं
तिनकि तिनकि तनि तिनहीं ते तने है।
'हरिऔध' का है ए हमारे आन-बानवारे
जड़ है कि जीवन-विहीनन के जने है।
भोरे है कि चाहन उमाहन ते कोरे अहै
कै है हर-वाहन कि पाहन के बने है ॥ १ ॥

जो मन हमारो सदा मानतो हमारी कही
परमविमुख को तो मुख कैसे जोहते।
जो न मति होति लुंज कैसे तो मनुज ह्वै कै
गुंजा-पुज काँहिं मजु मोतिन मैं पोहते।
'हरिऔध' कामना रखति कमनीयता तो
कमनीय भाव कैसे उर मैं न सोहते।
तेरी दया होति तो न दयनीय होते राम
तेरी मया होति तो न माया-मोह मोहते ॥ २ ॥

छिन छिन छीजत है जाति को छबीलो तन
छूत-छात मैं परि अछूतो बल ख्वै गयो।
लाल ललना के छिने छतिया छिलति नाहिं
पातक छछूंदर उछाहन को छ्वै गयो।
'हरिऔध' काहें आँखि खोलेहूँ खुलत नाहिं
गिरि-सम गौरव अगौरव मैं ग्वै गयो।
मति छरि गई कै उछरि कै चुरैल लागी
सरि गयो भेजो कै करेजो रेजो ह्वै गयो॥ ३॥

दोहा—

पामर जन को है कहा पामरता पहचान।
पद पद पर ह्वै पतित क्यों पैहै पद निर्वान॥ ४॥
नहिं बोलत खोलत पलक तिय-तन डोलत है न।
लागी अहै चुरैल कै लगे नैन ते नैन॥ ५॥

# आलंबन विभाव

# आलंबन विभाग

## नायिका

जिस सुन्दरी स्त्री को अवलोकन कर हृदय मे शृंगार रस का संचार होत है उस रूपलावण्यवती युवती को नायिका कहते है। यथा—

कवित्त—

दीठ के परे ते गात-मंजुता मलिन होति
देखे अंग दलकहि दल सतदल के।
कोमल कमल सेजहूँ पै ना लहति कल
भारी लगै वसन अमोल मलमल के।
'हरिऔध' हरा पहिराये बपु-कप होत
पायन मै गड़हिं बिछौने मखमल के।
कुसुम छुये ते रंग हाथन को मैलो होत
छिपत छपाकर छबीली-छबि छलके॥१॥

अमल धवल चारु चाँदनी सरदवारी
आनन-उजास आगे लागति कपट सी।
आतप की धापहू ते तन कुँभिलान लागै
देखि छबि नीकी जाति रतिहू रपट सी।
'हरिऔध' कोमलता ऐसी कामिनी की अहै
पखुरी-गुलाब गात आवति उपट सी।
नूतन प्रसून लौ सुरंग अंग-अंग दीखै
कढ़त सरीर सो सुगंध की लपट सी॥२॥

चकित चितै कै चाव चौगुनो बढ़ाइ चौकि
चित अनुमानि लाल भूल्यो चैन सुख है।

चलि कत चरचा करै री चारुता को चूकि
सची चेरी वाकी चारुता के सनमुख है।
'हरिऔध' चाँदनी लौं हास चख झख के से
चलन अमोल चामीकर लौं बपुख है।
चपला सी चमक चितौन है चकोर जैसी
चंपा लौं बरन चारु चंद्रमा सो मुख है ॥३॥

कोमल कलित करि-कर लौं सु-कर नीके
कामिनी के परम प्रमोद उर पारे देत।
दीपति-बलित-दंत पाँति की दुगूनी दुति
दंभवारे दारिम को उदर बिदारे देत।
'हरिऔध' बाँके बड़े बान से बिखीले नैन
बारिजातहूँ को बर बरन बिगारे देत।
गहब गुलाब से गुलुफवारी कामिनी कौ
मंद - मंद गमन गयंद - मद गारे देत ॥४॥

सवैया—

कौन कथा मृग मीन की है किन दारिम दाख की बात कही है।
किन्नर नाग नरादि के नारिन की 'हरिऔध' जू कौन सही है।
रूप तिहारो निहारि कै राधिके देव-बधून की देह दही है।
भाजि हिमाचल मै गिरिजा बसी इंदिरा सागर बीच रही है ॥५॥

## शिख-नख-वर्णन

### शीश

दोहा—

मिलत निरखि या सीस ते नव रस की बकसीस।
सादर सीस नवाइ को देत न सदा असीस ॥१॥

फूलि उठे दृग सखिन के छबि लख देत असीस ।
ह्वै सफूल दूनो फबत सीस-फूल तिय-सीस ॥ २ ॥
फूल कहूँ फल कहुँ लगत यह बिपरीत महान ।
सीस-फूल सो देखियत स-फल होहिं अँखियान ॥ ३ ॥
सुर-पुर बसतहुँ लेत यह सुनासीर - मन खेंच ।
परत सरासर पेच मैं लखि तेरो सरपेच ॥ ४ ॥

## माँग

दृग ढुहून की देखियत बढ़त जाति नित माँग ।
कहा माँगि नहिँ सकति मन-माँगनवारी माँग ॥ १ ॥
रूप धरे अपनो दिपत अति-अनूप अनुराग ।
सरस-सिँदूरवती नहीं यह युवती की माँग ॥ २ ॥
पारि देत मन पेच मैं रच पेचीले स्वाँग ।
नीकी-मुकतावलि-बलित गज-गमनी की माँग ॥ ३ ॥

## पाटी

कबौं पटी नहिँ काहु की तिय-पाटी के साथ ।
याहि अटपटी मैं किते पटकत पाटी माथ ॥ १ ॥
पढ़ि बिधि की पाटी कहत जग-परिपाटी कॉहि ।
जो मुख पाटी सों पटे पाट ठटेहूँ नाँहि ॥ २ ॥

## चोटी

बिख सो कछु चढ़ि जात सुनि या बेनी की बात ।
लहर न आवत काहि लखि नागिनि सी लहरात ॥ १ ॥
बिख वाके काटे चढ़त याके नेकु लखात ।
क्यों बेनी सी औगुनी गिनी नागिनी जात ॥ २ ॥
का अजगुन की बात जो मानव - हिय हरखात ।
सुमन-सजी बेनी लखे सुमनस-जी न अघात ॥ ३ ॥

चित को विचलावत चलत कुटिल चाल न लखात।
लखि बेनी व्याकुल बनो फिरत व्याल बल खात ॥ ४ ॥
कैसे कोऊ म्हि सकै बेनी-बिख की ज्वाल।
बिवर बसेहूँ नहिं भयो गरल-बिवरजित व्याल ॥ ५ ॥

## जूरा

पूरा बिखधर-फन दियो बिख-कूरा बतराय।
मन-अजान तबहूँ जुरा वा जूरा सो जाय ॥ १ ॥
तब जूरा को भेद तिय समुझि परत कछु नाँहि
है छटाँक-भरहूँ न पै मन बाँधत छन माँहि ॥ २ ॥
जूरा बाधन मैं कछू साधन और लखान।
कहूँ बँधनवारो न मन जह बरबस बँधि जात ॥ ३ ॥

## अलक

भ्रमत इनै न बिलोकियत बन-बागन गुजारि।
अलि-कुल अकुलाने फिरत अलकावली निहारि ॥ १ ॥
पल-पल ललकत ही रहै लालन-लोयन दोय।
लखे आलुलायित अलक लालायित चित होय ॥ २ ॥
कैसे कोउ मानव सकै निज मन-नैनन रोकि।
अलकाबारेहूँ फँसहिं अलकावलि अवलोकि ॥ ३ ॥
बँधन अरूझत ही रहत मिटत न मन को दंद।
जो छोर्यो जूरा पर्यो अलकावलि को फंद ॥ ४ ॥
पान-काल जब चूकि कै लट-व्यालिनि बल खाति।
जल-कन मिस मुख-ससि-सुधा बूँद-बूँद गिरि जाति ॥ ५ ॥
लार बहावत नागिनी मुख-मयंक-मधु-हेत।
टपकत अलकन ते न अलि यह जल-कन छबि देत ॥ ६ ॥

नेक नहीं मेरी सुनत हारि परे हम टेरि।
एरी क्यों लटि जात मन यह तेरी लट हेरि॥ ७॥
गति मन-नैनन की निरखि मति बतरावति मोंहि।
ए जुलमै परिजात है जुलमी जुलफन जोंहि॥ ८॥

## केश

कवित्त—

मंजुल सिवार सुकुमार-पन्नगी-कुमार
मेरे जान मखतूल-तारहूँ ते नीके है।
रस-धाम करैं ए अकाम-मनहूँ को छाम
तम ते बनाये बीछि काम-रमनी के है।
'हरिऔध' सरस-सिंगार-रस के है सार
कारक-अपार-मोद सारी आवनी के है।
घुघुरारे आनन-अगारे छबिवारे प्यारे
सटकारे कारे कारे-केस कामिनी के है॥ ९॥

दोहा—

छहरत छाये छवा लौं छंद छगूने धार।
प्यारे-प्यारे छरहरे छबिवारे ए बार॥ १०॥
कारे-कारे चीकने सने-सनेह सु-देस।
मन अटकाये लेत है ए लटकाए केस॥ ११॥
बिन बूझे सरबर करत तू बावरी बयार।
बिगरेहूँ बनतहिं रहहिं ए बगरे बर-बार॥ १२॥
मेरो मन सोचत निरखि कामिनि तेरे बार।
दीप-सिखा-मुख ते कढ़त काजर की यह धार॥ १३॥
कै साँपिनि के सिसुन को गहि आन्यो मुखान।
किधौं छरहरे केस ए छहरत छये छवान॥ १४॥

बगरे ए न बिलोकियत मेचक चिकुर अथोर।
कढ़ि कलंक एकत भयो मुखमयंक दुहुँ ओर॥ १५॥

## भाल

बिरचन मै जाके जले बिधिहुँ निराली चाल।
निरखि भाल भूले मनहिं कैसे सकहिं सँभाल॥ १॥
जके थके निरखत रहे सके न बूझि बिचार।
पारत रसिकन पेच मै परि कै सिकन लिलार॥ २॥
नवल बाल के भाल पै कै बल परो लखाय।
कै दरपन-तल पै परी लहर-लरी दरसाय॥ ३॥
बाल-भाव ऊँचो लसै किधौ समूचो चैन।
छटा-अटा कै यह पटा मंजु चौहटा-मैन॥ ४॥

## भौंह

कहा करै अनुमान किमि कही न मानत मोर।
मुरत न मोरे मन पर्‍यो भामिनी-भौंह-मरोर॥ १॥
भामिनि-भौंह बिलोकियत बिगरत बनत सवेग।
गजब गुजरत कौन पै यह गुज़राती तेग॥ २॥
बिन गुन बिसिख बिलोकियत बीरन करत अमान।
कहै क्यो न हम कामिनी-भौंहन काम-कमान॥ ३॥
बीर बूझियत भौंह को बंकिम झुकी बिलोकि।
चली जात अलि की अवलि नैन-कमल अवलोकि॥ ४॥
बंक पाँति बिधि कर लिखि बिबिध-भाव-आधार।
को बिचार भौंहन करै बिना भये मुख चार॥ ५॥
जन-मन-नैनन को हरति गति-मति करति अपंग।
बंक भौंह की बंकता मिली कुटिलता-संग॥ ६॥

## नेत्र

कवित्त—

किधौं विधि नैन कमनीय कामिनी के नीके
लसि मंजु आनन मैं मन लेत मोल है।
किधौं अति-सरस-सरद-सरसीरुह मैं
निवसि युगल अलि बनिगे अबोल है।
'हरिऔध' किधौं काम-कलित- मुकुर माँहिं
सोहत बिमोहत रतन अनमोल है।
मानी मनसिज - युग-मीन मन मोद मानि
किधौं चंद-मंडल मैं करत कलोल हैं ॥१॥

लाँबे लाँबे कुंचित चिकुर पीठ परि राजैं
सुबरन-भीति पै फनिंद गतिवारे से।
गोरे-गोरे सुघर कपोल पै सु-तिल सोहै
मसि-बिंदु सुमन-गुलाब मैं सँवारे से।
'हरिऔध' ऐसी कछू बनी है छबीली आज
सीस लसैं मोती अंधकार बिच तारे से।
कारे-कारे तारे ए अरुन अँखिया मैं डोलैं
अमल कमल मैं मिलिंद मतवारे से ॥२॥

दोहा—

निसि - दिन रसहूँ मै बसे लह्यो न सो रस मीन।
जो रस इन अँखियान को बरबस विधना दीन ॥३॥
याही ते बन मै बसे खंज बनज मृग मीन।
कछु अनबन ही सी रही अँखियन सों निबही न ॥४॥
करि सैनन उपजावहीं मैनहुँ के मन मैन।
एनी - नयनी के नये नीके ए दोउ नैन ॥५॥

होत वहाँ हूँ थिर नहीं जहँ पानी की खान।
इतनो बेपानिप कियो मछरिन को अँखियान ॥६॥
दृगन लजे मीनन लखत इत उत दौरत नाँहि।
डूबन को ढूँढ़त फिरहि ए अगाध जल काँहि ॥७॥
नेक न थिरता गहन की है खंजन की बान।
काको नहिं चचल करहिं ए चचल अँखियान ॥८॥
कढ़त न काढ़े कैसहूँ किये जतन दिन-रैन।
कछु चित मै ऐसे गड़े बड़े-बड़े ए नैन ॥९॥
चखन हाथ पानी गये भई झखन अस दाह।
कटे मर मिटे हूँ रही पानी ही की चाह ॥१०॥
काको रँग बिगरत नहीं बदलो लखि दृग-रग।
भये सुरंगहुँ मृगन को कबि-गन कहत कुरंग ॥११॥
जितनो तिरछे ह्वै चलै तितनो करै निहाल।
इतनो लोच न क्यों रखै ए तव लोचन बाल ॥१२॥
काहि न ए अपनावहीं इनको कौन अहै न।
कहा करि सकत है नही बाल तिहारे नैन ॥१३॥
कौन मसाले से बने देखे-भाले है न।
रस के प्याले से लसै निपट निराले नैन ॥१४॥
नीति-निपुन नागर परम रस-गागर मुद-ऐन।
सागर-सील सनेह के सब-गुन-आगर नैन ॥१५॥

## नेत्र-लाली

दोहा—

लाल लाल डोरे परे कै अँखियान-मँझार।
सुधा-सरोवर मै लसै कै अनुराग-सेवार ॥१॥

किधौं कलित - कोयन रही लोयन - लाली राजि ।
अरुन - राग-रंजित किधौं ऊखा रही बिराजि ।।२।।
लहू बहावत देखियत अब लौं अँखियन कॉहिं ।
आलो यह लाली नही लहू लग्यो तन मॉहिं ।।३।।

## पुतली

लोयन - कोयन मै अरी अमित पूतरी नॉहिं ।
कारे - नग ए जगमगत रतनारे नग मॉहिं ।।१।।
ललना लोयन मै न यह पुतरी लसति असेत ।
अतसी की पखुरी बसी कमल - दलन छबि देत ।।२।।
कारी - कारी पूतरी प्यारी अँखियन मॉहिं ।
मानिक - रंजित रजत मै मरकत राजत नॉहिं ।।३।।
बाल - बिलोचन मै नही पुतरी - असित दिखात ।
अरुन-राग - जुत सित - गगन मै राजत रवि - तात ।।४।।

## अंजन-रेखा

अजन - लीक अलीक कहि कत बहरावति मोहि ।
प्यारी मृग - दृग पै रही कारी धारी सोहि ।।५।।
कै अंजन की रेख लखि अँखियन होत बिनोद ।
सोवत खजन - सिसु परो कै खजन की गोद ।।६।।
कहि अंजन की रेख कत कबि-जन बनत अजान ।
बरबस काहू सों बिगरि बिख उगिलहिं अँखियान ।।७।।
बिना सुधाहूँ नहिं सधत बिखहूँ बिना बनै न ।
कासों काज रखै न ए काजरवारे नैन ।।८।।
काजर - रेख रखै न जी - जारनवारी आँख ।
काहु जी-जरे के जरे जी की है यह राख ।।९।।

## पलक

दोहा—

अदलि बदलि बाटन दृगन अनुमानत निज मान।
पल-पल तुलत मनहिं लखत पलकन के पलरान ॥१॥
पल-पल उठहिँ गिरहि परहिँ थिरता भूलि गहै न।
नयनन के ललकन परत पलकनहूँ नहिं चैन ॥२॥

## बरुणी

मनलगेहुँ अनगन जनन अकुलावति चहुँ ओक।
बरु नोकी बरछी अनी नहिँ बरुनी की नोक ॥१॥
कै सिंगार चाँटे जुरे कै बरुनी बिबि-नैन।
कै कमलन काँटे लगे कै ए साँटे-मैन ॥२॥
अरी चुभावति कत रहति सूची मो हिय माँहिँ।
बाम तिहारी बरुनि को बरु निहारिहौ नाँहिं ॥३॥
सूची तरुनी बरुनि मैं जोरे डोरे नैन।
दरजी मैन सियत रहत प्रेम-बसन दिन-रैन ॥४॥
बरुनी-बरनन मैं करत कत इतनो चित गौर।
जग-बिजयिनि अँखियान पै ढुरत देखियत चौर ॥५॥
बरुनीवारी पलक मैं न्यारी अँखिया नाँहिं।
खजन के जोर परे मैन पींजरे माँहिँ ॥६॥

## नेत्र-तिल

दोहा—

तेज-बिहीन बिलोकियत मलिन रूप औ रंग।
ए तिल कैसे तुलि सकहिँ नैन-तिलन के संग ॥१॥

बिख-डगिलत बिगरत लरत बंक चलत गहि मान।
कहा एक तिल पै करत इतनो नैन गुमान॥ २॥
चाल निराली दृगन की बूझि परत कछु नाँहि।
कैसे ए तिल एक सो तौंलि लेहि मन काँहि॥ ३॥

## दृग-कोर

कित इनकी गति है नहीं कहाँ न इनको जोर।
काके उर मै नहि गड़ी बाँके दृग की कोर॥ १॥
मोल-जोल कीने बिना लै अमोल मन मोर।
चाहति कहा अकोर अब तेरे दृग को कोर॥ २॥
रहि-रहि कसकत ही रहति कीनेहुँ जतन करोर।
कढ़ति न काढ़े कैसहूँ तिय तव अँखियन-कोर॥ ३॥

## चितवन

दोहा—

बार-बार बिगरति रहति बूझि परत नहि गाथ।
क्यो चित बनत न देखियत तिय-चितवन के साथ॥ १॥
किये कटीले कमल औ मीनन कौ उपमान।
निपट कटीलो ह्वै गई कामिनि की अँखियान॥ २॥
देह गेह की सुधि बिबस को नहिं देत बिसारि।
एरी यह जादू-भरी तेरी नजर निहारि॥ ३॥
समर-सामुहे देखियत सूरमाहुँ की पीठ।
का न कामिनी की करै बंक-गामिनी दीठ॥ ४॥

## नासिका

दोहा—

तो की चल अँखियान मैं नीकी नाक लखाय।
रारी-खंजन बीच कै कीर परयो है आय॥ १॥

नेसुक सिकुरत नाक लखि परत साँकरे आन।
नाक-निवासिन को रहत सदा नाक मैं प्रान ॥ २ ॥
या तिय-नथ की बात कछु कहत बनत है नाँहिं।
मुकुत मिले हूँ देखियत फँसी नासिका माँहिं ॥ ३ ॥
निधरक जन सौहैं रहत चूमत अधर रसाल।
बेसर-मोती कत चलत बेसरमो की चाल ॥ ४ ॥
बरबस बिबस करै परै निसि-बासर नहिं चैन।
बिसरायेहुँ बिसासिनी तिय-बेसर बिसरै न ॥ ५ ॥
नहिँ केवल कामिनी-नथहिँ ऐसो भयो सुपास।
को मुकुतन को संग करि लहत न नाक-निवास ॥ ६ ॥
तजि ममता निज बरन की मल परिहरि तन दाहि।
करि मुकुतन को संग नथ नाक बिराजत आहि ॥ ७ ॥

## कान

दोहा—

कहा भयो अपवाद जो बाद करत जन कोय।
अहै प्रसंसित मत यही स्रुति-संमत-मति होय ॥ १ ॥
भूखित भूखन-भाव सों ए भू मैं दरसाहिँ।
कहा भयो भावुक भये जो स्रुति भावहिँ नाहिं ॥ २ ॥
बड़े-बड़े मुकुतन कियो निज बस मैं हठ ठानि।
बसीकरन की बानि अस बसी करन मैं आनि ॥ ३ ॥
मुकुतन हूँ को है जहाँ निवसन को अधिकार।
कानन गये कहा रखत, जब कानन सों प्यार ॥ ४ ॥
लोक-बेद बिपरीत यह रीति जकत चित जोय।
स्रुतिसेवी मुकुतन लखे अतन-उदै तन होय ॥ ५ ॥
सिद्धपीठ से मैन के ए दोउ स्रवन सुहाहिं।
बाला को सेवत लखत जहँ मुकुतनहूँ काँहिं ॥ ६ ॥

प्यारी-प्यारी छबि - सनी सुबरन - वारी जोय।
वारी पै वारी भई मति मतवारी होय॥ ७॥
है न कज-कल-नयनि के ए झूमक छबि-रास।
अपत होइ कमलन कियो कानन माहिं निवास॥ ८॥
कत कोऊ बूझै बिना कानन को पतियात।
लखे पात उतपात है पात-पात मन जात॥ ६॥
मन-मंदिरहिं सलाकयुत कीबो उचित जनात।
यह कानन की बीजुरी करति महा उतपात॥ १०॥
सुरुचिर स्रौनन के लखे चकाचौंध लगि जात।
तहाँ दीठ काकी जुरी जहाँ बीजुरी-पात॥ ११॥

## कपोल

दोहा—

काको नहि बेलमावही काहि न करहिं निहाल।
ए गुलाब के फूल से गरबीली के गाल॥ १॥
वा कपोल को है बलित-ललित-लालिमा जौन।
माखन को गोला कहे माख न मानत कौन॥ २॥
बरजोरे कत जो रहत मन मोरे सब काल।
गोरे-गोरे ए गरल-भरे निगोरे गाल॥ ३॥
गोरे-गोरे चीकने अमल अनूप अमोल।
मो चित विचलित होत लखि लोने-ललित कपोल॥ ४॥
कछु अनखुन करि नहिं चलै अँखियन ही सों चाल।
गालिब कापै होत नहिँ गहब-गुलाबी गाल॥ ५॥
सपरत कछु न परत बनत लोयन भये अडोल।
पलक-पोल पल मै खुलत पुलकित पाइ कपोल॥ ६॥
अनगन-जन-मन को करै अनुरंजन सब काल।
भोरे-भोरे भावजुत गोरे गोरे गाल॥ ७॥

## दाँत

दोहा—

हैं मोती से, कुंद के कोरक से दरसात।
चद्रमुखी के चारुतामय चमकीले दाँत ॥ १ ॥
ललकित लोयन मैं बहति अभिनव रस की धार।
दारिम-दाने सी लसी दसनावली निहार ॥ २ ॥

## रसना

दोहा—

कबहूँ बरसति है सुधा कबहुँ बनति सुखदानि।
रसमय जीवन करति है रसना रस की खानि ॥ १ ॥
बहु-बिध-वचनावलि-जननि कलित कला की केलि।
है रसालता की थली है रसना रस-बेलि ॥ २ ॥

## वाणी

दोहा—

बहु बिलास की सहचरी मंजुल-रुचि-अनुभूति।
बर-बरनी-बानी अहै मधुमय - कथन - विभूति ॥ १ ॥
बीन सरिस कल-नादिनी उन्मादिनी अपार।
है गौरांगिनि की गिरा स्वर - गौरव - आगार ॥ २ ॥

## हँसी

दोहा—

हँसे खिलति है चाँदनी बहति सुधा की धार।
दमकि जाति है दामिनी रीझत है रिझवार ॥ १ ॥
बिलसि मनोहर अधर पै हँसी मोहि मन लेति।
बरबस मोह-मरीचिका डारि मोहिनी देति ॥ २ ॥

## मुसकान

कवित्त—

किधौ तम-बिंदु की कतार मै सुधा की धार
किरिन कढ़ी है किधौं कालिमा-प्रतीची मै।
कांति कैधौ हीरा की लसति पाँति-नीलम मै
जोति बगरी है कै कलिंदजा की बीची मै।
हाँस-रस-सोत कै सिंगार-रस-बूंदन मै
'हरिऔध' कैधौं कला मंद की मरीची मै।
कारे-दंद-पाँति मै लसी है मुसुकान किधौं
थिरकि रही है बिज्जु बादर-दरीची मै॥ १॥

दोहा—

मीत-नयन मन-अयन मै बरसि सरस रस जाति।
मंद-मंद महि पग धरति मंद-मंद मुसुकाति॥२॥
है दामिनि की दमक सी दमकति करि रस-दान।
बदन-कलानिधि-कला सी कलामयी मुसुकान॥३॥
स-छबि बनावति छबिहुँ को बनि सौगुन छबिवान।
कुसुम-बिकास-बिमोहिनी बिकसित-मुख-मुसुकान॥४॥
सोहति सोही सिता सम मोहति मोह समान।
ललना-लाल-अधर-लसी ललक-भरी मुसुकान॥५॥

## अधर

कवित्त—

कोऊ कहै अमी को निवास अमरावती मै
कोऊ कहै कवि की कलित कबितान मै।
कोऊ कहै अमल मयंक की मरीचिन मै,
कोऊ कहै सिसु की सरस बतरान मै।

'हरिऔध' कोऊ कहै मंजुल रसाल माहि,
कोऊ कहै गौरवी गवैयन के गान मै।
मेरे जान केवल निवास है अमिय केरो
कामिनी के कुसुम - समान अधरान मै ॥ २ ॥

सवैया—

बिंब बँधूक जपा-दल बिद्रुम लाल हूँ लालिमा पै ललचाहीं।
माधुरी की समता को सदाहिँ ये ऊख पियूख मयूख सिहाहीं।
का 'हरिऔध' से मानव की कथा देवता दानव हू बलि जाहीं।
वीर कहै किन धीर धरा अधरा अवलोकि धरातल माहीं ॥२॥

वर बिद्रुम मै कहा लाली इती कहा मंजुलता जपा ऐसी गहै।
कहा लाल मै लाल लगाई इती समता कहा बापुरो बिंब लहै।
कहा ऊख मयूख पियूख मै एती मिठास अहै 'हरिऔध' कहै।
जिती माधुरी कोमलता कमनीयता मोहकता अधरा मै अहै ॥३॥

दोहा—

मनसिजहूँ वाके बिना जीवन धारत नाँहिँ।
सुधा मिली काको नही अधर - सुधाधर माँहिँ ॥ ४ ॥
गगन - लालिमा मै लसित कल कौमुदी समान।
काको मुदित करति नही अधर - बसी मुसुकान ॥ ५ ॥

## चिबुक

दोहा—

गिरे चिबुक गाड़ मैं निबुक सकत मन नाँहिँ।
मधुप समान परो रहत मंजुल पाटल माँहिँ ॥ १ ॥
देखि छके चितवत रहे मोहे कहि अनमोल।
रसिक-नयन-तिल कब सके स-तिल चिबुक को तोल ॥ २ ॥

## मुख

कवित्त—

बीजुरी बिचारी ह्वै बिकल बिलखानी फिरी
हीरक के हारहूँ को तेज सब हरि गो।
चूर - चूर भयो चोप चुन्नी की चिलकहूँ को
दुतिवारे - दीपक - दिमाग हूँ उतरि गो।
'हरिऔध' बदन बनावत ब्रजेस्वरी कौ
बिधि हूँ को बहुरो बनाइबो बिसरि गो।
तरनि के तन मै न तनिक लुनाई रही
तारन समेत तारापति फीको परि गो ॥ १ ॥

दीपति दुगूनी दुति रैन-दिन आठो जाम
दामिनी-दमक सम परत न मंद है।
दबकि रहत देखे दीपमालिका को दीप
बारिज कुमुद पेखे लहत अनंद है।
'हरिऔध' सीरो तापकर छन - छन ओप
बढ़त अपार बूझि परत न छंद है।
तेज है कि तंत्र है कि तारा है कि यंत्र है
कि राधिका-बदन है कि रवि है कि चंद है ॥ २ ॥

सवैया—

आइकै व्योम बसेरो लियो अब आपनो रूप अनेक सँवारत।
द्वै कबौ तीन कलादिक सो प्रकटै कबौं पूरी कलान को धारत ॥
राधिका-आनन की समता हित व्योंत नये 'हरिऔध' विचारत।
ऊबि गयो बसि बारिधि अंक मै मानो मयंक कलंक पखारत ॥ ३ ॥

दोहा—

छबि लखि वारति प्रान रति मोहत रहत मनोज।
है सुदरता - सरित कौ सुंदर - बदन सरोज ॥ ४ ॥
वाकी बिभा लहे लसत अनुपम - रस नभ - अंक।
है बिनोद - बारीस को मंजुल - बदन मयंक ॥ ५ ॥

## ग्रीवा

दोहा—

सरस - राग अनुराग को वाते निकसत सोत।
लखे कंठ कंठा - सहित, चित उत्कंठित होत ॥ १ ॥
वाको कहे कपोत सम होत ललित - उर लठ।
हरत कंबु की कंबुता कोकिल - कंठी - कंठ ॥ २ ॥

## भुजा

दोहा—

विरचित है बर - बीजुरी बिबिध - बिलास सकेलि।
सुबरन - बरनी की भुजा है सुबरन की बेलि ॥ १ ॥
काम - पास - कमनीय कै सुख - सर - मंजु - मृनाल।
बिचलित होत बिलोकि चित बलय - बलित - भुज - बाल ॥ २ ॥

## कलाई

सवैया—

चूरो सुचारु की चारुताई लखे चंचलता चित चौगुनी आवै।
छंद पछेलन के फरफंद ते मंद भयो मनहूँ दिखरावै ॥
सूधी सुगोल भई तो कहा 'हरिऔध' हियो जो महा अकुलावै।
एरी हेरात है आई कलौ कोऊ कैसे कलाई लखे कल पावै ॥ १ ॥

## हथेली

दोहा—

लोक-लालिमा ते ललित लखि करतल-अवदात।
खटके ही मै रहत हैं बट के टटके-पात ॥१॥
अधिक लालिमा लहन हित ललकित रहि सब काल।
रखति लाल को हाथ मै बाल-हथेली-लाल ॥२॥

## उँगली

दोहा—

चंपक-कलित-कलीन को किधौ बिराजत जूह।
किधौ मंजु-कर कमल मैं बिलसत करज-समूह ॥१॥
कर कितने संकेत-कल काहि न करत निहाल।
नवल-बाल की आँगुरी ईंगुर जैसी लाल ॥२॥

## कुच

कवित्त—

श्रीफल कहे ते सुख होत सपने हूँ नाँहिं
तोख होत हिय मैं न कंदुक बखाने से।
कचन-कलस की कथान को उठावै कौन
रति को सिँधोरा कहे रहत लजाने से।
'हरिऔध' जामै बसि मत्त-मन-भृंग मेरो
कढ़त न दीखै अजौं कौन हूँ बहाने से।
सोभा-सने सौहैं सोहैं ससि लौं सु-आनन के
सरस-उरोज ए सरोज सकुचाने से ॥१॥

सवैया—

सुंदर चाँद सो गोरो-भलो मुख काको अहै भुवि मै चित-चोरना।
गोरो-गुलाब लौ भाव-भरो तन लेत है काका भटू मन-छोरना।
ए 'हरिऔध' अनूठी-छटा लखे कैसहू कोऊ सकै मुख मोर ना।
काको न ए बड़े-नैन किये बस काके हिये मै गड़ी कुच कोर ना ॥२॥

## उदर

दोहा—

कै है कोऊ काम-थल चलदल - दल - अनुरूप।
कै बिलसित त्रिबली - बलित - नवला - उदर - अनूप ॥१॥
सोहत है सरसिज - दलन सरिस सरस - छबि धारि।
लगत असुदर मानसर सुंदर - उदर निहारि ॥२॥

## रोम-राजि

कवित्त—

उरजबिलंबी कारे केस पन्नगेसन सो
केलि करि खेलि मेलि बदन बदन ते।
सुठि - सुरसरि - धार मोतीहार मै समोद
बार - बार बिहरि बिलासिनी मदन ते।
'हरिऔध' पान काज नाभि - सर को पियूख
बिसरि अपान मिलि मदन - कदन ते।
लसत न कंचुकी सकुच ढिग रोम-राजि
निकसत पन्नगी पिनाकी के सदन ते ॥१॥

## माला

कवित्त—

सरपेच ह्वैकै पेच मॉहि पारै आँखिन कौ
बेसर ह्वै बिकल बनावै मति आन की।

'हरिऔध' बड़े बीर हूँ की धीर बाला हरै
कनफूल उर को है कनिका कृसान की।
कामिनी तिहारी कहा तेरे तन-भूखन हूँ
करत अनोखी कौन ह्वैहै गति प्रान की।
मोल लेत माल मुकतान हौं सुन्यो पै लख्यो
मोल मन मेरो लेत माल मुकतान की ॥ १ ॥

## नाभी

दोहा—

काम-मथानी है किधौं कामद-रस को कूप।
कि है रूप को बर-बिवर कामिनि-नाभि अनूप ॥ १ ॥
है सिंगार को कुंड कै छबि-सर-भँवर-ललाम।
रोम-राजि-नागिनि-बिवर किधौं नाभि-अभिराम ॥ २ ॥

## पीठ

दोहा—

काम-चमोटी सी लसी चोटी की है ईठ।
कंचन-पाटी है किधौं कदली-दल है पीठ ॥ १ ॥
ललना-सुंदर-पीठ पै कबरी परी लखाति।
कनक-सिला पै कै असित-नागिनि है लहराति ॥ २ ॥

## कटि

दोहा—

वा मैं वैसो मोहिनी मंजुलता है नाँहिं।
केहरि की कटि सी कहत कत कामिनि-कटि काँहिं ॥ १ ॥

कहि मृनाल के तार सी कवि - कुल लेत कलंक।
करति लालची लोचनन तिय लचकीली लंक ॥ २ ॥

## जंघा

दोहा—

मति - हीनन के मतन को एरे मन मत मानु।
दंभ करत ते जे कहत रंभ - खंभ सम जानु ॥ १ ॥
कहा कहहिँ हम जानु को जोहि रूप औ रंग।
कनक - खंभ करि - कर किधों मंजुल-मदन-निषंग ॥ २ ॥

## पिंडुरी

दोहा—

कौन देत नहिँ कलभ - कर - कोमलता को टोंकि।
सुथरी - प्यारी - पींडुरी प्यारी की अवलोकि ॥ १ ॥
काको भावति है नहीं काहि लुभावति नाँहिँ।
अति - सुढार यह पींडुरी रस ढारति दृग माँहिँ ॥ २ ॥

## गुल्फ

दोहा—

देखि मंजुता मृदुलता चित यह करत कबूल।
गोरी के गोरे गुलुफ है गुलाब के फूल ॥ १ ॥
परम - मनोहरता मिले मोहित मन करि देत।
गोल गोल नवला - गुलुफ मोल काहि नहिँ लेत ॥ २ ॥
कै सुख - उपबन - सुमन कै गति-संपुट-अभिराम।
कै सुंदरता - कुलुफ कै गुलुफ बड़े - छबि - धाम ॥ ३ ॥

## एड़ी

दोहा—

वाते निकसत ही रहत बर - बिनोद - रस - सोत।
कौहर सी एड़ी लखे को हरखित नहिं होत॥ १॥
लहि लालिमा अनार सी ईंगुर सी सब काल।
ललना की एड़ी ललित लालहुँ करति निहाल॥ २॥
तजि सुहावनो सब समय बनि एड़ी-अनुकूल।
दुपहर को फूलत रहत दुपहरिया को फूल॥ ३॥

## पाँव

दोहा—

ललना के पद-युगल हैं लोभनीय रमनीय।
कोमल-पल्लव से मृदुल अमल-कमल कमनीय॥ १॥
निरखि मंजुता पगन की मगन होत है मार।
मुदित तिहूँ पुर को करति नूपुर की झनकार॥ २॥

## पद-नख

बहु-मोहक सुकुमारता बिकसित सी दिखराति।
गोरी-पग-ऑगुरीन मैं बिलसति तारक-पाँति॥ १॥
प्यारी पग-ऑगुरीन मैं लसति नखन की जोति।
चंपक की कलिका किधौं मनि - गन - मंडित होति॥ २॥

## पद्-तल

दोहा—

काम-पताका सम रुचिर सरसिज सरिस ललाम ।
ललना को पग-तल अहै चंदन-दल-अभिराम ॥ १ ॥
अनुरागी - जन - उरन मैं सरस - राग भरि देति ।
तिय-पग-तल की ललिमा मुख-लाली रखि लेति ॥ २ ॥

# नायिका के भेद

# नायिका के भेद

जाति के अनुसार चार—१-पद्मिनी, २-चित्रिणी, ३-शंखिनी, ४-हस्तिनी।
प्रकृति के अनुसार तीन—१-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा।
धर्मानुसार तीन—१-स्वकीया, २-परकीया, ३-सामान्या।
वयःक्रमानुसार तीन—१-मुग्धा, २-मध्या, ३-प्रौढ़ा।
अवस्थानुसार दश—१-खंडिता, २-कलहांतरिता, ३-विप्रलब्धा, ४-उत्कंठिता, ५-वासकसज्जा, ६-स्वाधीनपतिका, ७ अभिसारिका, ८-प्रवत्स्यत्पतिका, ९-प्रोषितपतिका, १० आगतपतिका।

## विशेष

खंडितादि दश भेद मुग्धा, मध्या, प्रौढा और परकीया में होते हैं। किसी किसी ने सामान्या में भी इन दशों भेदों को दिखलाया है, किंतु सामान्या में इन दशाओं का निरूपण कुछ विद्वानों ने रसाभास माना है। मेरा विचार भी यही है अतएव सामान्या में इन दश भेदों का वर्णन नहीं किया गया।

## जाति-संबंधी भेद

### १—पद्मिनी

पद्मिनी पद्म-गंधा, रति-सुंदरी, सुकुमार-तन, अल्प रोमवती और अधिकतर गान-वाद्य-परायणा होती है।

दोहा—

अति-सुंदर सब-रस-भरी सील-सकोच-निधान।
कौन कामिनी लोक मैं है पद्मिनी समान॥ १॥

### २—चित्रिणी

चित्रिणी विचित्र-प्रकृति, नृत्य-गान-रता, अल्प-लज्जाशीला और परिहास-प्रेमिका होती है।

दोहा—

गाइ बजाइ दिखाइ छवि भरति हिये मै जोति।
चलि कबूतरी सी तिया नयन-पूतरी होति॥ १॥

## ३—शंखिनी

शखिनी कृशागी, निर्लज्ज ओर अभिमानिनी होती है।

दोहा—

अनख करति तनिकै चलति लजति न नेकौ बाल।
देखि निलजता आप ही सलज बनत है लाल॥ १॥

## ४—हस्तिनी

हस्तिनी स्थूल-शरीर, लोम-वती, गज-गामिनी, कोपन-स्वभावा, उद्धत-प्रकृति और कटुवादिनी होती है।

दोहा—

नख-सिख भारीपन-भरो रंग-रूप अ-ललाम।
नाहिं काम हूॅ ते सरत काम-भरी को काम॥ १॥

## प्रकृति-संबंधी भेद

## १—उत्तमा

उत्तम-स्वभावा धर्म - परायणा, उदार - हृदया, देश - समाज - प्रेमिका और अहितकारी होने पर भी पति को हितकारिणी स्त्री को उत्तमा कहते हैं।

## पति-प्रेमिका

कवित्त—

सेवा ही मैं सास औ ससुर की सदैव रहै,
सौतिन सो नाँहिं सपने हूॅ मैं लरति है।
सील सुघराई त्यों सनेह-भरी सोहति है,
रोस रिस रार ओर क्यो हूॅ ना ढरति है॥

'हरिऔध' सकल गुनागरी सती समान,
सूधे सूधे भायन सयानप तरति है।
परम-पुनीत पति-प्रीति मैं पगी ही रहै,
प्रानधन प्यारे पै निछावर करति है ॥ १ ॥

सवैया—

बैन कहे करुये पिय के हरुये तिय बोलि सदा सनमानै।
दोस अनेकन देत तऊ कबहूँ अपने मन रोस न आनै।
ना करनी ही करै 'हरिऔध' पै बाल न नाकर-नूकर ठानै।
नाह के कीने गुनाहन हूँ तिय आपनो नेह निबाहन जानै ॥२॥

सौतिन की तिरछौंही चितौन ते होवै नहीं तनकौ तलबेली।
काम की कीरति सी 'हरिऔध' लखे रुख रूखो न होत कटेली।
पी-अनुकूलता-बारि बिना हूँ सदा थल सीतलताहिँ सकेली।
या अलबेली हिये पलुहै पल ही पल प्रीति-प्रतीति की बेली ॥३॥

आपनो अंग पतंग दहै पै न दीपक-जोति को भाव जनावै।
पीतम के सँग प्यार-पगी-पतिनी नहिँ पावक हूँ को सकावै।
प्रीति-पुनीत की ऐसियै रीति महीतल मैं 'हरिऔध' लखावै।
व्याकुल ह्वै कलपै मन-मीन बिना जल ना पलकौ कल पावै ॥४॥

## परिवार-प्रेमिका

कवित्त—

सुधा-सने बैन के बिधान मैं अबिधि है न
सहज-सनेह की न साधना अधूरी है।
सब ते सरस रहि सरसति सौगुनी है
भोरे-भोरे भावन ते भूरि भरी-पूरी है।

'हरिऔध' सौति के सुहाग ते सुहागिनी है
साास औ ससुर की सराहना ते रूरी है।
पति-पूत-प्यार मानसर की मरालिका है।
परिवार - पूत - प्रेम - पयद - मयूरी है ॥ १ ॥

बर - दारि बनति कुदारता निवारति है
अनुदारता हू मैं उदार दरसति है।
पर - पति - पूत को स्व-पति-पूत सम जानि
पावन - प्रतीति पूत - पग परसति है।
'हरिऔध' परिवार - हित नव - वीरुध पै
विहित - सनेह - बर - बारि बरसति है।
अनरस हूँ मैं रस - बात बिसरति नाँहिं
रस - मयी - बाल रोस हूँ मैं सरसति है ॥ २ ॥

बानी के समान हस - बाहनी रहति बाल
नीर - छीर बिमल - बिवेक बितरति है।
सती के समान सत धारि है सुखित होति
बामता मैं बामता ते रखति बिरति है।
'हरिऔध' रमा सम रमति मनोरम मैं
भाव - अमनोरम ते लरति भिरति है।
पूत - प्रेम - पोत पै अपार - पूतता ते बैठि
परिवार - प्यार - पारावार मैं फिरति है ॥ ३ ॥

## जाति-प्रेमिका

कवित्त—

सरसी समाज - सुख सरसिज-पुंज की है
सुरुचि - सलिल की रुचिर - सफरी सी है।

नाना कुल-कालिमा-कलुख की कलिंदजा है
कल-करतूत-मंजु - मालिका लरी सी है।
'हरिऔध' बहु - भ्रम - भवर समूह भरी
सकल - कुरीति - सरि सबल - तरी सी है।
जाति - हित - पादप - जमात नव - जीवन है
जाति - जन - जीवन सजीवन-जरी सी है ॥१॥

भारतीय - भव - पूत - भावन - बिभूति पाइ
भाव - मयी अपने अभावन हरति है।
अवलोकि अवलोकनीय - बहु - बभव को
काल - अनुकूल अनूकूलता करति है ॥
'हरिऔध' भारत को भुव - सिरमौर जानि
भावना मैं बिभु - सिरमौरता भरति है।
धारि धुर सुधरि समाज को सुधारति है
धीर धरि जाति को उधारि उधरति है ॥२॥

## देश–प्रेमिका

कवित्त—

गौरवित सतत अतीत - गौरवो ते होति
गुरुजन - गुरुता है कहती कबूलती।
मुदित बनति अवनीतल मैं फैलि फैलि
कीरति की कलित - लता को देखि फूलती ॥
'हरिऔध' प्रकृति - अलौकिकता अवलोकि
प्रेम के हिंडोरे पै है पुलकित भूलती।
भारत की भारती - बिभूति ते प्रभावित ह्वै
भामिनि भली है भारतीयता न भूलती ॥१॥

वारती नगर पर मंजु - अमरावती कौ
नागर- निकर कौ पुरंदर है जानती।
धेनु कौ कहति कामधेनु सम काम - प्रद
कामिनी कौ सुर - कामिनी है अनुमानती।
'हरिऔध' भारत - अवनि - अनुराग - वती
बिपिन कौ नंदन - बिपिन है बखानती।
तरु कौ बतावति कलपतरु - कमनीय
मेरु कौ मनोरम सुमेरु ते है मानती ॥२॥

गौरव को गान सुने गौरव गहति बाल
पव-गुरुता ते गिरे गिरि ते गिरति है।
देस की सजीवता ते लहति सजीवता है
जीवन - बिहीनता ते बढ़ति बिरति है।
'हरिऔध' भूति देखे बनति बिभूति - वती
बिपति के घेरे घोर - दुख ते घिरति है।
भारत के भूले गात - सुधि भूलि भूलि जाति
फूले फले फूली फूली ललना फिरति है ॥३॥

कांति - मती बनति दिवसपति - कांति ते है
रंजित करति लोक - रंजिनी रजनि है।
सुधाधर-सुधा - सम - सलिल - सु-सिंचित है
बसुधा - बिदित - रत्न - राजि-मंजु-खनि है।
'हरिऔध' भाव-मयी-भामिनी-बिभावना है
भुवन - बिकास-भूति - भारति - जननि है।
भवन - प्रभूत - अनुभूत - सिद्धि-साधना है
भूतल की सार - भूत भारत - अवनि है ॥४॥

नयन मै नयन - बिमोहन - सुमन छबि
मन मै बसति मधु - माधव - मधुरिमा ।
कबि - कल - कंठता है बिलसति कानन मै,
आनन मै अमित - महानन की महिमा ।
'हरिऔध' धी मै धमनीन मै बिराजति है
बसुधा - धवल - कर - कीरति - धवलिमा ।
अंग अंग मै है अनुराग - राग - अगना के
रोम रोम मै है रमी भारत की गरिमा ॥ ५ ॥

सुरसरि सम सनमानति सकल सरि
सारे सर मै है मानसरता निहारती ।
सुमनस - सुमन कहति सुमनावलि को
लतिका को कल्पलतिका है निरधारती ।
'हरिऔध' अंगना भुवन मै पुनीत भनि
भारत - अवनि की उतारति है आरती ।
रजत निछावर करति रज - पुंजन पै
मंजुल - राजीव - राजि पै है राज वारती ॥ ६ ॥

पग ते गहति पग पग पै पुनीत - पथ
अमर - निकर काज कर ते करति है ।
गाइ गाइ गुन - गन सुगुन - निकेतन के
मंजु - बर लहि बर - बिरद - बरति है ।
'हरिऔध' मानस मै भूरि - कमनीय - भाव
भारत की बंदनीय - भूति के भरति है ।
सुर - धुनि - धार को परसि उधरति बाल
धरती की धूरि लै लै सिर पै धरति है ॥ ७ ॥

कहाँ है मधुर-साम-गान मुखरित - भूमि
बानी के विलास की कहाँ है पूत-पलिका।
कहाँ है सकल - रस - सरस - सरोज - पुंज
सुख - मूल - मानव - समाज-मंजु अलिका।
'हरिऔध' भारत - बिभव - बर - बायु बल
बिकच बनै न कैसे बाला - उर - कलिका।
प्रेम-सुधा बिपुल - बिमुग्ध बसुधा मैं भरि
कहाँ पै बजी है महा - मोहिनी मुरलिका ॥ ८ ॥

## जन्मभूमि-प्रेमिका

कवित्त—

कनक - प्रसू है कमनीयता - निकेतन है
माननीयता - महि मदीयता की अवनी।
लोक - पति-लालित त्रिलोक-पति-लीला-थल
आलोकित - परम अलौकिकता - सजनी।
'हरिऔध' कैसे बिरमै न बहु - मोद मानि
रमनीय - भाव मैं रमित - मन - रमनी।
जीवन - बिधायिनी है प्रान धन - जीवन की
जननी - जनक की है जन्म - भूमि-जननी ॥ १ ॥

कैसे सुर - सरि सुर करति असुर हूँ को
कासी क्यो बनति मुक्ति - मेदिनी-मनोहरा।
अरुचिर - दारु चारु - चंदन बनत कैसे
काँच - महि कैसे होति कंचन - कलेवरा।
'हरिऔध' कैसे सैल लहत सती सी सुता
सिता क्यो सुहाति ह्वै सुधारस - सहोदरा।

कैसे बसुधा को बसुधापन - बिदित होत
जो न होति सिद्ध - भूमि भारत - बसुंधरा ॥२॥

चकित बनति हेरि उच्चता हिमाचल की
चाहि कनकाचल की चारुता - चरमता ।
मुदित करति निधि - मानता है नीरधि की
मानस - मनोहरता सुर - पुर की समता ।
'हरिऔध' मोहकता हेरि मोहि मोहि जाति
जनता - अमायिकता मैं है मन रमता ।
महनीय - महिमा निहारि महती है होति
ममतामयी की मातृमेदिनी की ममता ॥३॥

बेद - गान - गौरवित जननी गजानन की
पति की प्रसविनी कहति गज - गमनी ।
सेवति है सुर - सुरपति सेवनीय जानि
मानति है मानि दानवीय - दल - दमनी ।
'हरिऔध' पावनता भारत - अवनि पेखि
परम - पुनीत रस - पूत होति धमनी ।
मन मै रमै न कैसे रमा - रमनीय - धाम
राम - जन्म - महि मै रमै न कैसे रमनी ॥४॥

## निजतानुरागिनी

कवित्त—

सास - असरसता अलसता बधू - जन की
अ-लसित - सकल - बिलासिता सताती है ।
सुकुसुम - कोमल - कुमारन की काम - रुचि
कामिनि - अकमनीय - कामना कँपाती है ।

'हरिऔध' देखि देखि देस को पतनप्राय
परम - दुखित देस - प्रेमिका दिखाती है।
बालिका-बिवाह-बिधि बिबिध-बिथा है देति
बिधवा-बिवाह की अ-बिधि वेधि जाति है ।।१।।

बसन - बिदेसी की बसनता बिसारि सारी
बिबस बनेहूँ देसी -बसन बिसाहै है।
समता - बिचार मैं असमता - बिपुल देखि
पति - प्रीति - ममता को परखि उमाहै है ।।
'हरिऔध' परकीयता को परकीय जानि
सकल - स्वकीयता को सतत सराहै है।
भारत की पूजनीयता को पूजनीय मानि
भारतीय - बाला भारतीयता निबाहै है ।।२।।

सुदर - सिदूर - बिदु ही ते सुंदरी है होति
पौडर कौ समझि असुंदर डरति है।
सोंधे के सु - बास ते सुबासित रहति भूरि
साबुन के परसे उसासन भरति है।
'हरिऔध' पर के असन कौ असनि कहै
आपने बसन बेस कौ न बिसरति है
सारी-असँवारी हूँ पहिरि पुलकति प्यारी
साया परे साया के सवाया सिहरति है ।।३।।

## लोक-सेविका

कवित्त——

बनत कुलीन अकुलीन के करत काम
कुल कौ कलंकित कुलीनता करावै है।

बिधवा - बिलाप ते बिकल बसुधा है होति
बिबुध - समाज कौ बिबुधता न भावै है।
'हरिऔध' लोक - सेविका कौ कल कैसे परै
काल की करालता न काहि कलपावै है।
लोने - लोने - लालन मैं लहति लुनाई नाहि
लालना - ललाम मैं ललामता न पावै है ॥१॥

कल - कानि - कलित-कुलीन खग-कुल कॉहिं
बाल है बचावति कलेस - लेस - लासा ते।
विदलित - मानव को दलन निवारति है
दलति रहति दिल - दहल दिलासा ते।
'हरिऔध' दुख अनुभवति दुखित देखि
जीतति है दाँव भाव-पूत-प्रेम - पासा - ते।
उपवास करति बिलोकि उपवासित को
बनति पिपासित पिपासित - पिपासा - ते ॥२॥

रूखी - रूखी - बातन ते रुख बदलति नाहिं
रूखी ना परति है रुखाई देखि रूखे की।
खोवति न साख सीख देति है सखीन हूँ कौं
सुखी ना रहति सूखी नसैं देखि सूखे की।
'हरिऔध' खूखापन काहि अखरत नाहि
खूखी है बनति मूठी बात सुनि खूखे की।
दुखित को करि कै अदूखित सुखित होति
भूखित न होति बाल भूख देखि भूखे की ॥३॥

सेवा सेवनीय की करति सेविका समान
सेवन औ सेवनीयता ते सँवरति है।

सधवा को सोधि सोधि सोधति सुधारति है
बिधवा को बोधि बोधि बुधता बरति है।
'हरिऔध' धोवति कलंकिनी - कलंक-अक
बंक - मति - बंकता असंकता हरति है।
आनंदित होति करि आदर अनिंदित कौ
निंदित की निंदनीयता को निंदरति है ॥४॥

मोद मानि मंद-जन-मंदता निवारति है
मानदै अमंद को है मंद मंद बिहँसति।
बरसत नेह - बारि मानस - बिरस मॉहिं
असरस - चित को सरस करि सरसति।
'हरिऔध' बिकच - बदन अवलोकि बाल
बिकसित - कुसुम - समान बहु बिकसति।
रहति सु - बासित सु - कीरति - सुबास ते है
बिमल-बिलास ते बिलासिनी है बिलसति ॥५॥

## धर्म-प्रेमिका

कवित्त—

भजनीय-प्रभु के भजन किये भाव-साथ
यजनीय - जन के यजन काज तरसे।
लोक अवलोकि परलोक-साधना मैं लगे
बचे लोभ-मूल-लोक - लालसा - लहर से।
'हरिऔध' परम - पुनीत अंगना है होति
बार बार नैनन ते प्रेम - बारि बरसे।
धरमधुरीन की सहज - धारना के धरे
पग - धूरि धरम - धुरंधर की परसे ॥१॥

लालसा रखति है ललित - रुचि लालन की
लोक - हित खेत को लुनाई ते लुनति है।
रुचिर - बिचार - उपबन मैं बिचरि बाल
चावन के सुमन - सुहावन चुनति है।
'हरिऔध' आठौ - याम-परम-अकाम रहि
भुवनाभिराम - राम - गुनन गुनति है।
सुर-लीन - मानस - निकुंज माहिँ प्रेम-रली
मुरली - मनोहर की मुरली सुनति है ॥ २ ॥

भाल पै भलाई की बिभूति - भल बिलसति
नीकी - नीति निवसति नयन - निकाई मैं।
रसना सरस है रहति राम - रस चाखि
लसति बिमलता है लोचन - लुनाई मैं।
'हरिऔध' गरिमा ललित - गति मैं है लसी
गुरुता बिराजति है गात की गोराई मैं।
लोक-हित-कामना सकल - काम मैं है कसी
कमनीयता है बसी कामिनी - कमाई मैं ॥ ३ ॥

## २—मध्यमा

प्रियतम-दोष-दर्शिनी, किंचित्कोपन-स्वभावा, व्यंग-विदग्धा मर्म्म पीड़िता, स्नेहशीला किंतु शंकिता स्त्री को मध्यमा कहते हैं।

## व्यंग-विदग्धा

कवित्त—

भौंह की हरत कमनीयता कमान कहि
लोचन लजत बान - उपमान लहि कै।
काको नाहिँ पीर होति कीर नासिका कौ कहे
बिंबाधर - समता - बिषमता बेसहि कै।

'हरिऔध' कैसी कांत-कल्पना है कामुक की
कुर कौ कहत करि-कर है उमहि कै।
करत कलंकित मयंक-मुखी बतराइ
आकुल करत अहि काकुल कौ कहि कै ॥ १ ॥

मोल लोल-लोचन को हरत ममोला कहि
अधर-सुधाधर मैं बिबता लहत है।
अमल-कपोल को बतावत मधूक सम
कल-कंठ कौहिं कंबु कहि कै दहत है।
'हरिऔध' न्यारी मंजु-मानस की मंजुता है
सुंदर को करत असुंदर रहत है।
बनज बनावत बदन-बिधु-रंजन कौ
खंजन स अंजन-नयन कौ कहत है ॥ २ ॥

चाव है पै चाव मैं अभाव तिय-भाव को है
पूत-प्रेम-व्यंजन-बिहीन रुचि-थाली है।
तन-सु-सदन स्वामी सहज-सरस है न
ममता-रहित मन-उपबन-माली है।
'हरिऔध' लालन को ललना बिलोकि चुकी
कर मैं न लसति ललित नीति-ताली है।
नाहिं है सलोनोपन मिलत सलोने माहिं
लोने-लोने-लोयन मैं नेह की न लाली है ॥ ३ ॥

## मर्म-पीड़िता

कवित्त—

बिधुर-बिवाह पै बिवाह क्यो करत जात
बिधवा क्यो बिधवा सदैव रहि हहरति।

जन क्यो कुजनता कियेहूॅ ना कुजात होत
जनि जनि लाल है जननि काहें थहरति ।
'हरिऔध' काहें अहै अवनि - अनीति-मयी
काहें नाहिं यामै है सुनीति - लता लहरति ।
नर की ललामता क्यो लसति अलीन माहिं
नारि-छवि काहें है छलीन मॉहिं छहरति ॥ १ ॥

नर जो पढ़त सो नरोतम बनत काहें
काहें सो कु - नारि होति नारि जो पढ़ति है ।
पिय जू के पाप काहें पापहूॅ न माने जाहिं
काहें नेक चूके तिय ऑखि पै चढ़ति है ।
हरिऔध' घूमि गये सकल - बसुंधरा मै
काहें घरवारन की कीरति बढ़ति है ।
काहें तो उघरि जात वाको लाज-चादर है
घरनी जो घरहूॅ ते बाहर कढ़ति है ॥ २ ॥

प्यारो जो न कैहै कछू उपचार प्यार को तो
प्यारी कौ लौ प्यार कै कै प्यार को उबारिहै ।
प्रिय जो प्रतीति की प्रतीति उपजैहै नाहिं
तिय तो प्रतीति-पथ कौ लौ निरधारिहै ।
'हरिऔध' कैसे नातो ललना-बिगार ह्वैहै
बात बात मै जो बात लालन बिगारिहै ।
कोऊ पति-वारी तो कहाॅ लौ पति-मान कैहै
कोऊ पति पतिनी की पति जो उतारिहै ॥ ३ ॥

सवैया —
आदर आये करै अति ही बतियॉ हूॅ सुधा सो भरी मुख भाखै ।
बान सनेह बिगोवै नही कबौ सील हूॅ ना ॲखियान की नाखै ।

दोस दै रोस किये 'हरिऔध' के नेकहूँ ना अपने मन माखै।
पै परतीन के प्रेम - पगे - पति को पतिनी परतीति न राखै॥ ४॥

## ३—अधमा

पति की अहितकारिणी, उद्धत-स्वभावा और कर्कशा स्त्री को अधमा कहते है।

कवित्त—

रूप है तो कहा कोऊ और रूपवारो नाहिं
रखत रसालता न बनत रसीले है।
बनक बनाइ इतरात बात बात मै हैं
रग बिगरे हू बने रहत रँगीले है।
'हरिऔध' नारि कहा छगुनी छबीली नाहिं
छिति माहिं वेई नही छयल छबीले है।
गोरी - गोरी - ललना गरे परि न भोरी बनै
गोरे - गोरे - मरद - निगोरे गरबीले है॥ १॥

नैनन के बान साँचे बान ही बनैगे अब
कामिनी के पास बाँकी-भौहन की असि हैं।
बरसि बचन गोले बिबस बनैहै महा
कसक निकासि भुज - पासन सो कसिहै।
'हरिऔध' रखहिं अकस न अकस - वारे
ना तो कोऊ सुबस बसेहूँ नाहिं बसिहै।
केहरि सी लंक - वारी हरि है कलंक - अंक
नागिनि अलक-वारी नागिनि सी डँसिहै॥ २॥

आन-बान-वारो आन-बान दिखराइहै तो
कैसे ना कमान को कमान-वारी सजिहै।
नैनन के अबु मै जो अंबुता न साँची पैहै
कंबु तो न कैसे कंबुता दिखाइ बजिहै।

'हरिऔध' कामिन की कनक सनक - सारी
कनक - लतान की कनकता ते भजिहै।
चंचरीक - रुचि छोरिहै न चंचरीकता तो
चंपकता चंपक - बरनि कैसे तजिहै ॥३॥

चंचल - चखन-वारी चंचल न कैहै काहि
भोरी भीरु भूरि - धूरि आँखिन मैं भरिहै।
फंदे सी अलक - वारी फंद माँहिं पारि दैहै
छैलन को फूल की छरी सी नारि छरिहै।
'हरिऔध' हारे हार मानिहै न हार - वारी
दुलही - दुलार - वारी दूलह सो लरिहै।
कलही नकारे गोरे - गोरे - गाल - वीर सुनै
लाल मुँह लाल लाल गाल - वारी करिहै ॥४॥

## धर्म-संबंधी भेद

## स्वकीया

विनय–शीला, सरल-स्वभावा, गृह-कर्म परायणा और पति-रता स्त्री को स्वकीया कहते हैं।

### उदाहरण

कवित्त—

पावन - पुनीत - गूढ़ - गुन - मन-भावन के
चावन सहित एरी रसना उचारि लै।
दान सनमान मैं तिलोक मैं न ऐसो आन
मेरी कही मान यहै मन निरधारि लै।
सकल - अलौकिकता एक 'हरिऔध' ही मैं
तू हू उर बार बार बिलखि बिचारि लै।

प्यारे प्यारे-मुख पै सँवारे - कारे - केसन कौ
एरे मेरे नेह - वारे नैनन निहारि लै ॥१॥

सवैया—

कामिनी के कल - बैन सुने नहो कानन हूँ करी कोटि - कला है।
प्रीतम - प्रीति - प्रतीति मै बाल सनेह - वती-सिय लौ सबला है।
ही 'हरिऔध' मयी अँखियान बिराजत एक ही नंदलला है।
भाग-भरी त्यो सुहाग - भरी अनुराग - भरी नवला - अबला है ॥२॥

## स्वकीया के भेद

अवस्था के अनुसार स्वकीया के निम्नलिखित तीन भेद हैं—
१—मुग्धा २—मध्या और ३—पौढा।

## १—मुग्धा

समधिक-लज्जावती, काम-चेष्टा-रहित अंकुरित-यौवना को मुग्धा कहते हैं।

## उदाहरण

कवित्त—

बयन सुधा मैं सनि - सनि सरसन लागे,
कान परसन लागे नयन नवेली के।
आँगुरी की पोरन मै लालिमा दिपन लागी,
गुन गरुआन लागे गरब गहेली के।
'हरिऔध' हेरि हेरि हियरो हरन लागी,
चाहि चितवन लागी कोरक चमेली के।
मंजु छबि छिति - तल पर छहरान लागी,
छूअन छवान लागे केस अलबेली के ॥१॥

कर पग जल - जात सरिस भये है मंजु
गति मै भई है सोभा सरस - नदन की।

आनन अमंद - चंद सरिस दिपन लाग्यो
जाहि सों जगी है जोति अतन - मदन की ।
हरिऔध' यौवन सरद की समैया पाइ
कुद की कली लौं भई पाँति है रदन की ।
चचलता आँखिन बसी है खंजरीट जैसी
चाँदनी - सी फैली चारु चाँदनी बदन की ।।२।।

सवैया—

पीन भये कुच कामिनी के दोऊ केहरि सी कटि खीन भई है ।
बंकता भौहन माहिँ ठई मुख पै नव जोति - कला उनई है ।
जोबन अंग दिप्यो 'हरिऔध' गये गुन हूँ अब आय कई है ।
केस लगे छहरान छवान छ्वै कानन लौं अखियान गई है ।।३।।

## मुग्धा के भेद

ज्ञान के अनुसार मुग्धा के दो भेद है—१-अज्ञातयौवना और २-ज्ञातयौवना ।

## अज्ञातयौवना

जिस मुग्धा को अपने योवन के आगमन का ज्ञान नही है, उसे अज्ञात-यौवना कहते है ।

## उदाहरण

सवैया—

ऊबि गई हौं बतावै कहा नही क्यों हँसिमौन की बान गही है ।
घेरत है 'हरिऔध' कहा हमै नूतनता हम कौन लही है ।
ए वजमारे न टारे टरै कहा औरन की इनै पीर नहीं है ।
ठौर न भौरन को है कहूँ किधौ भौरन की मति भूलि रही है ।।१।।

## ज्ञातयौवना

जिस मुग्धा को अपने अकुरितयौवना होने का ज्ञान होता है उसे ज्ञात-यौवना कहते हैं ।

सवैया—

चंचलता ही न आनि ठनी कछु होन लगी अँखियान सों चूको।
बीर बनाव-सिंगार हूँ मैं अनुराग भयो सो लखात बधू को।
पी 'हरिऔध' की बात चले पगि लाज मैं लागी बिलोकन भू को।
चोज सों ऊँचे उरोजन हेरि लखै लगी रोज सरोजन हूँ को ॥१॥

## ज्ञातयौवना के भेद

ज्ञातयौवना के दो भेद हैं—१ नवोढा और २-विश्रब्धनवोढा।

## नवोढ़ा

लज्जा और भय के आधिक्य से जो पति का संसर्ग नहीं चाहती, वह नायिका नवोढ़ा कहलाती है।

### उदाहरण

दोहा —

इत उत दौरि दुरति रहति दूरहि ते बतराति।
पिय तन-छाँह बनन चहत तिय लखि छाँह सकाति ॥१॥

बरवा—

करि चतुरैया चाहत पकरन बाँह।
छ्वै नहिं सकत छयलवा पै तन-छाँह ॥२॥

## विश्रब्धनवोढ़ा

रति मे अल्प अनुराग और पति मे कुछ विश्वास जिसे हो जाता है उस नायिका को विश्रब्धनवोढ़ा कहते हैं।

### उदाहरण

सवैया—

प्रीतम को गुन जानै नहीं तबहूँ सुनि नाम लजान लगी है।
कानन को 'हरिऔध' कही रस की बतिया हुँ सुहान लगी है।

राखति काम को चाव नही तऊ काज की ऐसी सु-बान लगी है ।
संक समेत मयंक - मुखी पिय - मंजुल अंक मै जान लगी है ॥ १ ॥

दोहा—

चौंकति चकित बनति बिहँसि बितरति बहु आनद ।
चंद-मुखी अब चाव सो चितवति पिय-मुख-चंद ॥ २ ॥

## २—मध्या

जिस नायिका मे लज्जा और काम-वासना समान होती है उसको मध्या कहते है। यह दशा सूक्ष्म और अचिरस्थायिनी होती है।

### उदाहरण

सवैया—

बैठी हुती सखियान मै बाल बड़ी अँखियान मै अजन लाइकै ।
चारु - कपोलन पै छिटकी अलकै छबि देत हुती छहराइकै ।
बात-रसीली सुनाइ रसे 'हरिऔध' हँसे इतनेहि मैं आइकै ।
नार नवाइ सकाइ रही मुसकाइ रही दृग मोरि लजाइकै ॥ १ ॥

दोहा—

रहि रहि उमगत रहत उर सकुच ताहि गहि लेति ।
तिय चाहति पिय सो मिलन लाज मिलन नहिँ देति ॥ २ ॥

## ३—प्रौढ़ा

सपूर्ण काम-कला मे निपुण किंचित् लज्जावती नायिका को प्रौढा कहते है।

### उदाहरण

कवित्त—

कचुकी छोरि कसे कुच की मुकतान के मजु - हरान उतारी ।
दूरि कै दोऊ - भुजान के भूखन मंजु - मनोहर बैन उचारी ।

अंक असंक भरे 'हरिऔध' कौ रीति गहे रति की अति प्यारी।
काम-कलोल मै काल बितावति बाल - बिलोल-बिलोचन-वारी ॥ १ ॥

दोहा—

कबहूं कबहूँ कामिनी रखति लाज सो काज।
तन मै मन मै नयन मै अतन बिराजत आज ॥ २ ॥

## प्रौढ़ा के भेद

प्रौढा के दो भेद है—१-रतिप्रीता २-आनंदसमोहिता।

## रतिप्रीता

जिसको रति से अधिक प्रीति होती है उसे रतिप्रीता कहते हैं।

दोहा—

भरे उमंग परे रहहु कहाँ भयो पिय भोर।
है तमचुर को रव नही बोलत तम मै चोर ॥ १ ॥

## आनंदसंमोहिता

रति-सुख-जानित आनंद से मोहित नायिका को आनदसमोहिता कहते हैं।

## उदाहरण

दोहा—

नाना केलिकला करति लहे लाल सुख - कंद।
रोम रोम मै भरि बहत वाको उर - आनंद ॥ १ ॥
अंगराग आनंद को अंग अंग मै पोति।
रस - बस ह्वै कामिनी काम-कामिनी होति ॥ २ ॥

## मध्या और प्रौढ़ा के भेद

मान-भेद के अनुसार मध्या और प्रौढ़ा के तीन भेद होते हैं, अर्थात्—
१-धीरा, २ अधीरा, ३-धीराधीरा।

## १—धीरा

नारी-विलाससूचक चिह्नों को देख कर धैर्य के साथ सादर कोप प्रकाश करने-वाली नायिका को धीरा कहते है, उसके दो भेद हैं—मध्याधीरा और प्रौढाधीरा ।

### मध्याधीरा

सादर व्यंग वचन द्वारा रोष प्रकट करनेवाली मध्याधीरा कहलाती है ।

### उदाहरण

कवित्त—

मिलि मिलि मोद-वारी मुकुलित मल्लिका सों
कुंज कुंज क्यारिन कलोल करि फूले हो ।
पान कै प्रकाम - रस आम - मंजरीनहूँ के
उर - अभिराम को अराम उनमूले हो ।
'हरिऔध' ठौर ठौर भौरि झुकि झूमि झूमि
चूमि चूमि कंज की कलीन का कबूले हो ।
तजि महमही-मंजु - मालती - चमेलिन को
कौन भ्रम बेलिन भँवर आज भूले हो ॥ १ ॥

सवैया—

चौगुनी चंचलता हूँ किये हमैं चाव ही सो चुप ह्वै रहनो है ।
औगुन की बतियानहूँ मै 'हरिऔध' सदा गुन ही गहनो है ।
भाव तिहारे भलेई अहैं हमैं भूलि न और कछू कहनो है ।
फेरी करौ कै करो जिनि तेरी सरोजिनि को सब ही सहनो है ॥२॥

### प्रौढ़ाधीरा

प्रकट मे मान का कोई भाव न दिखलाकर सयोग-समय उदासीनता ग्रहण करनेवाली नायिका प्रौढाधीरा कहलाती है ।

## उदाहरण

सवैया—

आवत ही बिकसौहैं मिली अलसौ है बिलोकि नहीं बदल्यो रुख ।
बैन हरे हरे बोलि सुधा-सने वैसेही बाल दियो पिय को सुख ।
पै रचे केलि-क्रिया 'हरिऔध' के दाबि सकी नहीं अंतर के दुख ।
छोरन देत न कंचुकी के बँद जोरन देत नहीं मुख सो मुख ॥ १ ॥

## २—धीराधीरा

नारी-विलास-सूचक चिन्हों को देखकर कुछ गुप्त और कुछ प्रकट कोप दिखलानेवाली नायिका धीराधीरा कहलाती है । इसके भी दो भेद हैं—मध्या धीराधीरा और प्रौढा धीराधीरा ।

## मध्या धीराधीरा

रोदन-सहित व्यंग वचन कहनेवाली नायिका धीराधीरा कहलाती है ।

## उदाहरण

सवैया—

भोर भये पै पधारे कहा भयो मेरी सदा सुख ही की घरी है ।
एरी कछू 'हरिऔध' करै हमैं तो उनकी परतीति खरी है ।
बूझि बिचारि कहै किन बावरी बीच ही मै कत जाति मरी है ।
साँवरे प्रेम पसीजि परी नहिं मो अँखिया अँसुआन भरी है ॥ १ ॥

दोहा—

ए उमड़े अँसुआ नहीं कत कीजै सखि माख ।
अरी सनेह - भरी लसै यह तिल-वारी आँख ॥ २ ॥

## प्रौढ़ा धीराधीरा

मान करके तर्जन-गर्जन-पूर्वक व्यंग-वचन-बाण द्वारा पति को विद्ध करनेवाली नायिका को प्रौढ़ा धीराधीरा कहते हैं ।

## उदाहरण

सवैया—

बतियान बनाये नहीं बनिहै ढिग आवो नहीं खरे दूर रहो।
अपने मनही की करी तो करी कत काहु के बैन अनैसे सहो।
'हरिऔध' तुमै हम जानती है हकनाहक ही हमको न दहो।
चले जाहु गुनाह भई तो भई तुम नाह न बाँह हमारी गहो॥ १॥

## ३—अधीरा

नारी-विलास-सूचक चिह्नों को देख अधीर हो प्रत्यक्ष रोष करनेवाली स्त्री को अधीरा कहते है। उसके दो भेद हैं—मध्या अधीरा और प्रौढा अधीरा।

## मध्या अधीरा

रुष्ट होकर कटु भाषण करनेवाली नायिका को मध्या अधीरा कहते है।

## उदाहरण

सवैया—

नीकी नई निपुनाई करी अँखियान को लागति है अति प्यारी।
भोर ही भाग सो भाव-भरी यह आज भली करतूति निहारी।
रीझि रही तजि खीझि सबै 'हरिऔध' छकी मति हेरि हमारी।
कौन सी बाल है लाल कहो यह माल बिना गुन गूँधनवारी॥ १॥

## प्रौढ़ा अधीरा

मान करके तर्जन-ताड़न द्वारा कंपित हो हो रोष प्रकट करनेवाली नायिका को प्रौढा अधीरा कहते है।

## उदाहरण

सवैया—

रोस कै काँपति क्यो इतनी भला काहु को यों पत कोऊ उतारै।
कौन सी चूक है ऐसी परी मुख जो अजौ तू अपनो न सम्हारै।

ऐसी न लालिमा है अँखियान की जो 'हरिऔध' पै आँखि न पारै ।
सूल सी सालति ऐसियै भूल अरी पिय को मति फूल सो मारै ॥ १ ॥

## स्वभाव-संबंधी भेद

नायिका के स्वभाव-सबधी तीन भेद बतलाये गये हैं—१-अन्यसुरतिदु:खिता २-वक्रोक्तिगर्विता और ३-मानवती । यह भेद मध्या और प्रौढ़ा ही मे माना गया है । परकीया और सामान्या मे भी गृहीत हो सकता है ।

## अन्यसुरतिदु:खिता

अन्य स्त्री के शरीर पर प्रिय-सभोग चिह्न देखकर दु:ख प्रकाश करनेवाली नायिका अन्यसुरतिदु:खिता कहलाती है ।

### उदाहरण

कवित्त—

पान-वारे - ओठन की लालिमाहूँ लूटी गई
गारत भयो है रंग गोरे - गोरे - गाल को ।
आली तेरे आनन को ओपहूँ परानो कहूँ,
मरदि गयो है मान तेरी मंजु - चाल को ।
'हरिऔध' सारे - अग सेद मैं रहे हैं डूबि
ऊबि ऊबि सासै भरै भाखत न हाल को ।
एरी रूप - वारी कौने तोपै बटपारी करी
एरी बारी भोरी कौने लूट्यो तेरे माल को ॥१॥

दोहा—

परम निठुर पै जात ही भयो कहा तोहि बीर ।
कत तू परि परि गई उठी कौन सी पीर ॥२॥
कत हौ पठई कत गई तू वापै करि प्यार ।
अरी रीझि कैसे गयो तो पै मो रिझवार ॥३॥

तू बड़भागिनि ह्वै गई भयो भाग मो मंद।
अरी चंद - बदनी बनेउ कंत फीको मुख-चंद ॥ ४ ॥

## वक्रोक्तिगर्विता

वक्रोक्तिगर्विता के दो भेद हैं—रूपगर्विता और प्रेमगर्विता।

## रूपगर्विता

रूप का गर्व रखनेवाली नायिका रूपगर्विता कहलाती है।

## उदाहरण

कवित्त—

छोरि छोरि आम की रसीली मंजरीन कोंहिं
निकसि गुलाब के प्रसून रस - बारे से।
गुंजरत याही ओर देखु यह आवत है
अति - कमनीय कंज - बन के किनारे से।
'हरिऔध' की सौं आइ अबही मचैहै धूम
गूँजि गूँजि आनन - सुबास के सहारे से।
भूलि अब भौन ते न बाहर कढ़ौंगी कबौं
ऊबि गई एरी या मलिंद मतवारे से ॥ १ ॥

सवैया—

पंकज चंद लखे सकुचै मुख सौंहैं मयंक हूँ लाज गही है।
मोहकता मम आनन लौं अजहूँ जलजातन नाहिं लही है।
गोल-कपोल विलोचन-लोल-सरोजन मैं 'हरिऔध' नहीं है।
एते बिभेद भयेहूँ कहा इन भौंरन की मति भूलि रही है ॥ २ ॥

दोहा—

क्यों हूँ सहि लीनी कहे कुंद - कली लौं दंत।
मो मुख कहे मयंक सम होत कलंकित कंत ॥ ३ ॥

बरवा—

रजनीपति - छबि अँखिया निरखि लजाय।
कैसे मोर छयलवा रहत लुभाय ॥ ४ ॥

## प्रेमगर्विता

पति-प्रेम का गर्व रखनेवाली स्त्री प्रेमगर्विता कहलाती है।

## उदाहरण

कवित्त—

साजि साजि बीरी पानदान भरि राखैं
खासे खासदानहूँ मैं लाइ अतर धर्‍यो करैं।
मानत न लै लै साज साजत रहत सेज
तानत वितान जाते सुमन झर्‍यो करैं।
'हरिऔध' भूखन हूँ सकल सजाइ
मंद - मंद बतराइ मोद मन मैं भर्‍यो करैं।
चहल - पहल परिचारिकान हूँ के रहे
महल हमारे मंजु टहल कर्‍यो करैं ॥ १ ॥

बिमुख मयूख ते ह्वै ऊबि ऊख-रस हूँ ते
अधर - पियूख ही को परकि पियो करैं।
आन न बिलोकै हेरि आनन - मनोहर को
तानन सुनाइ मोहि प्रानन लियो करैं।
'हरिऔध' कारी सटकारी तमतोमवारी
जोहि जोहि जोमवारी जुलफैं जियो करैं।
प्यारे - प्यारे - मन - वारे मोहित - करनहारे
सौतुक हमारे केते कौतुक कियो करैं ॥ २ ॥

## मानवती

प्रिय का अपराध सूचित करनेवाली चेष्टा जिस स्त्री में पाई जाती है उसे मानवती कहते हैं।

## उदाहरण

कवित्त—

किती कामिनीन वारे रसिक कलानिधी सों
कालिमा लगी ना कबौं कौमुदी-कहानी मैं।
मदमाते भृंगन सों माखै मालती हूँ नाहिं
भाखै ना मसूसि रूसि मरी मुरझानी मैं।
हरिऔध' की सौं कही मानु एरी मानवारी
बतियाँ न मान की है तनकी निसानी मैं।
करत गुमान तू तो कैसे रैहै अरमान
मान तू करत तो करत मनमानी मैं ॥१॥

सवैया—

कछु मोसों भई तकसीर नहीं हठ कै हकनाहक तू न अरै।
'हरिऔध' है सूधो सदा को कहा करि कै छल छंदन ताको छरै।
मन मानै हमारो कही कबहूँ पै मया कै न मोसों मिजाज करै।
यह कैमी कुबानि तिहारी परी जो घरी-घरी तासों तनेनी परै ॥२॥

## ज्येष्ठा-कनिष्ठा

कतिपय विवाहिता स्त्रियों में पति को जो सबसे अधिक प्यारी हो उसको ज्येष्ठा और अन्य स्त्रियो को कनिष्ठा कहते हैं।

दोहा—

पिय जिय राजी भो उठी सजी सौति-उर पीर।
मॅजी रही कब की जो यों बजी मंजु-मंजीर ॥१॥

कवित्त—

सुंदर सुहाग की सराहना न मोते होति
तेरे मंजु भागहूँ की गरिमा अथोर है।

भोरे भोरे भाव है अभाव-हारी 'हरिऔध'
चरचा तिहारे चावहूँ की चहुँ ओर है।
आलय मै केती आला-आला-अलबेली अहै
तिहारे निरालापन ही को तऊ सोर है।
प्रीतम बँध्यो है प्यारी तेरे प्रेम डोर ही मे
तेरी नैन - कोर ही मै मैन की मरोर है ॥२॥

## परकीया

जो स्त्री गुप्त रूप से परपुरुष की अनुरागनी होती है उसे परकीया कहते हैं।

## उदाहरण

कवित्त—

चहूँ ओर चरचा चबाइन चलायो आनि
पायन परी है खरी-बेरी लोक लाज की।
गुरु-जन हूँ की भीर तरजन लागी, परी
बरजन ही की बानि आलिन-समाज की।
हाय ! 'हरिऔध' हूँ से अपने पराये भये
सूझति न मोको कोऊ सूरति इलाज की।
कढ़ति न क्यो हूँ रोम - रोम मै समाई वह
सूरति - सलोनी - मनभाई ब्रज - राज की ॥१॥

आँसुन मै डूबि डूबि जावैं टक लावै नाहिं
ऊबि अकुलावै जो पै धीरज बँधाइये।
'हरिऔध' छबि पै छकहिं छलकहिं छूटि
छूटि ललकहिं जो पै छनक न लाइये।
थिर ना रहहिं लोक-लाजहिं बहहिं भूलि
सौहैं ना लखहिं जो पै पलटि लखाइये।
कबहूँ जो रोचन - तिलक - वारे - साँवरे पै
छोरिकै सकोचन ए लोचन लगाइये ॥२॥

सवैया—

दुख आपनो कासो कहौ सजनी सदा साथ लगी तो उपाधै रही।
सबकी सब भाँति रही सहतै तबहूँ रुचि तो पल आधै रही।
कब प्यार कियो कपटी 'हरिऔध' लगी नित ही यह व्याधै रही।
मुखबोलन को हौ सदा तरसी जिय सूधि चितौन की साधै रही ॥३॥

कान ए का न करैं फिर क्यो सुनि तानन ही इन बानि बिगारी।
मोहि गयो मन-मोहन पै तो भई तबहूँ मन सों मन-वारी।
पै हमैं बूझि परि ना अजौं 'हरिऔध' की सौ बतिया यह न्यारी।
बावरी कैसे रँगी रँग लाल मे मो ऑखियान की पूतरी-कारी ॥४॥

कल कानि रमी करि कौन कला ललना-कुल आकुल-प्रानन मै।
'हरिऔध' नयो रस काने भरयो रसिया के अलौकिक-गानन मै।
किन नाई सुधा बसुधा-तल की मुरली की मनोहर-तानन मै।
अलि मोहनी आनि कहाँ ते बसी मनमोहन मोहन-आनन मै ॥५॥

दुख-बारि बिमोचत नैन रहै अहै चैन न मैन के बानन मै।
पथ-प्रेम कौ छेम भरो है नहीं अहै नेम न नेह-निदानन मै।
'हरिऔध' है योग बियोग-सनो अहै छोह नहीं छबिमानन मै।
चतुराइन की चरचा है कहा अहै चूक भरी चतुरानन मै ॥६॥

दोहा—

हिलि-मिलि वे चलि जात है ए दृग रहहिं बिसूरि।
नैननहूँ को देखियत नैनन पारत धूरि ॥ ७ ॥
मो नैनन बेलमाइ ए नैन करहिं उतपात।
का अजगुत की बात जो जाति जाति मिली जात ॥ ८ ॥
चाह-भरी-ऑखियान ते हम चितवत तुव ओर।
पै न चूकि चितयो कबौ तू एरे चित-चोर ॥ ९ ॥

बिकत बिपुल-आकुल रहत बहॅकत बनत अयान।
बंसी-तानन कान सुनि नयन निरखि मुसुकान॥ १०॥
लौटावत लूटी परी लौटि लपेटे भाग।
लटपटात लोयन गये बॅधे लटपटी पाग॥ ११॥

बरवा—

झलही मोर ननदिया बरबस आय।
बोलति बोल बिरहिया जिउ जरि जाय॥१२॥
खान पान सुधि भूलि गयहु अपान।
टप टप टपकत ॲसुआ दोउ ॲखियान॥१३॥
बिसरति नाहिं सनेहिया तजत न आन।
जल बिन तलफि मछरिया त्यागत प्रान॥१४॥
बढ़ति जाति बिकलैया निसि न सिराति।
दिन दिन सजनी देहिया छीजति जाति॥१५॥

## परकीया के भेद

परकीया नायिका के दो भेद है—ऊढा और अनूढा। इन दोनो के भी दो दो भेद हैं—उद्‌बुद्धा और उद्‌बोधिता।

### ऊढ़ा

जो विवाहिता स्त्री गुप्त रीति से दूसरे से प्रीति करती है उसे ऊढा कहते हैं।

### उदाहरण

कवित्त—

बिलोकेहू विपुल बिहाल ना गहै बिराम
बान सखियान की परी है बरजन की।
तोखै ना तनिक तात तमकि तनेने होंहि
बात हित नात की है कॉत तरजन की।

एरी बीर 'हरिऔध' निपट अधीर कियो
पीर उर आनत न लाख लरजन की।
भोरी बनी बिपुल बिथोरी बिस बोरी बनी
जरो री निगोरी ऐसी लाज गुरजन की ॥ १ ॥

बारि के भरेहूँ तोख लहत न कैसहूँ हैं
हँसिबो न जानै ऐसी महत - उदासी है।
लोक-लाजहूँ ते काज राखत कछू ना कबौ
गाज के परे हूँ तेरी पूरन - उपासी है।
'हरिऔध' औरन की चाह सपने हूँ नाहिं
तेरे प्रेम - बूँद ही की अनुदित आसी है।
उघरी ए अखियाँ हमारी ऐन - चातकी सी
एरे घनस्याम तेरे रूप - रस प्यासी है ॥ २ ॥

सवैया—

बावरो सो मन मेरो भयो रहै भूलि न भावत भौन बसेरो।
पीर सी होति रहै हियरे दुख पावत पातकी - प्रान घनेरो।
क्यो हूँ नहीं 'हरिऔध' कहूँ लगै ऊबत है जियरो बहुतेरो।
एरी न जानत मो पै कहा कियो पीतम मेरी परोसिनी केरो ॥३॥

बीर अधीर भई तो कहा परी पीर भरी छतिया अब चाँपनी।
प्रीति रती न जा 'हरिऔध' मैं ताकी प्रतीति करी बनी पापिनी।
या अपकीरति की बतिया निज हाथन मोहिं परी सखि थापनी।
मो पतिआन पै गाज परै पति - आन के हाथ गई पति आपनी ॥४॥

## अनूढ़ा

जो अविवाहिता स्त्री पुरुष से गुप्त प्रीति करती है उसे अनूढ़ा कहते है।

कवित्त—

सकुचित भौहैं करि सोचति कछू है कबौं
कंटकित गात होत कबौं गरबीली को।
ढरकि रहे हैं सेद - कन रोम - कूपन सो
छाम ह्वै गयो है तन सकल छबीली को।
'हरिऔध' कहै डूबि डूबि मन काहें जात
गहन लगी क्यो ऊबि ऊबि गति ढीली को।
लहि लहि लाज कौन काज भरि भरि आवै
रहि रहि आज नैन ललना रसीली को ॥ १ ॥

कवित्त—

सुनती बतिया सखियान हूँ की गुरु लोगन हूँ की कही करती।
नहिं बारि बहावती आँखिन सो अपने उर धीरज हूँ धरती।
हकनाहक ही हठ कै 'हरिऔध' हितून हूँ सो ना कबौं अरती।
अरी वा मन - भावन साँवरे के सँग कैसहूँ भाँवरैं जो भरती ॥२॥

सुंदर चीकनो चाव भरो अलबेलो अलौकिकता को सहारो।
लाइ हिये दुख - मेटनवारो छबीलो छकी - अँखियान को तारो।
सूधो सजीलो सुजान गुनी 'अरिऔध' धरातल गौरववारो।
बीर बताय दै क्यो मिलिहै वह भावतो। बालपने को हमारो ॥३॥

## उद्बुद्धा

अपनी इच्छा से उपपति से प्रेम करनेवाली परकीया को उद्बुद्धा कहते हैं।

सवैया—

मंद-मंद समद-गयंद की सी चालन सो
ग्वालन लै लालन हमारी गली आइये।
पोखि-पोखि प्रानन को सानन सहित
इन कानन को बाँसुरी की तानन सुनाइये।

'हरिऔध' मोरि मोरि भौहैं जोरि जोरि दृग
चोरि चोरि चितहूँ हमारो ललचाइये।
मंजुल-रदनवारो मुद के सदनवारो
मदन-कदनवारो बदन दिखाइये ॥१॥

काको सुत कैसो छबि धारत बसन कैसे
कैसी बानी बोलि को पियूख बरसावै है।
जानत जुगुत कैसी मोहत कहाँ धौं करि
मंद-मुसुकान काको मन अपनावै है।
'हरिऔध' की सौं कही मानु चलु देखै नेक
काको रूप-कामिनी को बावरी बनावै है।
काके बस ब्रज की बिलासिनी भई है बीर
कौन बनमाली बन बाँसुरी बजावै है ॥२॥

सवैया—

हम कैसी करैं कित को चलि जायँ महा दुख मैं हमैं पारती है।
हरिकै छल सो सिगरी कुलकानि बिचारन हूँ को बिगारती है।
'हरिऔध' न मानती है छनहूँ कबौं सूधेहूँ नाँहिं निहारती है।
यह रावरी नेह-मयी अँखियाँ हमैं बावरी सी किये डारती है ॥३॥

साँझ सकारे मया करिकै कबहूँ गुरु लोगन के अनदेखे।
आपनी या छबि मैन-मयी दरसायो करौ हित कै हित लेखे।
नातो अहो 'हरिऔध' सुनो तन रैहै नहीं पतिआन के पेखे।
प्यारे न मानती हैं अँखियाँ बिन रावरी साँवरी सूरत देखे ॥४॥

## उद्बोधिता

उपपति-चातुरी से प्रेरित होकर प्रीति करनेवाली नायिका को उद्बोधिता कहते है।

## उदाहरण

सवैया—

मोको बिलोकत ही अपने मन मै सुख मानि महा-उमगानी।
आसन दीनी समादर कै मुख बोलि हरे हरे मंजुल-बानी।
सील के पेचन माँहि परी 'हरिऔध' सनेह सनी सकुचानी।
प्यारे तिहारी प्रमोद भरी पतिआ पढिकै पुलकी पतिआनी ॥१॥

## परकीया के छः भेद

व्यवहार और कार्य कलाप संबंध से परकीया छः प्रकार की होती है। १—गुप्ता, २—विदग्धा, ३—लक्षिता. ४—कुलटा, ५—अनुशयाना और ६—मुदिता।

## १—गुप्ता

पर-पुरुष-विहार-संबंधी क्रिया को गोपन करनेवाली परकीया गुप्ता कहलाती है। वह तीन प्रकार की होती है—१—भूतगुप्ता, २—वर्तमानगुप्ता और ३—भविष्यगुप्ता।

### भूतगुप्ता

भूतकालिक विहार गोपन करनेवाली भूतगुप्ता कहलाती है।

### उदाहरण

दोहा—

भाग जगावन काज मै माँगन गई भभूत।
कहाँ करौ भोरे-जनन काँहि भिन्यो जो भूत ॥१॥
सुनत हुती मैं रसिक-जन हुतो सरस बतरात।
मोहि कलंकित करि कहति कत कलंक की बात ॥२॥

### वर्तमानगुप्ता

वर्तमानकालिक विहार गोपन करनेवाली वर्तमानगुप्ता कहलाती है।

## उदाहरण

कवित्त—

टूट टूक कीनी मेरी कंचुकी हुँ कोरवारी
सारी-छरतारी फारी जेवर नसायो है।
तिलरी हूँ मजु मनि मोतिन की तोरि डारी
बेनी हूँ बिथोरि डारि छोरि दधि खायो है।
'हरिऔध' त्रासन ते काँपत करेजो अजौ
साँसु न कढ़ति आँसु आँखिन मै छायो है।
खूँत-भरो निपट-कुचाली क्रूर करतूत
कैसो या सपूत आली काहू घर जायो है ॥१॥

दोहा—

गिरि ते गिरत निहारि कै पकरि लियो प्रिय मोहि।
तू बौरी सी कत बकति भयो कहा है तोहि ॥ १ ॥

## भविष्यगुप्ता

## उदारहण

दोहा—

जो कुंजन जैहौ नही किमि लैहौ दल फूल।
का कैहौ अनुकूल जन जो ह्वैहैं प्रतिकूल ॥ १ ॥
बर पूजन जैहौ न क्यो है बरसाइत कालि।
छल-छंदी कैहै कहा मो पै कीच उछालि ॥ २ ॥

## २—विदग्धा

चतुराई और बुद्धिमत्ता के साथ पर-पुरुष-विहार-सबधी कार्य साधन करनेवाली परकीया को विदग्धा कहते है। उसके दो भेद है—वचनविदग्धा और क्रियाविदग्धा।

## वचनविदग्धा

पर-पुरुष-विहार-संबंधी कार्य साधन मे वचन-चातुरी से काम लेनेवाली परकीया वचनविदग्धा कहलाती है।

### उदाहरण

कवित्त—

वैन ननदी के सुनि सूल सी उठन लागी
देवर के तेवर करेजो मेरो हूलिगो।
सासु की सुने पै आँखि आँसु ढरकन लाग्यो
सौतिन की बातन हमारो पेट फूलिगो।
हेरि 'हरिऔध' टेरि सखिन सुनाई बाल
जात हौ तहाँई जितै मैन उनमूलिगो।
तट-कालिंदी पै बंसी बट के निकट बीर
नीर भरिबे को घट घाट ही पै भूलिगो ॥१॥

## क्रियाविदग्धा

क्रिया-चातुरी से पर-पुरुष-विहार-संबंधी कार्य साधन करनेवाली परकीया क्रियाविदग्धा कहलाती है।

### उदाहरण

दोहा—

चपल-नयन चित-चोर को चितवत लखि चहुँ ओर।
कै मंजुल-मंजीर-ध्वनि सरस करी दृग कोर ॥१॥

## ३—लक्षिता

जिस परकीया का परपुरुषानुराग लक्षणों से प्रकट हो जाता है उसे लक्षिता कहते हैं।

## उदाहरण

कवित्त—

नैन मदमाते बैन कछु अलसाते कढ़ै
उर मैं उमंग अधिकाते की दुहाई है।
कंप होत गात ना समात कंचुकी मैं कुच
आनन लखात तेरे अजब लुनाई है।
'हरिऔध' हेतु बीर बावरी बनी सी डोलै
धरति न धीर कैसी करति ढिठाई है।
रंग ढंग दीखे बूझि परत कुरंग-नैनी
आज तेरे अंगन अनंग की चढ़ाई है॥ १॥

बिहँसित-बदन प्रमोद-पुंज-पगे-बैन
बड़ी बड़ी आँखि ते बिनोद बरसत है।
केसरित-कलित-कपोल, केस छूटे लसैं,
सीकरित-अधर दुगूनो सरसत है।
'हरिऔध' मंद-मंद-मंजु-मथरित-गौन
ताकि रति-रौनहूँ तिगूनो तरसत है।
आनँद-उमंगवारी एरी संगवारी बाल
तेरे अंग आज रंग औरै दरसत है॥ २॥

## ४—कुलटा

अनेक-पुरुष-रता, व्यभिचारिणी, काम-वासना-मयी स्त्री को कुलटा कहते हैं।

## उदाहरण

सवैया—

एक को भौंह मरोरि लख्यो कह्यो एक सों हो तुम तो निरमोही।
एक सों नैन मिलाइ कै बोली लखो नभ कारी घटा किमि सोही।

चाव सों एक को आइ गह्यो उमड़े घन को झर लावत जोही।
एक सों भाख्यो बिलासिनि यो किन भीजत आइ बचावत मोही ॥१॥

## ५—अनुशयाना

संकेत-स्थल के नष्ट होने से संतप्त रमणी को अनुशयाना कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—१–संकेतविघट्टना (वर्तमान), २–संकेतनष्टा (भावी) तथा ३–रमणगमना (भूत)।

## संकेतविघट्टना

वर्तमान संकेत-स्थल नष्ट होने से दुःखित ललना को संकेतविघट्टना कहते हैं।

## उदाहरण

दोहा—

कहा भयो जो ह्वै गई लता-बिहीन निकुंज।
घर समीप बिलसत अहै अजौं घने-तरु-पुंज ॥ १ ॥
सूने-सदनन के नसे चूर भयो कत चित्त।
बहु-बिहार-उपबन अहै अजौं बिहार-निमित्त ॥ २ ॥

## संकेतनष्टा

दोहा—

कत सिसकति ह्वैहै उतै रसिक-जनन ते भेट।
है तेरी ससुरारि मै सुंदर सजे सहेट ॥ १ ॥
सखि ससुरे मै सैर की अहै असुबिधा नाहिं।
उत अभिमत-फल-दायिनी-बहु-फुलवारी आहिं ॥ २ ॥

## रमणगमना

संकेत-स्थल में प्रियतम के गमन का अनुमान कर जो स्त्री अपनी अनुपस्थिति पर तप्त होती है उसे रमणगमना कहते है।

कवित्त—

आलिन को आनन बिलोकि अकुलानी महा
केला के झमेला मिले कुफल करेला के।

गारत गुलाबी रंग भयो गोरे गालन को
सौंहै परी जाय मानो औंचक सँपेला के।
ढारि ढारि आँसुन की धार दोऊ आँखिन सों
निदत विचार 'हरिऔध' अवहेला के।
बेला बीती बूझिकै बेहाल अलबेली भई
अलबेले हाथन विलोकि फूल बेला के ॥१॥

बरवा—

आयो प्रिय अमरैया गैयन साथ।
पहुँचि न सकति लुगैया मीजति हाथ ॥ २ ॥
बिलखति खरी गुजरिया बिहरति नाँहि।
निरखि गुलाब - गजरवा प्रिय-गर माँहि ॥ ३ ॥

## ६—मुदिता

वाछित की अकस्मात् प्राप्ति से आनदित होनेवाली परकीया को मुदिता कहते है।

कवित्त—

अँधियारी कुहू की डरारी-कारी-रैन माँहि
जामै घिरी भारी-घटा पवन - प्रसंग ते।
दामिनी दिपे पै भौन बार पै बिलोक्यो बाल
मंद-गौन - वारो - प्यारो मंजुल-मतंग ते।
'हरिऔध' मोहि मद-प्याला सी पिअन लागी
ज्वाला हूँ कढ़न लागी बाला - अंग अंग ते।
उरज-उतंग ते अनंग रंग पैठी जाति
ऐन बैठी ऐठी जाति आनंद - उमंग ते ॥१॥

गरबीली - गोरटी लजीली - अँखियान-वारी
लूटी सी फिरति छूटी सखिआन-सग ते ।
कुंज-पुंज क्यो हूँ लखि पाई गुज माल वारो
जाकी सुघराई है सवाई सौ अनंग ते ।
'हरिऔध' हेरे भई बेसुध बिकी सी बाल
भाव - भंगी ह्वै गई छगूनी भग-रंग ते ।
तरकत मैन की तरंग ते तनी के बंद
भरकत अग अग आनँद-उमंग ते ॥२॥

## सामान्या अथवा गणिका

केवल धन के निमित्त प्रेम करनेवाली स्त्री सामान्या कहलाती है। इसमें प्रवचना की मात्रा अधिक होती है।

### उदाहरण

कवित्त—

मंद मद मीठे बैन बोलि मन औरै करै
नैन - सैन ही सो मैन जू को उरथान दै ।
पीनता दिखावै हाव - भाव परिपाटी माँहिं
रमन-प्रनाली मैं प्रवीनता प्रमान दै ।
'हरिऔध' सुधा ही सी स्रवत कहै जो कबौं
प्रानप्यारे मोको मंजु माल - मुकतान दै ।
मान दै दै सहित सनेह अपनावै प्रान
हरति अपान हूँ को हँसि करपान दै ॥१॥

## दशविध नायिका

अवस्था के अनुसार नायिकाओं के दश भेद होते हैं। वे ये है—

१—प्रोषितपतिका, २—खण्डिता. ३—कलहान्तरिता, ४—विप्रलब्धा ५-उत्कंठिता, ६—वासकसज्जा, ७- स्वाधीनपतिका, ८—अभिसारिका, ९—प्रवत्स्यत्पतिका १०—आगतपतिका।

प्रेम-पथ पर दृष्टि रखकर ये भेद स्वकीया और परकीया मे ही माने गये हैं। कुछ लोगो ने गणिका में भी इन दशाओं को माना है, किन्तु कतिपय विद्वानो के सिद्धातानुसार मैं भी इसको रसाभास समझता हूँ।

## प्रोषितपतिका

प्रियतम के विदेश-गमन से व्यथित और दुःखदग्ध स्त्री को प्रोषितपतिका कहते हैं।

### उदाहरण

### मुग्धा प्रोषितपतिका

दोहा—

सखियन हूँ ते नहिं कहति पिय-प्रवास की पीर।
नीरज-नयनी-नयन हूँ नाँहिं बिमोचत नीर॥ १॥
कोऊ बतरावत नहीं क्यो चित होत अचेत।
पिय बिन ए कारे जलद क्यो जिय जारे देत॥ २॥

### मध्या प्रोषितपतिका

दोहा—

बिरह-घरी बीतति नहीं युग सम दिवस सिराहिं।
सखियन को लखि कै रुकत अँखियन को जल नाँहिं॥ १॥
असन-बसन की सुधि नही साँसत सहत सरीर।
कहति न बिरह - भरे बयन बहत नयन ते नीर॥ २॥

## प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

कवित्त—

चूमि चूमि प्यार ते उचारती बचन ऐसे
जाते प्रेम प्रीतम को तोपै भूरि छावतो।
मोहित ह्वै तेरे चोंच माँहिं चारु-चामीकर
'हरिऔध' हीरा हेरि हिय पै लगावतो।
एरे काक बोलत कहा है कक्कनीन बैठि
मंजुल-मनीन तेरे चरन जरावतो।
नैनन को तारो बाँकी-बड़ी-अँखियान-वारो
प्यारो-प्रान वारो जो हमारो कंत आवतो॥ १॥

पी कहाँ वहाँ हूँ जो पुकारतो पपीहा पापी
प्यारो कैसे प्रानन को धीरज बँधावतो।
क्यों हूँ मन मानतो न उनको मनाये आली
जो पै मोरनी लै सोर मोर हूँ मचावतो।
'हरिऔध' कैसे देस माँहिं निवसत आली
कोऊ तो बिभेद या को हमको बतावतो।
ऐसई जो होतो वाँ डरारो बजमारो घन
कैसे मनवारो ना हमारो कंत आवतो॥ २॥

पतिया न आई एक बतिया न साँची भई
प्रीति मैं तिहारी तऊ छतिया पगी रहै।
आज काल ही मै प्रान चाहत पयान कीने
तिनमै प्रतीति तेरी तबहूँ खगी रहै।
प्यारे 'हरिऔध' तुमै नीके ना निहार्यो तऊ
रोइ रोइ जामिनी मै अँखिया जगी रहै।
मनमन सपन हूँ मैं मगन भयो ना तऊ
पगन तिहारे मेरी लगन लगी रहै॥ ३॥

सवैया—

तजि रावरी साँवरी सूरत साँवरे या हिय और समातो नहीं।
वह मीठी सुधा सो सनी बतियाँ सुनि कानन धीर धरातो नहीं।
हम कैसी करै 'हरिऔध' कहो अब मोसो कछू तो सिरातो नहीं।
इन आँखिन प्यारे तिहारे बिना जग और तो कोऊ दिखातो नहीं ॥४॥

दोहा—

दमकति नभ मैं दामिनी घन छाये चहुँ ओर।
चित तरसत है दरस को बरसत है दृग मोर ॥ ५ ॥
नभ धुरवा धावन लगे बिधत बिरह के तीर।
तनिक धीर नहिँ धरि सकत मो चित परम अधीर ॥ ६ ॥

बरवा—

कैसे बसत बिदेसवाँ बलमु - नदान।
तलफत मोर करेजवा कलपत प्रान ॥ ७ ॥
चमकत चपल बिजुरिया अलि चहुँ पास।
काँपत मोर करेजवा उपजत त्रास ॥ ८ ॥

## परकीया प्रोषितपतिका

कवित्त—

बावरी ह्वै जाती बार बार कहि वेदन को
बिलखि बिलखि जो बिहार थल रोती ना।
पीर उठे हियरा हमारो टूक टूक होत
ध्याइ प्रान-नाथ जो कसक निज खोती ना।
'हरिऔध' प्यारे के पधारि गये परदेस
नैन नसि जात जो सपन संग सोती ना।
तन जरि जातो जो न आँसुआ ढरत आली
प्रान कढ़ि जातो जो प्रतीति उर होती ना ॥ १ ॥

मरो मुरझायो मन मारिये कहाँ लौं कहो
कठिन हिये पै कौ लौं पाहन बसाइये।
कोटि काम हूँ ते अभिराम स्याम प्यारे-काज
कलपि कलपि कौ लौं बासर बिताइये।
'हरिऔध' अनुछन आँखिन को तारो हुतो
जाके बिना एक पल हूँ ना कल पाइये।
उधो वाही लालन के सुललित पायन की
धूरि हूँ मिलै ना जो लै लोचन लगाइये ॥ २ ॥

सवैया—

क्यो हूँ नहीं सहि जाहिं अरी उर मे उपजे दुख-पुंज-अपार ए।
दाह दुगूनियै होत उसासन प्रान रहे 'हरिऔध' अधार ए।
हाय ! न सीतल होत छनौ कबहूँ इन नैनन के जल-धार ए।
डारत छार किये हियरा बिरहागि के बीर अधूम-अँगार ए ॥ ३ ॥

पीर पराई पछानत हौ परतीत हूँ प्यारे प्रसंसन जोग है।
भाप हूँ को है अभाव नहीं कमनीय-सुभाव हूँ को सहयोग है।
पै 'हरिऔध' न जानि पर्‍यो परदेस मैं क्यो बिसर्‍यो मो बियोग है।
भाखिये भूल तिहारी कहा मनभावते भाग ही को सब भोग है ॥ ४ ॥

ओट भये हूँ तिहारी बड़ी अखियान ते होत रहै बिपरीतै।
माधुरी मंजुल - बैनन की 'हरिऔध' अजौं हमरो मन जीतै।
डोलत बावरी सी बन - बीथिन बूझति ना कछु नीत अनीतै।
ना बिसरै वह सूरत - प्यारी बिसूरत ही निसि बासर बीतै ॥ ५ ॥

## खंडिता

अन्य-नारी-सभोग-चिह्न चिह्नित प्रातरागत नायक-दर्शन से कुपिता खंडिता कहलाती है।

## मुग्धा

दोहा—

चकित भई अवलोकि कै उलटे पलटे बेख।
मन - रंजन के अधर पै निरखे अजन - रेख ॥१॥
लाल भोर आये कछू बोल न पाई बाल।
गुनन लगी कारन निरखि उर की बिन-गुन माल ॥२॥

## मध्या

कवित्त—

बोलत बनै न बारि बहै बड़ी आँखिन सो
विफल बनी है देखि बेख बल-भैया को।
लाली लखि नैनन की रिस सो भई है लाल
भूल्यो सब ख्याल अंक निरखि सुगैया को।
'हरिऔध' हरे हरे आखर हिये के कढ़ि
आवत अधर पै न पावत समैया को।
मदन - मजेज मै बिहाल बावरी सी बनी
बदन बिलोकै बैठी सेज पै कन्हैया को ॥१॥

दोहा—

अधर लगो अंजन निरखि चितवति दृग भरि लेति।
उससि कछू चाहति कहन लाज कहन नहिं देति ॥२॥

## प्रौढ़ा

कवित्त—

मेरे भाग जागत ही जामिनी बितैबो हुतो
कौन काज आप है लखात अलसाने से।
प्यारी पीक लीकहिं अनूठे अधरान छोरि
कहा लाभ कलित-कपोल पै लगाने से।

'हरिऔध' प्यारे साँची कहौ छलछद छोरो
भोर ही कहाँ हो आज फिरत भुलाने से।
रावरे बिसाल दृग-कज लाल ह्वै रहे है
सूरज उगे हूँ क्यो सरोज सकुचाने से ॥१॥

परचि गई हौ पेचपाच-वारे बैनन सो
परपंच कीने मोहि मिलत सहारो ना।
काट-छाँट-वारी-बानि काटत करेजो अजौ
कपट किये हूँ कूट-बचन उचारो ना।
'हरिऔध' जाहु जागि जामिना बिताई जितै
जियरा हूँ जावक लिलार लाइ जारो ना।
ढंग-वारी-साखिन पै ढारो ना हमारो मन
रंग-वारी-आँखिन को मोपै रग डारो ना ॥२॥

## परकीया

दोहा—

हौ जागी सारी-निसा बनि बड़-भागिनि-बाल।
लाल तिहारे ए नयन-युगल भये क्यो लाल ॥१॥
भूरि-भाग-वारो भयो काहू के पग मोहि।
लाल! भाल-जावक दहत क्यो पावक बनि मोहि ॥२॥

## कलहान्तरिता

प्रिय से कलह कर अंतरित पश्चात्तापपरायणा स्त्री कलहान्तरिता कहलाती है।

## उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—

जल छलकत है नयन मै भलो लगत नहिं भोर।
पिय ते कलह किये भयो क्यों कलही मन मोर ॥१॥

मुख ते कछू कहति नहीं कितनो करति सकोच।
लरिकाई छूटी नहीं कहा लरे को सोच॥ २॥
सरस बनावहु जलद-तन चलि करि रस-मय-केलि।
अहै कलह - रवि - कर तई दुलही - डलही - बेलि॥ ३॥

## मध्या

दोहा—

पिय सो लरि लरि तू रही तब तो बहु इतरात।
अब लोयन को जल बनो तेरो कलह दिखात॥ १॥
सोचि सोचि अपनी दसा कत सकुचति सुकुमारि।
कलह - कालिमा क्यों धुलति जो न होत दृग - वारि॥ २॥

## प्रौढ़ा

कवित्त—

मान के किये ते मान रहत कहाँ धौं कैसे
मेरे जान मानही की बातै है अमान की।
मन मै मसूसि महा - मुरझि रही हौं बीर
नेक - सुधि मोको ना रही है खान - पान की।
हाय! 'हरिऔध' हूँ सो हियरो हरन - वारो
रूसि गयो मोसो जरो बानि अपमान की।
छबि पै लुभाई को लगैहै छतिया सों मोहि
पान को करैहै सुधा मंजु - बतियान की॥ १॥

दोहा—

बरबस करुये बयन कहि मो सरबस हरि लीन।
कैसे नीरस नहि बनति रसना रस सो हीन॥ २॥

## परकीया

दोहा—

टूटि सलिल - भाजन गयो छूटि न पायो पंक।
कलह भयो तासो अली जा हित सह्यो कलंक॥ १॥

ता सरसिज को कर सकी कहा सहज सनमान।
सरसत मो मन अलि अहै करि जाको रस - पान ॥ २ ॥

## विप्रलब्धा

संकेत-स्थल में प्रियतम की अप्राप्ति से आकुल और क्षुब्ध नायिका विप्रलब्धा कहलाती है।

## उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—

पीर उठे पीरी परी पिय ते भई न भेट।
दुलही - दुख दूनो भयो सूनो मिले सहेट ॥ १ ॥
तिय आई आयो न पिय भई समय की भूल।
काँटे लौं कसकन लगे कलित - कुंज के फूल ॥ २ ॥

### मध्या

दोहा—

देखि सेज सूनी परी केलि - भवन भो काल।
बिचलित अलबेली भई बिन अलबेले लाल ॥ १ ॥
केलि-भवन आई बधू भरी उमंग उछाह।
बारि-बाह लोचन बने बिना बिलोके नाह ॥ २ ॥

### प्रौढ़ा

दोहा —

बार बार बहराइ कै तूने कियो अबार।
बादि अहै पिय के बिना उपबन-बिपिन बहार ॥ १ ॥
ललक - भरी आई बधू मिले नाँहि सुख-मूल।
केलि-भवन हूँ नहिं भयो केलि-मयी अनुकूल ॥ २ ॥

## परकीया

कवित्त—

सीतल सलिल - वारे सर सरसावैं नाहिँ
कुंत लौं लगे है कुंज-पुज्ज गरबीली को ।
सुललित - फूलन सों मूल सी उठन लागी
भयो अनुकूल न मयंक अरसीली को ।
'हरिऔध' मंद - मद - मारुत हर्यो अनंद
लूटन लग्यो है मैन चैन हूँ छबीली को ।
लाल बिन एरी बीर मंजुल-निकुंज हू मैं
नीरस भयो है रस ललना - रसीली को ॥ १ ॥

## उत्कंठिता

आने का निश्चय करके भी जिसका प्रियतम विहार-स्थल में यथासमय न आवे अथवा आवे ही नहीं, उस आकुल और उत्कठित स्त्री को उत्कठिता अथवा उत्का कहते हैं ।

### उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—

कहा भयो आये न क्यो मुख ते कढ़त न बैन ।
चित - चंचलता कहत है चंचल - नयनी नैन ॥ १ ॥
कहाँ रुके अरुझे कहा किधौ गये पथ भूल ।
या सोचन चंपक - बरनि बनी कुसुम को फूल ॥ २ ॥

### मध्या

दोहा—

भई बेर क्यो का भयो यह बिचारि सुकुमारि ।
कबौ बिलोकति पथ कबौं भरति हगन मैं बारि ॥ १ ॥

बैठति उठति बिकल बनति बिलपति लहति न चैन।
चितवति सखि-मुख दुखित बनि काटे कटति न रैन॥ ७॥

## प्रौढ़ा

दोहा—

बीती निसि आये नहीं अब लौं नयनानंद।
कहा करौं कैसे गहौं बामन बनि कै चद॥ १॥
सेज-परी सिसकति कबौं कबौं भरति है आह।
घरी घरी उठि उठि बधू पिय की जोहति राह॥ २॥

बरवा—

आवति खिन अँगनैया खिन चलि जाति।
उठि उठि गिनति तरैया कटति न राति॥ ३॥
पसरी निरखि जुन्हैया चंदहिं चाहि।
कामिनि परी सेजरिया उठति कराहि॥ ४॥

## परकीया

कवित्त—

पौन मंद बह्यो छाई सेतता दिसन माँहिं
दीपक मलीन भयो अंधकार टरिगो।
गात सियरानो बोले बृद चरनायुध के
कलरौ चिरियन को चारो ओर भरिगो।
'हरिऔध' आये नाँहिं अँखियाँ उनींदी भईं
अहह हमारो भाग आज हूँ बिगरिगो।
एरी बीर देखु अरुनाई छाई अंबर मैं
तारन-समेत तारापति फीको परिगो॥ १॥

## वासकसज्जा

प्रिय-समागम का निश्चय करके जो केलि-सामग्री को सज्जित करती अथवा सखियों द्वारा सुसज्जित होती हो उसे वासकसज्जा कहते हैं।

## उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—

नवला कत सकुचति इतो सजत सँवारत कुञ्ज।
दुरे छबीली होत का दुरत नहीं छबि-पुंज ॥१॥
काहैं सजति न सेज अलि साज मिले अनुकूल।
बिकच-कमल-कर मै फबहिं खिले फबीले फूल ॥२॥

### मध्या

दोहा—

महल-टहल के समय मन काको हरति न बीर।
कलरव-रत-कटि-किंकिनी बजत मंजु-मंजीर ॥१॥
सकुचति कबौ सकुच तजति तिय सब लेति सहेज।
अभिमत-साजन ते सजति सखिन सजाई सेज ॥२॥

### प्रौढ़ा

दोहा—

बोलि बोलि सखियान को कहि कहि बैन रसाल।
केलि-सदन को सुर-सदन सरिस बनावति बाल ॥१॥
बासि बासि बर-बास ते सजि सजि केलि-अबास।
बिलसति रहति बिलासिनी करि करि बिबिध-बिलास ॥२॥

### परकीया

कवित्त—

बैठी हुती मंदिर मै कलित-कुरंग-नैनी
जाको लखि काम-कामिनी को मान किलिगो।
क्यो हूँ कढ़्यो तहाँ आइ साँवरो-छबीलो-छैल
जाको गान-तानन ते ताके कान पिलिगो।

मुख खोलि उझकि झरोखे 'हरिऔध' झाँके
लोक-सुदरी को मंजु-रूप ऐसो खिलिगो।
नीलिमा-गगन मैं मगन ह्वै गयो कलंक
आनन-उजास मैं मयक-बिब मिलिगो ॥१॥

## अभिसारिका

प्रियतम-समागम-निमित्त संकेत-स्थल मे गमन करनेवाली अथवा प्यारे को बुलानेवाली नायिका को अभिसारिका कहते हैं।

### उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—

परग परग पै बहु अरति खटके पात सकाति॥
चली जाति पिय पास तिय सेद-सनी सकुचाति॥१॥
पथ चलत बिचलित भई कंपित भो सब गात।
भये चौगुने-चपल चख चित भो चलदल-पात॥२॥

### मध्या

दोहा—

पिय पहँ जात लजाति बहु लंक लचे बल खाति।
तजति उतायल भाव तिय जो पायल बजि जाति॥१॥
सोच सकोचन करन ते दली मली दिखराति।
लली अली लै गलिन ह्वै केलि-थली मैं जाति॥२॥

### प्रौढ़ा

दोहा—

चली कंत ढिग कामिनी सफल करन अभिसार।
सुर-पुर-तिय मोहति निरखि रति-मोहक सिगार॥१॥

ललना ललन मिलन चली गति लखि लजत गयंद।
बदन-चंद की जोति ते होति चद-दुति मंद ॥ २ ॥

## परकीया

सवैया—

मानी-मनोज को मान मरोरत मोहन मोहन को मृग-नैनी।
जोति जतावत जोम भरी जलजात-बरूथन को जग-जैनी।
'हरिऔध' अलकावलि सो अलि को अकुलावति आनँद-ऐनी।
भानुजा-कूल पै जात चली कल-कुंजन कूजत कोकिल-बैनी ॥१॥

सुंदर-भाव-भरे तन पै बगरी बर-भूखन-जोति भली है।
सोधे सनी अलकावलि हूँ चहुँ घेरि लई अलि की अवली है।
मजुल-गौन पै ए 'हरिऔध' गयंद हूँ की गति जाति छली है।
भानु-लली-प्रिय-रंग-रली कल-केलि-थली महँ जाति चली है ॥२॥

## परकीया के भेद

परकीया अभिसारिका के तीन भेद हैं—१—शुक्लाभिसारिका, २—कृष्णाभिसारिका और ३—दिवाभिसारिका।

## शुक्लाभिसारिका

चाँदनी रात के अनुकूल वेश धारण करके प्रिय-समागम के लिये जानेवाली स्त्री को शुक्लाभिसारिका कहते हैं।

दोहा—

सेत-बसन हीरक-जटित बिबिध-बिभूखन धारि।
चली चाँदनी रात मैं चंदकला-सी नारि ॥ १ ॥

## कृष्णाभिसारिका

अँधियाली रात्रि के अनुकूल वेश धारण करके प्रियसमागम के लिये जानेवाली परकीया स्त्री को कृष्णाभिसारिका कहते हैं।

कवित्त—

नीले - नीले - नूतन - निचोल नये तन धारि
असित - मिसी मै पूरि पगति रदन की ।
भूखन पहिरि नव - नीलम - जटित अंग
दीपति दुराइ खोलि जेहरि पदन की ।
'हरिऔध' अति अँधियारी अमा रैन माँहि
बनि कै मिजाज-वारी भामिनी मदन की ।
चलत सहेट चंद-मुखी के चहूँघा चाहि
चाँदनी सी फैली चारु चाँदनी बदन की ॥ १ ॥

दोहा—

नील निचोलन के सहित पहिरि नीलमनि माल ।
चली तमो मय रजनि मै तमो-मयी बनि बाल ॥ २ ॥

## दिवाभिसारिका

प्रिय-मिलाप के लिये दिन में संकेत-स्थल को जानेवाली अथवा उसको बुलानेवाली परकीया को दिवाभिसारिका कहते हैं ।

दोहा—

दूर करन कामिनि चली मदन-जनित-संताप ।
तप-रितु-तीखे-तपन के ताप को न गिनि ताप ॥ १ ॥

## प्रवत्स्यत्पतिका

प्रियतम-प्रवास-गमन से व्याकुल और सनत स्त्री को प्रवत्स्यत्पतिका कहते हैं ।

### उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—

पिय को करत पयान लखि भरि आये युग नैन ।
चाहत कछू कहन बधू पै कछु कहत बनै न ॥ १ ॥
ढिग आई प्रिय-गमन सुनि भयो चकित-चित लोल ।
आँखि खोलि देखन लगी पै न सकी मुँह खोल ॥ २ ॥

## मध्या

सवैया—

ठाढ़ी सिँगार कै नारि हुती इतने मै बिदेस गयो सुनि पी को।
नैन ते नीर झर्‌यो इतनो अस हाल भो जाते तहाँ तरुनी को।
डूबि गई पहिले कटि लौ 'हरिऔध' उरोज डुब्यो पुनि नीको।
ऐसहीं देखत ही दृग के अँसुआन सो भीज्यो लिलार को टीको॥१॥

बरवा—

प्रीतम जात विदेसवाँ निपट अनेस।
सिसकति खरी गुजरिया बगरे केस॥२॥

## प्रौढ़ा

कवित्त—

रावरे निहारे बिना बावरी बनैगी कौन
देखे बिना तुमै काकी अँखिया सिहायगी।
कौन सूनी-सेज पै चढ़ैगी परतेजि प्रान
दूनी-दाह काके अंग अगन दिखायगी।
'हरिऔध' प्यारे जो पै करत पयान तो कहो
तो प्रान राखि कौन कौ लौ अकुलायगी।
कौन दुख पैहै नैन-नीर बरसैहै कौन
कौन बिलखैहै कौन पीछे पछतायगी॥१॥

## परकीया

कवित्त—

चलन चहत प्रान-प्यारो परदेस आली
आकुल ह्वै हियरा हमारो सुधि लेखै ना।
चकि चकि रहत चहूँकित चितै कै चित्त
बेदन-बिबस ह्वै कै सुरति सरेखै ना।

'हरिऔध' प्यारे-संग करन पयान ही मैं
आपनी भलाई पापी प्रान हूँ परखै ना।
बिलखि बिलखि भरि भरि बार बार बारि
नैनहूँ निगोरो आज नैन भरि देखै ना ॥१॥

## आगतपतिका

प्रियतम-विदेशागमन से उत्फुल्ल स्त्री को आगतपतिका कहते हैं।

### उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—
सुनि मुख ते सखियान के पिय को आवत ऐन।
पड़े पलक के पाँवड़े ललकन लागे नैन ॥१॥
आये लाल बिदेस ते ललना भई निहाल।
अनुरंजित - चित - रुचि कहत रोरी - रंजित - भाल ॥२॥

### मध्या

दोहा—
सुने कंत को आगमन उमड़्यो उमग - पयोद।
ललना - युगल - नयन लगे बरसन बारि - बिनोद ॥१॥
प्रीतम आये पौर पै भई देखि बहु भीर।
छकी पै सकी तोरि नहिं लोक - लाज - जंजीर ॥२॥
बरवा —
आवत जानि छयलवा पकरि कपाट।
कामिनि खरी अटरिया जोहति बाट ॥३॥

### प्रौढ़ा

कवित्त
बार बार प्यार ते बिलोके चंद-मुख-चारु
फेर मैं परे से अंधकार मेरे ही के हैं।

छीन लीनो मैन ते अचैन हूँ हमारो सबै
चैन-दैन-बारे-बैन बोरे जे अमी के है।
'हरिऔध' बिरह-हरनवारी आँखिन सो
करत प्रयोग मोपै मोहक ससी के है।
पी के मिले जटिल अनेसे सबै जी के नसे
अब हम जान्यो कि हमारे भाग नीके है॥ १॥

सवैया—

छाई रही अबला - मन मैं धुरवान को धावन देखि उदासी।
श्री 'हरिऔध' हूँ आये बिदेस सो आइ कही इतनेहिं मै दासी।
आनँद के अँसुआन बहे अकुलाइ कै दौरि चली चपला-सी।
लाल के अंग-तमाल सो जाइ रही लपटाइ लवंग-लता सी॥२॥

बरवा—

धरकत बाम-नयनवाँ सजनी मोर।
आवत अयन सजनवाँ सुनत बहोर॥ ३॥
आवत सदन सजनवाँ अति बड़ भाग।
उड़ि उड़ि आज अँगनवाँ बोलत काग॥ ४॥

## परकीया

दोहा—

सुनि आवन सुखकंद को छोरि सकल छर छंद।
ललकत तिय देखन चली छबि-छलकत मुख चंद॥ १॥
मिले बिदेसी मीत के रह्यो न मान मरोर।
ललना के लोयन बने आनन - चंद - चकोर॥ २॥

## स्वाधीनपतिका

जिस नायिका का प्रिय उसके सौंदर्य अथवा सद्‌गुणो पर मुग्ध होकर उसका वशीभूत होता है उसे स्वाधीनपतिका कहते हैं।

## उदाहरण

### मुग्धा

दोहा—

जकी छकी नवला रहति छिपि छिपि बितवति काल।
तन मै छबि छहरत निरखि छनौं न छोरत लाल ॥ १ ॥
छाँह बचावति लाड़िली छोरत ना अलि-बृंद।
तऊ बदन-अरबिंद के लालन भये मिलिंद ॥ २ ॥

### मध्या

दोहा—

लाल-गरे परि ललित बनि लहि सु-बास सब काल।
फबि फैलावति ही रहति फूल-माल सी बाल ॥ १ ॥
सकुच-भरी पति-करन ते सज्जित ह्वै सरसाति।
परी किन्नरी सी रुचिर-सेज परी दरसाति ॥ २ ॥

### प्रौढ़ा

सवैया—

काज परे हूँ न जाय कबौं कहूँ मो पति आपनी आनि अरो रहै।
नेक न मानत औरन की 'हरिऔध' को मेरो ही ध्यान खरो रहै।
साजत साज सँवारत भूखन सुंदर भावन माँहिं भरो रहै।
भूख औ प्यास बिसारि सदैव अवास मैं मेरे ही पास परो रहै ॥१॥

### परकीया

सवैया—

अरी और तियान ते सोहैं परे हूँ कबौ अपनो दृग जोरै नही।
अनखाय नहीं अपमान किये रस हूँ मैं कबौं बिस घोरै नहीं।
'हरिऔध' हमारो हजारन मैं हमरे हित ते मुँह मोरै नहीं।
छकि मो छबि ऊपर छाँह की भाँति छबीलो हमै छन छोरै नहीं ॥१॥

# नायक

# नायक

रूप-यौवन-सम्पन्न, उत्साह-शील उदार, कुलीन, सुशील, जन-अनुराग-भाजन, चतुर, बुद्धिमान्, तेजस्वी और महान् हृदय पुरुष नायक कहलाता है। स्वभाव के अनुसार उसके चार भेद माने गये हैं, वे निम्नलिखित है—

१—धीरोदात्त, २—धीरोद्धत, ३—धीरललित और ४—धीरप्रशान्त

## १—धीरोदात्त

क्षमावान्, धीर-गभीर, स्थिर-प्रकृति, महान्-चेता, हर्ष-शोकादि में अविचल-चित्त, दृढव्रत, विनयी और उदारहृदय पुरुष धीरोदात्त कहलाता है।

### उदाहरण

कवित्त—

सूधो सधो उदधि-गभीर धीर-बीर है जो
जाकी धी मै धरम-धुरीनता है निवसी।
सबल सुसील सत्यसंध साहसी है जौन
सरद-सिता सी जाकी साधना है बिकसी।
'हरिऔध' लोक - हित ललित बनत जाते
बिपुल - बिभूति जाके लोमन ते निकसी।
महि मॉहिं परम - महान सोई मानव है
जाके मंजु - मानस मै मानवता बिलसी॥ १॥

सवैया—

राखै दोऊ मरजाद सदा है गभीरता दोहुँन मै मनमानी।
भू मै अहै रतनाकर हू दोऊ दोखै समान दुहून मैं पानी।
ए 'हरिऔध' रहैं रस एक ही दोहुँन की गति जाति न जानी।
एक से भूतल मै बिलसै दोऊ सागर औ गुन-आगर प्रानी॥ २॥

दोहा—

सुखित सकल को करि बनत सुर - समान नर कौन।
बसुधा पै बरसत सुधा सरसत - ससि - सम जौन ॥ ३ ॥

## २—धीरोद्धत

अभिमानी, शूर, चपल, मायावी, प्रचड, दुर्दांत, कोपन-स्वभाव और अपनी प्रशसा के पुल बॉधनेवाला पुरुष धीरोद्धत कहलाता है।

### उदाहरण

कवित्त—

मैं हौ महा-मानी करि पैहौ का न माया किये,
बाधा बोध भये दौरि बॉधि दैहौ बिधि को।
बिगरे बिदारि दैहौ बड़े - बड़े - बीरन कौ
तमके नसैहौ सारी - साधना की सिधिको।
'हरिऔध' कोप किये लोप कैहौ लोकन को
पावक ते पूरि दैहौ पुहुमी-परिधि को।
ककुभ के बारन की बोटी बोटी काटि दैहौ
गिरि को उपाटि दैहौ पाटि दैहौ निधि को ॥ १ ॥

दोहा—

मोहि मुदित दिनमनि करत ससि सेवत सब भॉति।
मेरे पद - नख सरिस है नभ - तल - तारक - पॉति ॥ २ ॥
मायामय हूॅ होत है जा माया लखि मौन।
मो सम जग मै दूसरो मायावी है कौन ॥ ३ ॥
धनु लै धावत मोहि लखि कौन न होत अधीर।
धरकत धरनी - धरन - उर धरती धरति न धीर ॥ ४ ॥

काको कलपावत नहीं करि निज लोचन लाल।
काल काल हूँ को बनत गहि कर मै करवाल ॥५॥
परम-प्रबल माया-निपुन धीर-बीर मद-मान।
को बसुधा-तल मै भयो बारिद-नाद समान ॥६॥

## ३—धीरललित

निश्चिन्त, कोमल-स्वभाव, नृत्य-गीतादि में अनुरक्त, हँसी-खेल मे निपुण, काम-कामिनी-प्रेमिक और नीतिरत गर्भार पुरुष धीरललित कहलाता है।

### उदाहरण

कवित्त—

चिता ते रहत दूर चारु-चाव भरो चित
सुख-मुख चाहि चाहि चाहना हँसति है।
धारत कमल-मुख कोमलता मानस की
कामना मै कमनीय - कामिनी बसति है।
'हरिऔध' रुचि राग-रंग मै रहति रमी
मंजु-तान कान मैं सुधा ह्वै निवसति है।
ललित-कलान ते मगन है रहत मन
लोयन मै लालिमा लगन की लसति है ॥१॥

सवैया—

चाव सो है तिनको बहु चाहत जे अहै चारुता-चाहक-चेरे।
घूमत है रस-मंजु थलीन मै साथ अलीन के साँझ सवेरे।
है 'हरिऔध' सनेहिन को धन जीअत है रहि नेहिन नेरे।
सोहत है कुसुमावलि सो लसि मोहत मोहन-आनन हेरे ॥२॥

दोहा——

कोमल-मुख ते कढ़त है कोमलतामय बैन।
ललित देखि ललकत रहत धीरललित को नैन ॥३॥

तन मै मन मै नयन मैं बहत रहत रस-सोत।
चिंतामनि चोरी भये चित चिंतित नहिं होत ॥४॥

ललकि लुनाई लखन की लोयन को है लाग।
अंगन मै छलकत रहत राग-रंग अनुराग ॥५॥

## ४——धीरप्रशान्त

नायक के अधिकाश गुणो से युक्त प्रशान्त ब्राह्मणादिक को धीरप्रशान्त कहा जाता है, इनमे त्याग और क्षमाशीलता की विशेषता होती है।

### उदाहरण

कवित्त——

परम-कुलीन है कुलीनता को गौरव है
पै न काहू अकुलीन कॉहिं निदरत है।
बिभव-भरो है पै न अनुभव-हीनता है
भूति-हीन-जन को बिभूति बितरत है।
'हरिऔध' सूर है पै बनत कबौ ना सूर
सारो-उर-तम सूर सरिस हरत है।
धीर है पै देखि कै अधीर को अधीर होत
बीर है पै धर्म-बीर-बीरता बरत है ॥१॥

धीरता गभीरता बिदित बर बीरता मैं
सबल-सरीरता मै सांति निवसति है।
तेज ओज साहस अभीति नीति रीति मॉहिं
प्रीति-परतीति मॉहिं सुचिता बसति है।

'हरिऔध' उदित - उदारता - निकेतन है
चोखी - चातुरी को चित-चारुता कसति है।
मानस - महत्ता ते है महति रहती मति
उर मै सतोगुन की सत्ता बिलसति है ॥ २ ॥

दोहा—

निज - गौरव हित नहिँ हरत पर के गौरव कॉहिँ।
जनता को हित बसत है सुजन - सुजनता मॉहिँ ॥ ३ ॥
जो जन होत अधीर नहिँ परे भीर पर भीर।
हरत रहत पर - पीर जो है सोई बर - बीर ॥ ४ ॥
कौन सुजन ताके सरिस अहै अवनि मै आन।
जो अपने सनमान सम समझत पर - सनमान ॥ ५ ॥
निरखे हूँ निरखत नहीं जन - अपराधन कॉहिँ।
छमावान जैसी छमा है छमाहुँ मै नॉहिँ ॥ ६ ॥
बहु-असरस जा मै परे परम - सरस है होत।
सुजन - तरल - उर मै बहत ऐसो रस को सोत ॥ ७ ॥

## नायकों के सात्त्विक गुण

नायकों के सात्त्विक गुण आठ है। वे निम्नलिखित है—

१—शोभा, २—विलास, ३—माधुर्य, ४—गाम्भीर्य, ५—धैर्य, ६—तेज, ७—ललित और ८—औदाय।

## शोभा

शूरता, चातुरी, सत्य, उत्साह, अनुरागिता, नीच मे घृणा और उच्च मे स्पर्द्धा उत्पन्न करनेवाले अन्तःकरण के धर्म को शोभा कहते हैं।

## उदाहरण

कवित्त—

सूरता मै सासन - उदारता है दरसति
सॉच मॉहि नीति - निपुनाई निबसति है ।
भूत की भलाई है उछाह मै बिराजमान
घिन मॉहि नीच - हित - वासना बसति है ।
'हरिऔध' सोभा ही ते सोभावान सोभित है
उच्च - रुचि प्रतियोगिता ते बिकसति है ।
अनुरागिता मै लोक - अनुराग को है रंग
चातुरी मै चारु - चित चारुता लसति है ॥ १ ॥

दोहा—

अवनी - तल - अपकार - तम करि निज - कर सो दूर ।
लहे सूरता बनत है जन - जीवन - नभ - सूर ॥ २ ॥

नर - गौरव - गिरि - सिखर को करति बिपुल-छबिमान ।
लोक - हितकरी - चातुरी लसि चॉदनी समान ॥ ३ ॥

मानवता बिकसित न तो जो न सचाई होति ।
है वह जन - मन - ससि-सुधा नर-तन - दीपक-जोति ॥ ४ ॥

बहु - फल - दायक - बनत है छन छन करि छबिवंत ।
है उछाह नर - बिटप को सरसत - लसत - बसंत ॥ ५ ॥

मानव - मानस - मोहिनी रस - दाइनी - महान ।
कौन अहै अनुरजिनी अनुरागिता समान ॥ ६ ॥

जाते अघ मैं घुन लगै सो घिन ताहि सुहात ।
नीचन को सौ जतन सो सुजन सुधारत जात ॥ ७ ॥

जन करि करि प्रतियोगिता कब न जगावत भाग ।
कौन लगावत है नहीं भली - लगन की लाग ॥ ८ ॥

## बिलास

विलासमान की दृष्टि धीर, गति विचित्र और वचनावली मुसकुराहट लिए होती है, तथा भाव मे गर्व का विकास होता है।

## उदाहरण

कवित्त—

गौरवित-गति ते मृगाधिप को मान हरि
ओज - मंजु - गिरि पै बिहरि बिलसत है।
भरत दिगंत मै दिवाकर समान तेज
मुख मै प्रभाव - पूत - बचन बसत है।
'हरिऔध' सबल - बिलास को बिकास बनि
कंज लौं बिभूति - सरसी मैं बिकसत है।
धीरता - बलित - चितवन ते चकित करि
मद - भरो - बीर मद मंद बिहँसत है ॥१॥

दोहा—

पर - अपकारक उरन मै उपजावति बहु - पीर
बीर - धीर - चितवन करति पापिन कॉहिं अधीर ॥२॥
भीर परति है कुजन पै निरखि बदन - गंभीर।
बनति रहति है अगति - गति धीर - बीर - गति - धीर ॥३॥
लोक - बिजयिनी - बीरता चलति बीर को घेरि।
अरि - कुरंग थहरत रहत केहरि सी गति हेरि ॥४॥
बिदित करति है बीर की बिभुता सबल - सरीर।
प्रकटति चित - गंभीरता गिरा - मेघ - गभीर ॥५॥

## माधुर्य

आकुल होने के कारणो के उपस्थित होने पर भी आकुल न बनना माधुर्य कहलाता है।

## उदाहरण

कवित्त—

तहाँ अरि साहसी मचावत समर-घोर
जहाँ सूरमा हुँ को न पाँव ठहरत है।
तहाँ करवाल लै कमाल कै कै किलकत
महा-काल-केतन जहाँ पै फहरत है।
'हरिऔध' जघन हिलत ना डटे-दल मैं
घेरे परे घन के समान घहरत है।
पवि-पात भये नाँहिं नेकौ थहरत गात
नाँहिं नर-केहरि निहारि हहरत है ॥१॥

दुख को समूह देखि सामुहें सकात नाँहिं
साहस-सहित सारि आपदा सहत है।
प्रतिकूल-वायु बहे आकुल न नेकौ होत
आँच सहे कंचन सी मंजुता लहत है।
'हरिऔध' बार बार तग जंग माँहिं भये
अग-अंग भरित उमग ते रहत है।
खर-तीर-पीर हूँ ते बनत अधीर नाँहिं
भीर परे बीर बीरता कै निबहत है ॥२॥

दोहा—

भव-दुख-पारावार को है सो अनुपम-पोत।
बिचलितकर-साधन लहे जो चित-चलित न होत ॥३॥
नर-पुगव थहरत नहीं कठिन काल अवलोक।
आकुल करत न तासु चित आकुलतामय-ओक ॥४॥
दुख-दिवस हुँ मैं दुख सकत सबल-मनन को छू न।
कंटक मै ही रहत है बिकच गुलाब-प्रसून ॥५॥

## गाम्भीर्य

भय, शोक, क्रोध और हर्ष आदि के कारण उपस्थित होने पर भी निर्विकार रहना गाम्भीर्य कहलाता है।

### उदाहरण

कवित्त—

उदधि - गभीर - उर छुभित कबौ ना होत
वामै छवि अछवि समान हीं है छहरति।
सकल - बिकार - हीन - बहु-विध-भावन मैं
छोभमयी - भावना छनेक नाँहिं ठहरति।
'हरिऔध' मानस विमोहित तहाँ ना होत
जहाँ महा - मोह की पताका-मंजु फहरति।
चित माँहिं नाना - लालसान ते ललित-भूत
लोभनीय - लोभ की लहर नाँहि लहरति॥ १॥

दोहा—

कामिनि की कमनीयता कामुक करति न ताहि।
जासु कामना मै बसति काम - बासना नाहिं॥ २॥

सदा एक - रस रहत बुध भये बिवेक उदोत।
सुख मैं सुखित बनत नहीं दुख मै दुखित न होत॥ ३॥

सुरपति - अनुपम-पद लहे होत न बिपुल - निहाल।
निरखि उठत करवाल हूँ बनत न लोचन लाल॥ ४॥

हारि परे हूँ हरन हित पर - धन हेरत है न।
बहु - रिस हूँ मै नहिँ कहत बिबुध अनैसे बैन॥ ५॥

बेधत नाँहि गभीर - उर मारि कुसुम - सर मैन।
चोरि सकति चिता नहीं वाके चित को चैन॥ ६॥

# धैर्य

बडे से बड़ा विघ्न उपस्थित होने पर भी अपने काम पर डटे रहने का नाम धैर्य है।

## उदाहरण

कवित्त—

धरि धरि धूरि मैं मिलेहै उधमिन काँहिं
अधाधुंध हूँ को अंधपन - सारो खोवैगो।
साधि साधि सब साधनान काँहिं पैहै सिधि
उचित - विधान कै अविधि को बिगोवैगो।
'हरिऔध' धीर काम छोरैगो अधूरो नाहिं
धुन - बारि द्वारा धाक धब्बन को धोवैगो।
बाधक के बधन बिधिन मैं बँधैगो नाँहिं
बाधा पर बाधा परे बाधित न होवैगो॥ १॥

बिबिध - विपुल - बिघ्न बारिवाह को समीर
बहु - बिध - बाधक - बिधान-तम - रवि है।
सकल - बिफलता - सरोजनी को हिम - पात
अगति - गहनता - तृनावलि को गवि है।
'हरिऔध' निज - काज - साधन-निरत-धीर
नाना - प्रतिबंध - पुंज - पावक को हवि है।
आपद - अगाध - अंबुनिधि को है कुंभजात
पुंजी - भूत - बिपद - पहारन को पवि है॥ २॥

दोहा—

सारत अपनो काज सब भभरत देखि न भीर।
पीर न पीरन को गनत बनत अधीर न धीर॥ ३॥

छुटी समाधि न संभु की भयो न तप - अवसान।
लगे सरग - तिय - नयन - सर चले पंचसर - बान ॥ ४ ॥
तीखे सहसन विसिख ते विधि - बिधि कै बहु ठाँव।
तजत धीरता धीर नहिँ धरत न पीछे पाँव ॥ ५ ॥

## तेज

अन्य के किये गये आक्षेप और अपमानादि को प्राण जाने की संभावना होने पर भी सहन न करना तेज कहलाता है।

## उदाहरण

कवित्त——

रोम रोम बिधे बाधा बाधा को न मानि लेहिँ
बिबिध - बिरोधन निवारि निबहत हैं।
अपमान भये पै अपान हूँ बिसरि जाहिँ
मान गये प्रान - दान करि उमहत है।
'हरिऔध' बाद भये बदत न काल हूँ को
खीजे बैर बामदेव हूँ ते बेसहत हैं।
होत हैं तिरोहित सकारे के सितारे सम
औरन को तेज तेज - वारे ना सहत है ॥ १ ॥

बंक - भौह अवलोकि बंकता गहत भूरि
नेसुक - कलंक लगे भूलत अपान है।
बात बढ़े बात बात माँहिँ रिस-बस होत
सीस के गये हूँ ना सहत अपमान है।
'हरिऔध' तीखी-अँखियान हेरि तीखो होत
आन पर आन बने गहत कृपान है।
तेज-वान-जन-अभिमान-तम को है भानु
दुवन - गुमान - बन - दहन समान है ॥ २ ॥

दोहा—

तजत आनबारो नहीं कबहूँ अपनी आन।
बचन - बान नहिं सहि सकत सहत बान पै बान ॥ ३ ॥
दहत रहत है तूल सम दंभिन - दल - अभिमान।
तेजवान को तेज है पावक - पुंज - समान ॥ ४ ॥
प्रकृति - पुस्तिका को अहै परम - प्रभा - मय - पेज।
दानव - मानस - तम हरत मानव - मन - रवि - तेज ॥ ५ ॥
तेजवान नहि सहि सकत काहू की ललकार।
वार करन हित कर गहत तुरत कौन तरवार ॥ ६ ॥
तेजवान - कर मै अहै वह कराल - करवाल।
जासु सहचरी कालिका है जेहि सहचर काल ॥ ७ ॥

## ललित

वाणी, देश और शृंगार की चेष्टाओं की मधुरता की ललित संज्ञा है।

## उदाहरण

कवित्त—

मधुर युगल - पद - तल - मंजु - लालिमा है
नूपुर - मधुर - ध्वनि मोहक - मदन है।
मधुर कपोल - बिलसित - अलकावलि है
मधुर अधर - राग - रंजित - रदन है।
'हरिऔध' परम - मधुर युग - लोचन है
परम - मधुर बिधु बिमल - बदन है।
मधु बरसावत है मधुर मधुर बोलि
मधु के समान लाल माधुरी - सदन है ॥ १ ॥

बेस बसनादि माँहिं बिलसित माधुरी है
बिबिध - बिलास मैं बिकास दरसत है।
रमनीय - तन कामिनीन - मन मोहत है
कमनीय - कांति देखि काम तरसत है।
'हरिऔध' मुख मनोहरता - निकेतन है
सुधा के समान मंजु-हास सरसत है।
भाव - भरे - कोयन मैं लसति, ललामता है
बड़े बड़े लोयन ते रस बरसत है॥ २॥

सवैया—

सुंदर - बेस सुहावन-बानक पाग - सजी - सित सीस पै सोहति।
मंजु बनी अलकावलि काँहिं न कौन सी कामिनी है जकि जोहति।
दीठि के तारन मैं कमनीयता है छबि की मुकुतावलि पोहति।
बैन की माधुरी है चित चोरति नैन की माधुरी है मन मोहति॥३॥

दोहा—

मंद मंद हँसि मधुर बनि मोहत है मन मोर।
काको चित चोरत नहीं चितवन ते चित - चोर॥४॥
कस मैं रहत न मन निरखि कारो कुंचित - केस।
काको बस मैं नहिं करत बहु - सुहावनो - बेस॥५॥
मो मन मोहत बर - बसन बदन - मंजु-अवदात।
लोनो - नयन ललित - बयन परम - सलोनो गात॥६॥
मोहन के ही कथन मैं है मोहन की बान।
काके मधुर-बयन सुने कान करत मधु - पान॥७॥
मुरली - बादन मै करत काको बदन कमाल।
काकी बानक है बनी अंक - लसे बन - माल॥८॥

# औदार्य

प्रियभाषणपूर्वक दान, शत्रुमित्र में समान दृष्टि और चित्त के उदार भाव को औदार्य कहते है।

## उदाहरण

कवित्त—

एकरस सबको मधुर - रस दान काज
सरस - रसाल सम फरत रहत है।
बारिधर सरिस बरसि लोक - हित - बारि
याचक - समूह - सर भरत रहत है।
'हरिऔध' प्रेम साथ प्रिय बैन बोलि बोलि
चैन दैनवारी बानि बरत रहत है।
दीनता को दीनता को दरिकै दुरंतमान
दिन दिन दानी दान करत रहत है॥ १॥

चारुतामयी है है अचारुता सहारौ नाँहिँ
कु-बिचार कैसो सुबिचारन की सूची है।
बुरो भाव जानै ना सुभावना - निकेतन हैं
कुरुचिवती न अहैं, सुरुचि - समूची हैं।
'हरिऔध' सूधो है अहैं न बंक-गति-वारी
पगी है सनेह मैं लोहार की न कूँची हैं।
नीची कैसे होहि कबौ नीचन पै कैसे परैं
ऊँचन की अँखियाँ रहति अति - ऊँची हैं॥ २॥

कैसे एक बिपुल - पुनीत बनि पुलकत
कैसे दूजो पतित कहाइ दुख सहतो।
कैसे एक घर मैं बधावरौ बजत नित
दूजो घर कैसे दीह - दावा माँहिँ दहतो।

'हरिऔध' जीव यदि जानतो अभेद भेद
कैसे तो बिभेद के प्रवाह माँहि बहतो।
बुरी छूत-छात जो न छाती पै सवार होति
कैसे तो अछूत को अछूत कोऊ कहतो ॥३॥

कौन है परायो कौन आपनो बिचारै किन
ऊँच नीच मानि कत पाप मैं पगत है।
मिलि मिलि सबसो सुखित कत होत नाँहिं
क्यो न सुख सबको बिलोकि उमगत है।
'हरिऔध' भागो भागो काहू सो फिरत कत
या जग मै कौन तेरो सगो ना लगत है।
तन तन माँहिं जगमगत रतन एक
जन जन माँहिं एक जोत ही जगत है ॥४॥

सवैया—

मानवता तिनमै है कहा जे कुरंगन बेधि बिनोद है पावत।
ते 'हरिऔध' कहाँ है दयालु जे बान बिहगन पै है चलावत।
है तिनको उर मंजु कहाँ जे अहै मधुपावलि को कलपावत।
है तिनमै कहाँ कोमलता कुसुमालि को धूल मै जे है मिलावत ॥५॥

दोहा—

रवि ससि काको सग कहहिँ काको समझहिँ आन।
सबको गिनत समान है समता-ममतावान ॥६॥

को बैरी है कौन है दान-बीर को बीर।
सबको वितरत है सुरभि बहि बहि सरस समीर ॥७॥

बिना कहे दानी करत दया दान हरि पीर।
बिन जाँचे सरिसरन मै नीरद बरसत नीर ॥८॥

दानिन को चित होत है दीन-जनन अनुकूल।
कर सुबरन बरसत रहत झरत बदन ते फूल ॥९॥
तजि उदार जन को हरत दीनन को धन-प्यास।
है काके कर-कमल मैं कमला - मंजु - मवास ॥१०॥

## नायक के और भेद

रूप-यौवन-सम्पन्न, गुण मान, राग-रस-ज्ञाता, सुरसिक, सहृदय और नाना-कला-कुशल नायक के धर्मानुसार तीन भेद—१—पति, २—उपपति और ३—वैसिक, तथा अवस्था के अनुसार दो भेद १—मानी और २—प्रोषितपति—माने गये हैं।

### उदाहरण

कवित्त—

चोज-वारी बातन सों मोहत मनोज हूँ को
मंजु - मुख - लुरित अलक लोक-फंद है।
साँवरो सलोनो मद-मंद हँसि टोनी करै
गौरवित - गमन बिमोहक गयंद है।
'हरिऔध' बैन कैसे ताकी सुखमा को कहै
जाको हेरि नैन हूँ को नाको होत बंद है।
आँखिन को तारो लोक-हियरा-हरन-वारो
जीवन-सहारो प्यारो ब्रज-नभ-चंद है ॥ ॥१॥

मगन भयो है मन लालिमा पगन पेखि
ढरयो पींडुरी की या सुढार-ढलकन पै।
सुगठन जोहि जक्यो युगल - जघनहूँ को
छक्यो काछनी हूँ की सुछबि छलकन पै।

'हरिऔध' राजी भयो नव - रोम-राजी हेरि
मोहि सो गयो है मजु - माल - हलकन पै ।
गोल गोल-अमल-कपोल पै मचलि अर्‍यो
बाँकुरो - बिहारी की अमोल - अलकन पै ॥ २ ॥

कज से नयन बैन अमिय सने से अहैं
अलकन हूँ पै आभा नौगुनी लखाई है ।
चितवन-चारु चाल मजुल - मराल की सी
छलकति रोम रोम छवि - सुखदाई है ।
'हरिऔध' हेरि हेरि लोक-कामिनीन हूँ की
देव - भामिनीन हूँ की मति भरमाई है ।
नैन - अभिराम सुख-धाम घन-स्यामजू की
सुंदरता काम हूँ ते सौगुनी सवाई है ॥ ३ ॥

सवैया——

छलकी सी चहूँघा छई सी परै छवि अंगन माँहिं समाती नही ।
सुकुमारता जैसी लसै तन मैं कहूँ तैसियै और दिखाती नही ।
'हरिऔध' बिलोकत ही बनि आवै लखे अँखिया हूँ अघाती नही ।
मन - भावती - साँवरी - सूरत रावरी बावरी काहि बनाती नही ॥४॥

## १——पति

शास्त्र बिधि से विवाहित कुल-मर्यादाशील सुपुरुष को पति कहते हैं ।

सवैया——

धीर गँभीर गुनी गरुओ जेहि गौरव की गरिमा नित गैयत ।
सील सकोच सनेह सनो सुखमा लखि जाको हियो सरसैयत ।
मोद - भरो 'हरिऔध' मनोहर मैन की मूरत जाहि बतैयत ।
री बड़भागिनी भाखे कहा बड़े भागन प्यारो पती जग पैयत ॥१॥

# पति के भेद

पति पाँच प्रकार के होते है—१–अनुकूल, २–दक्षिण, ३–धृष्ट, ४–शठ और ५–अनभिज्ञ ।

## अनुकूल

जो पुरुष एक ही विवाहिता पत्नी मे अनुराग रखकर दूसरी की कामना नही रखता उसको अनुकूल कहते है ।

सवैया—

लखि प्यारी तिहारी मनोहरता सुर की बनिता हुँ सराहै नहीं ।
मन-मोहनी आनि मिले हूँ कबौं अपने मन माँहि उमाहै नहीं ।
'हरिऔध' बिहाइकै प्रेम तिहारो कछू हम और बिसाहै नहीं ।
तव आनन छोरि कै आन कछू अँखियान बिलोकन चाहै नहीं ॥१॥

## दक्षिण

अनेक स्त्रियों पर समान स्नेह रखनेवाले पति को दक्षिण कहते हैं ।

सवैया—

हम ऐसे अजौं अवलोके नहीं अलकावलि पेच परे जे नहीं ।
जग मै जनमे जन ऐसे कहाँ या उरोजन ओर ढरे जे नहीं ।
'हरिऔध' न ऐसे सुने छिति मै छबि नीकी निहारि छरे जे नहीं ।
ए बड़ी बड़ी आँखै बधूटिन की गड़ि जात है काके करेजे नहीं ॥१॥

## धृष्ट

बहुत अपमानित होकर भी जो लज्जित नहीं होता और चाटुकारी करता है उस अधम पति को धृष्ट कहते हैं ।

कवित्त—

कैसहूँ जो आपनो किये है मन मेरी आली
नीकी करै ताको जो सँवाचि अब फेरै ना।
रार जो मची है मेरे नैन हिय प्रानन मै
भलो अहै ताको जो बिवेचि तू निवेरै ना।
'हरिऔध' याहू को न मन मैं कछू है आनि
मोको कबौ प्यारे प्राननाथ कहि टेरै ना।
साँची कहै होत बार बार बलिहारी अरी
बाँके नैनवारी क्यो हमारी ओर हेरै ना॥ १॥

## शठ

छल-पूर्वक अपराध गोपन करने मे निपुण पति को शठ कहते है।

कवित्त—

भौंहैं जनि तानै रोस मन मै न आनै
हौ कियो न मनमानी मेरी बातन मै कान दै।
अँखियाँ ललौहैं नाँहि नीर बरसौहैं भई
कहौ करि सौहै मेरी पति तू न जान दै।
'हरिऔध' बापुरो न जानै छल छंदै ताहि
क्यों न सनमानै निज अंक माँहि थान दै।
मति कलपावै मेरे प्रान कही मेरी मान
एरी प्रानप्यारी मोको हँसि कर पान दै॥ १॥

## अनभिज्ञ

जिसको शृंगार रस की सरस क्रियाओं का यथार्थ ज्ञान नही होता ऐसे असमर्थ पुरुष को अनभिज्ञ कहते हैं।

सवैया—

अकुलाये बनै न बिलोकत हूँ कत लोक की लीकन डाँकती हो।
अनजान बनी सी कहा जल पै नख ते अखरान को आँकती हो।
'हरिऔध' अबूझ अजौं है कहा बिन बूझे झरोखन झाँकती हो।
तरुनी तुम कौन को आन-भरी तिरछी अँखियान ते ताकती हो ॥ १ ॥

## २—उपपति

परदारानुरागी पुरुष को उपपति कहते हैं। इसके दो भेद है—वचन-चतुर और क्रियाचतुर।

सवैया—

मैन जगावती हैं तन मैं अपने बस मैं मनहूँ करि राखैं।
बोले बिना हूँ भुरावति सी बतियानहूँ भाव-भरी बहु भाखैं।
नेसुक सैनन ही 'हरिऔध' की पूरी करैं कितनी अभिलाखैं।
ढारहिं धार सुधा की हिये बहु - प्यार - भरी परतीन की आँखैं ॥ १ ॥

बरवा—

चोरति करि चतुरैया चित को चैन।
ताकति तरुन तिरियवा तिरछे नैन ॥ २ ॥

## वचन-चतुर

वचन चातुरी द्वारा पर-स्त्री-संबंधी प्रीति-कार्य्य-साधन-तत्पर पुरुष को वचन-चतुर कहते हैं।

कवित्त—

मोती - माल गंग - तीर - बासी मन मेरो
कुच संभु को उपासी तापै रोस धारियत है।
तानि तानि बाँकी दोऊ भौहन - कमानन
बिखीले नैन - बानन सों बेधि डारियत है।

'हरिऔध' राखै नाँहिं नेक ध्यान धर्म हूँ को
बेद औ पुरान हूँ की लीक टारियत है।
एरी नैन-तीर-वारी कहा तीर-बासिन को
तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है॥ ३॥

चंचलता चौगुनी ठनैगी चद-मुख चाहि
चाव भरे चटुल-चकोरन चारी मै।
भीरु-भूरि ह्वैहै भट्ट भभरि सुगंध-अंध
ठौर ठौर भौरवारी - भौर-भीर - भारी मै।
'हरिऔध' मोर मंजु-बेनी हूँ बिथोरि दैहै
वृंदाबन - छोर की बिलास-वारी-बारी मैं।
सारी जरतारी पैन्हि भूलि जनि जा री उतै
आ री प्रान प्यारी तू हमारी फुलवारी मैं॥ ४॥

## क्रियाचतुर

क्रियाचातुरी से परस्त्री-सबंधी प्रीति-काय-साधन-तत्पर पुरुष को क्रियाचतुर कहते हैं।

सवैया—

क्यारिन कूल कछारन मै कल-कुंजन-पुजन गाजन लागी।
बिम्व-बिमोहक वारी-कला बगरी चहूँ ओर बिराजन लागी।
ए 'हरिऔध' बिहाइ कै लाज हूँ लाजवतीनको भाजन लागी।
बावरी कै ब्रज की बनितान को बाँसुरिया बन बाजन लागी॥ १॥

## ३—वैसिक

वेश्यानुरक्त पुरुष को वैसिक कहते हैं।

सवया—

क्यों हूँ न याम जनात है जात रिझावत ऐसी रहै रतिआन मैं।
देखत ही मन टूटि परै कछु राखहिं ऐसी छटा छतिआन मैं।

ए 'हरिऔध' करो कितनो हूँ बिलंब पै होत नहीं पतिआन मै।
बीस-गुनी मिसिरी ते मिठास है बार-बिलासिनी की बतिआन मै ॥ १ ॥

## १—मानी

प्रिया से रुष्ट होकर मान करनेवाला पुरुष मानी कहलाता है।

कवित्त—

झरसति पूखन प्रकोप की प्रखरता ते
रूखे-रुख तीखन-मरीचिन पे कुम्हिलात।
कुबचन-प्रबल पवन की झकोर लागे
प्रति-पल वाको वा मृदुल-तन थहरात।
'हरिऔध' बिरह-दवारि की दपट लागे
महमही - मंजुल - प्रमोद - वारी मुरझात।
तेरे प्रेम-बारि ही ते एरे बारि-धर स्याम
बाल अलबेली नेह - बेली ज्यो लहलहात ॥ १ ॥

## २—प्रोषितपति

विदेश में प्रिया-विरह से विकल और सतप्त पुरुष प्रोषितपति कहलाता है।

सवैया—

घोर मचाइ कै सोर घरी घरी घेरि करै घन हूँ बिपरीतै।
दौरि दिसान महा-भयदाइनि-दामिनि हूँ करै दीह-अनीतै।
कैसी करै 'हरिऔध' कहो कै कछू है बिदेस की ऐसियै रीतै।
प्यारी बिना बहु-भारी भई यह कारी-डरारी-निसा नहिँ बीतै ॥ १ ॥

कैसहूँ मोहि न भूलत है सो पयान-समै को बिसूरिबो भारी।
होत है दाह घनी उर मै तुमरी गति याद परै जब प्यारी।
बावरो सो 'हरिऔध' भयो वह क्यो बिसरै नटि जान अगारी।
सालती हैं अजहूँ उर मै अँसुवान भरी अँखियान तिहारी ॥ २ ॥

# उद्दीपन-विभाव

# उद्दीपन-विभाव

जो रस को उद्दीप्ति करते है उन्हें उद्दीपन-विभाव कहते है। सखा, सखी, दूती, ऋतु, पवन, धन, उपवन, चद्र, चाँदनी, पुष्प और परागादि उनके अतर्गत हैं।

## उदाहरण

कवित्त—

कुंज - पुंज मैं है मंजु गुंजत मिलिंद-बृंद
छबि - पुंजता है कंज - पुंज मै कलोलती।
भारवती सौरभ के भार ते बिपुल बनि
बैहर - बसत की है मद मद डोलती।
'हरिऔध' लालिमा अनार कचनारन की
ललकि ललकि है लुनाई - मुख खोलती।
मानव - अबौरो - मन बार बार बौरो करि
बौरी-कोकिला है बौरे-आमन पै बोलती॥ १॥

कौमुदी कुमोदिनी की परम - प्रमोदिनी है
कमनीय - मेदिनी है कुमुद - निकर ते।
राजित रजत - दुति ते है तरु - राजि - दल
रुचिर बनी है बेलि रुचि - रुचिकर ते।
'हरिऔध' राका-रजनी है लोक-रंजिनी है
बहु - अनुरंजिता है कांति - कांतकर ते।
सुधा-धाम बार बार करि बसुधा-तल को
सुधा - बिंदु चुवत सुधाकर के कर ते॥ २॥

दोऊ है जलधि - जात सरसात सीकरन
दोऊ हैं बसीकरन - पथ अनुसरते।
दोऊ हैं सुखद ताप - कदन मदन - धाम
सीतलता - सहन सरस - रसधर ते।
'हरिऔध' दोऊ है सजीबन स-जीवन के
आजीवन जीवन को मोद हैं बितरते।
सुधा - धार स्रवत धरा पर सुधाधर ते
सुधा - बिंदु चुवत सुधाकर के कर ते॥ ३॥

पुलकित - कोमल - कलित - किसलै समान
सु - ललित - पानि औ मृदुल-पग दरसात।
विकसित - सरस - प्रसून लौं प्रमोद - वारे
प्यारे प्यारे अधर सुगंधन-सने लखात।
'हरिऔध' जाकी हरियाली लाली जोबन की
लगे - नेह - बायु मंद मंद मंजु लहरात।
लपटी नव - तनु - तमाल अलबेले - लाल
बाल-अलबेली नेह-बेली ज्यों लहलहात॥ ४॥

कत जो न आयो कत आयो तो बसंत-पापी
पावक लगावति पलासन की पाँति है।
कल - कंठ - कूक बहु - बिकल बनावति है
बौरे-बौरे आमन बिलोकि बिलखाति है।
'हरिऔध' बैहर ते बिहरि करेजो जात
अवलोकि कुसुम - अवलि अकुलाति है।
पीर-पीरे-पातन ते पीरी परी जाति बाल
सीरे उपचारन ते सीरी परी जाति है॥ ५॥

दोहा—

अमल-धवल-नभ-तल भयो नवल - प्रभा को पाय।
खिले-कमल जल मै लसत पल पल नव-छबि छाय ॥६॥

निकरत नभ मैं निरखियत रस-मय-किरिन पसारि।
रतनाकर - अकम - रतन नव - रतनन - छबि धारि ॥७॥

मधुर - तान गूँजत गगन तजत तेज गुन भान।
रस - मय करत बसुंधरा समय - सुरन को गान ॥८॥

निर्मल - नीले - नभ दिपत नव - दुतिवंत कलिंद।
फूले - फूले - कमल पै झूले फिरत मिलिंद ॥९॥

हरे लेत काको न मन खिले फल ए लाल।
हरी हरी ए पत्तियाँ हरी भरी ए डाल ॥१०॥

बरवा—

बन बागन मैं मोरवा करत पुकार।
इत उत होत झिंगुरवा घन - झनकार ॥११॥

## सखा

समान-शील-व्यसन, सुख दुःखादि मे नायक का सच्चा सहायक पुरुष सखा कहलाता है।

## उदाहरण

दोहा—

सुख मै सुखित सदा रहत दुख मैं दुखित दिखात।
सहज - सखा सब दिवस रस बरसत सरसत जात ॥१॥

## सखा के भेद

सखा चार प्रकार के होते हैं -- १—पीठमर्द, २—विट, ३—चेट और ४-विदूषक।

## १—पीठमर्द

मानवती नायिकाओं के प्रसन्न करने में समर्थ सखा पीठमर्द कहलाता है।

### उदाहरण

दोहा—

घूमि घूमि घिरि घिरि लगे नभ मै घन घहरान।
मान छोरि दै मानिनी कही हमारी मान ॥१॥
सरस-देह पादप भये नेह-पाठ करु कठ।
कोकिल-कंठी मान तजु कूकि उठे कल-कठ ॥२॥

## २—विट

जो सखा सब प्रकार की कलाओं मे कुशल होवे उसको विट कहते है।

### उदाहरण

दोहा—

मोहत ललना-लाल-उर बिलसि लालसा माँहिं।
सकल-कला-कोबिद सकत कौन कला करि नाँहिं ॥१॥
बिबिध-भाव प्रगटत रहत सरस एक ते एक।
तिय-पिय-सुख-तन-छाँह बनि छोरत नाँहिं छनेक ॥२॥

## ३—चेट

नायक-नायिका को यथावसर चातुरी से मिला देने में निपुण सखा चेट कहलाता है।

### उदाहरण

दोहा—

कबौं मिलावत कुंज मैं कबौ कालिंदी-कूल।
चेट करत चेटक रहत काल मिले अनुकूल ॥१॥

मुक्तामय कत करत नहिं सींचि बारिधर - गात।
लखे मालती - कुंज मैं कनक - बेलि लहरात ॥ २ ॥
क्यो न मयूरी करति है सफल नयन - जलजात।
कालिंदी के कूल पै बिलसत बारिद - गात ॥ ३ ॥

## ४—विदूषक

विविध कौतुक, स्वाँग और हास-विलास द्वारा जो नायक और नायिका को आनंदित करता रहता है उसे विदूषक कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

हसत हँसावत ही रहत रिझवत सहित विवेक।
सौतुक ललना लाल के कौतुक करत कितेक ॥ १ ॥
करत रसिकता ही रहत बसि रसिकन मन माँहिं।
हरि बनि राधा को छलत बनि राधा हरि काँहिं ॥ २ ॥

## सखी

जिस सहचरी से नायक-नायिका कोई भेद नहीं छिपाते तथा जो सुख-दुःख में सच्ची हितकारिणी और सहायिका होती है उसे सखी कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

चित - कलिका हित जो बनति प्रातकाल की पौन।
सखी सरिस सुखदाइनी सरसमना है कौन ॥ १ ॥

## सखी के भेद

हित-दृष्टि से सखी चार प्रकार की होती है—१—हितकारिणी, २—व्यंग्य-विदग्धा, ३—अंतरंगिणी और ४—बहिरंगिणी। कर्म उसके चार होते हैं—१—मंडन, २—शिक्षा, ३—उपालंभ और ४—परिहास।

## १—हितकारिणी

जो नायिका का कार्य शुद्ध हृदय और निष्कपट भाव से करती है वह सखी हितकारिणी कहाती है।

दोहा—

हित ही मै रत रहति है हितू - सखी दिन - राति।
सुखित सुख बिलोके बनति दुख मै दुखित दिखाति ॥ १ ॥
तन मन वारत ही रहति धरति न धन को ध्यान।
सखी निबाहति नेह है हित पै ह्वै बलिदान ॥ २ ॥

## २—व्यंग्यविदग्धा

उचित अवसर पर जो व्यग्य-वचन द्वारा अपना कार्य साधन करती अथवा निज अभिप्राय प्रकट करती है, उसे व्यग्य वदग्धा सखी कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

कत अँगिराति जम्हाति बहु भयो कौन सो तंत।
कत धरकत उर अधर कत अरी भयो छतवंत ॥ १ ॥
बाल कहा तेरे भये लोचन इतने लाल।
वामैं बिलसत लाल हैं परिगो किधौं गुलाल ॥ २ ॥

## ३—अंतरंगिणी

सर्वभेदज्ञ और प्रत्येक रहस्य की बात जाननेवाली सखी अतरंगिणी कहाती है। यह सखी जो काय जिसके निमित्त करती है उसका ज्ञाता उसको छोड़ अन्य नहीं हो सकता।

### उदाहरण

दोहा—

सब मम मन ही की करनि मान - भरी रहि मौन।
अंतरंगनी के बिना अंतर जानति कौन ॥ १ ॥

जासु बचाये पति रही क्यों न ताहि पतियाहिँ।
तासों अंतर कौन जो अंतर राखत नाँहिँ ॥ २ ॥

## ४—बहिरंगिणी

बाहर की जो अनेक बातों से अभिज्ञ होती है और अपना कार्य स्पष्ट बातें कहकर करती है उसको बहिरंगिणी सखी कहते है।

### उदाहरण

दोहा—

रीझि रिझावति ही रहति मंद-मंद मुसुकाति।
बतिया कहि कहि रस-भरी रस बरसत ही जाति ॥ १ ॥
साध पुजावति सुख लहति विलसति भरे-उमंग।
गरब गहेली ह्वै सधति सधी सहेली संग ॥ २ ॥

## मंडन

नायिका को वसन आभूषणों से सजाना, उसके बालों को गूँथ देना इत्यादि मंडन कहलाता है।

दोहा—

सोहत तव गर मैं रहै मो मन बनै निहाल।
मोहन को मोहत रहै मंजु महमही माल ॥ १ ॥
पहिराई चुनि चूनरी सजे सुहावन-साज।
अंजन-रंजित दृग किये पिय-मन-रंजन काज ॥ २ ॥

## शिक्षा

सखी शिक्षा सबंधिनी जो बात कहती है उसे शिक्षा कहते हैं।

कवित्त—

दीपक-सिखा-सी-दुति-खासी देह की दिखाय
सौतिन को दुसह-दवा सी दहिबो करो।
भाव-भरी इन आँखियान सों चितै कै
मनमोहन-चितै को चोरि लीबो चहिबो करो।

पाइ परजंक पै पियारे 'हरिऔध' कोंहिं
अंक भरि भावती मयंक गहिबो करो।
दाख लौं रसीले रस-बरसीले-बैन बोलि
निज-अभिलाख लाख-लाख कहिबो करो ॥ १ ॥

## उपालंभ

नायक एव नायिका को उलाहना देना उपालंभ कहलाता है।

दोहा—

जा रस ते सरसत रहत मनसिज-मंजुल-बान।
तरुनी तू तानति कहा तापै भौंह-कमान ॥ १ ॥
जाते असरसता लहति परम-सरस-दृग-कोर।
भली भामिनी होति नहिं ऐसी भौंह-मरोर ॥ २ ॥
बाके छत ते अछत-उर छरछरात दिनरात।
क्यो तेरे तिरछे-नयन बरछी हैं बनि जात ॥ ३ ॥

## परिहास

नायिका को हँसाने, छेड़ने अथवा आनंदित करने के लिये सखी जो बात करती है उसे परिहास कहते हैं।

दोहा—

चख ते चिनगारी कढ़ी चितवन पिय की ओर।
तजि चिनगी चुगिहै कहा आनन-चंद-चकोर ॥ १ ॥
उचित मिलन ही मिलन है भलो न अनमिल-संग।
गोरो-तन कारो बनत परसे कारो-रंग ॥ २ ॥
है सुंदर भोरी-हँसी गोरी-गोरी-देह।
नेह निबाहत कौन है करि नेहिन सों नेह ॥ ३ ॥

## दूती

संदेश ले जानेवाली, नायक-नायिका में संयोग करानेवाली और समयोपयोगी वचन-रचना में निपुण स्त्री को दूती कहते हैं। वह तीन प्रकार की होती है—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। उसके कर्म छः हैं, १—विनय, २—स्तुति, ३—निंदा, ४—प्रबोध, ५—संघट्टन, ६—विरहनिवेदन। कभी नायिका स्वयं भी दूतत्व करती है उसे स्वयंदूती कहते हैं।

### उदाहरण

कवित्त—

छबि अवलोके मैलो लगत छपाकर है
लोल - लोल-लोचन बिलोके ललचाति है।
मधुमयी मंजु - मुसुकान चित चोरति है
मोहनी पै मोहि मोहि मोहित दिखाति है।
'हरिऔध' कमनीय - काम सम तन हेरि
कामिनी की सारी-मान-कामना हेराति है।
रिस - भरी रस - भरे सैनन ते सरसाति
सीरे-सीरे-बैनन ते सीरी परि जाति है॥१॥

सवैया—

आनन-चंद की जो है चकोरिका चित्त ते ताहि उतारत लाजैं।
चातकी जो घन से तन की अहै तापै न गाज गिराइ कै गाजैं।
जो 'हरिऔध' सुधा न पिआवत तो बसुधा मैं बसेहुँ न भाजैं।
जो सुख-साजन ते न सजावत साजन तो दुख-साज न साजैं॥२॥

### दूती-प्रकार

मधुर और प्रिय वचनों द्वारा अपना कार्य साधन करनेवाली को उत्तमा, कुछ मधुर कुछ तीखी बातों से काम लेनेवाली को मध्यमा और उग्रस्वभाव तथा मधुर-कटुवादिनी को अधमा दूती कहते है।

## विनय

स्त्री अथवा पुरुष से विनय करके जब दूती कार्य साधन करती है तब उसे विनय कहते हैं।

### उदाहरण

### उत्तमा दूती

दोहा—

सुधि लीजै मो बिनय सुनि गहत पिपासित पाय।
सुधा-पियासे को सकति तू ही सुधा पिआय ॥१॥

### मध्यमा

दोहा—

मोहहु मोहित रसिक पै रस बरसहु दै मान।
नयनन तजहु नीरज-नयनि करहु बिनय मम कान ॥१॥

### अधमा

दोहा—

कर जोरे हूँ नहिं तजति बरजोरी की बान।
गिनती के हैं सुख-दिवस करु बिनती को ध्यान ॥१॥
काँटे लौं कसकत रहत अस कत बोलत बैन।
अकरुन किये कहा फिरति करु सकरुन ए नैन ॥२॥

## स्तुति

जब दूती स्तुति अथवा प्रशंसा द्वारा अपना कार्य साधन करती है तब उसे स्तुति कहते है।

## उदाहरण

### उत्तमा

दोहा—

तेरे जैसे नहि सुने मधुर - रस - भरे बैन।
ऐसे काके कमल से बड़े बड़े है नैन ॥ १ ॥

कवित्त—

बिबस बनाइ बारनादिक बिहंग हूँ को
बनचर बानरादि हूँ को बहरावै है।
बिटप औ बल्ली हूँ बिमोहि बिलमावै बारि
बहत बयार हूँ की गति बिरुझावै है।
'हरिऔध' बूझि देखै बैगुन बिलोकै कहा
बावरी जो ब्रज बनितान को बनावै है।
बिबुध बरूथ बिबुधेस बिधि हूँ को बेधि
बीर बनमाली बन बाँसुरी बजावै है ॥ २ ॥

### मध्यमा

दोहा—

कामै ऐसी सरसता कामै ऐसो भाव।
कहूँ मिल्यो नहिं भावती तो सम मृदुल-स्वभाव ॥ १ ॥

### अधमा

दोहा—

अपनावत ही रहत है मोहि लेत है मोल।
मेरे लोयन मै बसे तेरे लोयन लोल ॥ १ ॥

## निंदा

नायक अथवा नायिका की निंदा करके दूती का कार्य साधन करना निंदा कहलाता है।

### उदाहरण

#### उत्तमा

दोहा—

सुरसरि - धारा मैं परति बैतरनी को बारि।
कबहूँ निंदित जो बनति परम अनिंदित नारि॥ १॥

#### मध्यमा

कवित्त—

कहा कलपाये ऐसी कलप - लता सी हूँ को
जीवन -स्वरूप जाके जग मैं जिये के हो।
भलो कौन भाखिहै रखे ते भेद तासों तुम
एक फल जाके नाना - साधन किये के हो।
'हरिऔध' कहत बनै ना पै कहेई बने
खीन लखि ताको जाके जनम लिये के हो।
कूटि कूटि कपट तिहारे पोर पोर भरी
निपट कठोर तुम साँवरे हिये के हो॥ १॥

दोहा—

हौ निंदत भूले नहीं है निंदित तव चाल।
क्यो एनी - नैनी कहे परति तनेनी बाल॥ २॥

## अधमा

दोहा—

भाल-अंक को कहि बुरो भौंह करति कत बंक।
तू है नाँहिँ कलंकिनी तो कत लग्यो कलंक॥ १॥

## प्रबोध

स्त्री अथवा पुरुष का प्रबोध करके अर्थात् उन्हे समझा बुझाकर जब दूती अपना कार्य साधन करती है तब वह प्रबोध कहलाता है।

## उदाहरण

## उत्तमा

दोहा—

सुख - रजनी ऐहै बहुरि नसि जैहैं सब संक।
विकसित ह्वैहै उर - कुमुद लखि पिय-बदन-मयंक॥ १॥

## मध्यमा

दोहा—

परी जाति कत दूबरी कत तव तन पियरात।
धीर धरे ही भावती दुख के दिवस सिरात॥ १॥

## अधमा

दोहा—

वे सोअत सुख-नींद हैं तू रोअति दिन - राति।
वे उत आकुल है न तो तू इत कत अकुलाति॥ १॥

## संघट्टन

नायक और नायिका के परस्पर सम्मिलन का साधन दूती की जिस क्रिया द्वारा होता है उसे संघट्टन कहते हैं।

## उदाहरण

### उत्तमा

कवित्त —

गति-मति मान-अपमान की कथान भूलि
तेरे गुन-गान ही की बिरद लियो है री।
दिन - रैन तेरे नैन - बैन ही की बातै कहै
तेरी तीखी - सैनन पै मन हूॅ दियो है री।
रटनि लगी है आठो जाम तेरे नाम ही की
तेरो ही भयो सो 'हरिऔध' को हियो है री।
आली तूने लोनो लानो सोना सो सरीर लहि
सहज-सलोनो हूॅ पै टोनो सो कियो है री ॥ १ ॥

कलित - कपोलन पै अलकै लुरी है मंजु
सुललित - आभा लसी अधर - तमोर की।
हियरो हरनवारे हिय पै फबे है हार
अंगन-प्रभा है आछे - भूखन-अथोर की।
'हरिऔध' बेस - बसनादिक बखाने बनै
आने बनै उर मै निकाई नैन - कोर की।
एरी बीर काकी मति बावरी बनी है नाॅहिं
सु - छबि बिलोकि बाॅकी नवल-किसोर की ॥ २ ॥

### मध्यमा

सवैया—

जीवन है सिगरे जग को लखि जीवन तेरे ही आनन-ओर है।
प्रान है कामिनि को 'हरिऔध' पै हेर्‌यो करै तव-ऑखिन-कोर है।
भाग है ऐसो तिहारो भटू इतनी कत कीजत मान - मरोर है।
"है घन-स्याम पै तेरो पपीहरा है व्रज-चद पै तेरो चकोर है" ॥१॥

## अधमा

सवैया—

मैनमयी लखि मूरति स्याम की बीर न कैसहूँ धीर धरैगी।
नैन परी जो कहूँ मुसुकान तो फेर न ऐसो गुमान करैगी॥
साँची कहौं हरिऔध' मिले सबही अठिलानि की बानि टरैगी।
का न करैगी अरी तू अबै यह बाँसुरी-तान जो कान परैगी॥ १॥

## विरह-निवेदन

नायक-नायिका दोनों का विरह दूती एक दूसरे पर जिस कार्य द्वारा प्रकट करती है उसे विरह-निवेदन कहते हैं।

## उदाहरण

## उत्तमा

कवित्त—

छिन छिन छीजत है परम छबीलो अंग
बिपुल - बिलासवती हिम सी बिलाति है।
रस - हीन सहज - सरलता सरसि होति
सूखति सनेहमयी - सरिता लखाति है।
'हरिऔध' आये तो तुरंत अवलोको चलि
बिधुरा बियोग - बारिनिधि मैं समाति है।
सुधि आये सिहरि सिहरि बहु सिसकति
गात सियराये बाल सीरी परी जाति है॥ १॥

दोहा—

नेह - स्वातिजल - दान कै सरसहु घन - अभिराम।
पी पी कहि प्यारी रटति पपिहा लौं तव नाम॥ २॥

चलहु बहु सरस बनि रहहु पिय असरस - दुख-पुंज।
कंज - नयनि तो बिन भई अललित ललित - निकुंज ॥ ३ ॥

## मध्यमा

दोहा—

सरसिज है सोई सरस जो सब दिन सरसात।
सूखे - मुँह ते कत कहति तू सखि सूखी - बात ॥ १ ॥
बिकसित ह्वै ह्वै करति है भँवर कोँहिं रस - लीन।
कबौं कमलिनी ना बनति कोमलता ते हीन ॥ २ ॥

## अधमा

दोहा—

कहिहै बतिया बहँकि तो कछू न रहिहै हाथ।
कितनी रहति कुरंगिनी एक कुरंगम साथ ॥ १ ॥
देखी कितनी सुंदरी सुने बहु मधुर - बैन।
तेरे ही कामिनि नही अहै कमल से नैन ॥ २ ॥

## स्वयंदूती

जो नायिका दूती का कार्य्य स्वयं करती है उसे स्वयं—दूती कहते हैं।

## उदाहरण

सवैया—

कौन सो सोग भये जलजात लौं कोमल आनन है कुम्हलायो।
कौन सी पीर भई उर मैं अहै आँखिन जाते अजौं जल छायो।
साँची कहो 'हरिऔध' कहा भयो जो इतनो मन है मुरझायो।
काके बियोग बिभूति मले तन गोरो गुलाब सों क्यों पियरायो ॥१॥

कवित्त—

दूनी आब-ताब है गुलाब गुलदाउदी मैं
आभा उपजाति सी लखाति है निवारी मैं।
चंपा चारु-चाँदनी पै चौगुनी चढ़ी है बिभा
सौगुनी-प्रभा है सेत-सेवती रँकारी मैं।
'हरिऔध' जैयै कत कलित-कुसुम काज
कूल कालिंदी की वा अलीनवारी-बारी मैं।
न्यारी-न्यारी छबि के सुगंध-वारे प्यारे-फूल
क्यारी-क्यारी फूले हैं हमारी फुलवारी मैं ॥२॥

## अन्य उद्दीपन-विभाव

### पवन

दोहा—

परसि परसि काको नहीं पुलकित करत सरीर।
सहज-सुबासन ते सनो सीतल-मंद-मंद-समीर ॥१॥

### वन

दोहा—

अलका को मोहत रहति वाकी ललित-निकुंज।
नंदन-अभिनंदन अहै छिति-तल-बन छबि-पुंज ॥१॥
पादप-पुंज-प्रधान-थल खग-मृग-निकर-निवास।
बहु-बिलसति बन भूमि है बनि मधु-मंजु-मवास ॥२॥

### उपवन

दोहा—

कलित-पादपावलि-लसित ललित-लतान-निकेत।
मंजुल-कुसुमावलि-बलित उपवन है छबि देत ॥१॥

## पुष्प

दोहा—

ललकित-लोयन मै बिलसि बनि छिति-छबि-अनुकूल।
फूले है क्यारीन मै रंग रंग के फूल ॥१॥

## पराग

दोहा—

क्यारिन मै महमह महँकि लहि अलिगन - अनुराग।
बन - बागन बिहरत रहत सरस - प्रसून पराग ॥१॥

## चंद्र

दोहा—

स्याम स्याम-छबि अंक से अंकित करि निज-अंक।
मोहि मोहि काको नहीं मोहित करत मयंक ॥१॥

नभ मै कम तारे नहीं काम - रूप अ - कलंक।
बरसत बसुधा मैं सुधा सुधा - निवास - मयंक ॥२॥

कैसे छिटकति चाँदनी करि छबिमय छिति अंक।
क्यों होती रंजित रजनि होतो जो न मयंक ॥३॥

चोर - चैन - हर चारुता - चोर रुचिर - रुचि - रंक।
है चकोर - चित चोर जग - लोचन - चोर - मयंक ॥४॥

केहि आनंदित नहि करत हँसि हँसि बनि सुख - अंक।
प्रकृति - भाल - चंदन - तिलक गगन प्रसून मयंक ॥५॥

## चाँदनी

दोहा—

काहू की कीरति - बिमल फैली है मन मोहि।
कै चमकत है चँदनी चारु धरा पै सोहि ॥१॥

चारु - चंद की चाँदनी बिलसी भू - तल माँहिं।
सुधा - धार धावति अहै कैधो बसुधा काहिं ॥ २ ॥

काको है सुख होत नहिं काहि न होत हुलास।
लखे चाँदनी - अंक मैं गुल - चाँदनी - बिलास ॥ ३ ॥

कै छिटकी है चाँदनी लहे समय अनुकूल।
राका - रजनी को अहै कैधो कांत - दुकूल ॥ ४ ॥

किधौ बिछी है चाँदनी किधौ प्रकृति को हास।
किधौं खिली है चाँदनी कैधो चंद - बिकास ॥ ५ ॥

## षट् ऋतु

### वसंत

कवित्त—

पादप को पुंज पूरि गयो पीरे - पातन ते
पाटल - प्रसून हूँ परागन पगंत है।
कुहू कुहू क्वैलिया कदंबन पै कूकै लगी
कुंज कुंज काम की कला हूँ प्रगटंत है।
एहो 'हरिऔध' कुंद कंज कचनारन मैं
बगर बजारन बिनोद बगरंत है।
ठौर ठौर झौरन लग्यो है भौर - झौर - वारो
बागन मैं बौर - वारो बगर्यो बसंत है ॥ १ ॥

नये - नये - कोपल मै मंजरी लसी है मंजु
न्यारी ही भई है छटा दिपत - दिगंत की।
चहूँ ओर चंचरीक - पटली करति गान
आभा भई गगन अनोखे निसिकंत की।
'हरिऔध' छिति पर छाई है छगूनी छटा
चारों ओर सुछबि बनी है छबिवंत की।

पौन के लगे ते कैसो डोलत है तरु-बृंद
कैसी आज फूली फुलवारी है बसंत की ॥ २ ॥

कम कमनीय हैं न जग - अनुरंजिनी है
बिलसति कोंपले बिटप - अंक जेती है
फूले फूले फूलन पै गुंजत मधुप - पुञ्ज
चिरिया हूँ चहकि चहकि चित चेती हैं।
'हरिऔध' लतिकाएँ बिपुल ललित बनि
ललकित लोचन मैं लोच भरि देती है।
करि अठखेलियाँ ललामता की लाली रखि
लाल लाल बेलियाँ निहाल करि लेती है ॥ ३ ॥

मधु - मोह बनि है मधुप मैं बिराजमान
काकली ह्वै कोकिल - कलाप मैं बसत है।
चौगुनी - चमक बनि राजत मयंक मैं है
चारु - चाँदनी मैं चारुता मिस हँसत है।
'हरिऔध' हरे - हरे तरु मैं हरीतिमा है
छबि - ब्याज बारिज - बरूथ मैं बसत है।
सरस - सुमन पै बरसि रस सरसत
बेलिन - बिलास मै बसत बिलसत है ॥ ४ ॥

फूले हैं पलास कैधौं दहकि दवारि लागी
कूकैं पिक कैधौं कठ बधिक - प्रवीन को।
उलही धरा पै लसी लतिका - ललित कैधौं
जोहि जोहि जालन सों जकर्यो जमीन को।
'हरिऔध' बाहत बिखीलें - बाँके बानन को
कैधौं बिकस्यो है जूह कुसुम - कलीन को।

एरी बन बागन मै बगरयो बसंत कैधों
पंचबान खेलत सिकार बिरहीन को ॥ ५ ॥

काढ़ि लैहै क्वैलिया करेजो कूकि कुजन मे
बावरी बनैहै मौरि आम - अमराई मै ।
गूँजि गूँजि भौरन की भीर हू अधीर कैहै
पीर हूँ उठैगी पीरे - पात की पराई मै ।
एहो 'हरिऔध' मेरे हिय ना हुलास रैहै
बारिज - बिकास हेरे पास की तराई मैं ।
अंतक लौ अंत ए करैगे काम - तंत - वारे
कत जो न आयो या बसंत की अवाई मै ॥ ६ ॥

मोरि मान सकल गुमान अभिमान हूँ को
मरदि गयो है मेरे मन हूँ मलीन को ।
चूर चूर करिकै चपल - चित चैन हूँ को
चोरि लै गयो है चाव कुसुम-कलीन का ।
प्रीतम हमारे 'हरिऔध' प्रान - प्यारे बिना
करिकै उजार मंजु केलि की थलीन को ।
पारिकै अनंत - सोक - सागर मै अंत आली
मारिकै चल्यो है री बसंत बिरहीन को ॥ ७ ॥

सवैया—

कै कुसुमावलि है बिकसी अथबा कुसुमाकरता उमही है ।
पा मलयानित - मोहकता मलयाचल सी बनी मंजु मही है ।
नंदन के बन सी कमनीयता पादप - पुंज मै पूरि रही है ।
चैत - सुधाकर के कर सो कढ़ि चारु - सुधा बसुधा पै बही है ॥ ८ ॥

फूलि कै फूलन मै तन को तरु - किंसुक को तनिकौ लरजै ना।
आम हूँ बौरि कै बाग मैं बूझत बौरी बनावन मै हरजै ना।
गूँजिबो त्यागि कै भृंग न ताइबे की 'हरिऔध' रखै गरजै ना।
कूकि कै काढ़त प्रान क्यों कोऊ कसाइनी क्वैलिया को बरजै ना॥९॥

दोहा—

कुसुमित करि उपवन बिपिन बनि बनि बहु छबिवंत।
बरबस लोयन मै बसत बिलसत - सरस - बसंत॥१०॥

बसि बसि जन - लोयनन मैं ललकित-चित हरि लेति।
सेमल - सुमन - ललामता लालायित करि देति॥११॥

काको मन मोहत नहीं कासो लहत न प्यार।
चैत - सित - सिता मै बिलसि सेत - सुमन - कचनार॥१२॥

को नहिं ललकत बहु - लसित हेरि पलासन - पाँति।
कौन लालसा कुसुम - कुल - लाली लखि न ललाति॥१३॥

आकर होतो कुसुम को जो कुसुमाकर नाँहि।
कैसे सुंदर - कुसुम - सर मिलत कुसुम - सर काँहिं॥१४॥

कैसे बनि बिकसित - बिपुल बिकसत सुमन - अनंत।
कैसे रस - बरसत रहत सरसत जो न बसंत॥१५॥

## ग्रीष्म

कवित्त—

सूख्यो कंठ ताल साथ रसना दहन लागी
पूखन बिखै मैं ओठ अजहूँ न डोले है।
बानी जू सिधानीं त्रास मानि बहु ताप केरो
आतप - प्रताप के न बैन जऊ बोले हैं।
'हरिऔध' बापुरो कहै कछु कैसे कहै
तन ते बिचार के किये ही कढ़े सोले हैं।

द्रावा किये उर मैं निदाघ - दाघ ऑकन कौ
अनुमान - पग हूँ मै परत फफोले है ॥ १ ॥

नजिकै तमाल तिल - तेल तहखानन कौ
तरुनी - तियान ते बिदूरता गहत है।
बरफ बनाई वारुनी ते ह्वै विरत बीर
व्यजन - बयार ते बिनोद न लहत है।
'हरिऔध' सीरे - सीरे व्यंजन बिहाय सारे।
वसन - विभूखनादि हूँ को ना चहत है।
ज़ोर भये जगत मैं जरत - जलाकन के
जीवन को जीवन मैं जीवन रहत है॥ २॥

लपट औ बिदहत लूकन को कावा होत
वायु दहि दावा होत दिनकर - चंड ते।
'हरिऔध' अगनित - आयत अलावा होत
रज - कन लावा होत तपन - अखंड ते।
दिसि दिसि दगधित - धूरन को धावा होत
ग्रीखम - छालावा होत दीधित - उदंड ते।
जगत पजावा होत तीन - लोक आवा होत
भूमि तपि तावा होत आतप - प्रचड ते॥ ३॥

कहा इत ठाढ़ी करै लखै कि न कैसो दव
देहिन दिसान को दहत दरसत है।
तरुन के पातन कौ तन तचि कारो भयो
तोय तपि ताप सो तपन परसत है।
'हरिऔध' गिरिन को गात गरमानो घनो
जरि जरि रज को समूह झरसत है।

भागि चलु एरी भौन मॉहिं भोर ही ते आज
आतप - अगार ते अँगार बरसत है ॥ ४ ॥

अमित - उमग सो बिहडित ह्वै बार बार
ठडता अठडता भई है खड खड की।
अड बड बॉकी बरिवडता हूँ होन लागी
बीर ! घनसार - खड हूॅ से बरिवंड की।
ग्रीखम - प्रचड की प्रचंडता मै 'हरिऔध'
खडित उदंडता भई है ब्रह्मंड की।
दडहिं उदड ह्वै अखड - महि - मंडल को
दावा - दड - मडित - मरीचै मारतंड की ॥ ५ ॥

आतप मै पूखन की प्रखर मरीचिन ते
थर थर रूखन की पॉति हूॅ कॅपति है।
जीवन की भाखै कौन जीवन बिना हू जरि
रज की जमाति नाम - जीवन जपति है।
'हरिऔध' भभरि भभूकन औ लूकन ते
छायावान - कुंजन मैं छाया हूॅ छपति है।
जोम ते जलाकन के जगत पजावा भयो
भौन भये आवा भूमि तावा सी तपति है ॥ ६ ॥

सूखे जात तपरितु - त्रास ते सरित सर
कूपन मै आप दुरि ताप ते बचत है।
पानिप - बिहीनता बिलोकि बारि-वारन की
बारिधि के पेट मॉहि पानी ना पचत है।
'हरिऔध' भीखनता हेरिकै भभूकन की
भूरि - भय - अभिभूत भूतल जॅचत है।

पल पल बहु - हिम - जल ते सिंचत तऊ
तवा लौं मन - अचल हिमाचल तपत है ॥७॥

बार बार बरि बरि उठहिं विपुल - बन
पावक मैं पादपता पादप की पगी है।
तपरितु - ताप ते तवा सम तपति महि
बारि हूँ की सीतलता आतप ते भगी है।
'हरिऔध' भरे से अगार हैं अँगारन सों
आग सी बगर औ बजारन मैं लगी है।
ज्वाल उगिलत ज्वालामुखी के समान रवि
ज्वालमाला सारे जगती - तल मैं जगी है ॥८॥

प्रतपित तपरितु - ताप ते बसुधरा है
प्रलय - प्रकोप ते तिहूँ पुर किधौं तये।
पावक - दुरंत ते दिगत है दहत किधौं
दावा - मय सेस के सहस - फन ह्वै गये।
'हरिऔध' कोऊ दव - गिरी है बमत दव
नरक - अँगार कैधौं छिति - तल पै छये।
खुलिगो तिलोचन को तीसरो बिलोचन कै
दिव माँहिं द्वादसो दिवाकर उदै भये ॥९॥

दावामय बने सीरे सीरे सारे - उपचार
सेस - फल साँस भई सरस - समीरता।
पावक ते पूरि गये सरित सरोवरादि
नभ छाई धूरि बनि धरती - अधीरता।
'हरिऔध' तपरितु - तीखन - तपन तपे
तात भो तुहिन लोप भई नीर - नीरता।

चंदनता चूर चूर भई चारु - चंदन की
दूर भई सिगरी उसीर की उसीरता ॥१०॥

सवैया—

लेप उसीर को है सरसावत भावत चंदन-चूर बगारो।
सेद-सनो-तन है सुख पावत सीरे-समीर को पाइ सहारो॥
ही अनुरागत है अवलोकत सीतल-बारि है लागत प्यारो।
तावन-वारो उपावन हूँ किये आयो निदाघ सतावन-वारो॥११॥

भीखन भोर ही ते बनि पूखन है जन के तन को बहु तावत।
आग लगाइ अगारन माँहि अँगार धरातल पै बगरावत॥
का 'हरिऔध' करै कित जाय अहै तप-ताप अपार तपावत।
ना तहखानन मैं कल आवति ना खसखानन मैं सुख पावत॥१२॥

दोहा—

निज-जननी को देखि दुख उठति ताप लहि भूरि।
धधकत दव लखि धरनि मैं गवि दिसि धावति धूरि॥१३॥

दहन बने रवि-करन के 'दाह' न सकत निवारि।
कैसे हूँ उबरत नहीं जो न बरत जन बारि॥१४॥

काहि बहु तपावत नहीं तपरितु - आतप - ताप।
तपन आपहूँ करन ते पिअत सरित सर आप॥१५॥

का अचरज जो बहु जगी जग-जीवन की प्यास।
बन को नाम जपति अहै जरि जरि बन की घास॥१६॥

## पावस

कवित्त—

प्यारे - प्यारे तन कारे-घन घूमन चहूँवा लगे
तन मन बापुरे बिदेसिन के लरजे।

उलही ललित लतिका हूँ लहरान लागी।
सलिल-सने से भये सूखे रहे थर जे।
'हरिऔध' घूँघरित धुरवा दिसान कीने
फोरैं काम केकी ए न मानै बीर बरजे।
पीरद बियोगिनी के धीरद सँयोगिनी के
नीरद के गगन नगारे आनि गरजे॥ १॥

कुंजन में बार बार कूकत कलापी-कुल
पपिहा पुकार बार बार प्रीति परखत।
घूमि घूमि घेरि बार बार घन घहरत
हिलि हिलि तरु बार बार चित करखत।
'हरिऔध' बार बार झिल्ली-झनकार होति
तिय-हिय लागि बार बार पिय हरखत।
बीजुरी बिकासित करद ब्योम बार बार
बारिधर बार बार बारि-धारा बरखत॥ २॥

बनी ठनी बिबिध-बिलासवती-बाल होय
बास बँगलान होय बसन बसा रहै।
बार बार बीजुरी को बिपुल-बिकास होय
बरखत बारि होय बारिद घिरा रहै॥
'हरिऔध' बीना बेनु बजत स-मोद होय
बाँदी होय बेना होय ऋतु बिभा रहै।
बीरा होय बीरी होय बारुनी बयार होय
बारी बैस होय तबै बरखा-बहार है॥ ३॥

कारी कारी घटा नभ घूमि घहरान लागी
बावरी हमारी तऊ बतिया बनी कहाँ।

'हरिऔध' प्यारी छबि छाई अवनी-तल पै
पावै मोद सीतल ह्वै तबौ मेरो ही कहाँ।
लाग करि आई बाग बिरह दबाइबे कौ
एरी पै अभाग-वारी पावै सुवरी कहाँ।
जो लौया हमारो जो हरा न नैकौ होन पायो
पातकी - पपीहरा पुकार्‌यो तौलौ पी कहाँ ॥ ४ ॥

भूखन बिना ही भूरि भूखित भई सी लसै
भावुकता दीखै भामिनी के भाव भोरे मै।
चचल-चितौन चित माँहिं चुभि चुभि जाति
चारुताई - चौगुनी लखाति चारु-डोरे मैं॥
पन्नगी सी पेग पारि पारि कै पलटि जात
लपकि लपटि जात 'हरिऔध'-कोरे मै।
ऊँची-ऊँची - तानन ते कानन सुधा बगारि
गोरे - गोरे - आनन की झूलति हिंडोरे मैं ॥ ५ ॥

सवैया—

या कजरारी घटान-छटान को बैठी अटान बिलोकत जाति है।
मोद मयूरिन को लखि कै मन ही मन मोद-भरी मुसकाति है॥
प्रात परी सी घरी ही घरी 'हरिऔध' के अंक परी अलसाति है।
बाल विलासवतीन को बोर बिलासमयी बरसात की राति है ॥६॥

चहुँ-कोद पयोद बिलोकन मै निज मोद-भरो मन दीबो करो।
करि कौतुक हूँ कल-कुंजन मैं हियरा हमरो हरि लीबो करो।
'हरिऔध' मयूरिन सों मिलिकै नव-प्रेम-सुधा नित पीबो करो।
चोरवा चित को हित कीनो भटू मोरवा सोरवा अब कीबो करो ॥७॥

दोहा—

वीर धीर कैसे धरहुँ रहत न चित मै चेत।
परम अधीर-पपीहरा पी पी कहि जिय लेत॥ ८॥

अरुन पीत सित कत करत स्याम सलोनो अग।
कत बादर बद बनत हैं बदलि बदलि कै रग॥ ९॥

मो मन ही मानत नहीं कहा करैगो मैन।
बादर के बरसे कहा जब जल बरसत नैन॥ १०॥

कवित्त—

## शरद्

मंद-मंद-हसन गगन बिच चंद लाग्यो
करतूति दामिनी भई है कला-नट सी।
निरमल-जल-वारे सरन खिले है कज
जिन-पै लगि है भौर भौरन की ठट सी।
'हरिऔध' चहूँ ओर सरद बिकास पायो
पावस-प्रतापी की गई है आयु घट सी।
चटकीली चाँदनी ते रंजित भई है भूमि
कढ़ति दिसान सो सुगंध की लपट सी॥ १॥

बिना कीच कैसी स्वच्छ राजति बसुंधरा है
कैसी मंजु-नीलिमा आकास मै बसति है।
गंध लै समीर हूँ बहत मंद मंद कैसो
कैसी यह बिमल-दिसा हूँ बिहँसति है।
'हरिऔध' दीसत हैं सर मैं सरोज कैसे
धीर बहि कैसी सरिता हूँ सरसति है।
सोहत है सीतल मयंक कैसो नभ माँहि
कैसी अवनी-तल पै चाँदनी लसति है॥ २॥

नीर-वारे कारे कारे घन की निकाई नसी
नीलिमा अनंत - नभ - मंडल की नीको है।
केका - रव केकिन - कदंब ते अनाकुल ह्वै
बहु सोभा हस - अवली ते अवनी की है।
'हरिऔध' घोर अंधकार हूँ न दीखै कहूँ
आभा चहूँ ओर चद - वारी रजनी की है।
चपलाई चपला की अब ना लखाई परै
छिति पर छाई चारुताई चाँदनी की है ॥ ३ ॥

बिकसित - बारिज - बरूथ मै बढ़ी है बिभा
छबि अधिकाई भूरि - भृंग - लपटान की।
घेरि घेरि घूमत दिखात है न कारे - घन
घरी घरी होति नाँहि घहर घटान की।
'हरिऔध' अनुपम - सरद - अवाई देखि
आभा भई औरै आज आँगन अटान की।
छन छन चाँदनी ते बनति छबीली छिति
छूटे चंद - मंडल ते छहर छटान की ॥ ४ ॥

बिमल - बिकास ते गगन बिकसित भयो
परम - प्रकास - पुज पसर्‍यो धरा पै है।
दीपति-दुगूनी सो दिखाति है दिसा हूँ दिव्य
राजत रजत द्रुम - दलन - प्रभा पै है।
'हरिऔध' बिपुल-बिकासिनी-बिभा की बात
पूनो की बिभावरी की भाखी जात कापै है।
छीर-धार जैसी चारु - चाँदनी चहूँघा लसै
स्रवत सुधा सो आज चंद बसुधा पै है ॥ ५ ॥

छीरनिधि कैधो आज छहरत भूतल पै
छायानाथ कैधों छपानाथ मिस ऊगा है।
सुभ्रता सतोगुन की राजत दिगंत मै कै
समवेत - सेतता तिलोक की अजूबा है।
'हरिऔध सरद मै कैधौ सुर - मंडल ने
रजत - मयी कै मजु - मेदिनी को पूजा है।
कोऊ नट-कीली जोति कैधौ अटकीली भई
चटकीली - चॉदनी कै बगरी चहूघा है ॥ ६ ॥

कैधो महा तीव्र - तेज-वारो बड़ो-तारो कोऊ
तजिकै अनंत या धरा की ओर छूट्यो है।
कैधो ओप - बारे असुरारि को अपार जूह
मोद मानि स्रृग पै हिमाचल के जूट्यो है।
'हरिऔध' कैधो चारु-सरद-सिता है लसी
कैधो भूपै हीरा की कनीन कोऊ कूट्यो है।
छीरनिधि कैधों आज फूट्यो है बसुधरा पै
छिति पै छपाकर कै नभ छोरि टूट्यो है ॥ ७ ॥

अंतक लौ दिव मै दिपत निसिकंत
कै प्रकास प्रलै - काल के दुरंत-दिनपत को।
महा - ताप - वारो चलै मारुत चहूँवा किधौ
स्वास बिख - वारो है फनीस फुकरत को।
'हरिऔध' किधौ तीव्र - तारक - पतन होत
पावक बमत कै त्रिसूल पसुपत को।
पसरी कराल - काल - सरद - जुन्हैया किधौ
ज्वालमाल आवत है जारत जगत को ॥ ८ ॥

हित तू हमारो नाथ कीनो ना हिमत मॉहिं
कैसहूँ सिसिर मैं न मानस सम्हार्‍यो तू।
आवन को तंत तेरो भयो या बसंत मॉहिं
मेरो जिय ग्रीखम - जालकन मे जार्‍यो तू।
'हरिऔध' का भो जो न पावस-प्रताप मॉहि
मेरे तन - तापन को तामस निवार्‍यो तू।
जरद भई हूँ मारी करद करेजे काम
कैसा मेरो दरद सरद से बिसार्‍यो तू॥ ६॥

सवैया—

मूरतिमान कै मोद लसै कै बिनोद - भरो रजनी - मुख राजै।
भाग-भरी जग की जननी के सु-भाल को कै यह भूखन भ्राजै।
कै 'हरिऔध' सतोगुन की यह सीतलता भरी सूरति छाजै।
पारद-पुज कै रूप धरे फबै कै नभ सारद - चद बिराजै॥१०॥

नव-नीलिमा या नभ की हमरो यह भाव-भरो मन बेधत है।
बहि बासमयी यह सीरी - बयार बिनोदन हूँ को बगेदत है।
'हरिऔध' बिना सब सारद - सुदर-साज करेजो कुरेदत है।
छुटै छोभ हूँ ना रतिया को छनौ छतियाको छपाकर छेदत है॥११॥

दोहा—

सारद - ससि मोहत गगन बरसत सुरस - अथोर।
दूनी भू - आभा भई छई छटा चहुँ ओर॥१२॥
औरै आभा नभ बसी बिभा लसी ससि मॉहिं।
बसुधा भयी सुधामयी तारे तरनि लखाहिँ॥१३॥

## हेमन्त

कवित्त—

तीखी-जोति जाल हूँ मै जरत - मसाल हूँ मैं
जगी ज्वालमाल हूँ मैं लपट्यो लसंत है।

कूलन कछार हूँ मै सरित सेवार हूँ मै
बन मै बयार हूँ मै बहु बिहरंत है।
'हरिऔध' व्योम हूँ मै तारन के तोम हूँ मै
सूरज मै सोम हूँ मै दरश्यो सतंत है।
हंसन-अहार हूँ मै हिम के पहार हूँ मै
हीरा हीर-हार हूँ मै राजत हेमंत है ॥१॥

पोर पोर आँगुरी की बारि ते गरन लागी
सीकर मलीन या दिगतन करै लगो।
कोमल मरीचै ह्वै गई है मारतंड हूँ की
आतप मैं प्रानिन को प्रेम हूँ अरै लगो।
'हरिऔध' भू पर लखात है हेमंत छायो
दिन दिन बासर को गात हूँ गरै लगो।
या तन को सीरी-पौन परसे कसाला होत
पादप के पातन पै पाला हूँ परै लगो ॥२॥

बदन दुराये ही हरत रैन मै मयंक
त्रासै ते समीर बीर सरद भयो सो है।
भू तजि लखात नभ-जात बारि सीकर ह्वै
गात सेत गगन गिरीन ह्वै गयो सो है॥
'हरिऔध' महा उतपात ते हेमंत ही के
धूसरित बरन दिगंतन लयो सो है।
दबक्यो दिवाकर दिखात अति भीत ही ते
सीत ही ते संकुचित बासर भयो सो है ॥३॥

सिसकत रहत तमीपति रजनि माँहिं
तमरिपु हूँ को होत कढ़त कसाला है।

सी सी करि घरी घरी घूमत चहूँघा रहै
सीरी-पौन हूँ को गरमी को परयो लाला है।
'हरिऔध' आकुल ह्वै अरो खरो रूख हूँ है
ठरो सीत-भरो वाको ठौर हूँ को ठाला है।
बूझि परै बाला हिम-गाला सी दुसाला माँहि
पाये सीतकाल ज्वालमाला भई पाला है ॥४॥

दीखै सीकरन माँहिं सपरि गयो सो ससी
दिवानाथ लंका ओर आकुल अरे अहै।
सीरी साँस भरत अधीर ह्वै समीरन हूँ
सरित सरोवर हूँ हिम मै गरे अहैं।
'हरिऔध' पावक हूँ पाहन मैं पैठ्यो जात
दलन दुराये गात पादप खरे अहै।
पाला नाँहि परयो सीत प्रबल प्रमाद ही ते
प्रान बिन तारे आइ पातन परे अहै ॥५॥

सीतल हिमाचल-दरी सी सब साला लगै
संगिनी प्रतीति होति सुधा सीरे-पंक की।
माला लगै मोती की हिमोपल-जमाति जैसी
कामिनी जनाति है बिभूति हिम-अंक की।
'हरिऔध' हेरत हिमंत करतूति ऐसी
तुहिन-सनी सी है सुपेती परजक की।
पाला लगै पावक दुसाला लगै कंज-पात
रवि की मरीचि लागैं किरनैं मयंक की ॥६॥

माला को कसाला ताहि कंपित न करि पैहै
जाके कंठ माँहि मृग नाभि मजु-माला है।

बहि बहि सीतल - समीर क्यो सतैहै ताहि
सकल - बिभूतिमयी जाकी सुख - साला है ।
'हरिऔध' ताको हिम-पात को कहा है त्रास
जाके पास परम - मधुर - मधु - प्याला है ।
जगी ज्वाल-माला हैं बसन तूल-वाला अहै
बाला है दुसाला है हेमंत को मसाला है ॥ ७ ॥

धाई चली आवति है कैधों ध्रुव-धाम ही ते
कैधो गिरी भू पै चद-मंडल के फोरे ते ।
कैधो याहि काढ़्यो कोऊ उदक-सरीर गारि
कैधों बनी सीतलता जग की निचोरे ते ।
'हरिऔध' कहै ऐसी दुसह - हिमंत - बात
कैधो भई सीरी बार बार हिम बोरे ते ।
कैधो चली चदन परसि मलयाचल को
कैधो कढ़ि आवति हिमाचल के कोरे ते ॥ ८ ॥

बात ना चलैये नाथ सिसिर बितावन की
सुरति बसंत मै बिसारिकै न फूल तू ।
गरब न कीजै भूलि ग्रीखम गॅवावन को
पावस न आवन उमंग मै न झूलै तू ।
'हरिऔध' कैसो तेरो कठिन करेजो है जो
सरद समैया हूँ मैं रह्यो प्रतिकूलै तू ।
कीने केते ततन के प्रानन को अंत ह्वैहै
कही मानि कंत या हेमंत को न भूलै तू ॥ ९ ॥

सवैया—

फाग रचै पिय सो सिसिरै पति साथ बसंत मै बागन होवै ।
ग्रीखम मै तहखाने बसै घन की छबि पावस मैं सॅग जोवै ।

भाग-भरी 'हरिऔध' तिया सुख सो अपनो सब साज सँजोवै।
साथ लखै सरदै नभ चंद हेमंत मै कंत-गरे लगि सोवै ॥१०॥

कैधो प्रभाकर-आतप मै अरे कै मद-प्यालन को अपनाये।
कैधो धरे पट-तूल-भरे किधौ साल-दुसालन सों लपटाये।
सीत हेमंत को कैधो टरै 'हरिऔध' अधूम-अगार तपाये।
कै कमनीय उरोजन-वारी सरोज-मुखीन को अंक लगाये ॥११॥

दोहा—

जीव जंतु की बात का तृन-तरु होत सभीत।
पाला को लहि बिपुल-बल पाला-मारत सीत ॥१२॥

भूमि कुहासामय भई सीत न समझत पीर।
दुरि दिन बितवत दिवसपति सर सर चलत समीर ॥१३॥

तृन-तरु-बन जीवन-बदन भाफ-पुंज है भूरि।
किधौ कुहासा है परत पसरत पुहुमी पूरि ॥१४॥

## शिशिर

कवित्त—

घटी-जाति-राति हूँ मै दिन अधिकात हूँ मै
पियरात पात हूँ मै प्रगट जनावै है।
तीखे होत घाम हूँ मै केते धूम धाम हूँ मै
ललना ललाम हूँ मै रमत लखावै है।
'हरिऔध' तान हूँ मै रंग-वारे-गान हूँ मै
आन-वारी बान हूँ मै मधुर दिखावै है।
चोप चाव चैन हूँ मै मंद-मद बैन हूँ मै
मुद-ऐन-ऐन हूँ मै सिसिर सुहावै है ॥ १ ॥

तोख तन पावै तूल - भरे कपरे के धरे
अजहूँ मलीनता दिगंत की गई नहीं।
प्यारे लगै भौन भारी - भारी परदान - वारे
भीखनता अजौ भानु - कर ने लई नहीं।
'हरिऔध' चहूँ ओर सिसिर छयो तो कहा
आप हूँ मै सीतलता - सहज भई नहीं।
मंजुल - निकाई चारु चंद मैं समाई नाँहिं
चारुता - अनूठी चाँदनी मै चितई नहीं ॥ ॥ २ ॥

साथ प्राननाथ के सिसिर मै समोद - बाल
सरित सरोवरादि माँहिं अवगाहै ना।
बार बार धूप ही मैं बैठे छवि - वारी जाय
सीत-छोभ माँहि छकी चाहै छनौ छाँहे ना।
'हरिऔध' सी सी करै सीतल - समीर लगे
सीतलता वाकी अजौ सुमुखी सराहै ना।
चाँदनी मै कढ़े नेकौ चित मैं उमाहै नाँहिं
चंद-मुखी चाव करि चंद हूँ को चाहै ना ॥ ३ ॥

तपि कै तमारि निज तीखन - मरीचिन ते
नेकौ सीत प्रवल - प्रमादन को तोरै ना।
पावक को दहत - अँगारो पट तूल - डारो
पूरो पूरो हिम को महत - मान मोरै ना।
'हरिऔध' सिसिर समैया हूँ मैं सीरी-पौन
गौन करि भौनन मै देत दुख थोरै ना।
औरन की कहा पाई जरदी पतौअन हूँ
सर्दी मरदी कै तऊ बेदरदी छोरै ना ॥ ४ ॥

सवैया—

भावत ना सरपेच असुंदर कान के कुंडल को कहती है।
बाजू धरै भुज मै न भटू कर सो कल-कंकन ना गहती है।
माह मै ए 'हरिऔध' मनोहर - हार हूँ ना उर पै बहती है।
कठ-सिरी मन मै न टिकै कटि-किंकिनी ते नटि कै रहती है॥ ५॥

तीसी लसी बहु-खेतन मै अपनी कुसुमावलि सों छबि छावत।
पात चने के हरे हरे कोमल काकी नहीं अँखिया बेलमावत।
ए 'हरिऔध' प्रसून केराव के लै चित काहि नहीं ललचावत।
मानस काको नहीं सरसे सरसों के सुहावने फूल लुभावत॥ ६॥

मंजुल - बायु लगे बल खाइ बिलोचन माँहिं समाय रही है।
ओस की बूँदन सो सरसाय सहेलिन माँहिं सोहाय रही है।
ए 'हरिऔध' किती तितिलीन को प्यार से पास बुलाय रही हैं।
पीरे - प्रसूनन सो बिलसी उलही रहरैं लहराय रही हैं॥ ७॥

दोहा—

सिता नहीं प्यारी लगति ससि हूँ करत स-भीत।
निसि सियराये ही बढ़ति सिसिर समय को सीत॥ ८॥

उर मै हिम-सर सो लगत सिहरत सकल - सरीर।
सी सी कहि सिसकत न को परसत सिसिर-समीर॥ ९॥

परि साँसत मै सीत की हरति रहति है ऊब।
हरे हरे निज - दलन मिस हरे हरे कहि दूब॥ १०॥

लोक सीत - साँसत सहत दुरि दिन बितवत घाम।
सिसिर माँहिं कुहरा परे मचत महा कुहराम॥ ११॥

ओस - सीकरन माँहिं दुरि सीत सहति भरि ऊब।
हरे हरे कोमल - दलन - बलित दूबरी - दूब॥ १२॥

# शिशिर-अंतर्गत होरी

कवित्त—

द्वारन को दर को दरीचिन को देहरी को
दिसन को देहिन को रंजित कीनो है।
नगर को बीथिन को बाटन बजारन को
बिटप को बेलिन को कीनो रँग भीनो है।
'हरिऔध' अबिर उड़ाइ कै अवासन को
औरै ओप अवनि को आँगन को दीनो है।
नूपुर को नासिका को नथ को नवेलिन को
बाल अलबेलिन को लाल करि लीनो है॥ १ ॥

नवल पै तारन पै तंत्रिन तमूरन पै
तान-वारे तन पै प्रवाल तरसत है।
कानन पै कुजन पै कंज पै कुमोदिनी पै
क्यारिन पै कूल पै ललाई दरसत है।
'हरिऔध' आनन पै अंगन अवनि हूँ पै
ऐन पै अटा पै अरुनाई अरसत है।
गोधन पै गिरि पै गवैयन पै गोपन पै
गोपिन के गोल पै गुलाल बरसत है॥ २ ॥

ऐसो बाढ़्यो फाग को प्रपंच व्रज-बीथिन मैं
बीज लालिमा को मानों लोकन मैं ब्वै गयो।
लाल भयो गगन अवनि सब लाल भई
दिसन ललाई छाई रवि-तेज ख्वै गयो।
'हरिऔध' लाल लाल हेरि गिरि तरु तोम
नर पसु पंखी मीन बिधि-ज्ञान ग्वै गयो।
लाग्यो जौ लौ झाँकन झरोखे सो उझकि
तौ लौ राता मुख बापुरे-बिधाता हूँ को ह्वै गयो॥ ३ ॥

बोलि बोलि बैस - वारी ब्रज की बधूटिन को
लूट सी करी है वा अबीर-वारे-थाल की।
मारि पिचकारी ताकि कलित - कपोलन पै
लाल लाल मंडली बनाई ग्वाल-बाल की।
'हरिऔध' चकित बनति बहु चौकत सी
चोरत सी चाल काहू मंजुल - मराल की।
गोरे - गोरे-गाल-वारी ए री वह गोरी-बाल
लाल पै चली है मूठ भरि कै गुलाल की ॥ ४॥

गरबीले - ग्वारन की गारी हूँ न कान कीनी
तनक न मानी आन तीखी-तान-तारी की।
रंग की उमंग की अनंग - भरे बैनन की
सुरति न कीनी साँवरे की गति न्यारी की।
'हरिऔध' ध्यान मैं न आनी धोखे हूँ धमार
धूम हूँ धमार - वारे धीर - धुरधारी की।
मीड़ित - गुलाल - मंजु - वदन - रसाल मोरि
बिहँसि बचाई बाल चोट पिचकारी की ॥ ५।

गावत है गारी भरो गीतन असंक ह्वै कै
बोलन कबीर मैं निसंक अति दरसाय।
लाल कीनो बीथिन बजारन गुलाल फेंकि
अबिर उड़ाइ लीनी अरुन दिसा बनाय।
'हरिऔध' ऐसो अपमान कैसे सह्यो परै
ललिते कहा तू इतो रही आज अरगाय।
गहि कै गरब वाको होरी को निवारै क्यों न
ऊधम मचावै कौन ए री बरसाने आय ॥ ६

डारि दीनो रंग तो उमंग कत ऊनो भयो
बिगर्‌यो कहा जो मुख माँहि मली रोरी है।
कुंकुम चलाये कौन हानि भई अगन को
मारि पिचुकारी कौन करी बरजोरी है।
'हरिऔध' तेरो होत कहा अपकार है
जो बार बार ग्वालन की बजति थपोरी है।
रूसन को रार को न रोस को कछू है काम
एरी बृखभानु की किसोरी आज होरी है ॥७॥

ठानत हो सदा हठ आपनी ही बातन को
ताके रोकिबे को कहाँ काको को सहेजिहै।
होइ जैहे कछू बिपरीति तो बतावो लाल
बरसाने कौन सो सँदेसो कोऊ भेजिहै।
'हरिऔध' अबिर गुलाल लौं बनी है बात
बूझि देखो कहँ लौं करेजो परतेजिहै।
पुष्प-रस-कनिका लगे ते जाको पीर होति
ताको अंग कैसे रंग-धावन अँगेजिहै ॥८॥

कत पिचकारी कर माँहिं लीने आवत है
ब्रज मैं जनात तू तो निपट हठीलो है।
नेक मेरी बातन को भूलि ना करत कान
होरी के गुमान मैं गजब गरबीलो है।
'हरिऔध' कहा लाभ अनरस कीने होत
सुबस बसे हूँ ब्रज कैसो तू लजीलो है।
ए हो लाल वा पै रंग छोरिबो छजत नाँहिं
गात-रंग ही सो वाको बसन रँगीलो है ॥९॥

बीर बरसानो छोरि गोकुल गई ही आज
जान्यो ना गोपाल ऐसो ऊधम मचायहै।
सारी बोरि दीनी सारो गात करि लीनो लाल
जैसो छल कीनों ताहि कैसे बतरायहै।
'हरिऔध' अब तो न आपने रहे हैं नैन
करिकै उपाय कौन इनैं समझायहै।
अंग लाग्यो रंग तो सलिल सो छुड़ाय लैहै
नेह संग लाग्यो तासों कैसे छूटि पायहै ॥१०॥

छोरो रंग चाव सो हमारे इन अगन पै
कबहूँ कछू ना लाल भूलि हम कहिहै।
बोरि दीजै सिगरी हमारी सारी केसर मैं
मन मैं बिनोद मानि मौन साधि रहिहैं।
'हरिऔध' अँखियाँ छकी है रावरी छबि मैं
इनपै दया ना कीने क्यो हूँ ना निबहिहै।
परिबो पलक को तो कैसहूँ सहत प्यारे
परिबो गुलाल को गोपाल कैसे सहिहै ॥११॥

सवैया—

चेटक सी करि चोरि गई चित चाव-भरी चलि चंचल-चाल सो।
मोहि गई मनमोहन को वा अबीर-भरी मनि-मोतिन-माल सो।
ए 'हरिऔध' चलाई पिचूकन बेधि गई जुग-नैन बिसाल सो।
लाल-गुलाब लपेटि गई वह गोरटी हाल ही लाल के गाल सो ॥१२॥

ताकि कै मारत हो पिचकारी तऊ मन मैं तनकौ नहिं खीजत।
रंग मैं सारी भिगोय दई हम ताको उराहनो हूँ नहिं दीजत ॥
पै इतनी बिनती 'हरिऔध' मया करि क्यों हमरी न सुनीजत।
साँवरे-रंग-रँगी अँखियान को प्यारे गुलाल ते लाल क्यों कीजत ॥१३॥

# अनुभाव

जिन क्रियाओं से रसास्वाद का अनुभव होता है उनको अनुभाव कहते हैं। यह चार प्रकार का होता है—१–सात्त्विक, २–कायिक, ३–मानसिक और ४–आहार्य।

## १—सात्त्विक

शरीर के स्वाभाविक अंग-विकार को सात्त्विक भाव कहते हैं। इनके आठ भेद निम्न लिखित हैं—

१–स्तंभ, २–स्वेद, ३–रोमांच, ४-स्वर-भंग, ५–कंप, ६–वैवर्ण्य, ७–अश्रु और ८–प्रलय। किसी किसी ने जृंभा को भी सात्त्विक भाव माना है, ऐसी दशा मे उसके नव भेद होंगे।

### स्तंभ

कारणविशेष से समस्त अंगो की गति अथवा क्रिया का अवरोध हो जाना स्तंभ कहलाता है।

### उदाहरण

दोहा—

लाल लखे ललना छकी भो चित बिपुल अचैन।
बोले बोलत नहिं बनत खोले खुलत न नैन॥ १॥
पारे पलक परत नहीं लोयन भये अडोल।
लोल-लोयनो करति है काहें नाँहिं कलोल॥ २॥

### स्वेद

केलि, भय, परिश्रम आदि के कारण रोम-कूप से निकले जल-बिंदु को स्वेद कहते हैं।

## उदाहरण

सवैया—

ऊँची अटा पै अकेली हुती अलबेली खरी करि रूप-उँजारो।
एड़िन छ्वै छहरात हुतो 'हरिऔध' छुट्यो कच घूंघुर-वारो।
औचक आइ दोऊ अँखियाँ इतनेहिं मै मूँदि लियो पिय-प्यारो।
भेद-भरो मन ऊबि छरो गयो सेद मै डूबि गयो तन सारो॥१॥

## रोमांच

किसी कारण रोम का खड़ा हो जाना रोमाच कहलाता है।

## उदाहरण

सवैया—

बूझि भली-बिध कीजै कछू अलि काज उतावली के नहिं नीके।
चौगुनी-चंचल होति चले 'हरिऔध' कथानक केलि-थली के।
धीर धरे हूँ बनैगी न बीर जो कामिनी क्यो हूँ परी कर पी के।
नेक ही नैन लरे सिगरे-तन-रोम खरे ह्वै गये रमनी के॥१॥

## कंप

शीत, कोप और भय आदि से अकस्मात् अग अग के कॉप उठने को कप कहते है।

## उदाहरण

सवैया—

संग सहेलिन को गयो छूटि कै बानर पीछूँ पर्‍यो बन केरो।
तोको अचानक आइ कपूत कोऊ कै कलेस दियो बहुतेरो।
कै यह पूस को सीरो-समीर सताइ गयो 'हरिऔध' घनेरो।
कौन सी बात भई बतराय दै जो इतनो तन कॉपत तेरो॥१॥

दोहा—

कहा भयो कत बावरी तेरो मुख पियरात ।
कत पीपर के पात लौं थर थर कॉपत गात ॥ २ ॥

## स्वर-भंग

स्वाभाविक ध्वनि में विकार होने को स्वर-भंग कहते है ।

## उदाहरण

सवैया—

घिरे नभ मै घन घूमत हे 'हरिऔध' हुती सब ओर बहार ।
बिचार कियो अस चाव-भरो चित गाइये मंजुल - राग-मलार ।
इतै अलबेली अलाप कियो उतै आइ गये ब्रजराज - कुमार ।
भयो सुर - भंग निहारत ही उतर्यो मनो बाजत बीन को तार ॥१॥

## वैवर्ण्य

शरीर की काति मे अतर पड़ने को वैवर्ण्य कहते हैं ।

## उदाहरण

सवैया—

अबै आई बिनोद - भरी मुसकात भयो यह बीच ही कैसो दई ।
'हरिऔध' सो धाइकै कोऊ कहो इतनो यह जात है काहें तई ।
नित ही बन - कुंजन आवती है बजी बॉसुरिया हूॅ न आज नई ।
अरी कौन-सी पीर भई पल मै मो परोसिनी जो परि पीरी गई ॥१॥

## अश्रु

कारणविशेष से नेत्रों से जल-पात होने का नाम अश्रु है ।

## उदाहरण

सवैया—

आई अपार - बिनोद भरी बनिता ढिग साँवरे-सील-निधान के।
आदर-मान ही मै 'हरिऔध' कढ़े मुख बैन बिदेस पयान के।
ऊबि कै ऊँची उसास लई सुख भूल गये सिगरे सनमान के।
मोती समान कपोलन ह्वै अँखियान ते बूँद गिरे अँसुआन के ॥१॥

दोहा—

तुमरे बिछुरे प्रानपति रहे न अपने नैन।
बारि बिमोचत रैन - दिन पावत पलौ न चैन।
अरी बीर बरजत कहा रुदन करन दै मोहिं।
सजल - नयन - बल ही सकल - हिय - दुख हरुए होहिं ॥ ३ ॥

## प्रलय

किसी वस्तु मे तल्लीन होकर देह-दशा की विस्मृति को प्रलय कहते हैं।

## उदाहरण

दोहा—

ललकति राधा नाम लै पुलकति पकरि अलीन।
ललना लालन ह्वै गई ह्वै लालन मै लीन ॥ १ ॥

## जृंभा

भय, मोह और आलस्य के कारण क्षण-क्षण मुँह खोलकर जमुहाई लेने को जृंभा कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

जुरे नयन पिय-नयन ते नयन फेरि फिरि जाति ।
सजल-भाव ते भूरि भरि जलज-मुखी जमुहाति ।। १ ।।

## २—कायिक

आँख, भौंह, हाथ आदि शरीर के अंगो द्वारा जो चेष्टाएँ अथवा क्रियाएँ की जाती हैं उनको कायिक कहते हैं।

### उदाहरण

सवैया—

अति प्यार-पगी बतिया हूँ सुने पिय-प्यारे प्रतीति को छोरै लगी ।
अनुराग-रँगे अभिलाखन मैं अभिमान के आखर जोरै लगी ।
'हरिऔध' के सीस महावर-रेख निहारत ही मुख मोरै लगी ।
तिरछी अँखियान ते ताकि तिया अनखान-भरी तृण तोरै लगी ।।२।

## ३—मानसिक

मन संबंधी आमोद-प्रमोद का नाम मानसिक अनुभाव है।

### उदाहरण

कवित्त—

गिरि-सानु पै है चारु चाँदनी लसति कैसी
पसरी प्रभा है कैसी पादप-निकर मे ।

झरना झरत नीर-कन है पियत कैसे
ओप है अपार कैसो पाहन-पसर मै।
'हरिऔध' कैसी खिली कलित-कुमोदिनी है
सुभ्रता बसी है कैसी सीपन-सगर मै।
कैसो बारि हलत समीर मंद-मंद लागे
कैसो झलमलत मयंक मानसर मैं ॥ १ ॥

रंग - भरे कलित - कमोरे रग बरसत
चारुता निचोरे लेति रोरी मंजु-भाल की।
मानस मै मोद-सुधा-सरिता हिलोरे लेति
प्रीति-गाँठ जोरे लेति जोति-मनि-माल की।
'हरिऔध' छोरि पिचकारी चित छोरे लेति
बोरे लेति रस मै लचकि लंक बाल की।
लालन के लोने-लोने-लोयन को चोरे लेति
गिरि गोरे - गालन पै गरद गुलाल की ॥ २ ॥

दोहा—

बिलसत है सरसिज-युगल मनरंजन - ससि-गोद।
मोद-निकेतन बदन लखि काहि न होत बिनोद ॥ ३ ॥

## ४—आहार्य

वेश धारण को आहार्य अनुभाव कहते हैं।

दोहा—

पहिरि सु-कुंडल कल - मुकुट पीत-बसन बन-माल।
कर मै मुरली लै बनी मुरली - धर ब्रज - बाल ॥ १ ॥

## सात्त्विक अलंकार

नायिकाओं के अट्ठाईस सात्त्विक अलंकार माने गये हैं। उनमे से तीन अगज, सात अयत्नज और अट्ठारह स्वभावसिद्ध हैं।

अगज—१–भाव, २–हाव और ३–हेला।

अयत्नज—१–शोभा, २–काति, ३–दीप्ति, ४–माधुर्य, ५–प्रगल्भता, ६–औदार्य और ७–धैर्य।

स्वभावसिद्ध—१–लीला, २–विलास, ३–विच्छित्ति, ४–बिब्बोक, ५–किलकिंचित, ६–विभ्रम, ७–ललित, ८–मोट्टायित, ९–बिहृत, १०–कुट्टमित, ११–मौग्ध्य. १२–विक्षेप, १३–कुतूहल, १४–हसित, १५–चकित, १६–केलि, १७-मद और १८–तपन।

## विशेष

प्रायः भाषा-ग्रथो में दश 'हाव' माने गये है, और ये, वे ही हैं जो स्वभावसिद्ध अलकारो की गणना मे १ से १० सख्या तक लिखित है। कोई कोई इन में 'हेला' को मिलाकर 'हाव' की सख्या ग्यारह और कोई 'बोधक' को मिलाकर बारह बतलाते हैं। समस्त 'हाव' अनुभाव के अतर्गत हैं, उनका स्वतत्र स्थान नहीं है।

सयोग-समय में नायिकाओ में जो स्वाभाविक चेष्टाएँ अथवा भौंह नेत्रादि के विलक्षण व्यापार मनोविकारो के आधार से होते हैं वे वही 'हाव' कहलाते है। ये प्राय. मनोभावो के अल्पविकास के सूचक मात्र होते हैं।

## अंगज सात्त्विक अलंकार

### १—भाव

निर्विकार चित्त में उद्‌बुद्धमात्र काम-विकार को भाव कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

वहै पवन सौरभ वहै वहै आम को बौर।
वहै कामिनी हूँ अहै भयो आज मन और ॥१॥

है कालिंदी - तट वहै वहै कदंब रसाल।
आज कहा तोको भयो इत आवत ही बाल ॥२॥

वहै कोकिला - रव अहै वहै भृंग - गुंजार।
आज बनी क्यों बावरी निरखि बसंत-बहार ॥३॥

वहै मलय की मंजुता खग - कुल वहै कलोल।
भयो जात कत लाड़िली तव चित इतनो लोल ॥४॥

## २—हाव

संयोग-समय मे स्त्रियो के स्वाभाविक भ्रू-भंग-विलासादि को हाव कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

सरसावति काको नहीं रस - निचुरत मुसुकान।
तिरछी - चितवन कहति है तिय - चित की बतियान ॥१॥

रस राखन मैं नहिं रखति नेक कसर दृग - कोर।
पिय - मन की कहि जाति है तिय की भौंह-मरोर ॥२॥

## ३—हेला

संयोग-समय में विविध-विलास-भावों के प्रकटित होने का नाम हेला है।

### उदाहरण

दोहा—

गुलचा दै तिरछे चितै दृग नचाइ मुख मोरि।
बाल भुरावति लाल को विहँसी भौंह मरोरि ॥१॥

कबौं करति हाँसी कबौं छीनि लेति उर - माल।
कबौं छाछ - वाली कहति अहै 'छिछोरो लाल॥२॥

## अयत्नज सात्त्विक अलंकार

### १—शोभा

रूप-यौवन आदि से संपन्न शरीर की सुन्दरता को शोभा कहते है।

### उदाहरण

दोहा—

छन छन नवता लहत है छबि छलकत-अवदात।
चंद सरिस सुंदर-बदन मृदुल-सलोनो-गात ॥१॥
तिल बन जाति तिलोत्तमा काम-कामिनी छाम।
है ललामता को निलय ललना-रूप-ललाम ॥२॥

### २—कांति

स्मर-विलास से बढी हुई शोभा का नाम कांति है।

### उदाहरण

दोहा—

काम-कलामय ह्वै लसति हरति कल्पना-क्रांति।
बिकसे-अभिनव-कुसुम सी कांतिमयी की कांति ॥१॥
बिलसे नवला-अंग मैं काम-कला की जोति।
चामीकर से गात की चमक चौगुनी होति ॥२॥

### ३—दीप्ति

बहुविस्तृत कांति को दीप्ति कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

दीपावलि तन-दुति निरखि दबकी सी दिखराति।
बिबिध-जोति उजरी फिरति जरी बीजुरी जाति ॥१॥

बिलसत यौवन मै अहै वाको भाव - अनूप ।
लोक - बिकासक - काम को दुति है बिकसित-रूप ॥२॥

## ४—माधुर्य

सब दशाओं मे रमणीय रहना माधुर्य कहलाता है ।

### उदाहरण

दोहा—

होत नहीं मसि - बिंदु ते अललित बाल - लिलार ।
औरो मन - रंजन करत दृग लहि अंजन-सार ॥१॥
अधर पान की पीक ते अधिक - ललाम लखात ।
मिसी मले नवला - दसन नव - नीलम बनि जात ॥२॥
तिरछे चलि लहि बंकता करि चंचलता मान ।
अधिक मधुमयी बनति हैं ललना की अँखियान॥३॥

## ५—प्रगल्भता

केलि-कला में निर्भयता का नाम प्रगल्भता है ।

### उदाहरण

दोहा—

दोऊ आलिंगन करहिँ दोऊ करहिं कलोल ।
पिय को तिय तिय को पिया चूमत अधर कपोल ॥१॥

## ६—औदार्य

सदा विनय रखना औदार्य कहलाता है ।

## उदाहरण

दोहा—

मधुर बोलि सनमान करि सबको हित उर धारि।
करति सदन को सुर-सदन सुर-ललना सी नारि॥ १॥

## ७—धैर्य

आत्मश्लाघा से युक्त अचचल मनोवृत्ति को धैर्य कहते हैं।

## उदाहरण

दोहा—

नव-प्रसून नावक बनै पावक मलय-समीर।
परम धीर-अनुरागिनी ह्वैहै नाँहिं अधीर॥ १॥
पिय-मुख-चंद-चकोरिका जीहै पंथ निहार।
सुधा-बिंदु होवै गरल बरसै इंदु अँगार॥ २॥

## स्वभावसिद्ध सात्त्विक अलंकार

## १—लीला

प्रेम-वश प्रिया-प्रियतम का अन्योन्य-वेश-धारण लीला हाव कहलाता है।

## उदाहरण

दोहा—

लालन बनि बनि राधिका राधा बनि बनि लाल।
बिहँसत बोलत बहु लसत ललकत करत निहाल॥ १॥

कवित्त—

सिखि-पच्छ सोह्यो सीस कुडल-ललित कान
जापै फबि फैली प्रभा अलक-समाज की।
बंसी कर लसी उर बन-माल मोती-माल
जोति कछु तीखी परी अँखिया-सलाज की।

कटि - तट पीत - उपरैना लस्यो 'हरिऔध'
कहत बनै ना स्यामताई - मंजु आज की।
बिजन बिराजि बृखभानु जू की जाई
कैसी बनक बनाई मन - भाई ब्रजराज की ॥ २ ॥

## २—विच्छित्ति

साधारण शृगार से नायिका के मोहक शोभाधिक्य का नाम विच्छित्ति है।

### उदाहरण

सवैया—

या कल-कंज से पायन की लखि लालिमा लाल हूँ लागत औगुनी।
चारुता चारु - चमीकर ते नवला - बर - अंग बिराजति चौगुनी।
दीख परै 'हरिऔध' हमै नव - भूखन ते तन की दुति नौगुनी।
एक ही केसर - आड़ दिये सुखमा मुख की ससि ते भई सौगुनी ॥१॥

## ३—विलास

सयोग-समय मे नेत्र-व्यापार कटाक्षादि तथा गति, स्थिति आसनादि की विलक्षणता को विलास कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

ललकति पुलकति मुरि हँसति चितवति लहति बिकास।
नवल - बाल बिलसति रहति करि करि बिबिध-बिलास ॥ १ ॥
चितवति कबौ चकित बनति कबौ हँसति मुसुकाति।
करि बिलास बहु लाड़िली लोयन माँहि समाति ॥ २ ॥

## ४—विभ्रम

प्रिय के सयोग-समय मे आतुरता-वश भूषणादि का उलटे पलटे धारण कर लेना विभ्रम कहलाता है। भ्राति का नाम भी विभ्रम है।

### उदाहरण

दोहा—

कल-रव है चिरियान को धुनि कटि-किंकिन की न।
कहा छरी मति जाति है निरखत फूल-छरीन ॥ १ ॥
अदल बदल भूखन गये तन-सुधि रही न तोहि।
तौ मन तौ मन नहिं रह्यो मनमोहन पै मोहि ॥ २ ॥

## ५—किलकिंचित

एक साथ ही भय, हास्य, त्रास, क्रोध, कुछ मुसुकुराहट आदि का प्रकट होना किलकिंचित कहलाता है।

### उदाहरण

दोहा—

रोस करति रूसति हँसति बिकसति बनति स-भीत।
जोहि जोहि तिरछे नयन मोहि लेत मन-मीत ॥ १ ॥
लजति मजति खीजति जजति सजति सजावति गात।
बरसि बरसि रसरिस करति कहति रसीली-बात ॥ २ ॥

## ६—मोट्टायित

प्रियतम के रूप, गुण, स्वभावादि की प्रशंसा अथवा वर्णन सुनकर मुग्ध अथवा अनुरक्त होना मोट्टायित कहलाता है।

### उदाहरण

दोहा—

सुनत स्याम-घन के सरिस अहै सरस घन-स्याम।
प्रेम-बारि लोयन भरे बरसे मुकुत ललाम ॥ १ ॥
कहत बाल-रवि के सरिस बल्लभ है गोबिंद।
बिकसित भो तिय-मुख-कमल पुलके नयन-मिलिंद ॥ २ ॥

## ७—बिब्बोक

गर्व-पूर्वक प्रिय के अनादर का नाम बिब्बोक है ।

### उदाहरण

कवित्त—

बन-वारो कारो-कूर-किसुक न पावै ठौर
उपवन-वारी मंजु-मल्लिका की क्यारी मै ।
बैठि नहिं क्यो हूँ सकै बायस-लड़ैतो जाय
मंडली-मराल-बालिका की छबि-वारी मै ।
'हरिऔध' कौन तू कहाँ को है बिचारै कि न
नेसुक मैं नातो नंद हूँ को दैहौ गारी मै ।
कैसे सौहै दीठ तू करत रे कुँवर कान्ह
जानत कहा न बृखभानु की दुलारी मै ॥ ३ ॥

## ८—कुट्टमित

सुख-समय मे मिथ्या दुःख-चेष्टा और कृत्रिम रोष प्रकट करने का नाम कुट्टमित है ।

### उदाहरण

सवैया—

तोसों गरीब सनेह कै मो सम राज-सुता सो कहा फल पैहै ।
तेरे समान सपूत सो नेह कै कौन तिया जग मैं जस लैहै ।
दूर खरे 'हरिऔध' रहो परे छाँह तिहारी सबै बिनसैहै ।
साँवरो नंद को छोरो छुवै जनि गोरो सरीर मो गोरो न रैहै ॥ १ ॥

## ९—विहृत

सयोग-समय में लज्जादि के कारण मनोभिलाष में व्याघात उपस्थित होना विहृत कहलाता है ।

## उदाहरण

दोहा—

तिय कछु चाहत कहन पै लाज जीह गहि लेत।
मुख के मधुमय-बयन के काज नयन करि देत ॥ १ ॥
वा लज्जा ते बावरी कहा काज तू लेति।
पिय के कान समीप जो बीन बजन नहिँ देति ॥ २ ॥

## १०—ललित

सर्वांग सरस और शृंङ्गारित करने को ललित हाव कहते हैं।

## उदाहरण

दोहा—

लाल रिझावन को हँसति बोलति बैन रसाल।
लोने - लोने - नयन को लोल बनावति बाल ॥ १ ॥
लोच - भरे लोचनन ते बनति ललन चित - चोर।
चाव सहित ललना रहति पिय - मुख - चंद - चकोर ॥ २ ॥

## ११—मद

सौभाग्य, यौवन आदि के अभिमान से उत्पन्न मनोविकार को मद कहते हैं।

## उदाहरण

दोहा—

वे किनमैं है बावरी हैं जिनमै रस नाहिं।
मधु न होत तो मधुप क्यों जात माधवी पाहिं ॥ १ ॥
कौन अहै गुन - आगरी रसिक जिअत केहि जोहि।
अरी नागरी ही सकति नागर - नर को मोहि ॥ २ ॥

## १२—केलि

कांत के साथ कामिनी की विहार-क्रीड़ा को केलि कहते हैं।

### उदाहरण

दोहा—

सजि सजि सुमन-समूह सो वनि बसंत की बेलि ।
पुलकि पुलकि ललना करति निज-लालन ते केलि ॥ १ ॥

## १३—तपन

प्रियतम के वियोग मे कामजनित उत्ताप को तपन कहते हैं ।

### उदाहरण

दोहा—

सीरे सीरे लेप सब बनत दीप के नेह ।
नव बियोग-तप-ताप ने तवा भई तिय-देह ॥ १ ॥

कबहुँ रुकत कबहूँ बहत कबहूँ होत अथाह ।
सोच सकोचन मैं परो लोचन - बारि - प्रवाह ॥ २ ॥

## १४—मुग्धता

ज्ञात पदार्थ को भी प्रियतम के सामने अज्ञात समान पूँछना मुग्धता कहलाती है ।

### उदाहरण

दोहा—

पिय बतरावहु बोलिकै मधुर अमी से बैन ।
खिले कमल से हैं किधौ मुँदे कमल से नैन ॥ १ ॥

अस जनात लाली गई अवनी-तल पै पोति ।
कत लालन मो-पग परत लाल चाँदनी होति ॥ २ ॥

## १५—कुतूहल

रमणीय वस्तु के देखने के लिये चचल होना कुतूहल कहलाता है ।

## उदाहरण

दोहा—

जाकी कलित-कथान को तू भाखति कथनीय।
सो कित को है कौन है कैसो है कमनीय ॥ १ ॥

अली जहाँ है बज रही मुरली सब-रस-मूल।
चलु चलु अवलोकन करैं सो कालिंदी-कूल ॥ २ ॥

## १६—विक्षेप

भूषणों की अधूरी रचना, बिना कारण इधर-उधर देखना, धीरे से प्रियतम से कोई रहस्य की बात कहना आदि विक्षेप कहलाता है।

## उदाहरण

दोहा—

इत उत चितै कबौ कछू धीरे कहि हँसि देति।
पहिरि अधूरो-आभरन मन-पूरो करि लेति ॥ १ ॥

पहिरे द्वै द्वै चूरियाँ इत उत चितवत जाति।
बतिया कहि कहि भेद की भेद-भरी मुसुकाति ॥ २ ॥

## १७—हसित

यौवन-विकास से उत्पन्न अकारण हास को हसित कहते है।

## उदाहरण

दोहा—

पिय-मन-मोहन को करति रस-बस बिबिध बिलास।
मधुर-मंद-गति गहति तिय मंद मंद करि हास ॥ १ ॥

कौन नहीं कामुक बनत कौन सकत चित रोकि।
हास-भरी-नवलान को औचक हास-बिलोकि ॥ २ ॥

## १८—चकित

प्रियतम के सामने अकारण डरना और घबराना चकित कहाता है।

### उदाहरण

दोहा—

कछु सकाइ सकुचाइ कछु कछु अकुलाइ अकाल।
चकित बनावति काहि नहिं चकित-बिलोचन-बाल ॥ १ ॥
इत उत चितवति चौंकि बहु भरि लोयन मैं भाव।
चकित बनावत लाल को चकित-बाल को चाव ॥ २ ॥

### बोधकहाव

दोहा—

ललना लालन को चितै दीन्हें बार बगारि।
लालन निज-मुख पै लियो कर-नीलांबर डारि ॥ १ ॥

# रस निरूपण

स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के सहित चमत्कृत होकर मनुष्यों के हृदय में अलौकिक और विलक्षण आनंद का स्वरूप धारण करता है, तब वह रस कहलाता है।

## उदाहरण

कवित्त—

सोच ना रखत भव - मोचन को भाव देखि
रुचि माँहि रुचिर - प्ररोचना भरत है।
प्रतपित होत पाप - तापते न प्रेम लहे
प्रथित - प्रताप - बल पातक हरत है।
'हरिऔध' हरि के बिचारित - चरित गाइ
बिचलित - चित को उबारि उबरत है।
पावन-अनिंदित-पराग को मिलिंद बनि
वदित - पदारबिंद बंदन करत है ॥१॥

मंजु - चंद - मुख देखि मानस बनत सिंधु
सुनि बैन कान - रस पान के अघाये है।
कल - केलि अवलोकि मुदित - महान होत
भोरे भोरे भावन के भूरि - सुख पाये है।
'हरिऔध' मंजुल - मधुर - मुसुकानि हेरि
उमगि उमगि सुधा - सर मैं अन्हाये है।
परम - सलोने गोरे - गालन पै वारि जात
लोने - लोने - लालन पै लोचन लुभाये है ॥२॥

बन बन माँहिं दरसत सुर - तरु नाहिं
सरस - रसाल को सदन है न बौर बौर।

नर नर माँहिं नाहिं नरता निहारी जाति
प्रभुता - प्रभाव - पूत होत नाँहिं पौर पौर ।
'हरिऔध' सब मैं समान गुन - गन है न
बहु - रस बलित बनत नाँहिं कौर कौर ।
घर घर माँहिँ रमनीय - रमनी है कहाँ
कमनीय - खनि अवनी मैं है न ठौर ठौर ।।३।।

मद - माती - मुदित - मयूर मंडली के काज
पारत पियूख कौन घन की घहर मैं ।
मंजु - सुर - मत्त या कुरंगन के हेत कौन
बेबसी भरत बेनु - बधिक - निकर मैं ।
'हरिऔध' होति जो न मोह मैं महानता तो
बँधत मिलिंद कैसे कंज के उदर मैं ।
मन कैसे रमत चकोर और मरालन कौ
मोद - वारे मंजुल - मयंक - मानसर मैं ।।४।।

मरु - भूमि - मारुत बनत मलयानिल है
रहत अमरता न अमर - नगर मैं ।
लहत न बारि - बूँद बारि - धर बारिधि मैं
बनजाति बारि - धारा धूरि बारि-धर मैं ।
'हरिऔध' अनुकूल - दैव प्रतिकूल भये
गरल सुधा की सोत होत सुधा - कर मैं ।
पावत न मधु है मधुप मधु माधव मैं
मिलत मराल कौ न मोती मानसर मैं ।।५।।

मरु - भूमि नंदन - बिपिन बनि बिलसत
नंदन - बिपिन दग्ध होत दरसत है ।

पामर - परम नाक - पति पद पावत है
नाक - पति पामर - पगन परसत है।
'हरिऔध' कल्पना रहित काल - कौतुक है
कल्प - तरु कबहूँ अँगारे बरसत है।
अ - सरस बनत बसत दाघ के समान
दाघ बनि सरस - बसत सरसत है ॥६॥

गुनिन मै गौरव लहत गुन - आगर है
नागर - निकर निवसत है नगर मैं।
सोहत है पावन - सलिल - सुर - सरि माँहि
किसलय - कलित लसत तरु - वर मै।
'हरिऔध' मान है समान संग मॉहि होत
मंजुलता बसति मयंक - मंजु - कर मै।
सर मैं खिलत सरसीरुह - समूह देखे
मिलति मराल - मंडली है मानसर मै ॥ ७ ॥

चरन बिनाहुँ अहै चलति अचल मॉहिं
करन बिनाहुँ वार करति अपार है।
बीरन को मारि मारि अमर बनावति है
धीरन को वाकी धार परम - अधार है।
'हरिऔध' संतत हरति जन - जीवन है
जीवन को तबहूँ रखति बहु - प्यार है।
पानिप अछत सदा रहति पिपासित है
तेज-वारी ह्वै कै तम - वारी तरवार है ॥ ८ ॥

सवैया——

बावरी बोध न होवै अजौ कर कैसे लियो गिरि-गोधन सारो।
त्यो छन ही महँ पान कियो किमि पावक हूँ बन - दाहन - वारो।

हेरि कहै 'हरिऔध' हिं देवकी क्यो गहि नाथि लियो अहि-कारो ।
कस हूँ को मल मारि लियो किमि फूलसो कोमल-लाल हमारो ॥९॥

काम न ऐहै बिकास कबौ रस-हीनन सो रस प्यास न जैहै ।
चाहे करै उपवास सदा कबौ काहू बिसासी - अवास न जैहै ।
कै बन-बास उदास रहै पै अनेहिन को बनि दास न जैहै ।
पास कपास-प्रसूनन के अलिबास - बिलास को आस न जैहै ॥१०॥

दोहा—

दोऊ नैनन मै रही छवि - रावरी समाय ।
चहूँ - ओर तिहुं - लोक मै तू ही एक लखाय ॥११॥

कारे कारे कूबरे सिगरे बरन लखाहिं ।
बरनि सकत कैसे कोऊ सुबरन - बरनी काहिं ॥१२॥

कहा भाग ऐसो अहै बिगरि बनै जो बात ।
कबहूँ दूध बनै न सो जो कैसहुं फटि जात ॥१३॥

भलो बुरो समयो नहीं है अपने बस मॉहिं ।
पै 'हरिऔध' न होत सो भाग लिखो जो नाहिं ॥१४॥

बोलि रिसौहैं - बैन ए कत कीजत अलि बार ।
बन - बागन मै बावरी बगरी देखु बहार ॥१५॥

# शृंगार

## स्थायी भाव—रति

## देवता—विष्णु भगवान् अथवा श्रीकृष्ण

## वर्ण—श्याम

आलंबन—नायक और नायिका

## उद्दीपन—

सखा, सखी, वन, बाग, उपवन, तड़ाग, चद्र, चाँदनी, चदन, भ्रमर, कोकिल, ऋतुविकास आदि—

अनुभाव—भृकुटि-भग, कटाक्ष, हाव, भाव, मृदु मुसकान आदि—

संचारी भाव—उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर शेष २९ स्मृति, हर्ष, औत्सुक्य, जड़ता, मति, विबोध आदि भाव—

किसी किसी की सम्मति है कि इस रस मे कुल सचारी भाव आते हे—

## विशेष

विभाव, अनुभाव, और सचारी भाव के संयोग से शृ गार रस उत्पन्न होता है, इनके द्वारा ही रति की पुष्टि होती है। प्रिय वस्तु मे मन के पूर्ण-प्रेम-परायण भाव का नाम रति है, ऐसी रति उत्तम कोटि के नायक नायिकाओ मे ही होती है, अतएव प्रायः पर-स्त्री और अनुराग-शून्या वेश्या को कुछ लोग नायिका मे परिगणित नहीं करते। १—सयाग और २—विप्रलभ शृगार के दो भेद हैं।

इस रस में सचारी, विभाव और अनुभाव सब भेदों सहित आते हैं, अतएव इसे रसराज कहते हैं।

## १—संयोग शृंगार

एक दूसरे के प्रेम में पग कर नायक नायिका जब परस्पर दर्शन, स्पर्शन और संलापादि में रत होते हैं, तब वह सयोग शृगार कहलता है।

## उदाहरण

कवित्त—

राधिका - नयन मै है मोहन - नयन बसे
मोहन बिकत राधा - नयन निकाई पै।
प्यारी - मुख - सुखमा सराहत रहत प्यारो
प्यारी मोहि जात प्यारे मुख - मंजुताई पै।
'हरिऔध' स्याम को कहति रमनी है काम
स्याम रति वारत रमनि रुचिराई पै।
लाल को लुभावति है ललना ललित - छबि
ललना लट्टू है भई लाल की लुनाई पै॥ १॥

पिय - तन - घन तिय - मुदित - मयूरनी है
पिय - तिय - नलिनी मिलिंद - मतवारे है।
कौमुदी तरुनि है कुमुद - मन मोहन की
मोहन तरुनि लतिका के तरु प्यारे है।
'हरिऔध' नारि है सरसि मीन - प्रीतम की
प्रीतम मराली - नारि मानसर प्यारे है।
बाल बनी बालम - बिलोचन की पूतरी है
लाल बने ललना के लोयन के तारे है॥ २॥

## २—विप्रलंभ

जब अनुराग अत्यत प्रबल और प्रिय-समागम का अभाव रहता है, तब विप्रलंभ अथवा वियोग शृंगार की उत्पत्ति होती है। इसके निम्नलिखित तीन भेद हैं—

१—पूर्वानुराग, २—मान और ३—प्रवास।

## उदाहरण

सवैया—

बावरी बेकल क्यो न बनौ पल ही पल क्यो न उठौ अकुलाई ।
बेदन ते बिलखौ न कहा इन नैनन ते अँसुआन बहाई ।
क्यो न गहौ 'हरिऔध' अधीरता कैसे लहौ थिरता मनभाई ।
एरी लगी छत मै छतिया के गोपाल की वा अँखियान लुनाई ॥१॥

## १—पूर्वानुराग

मिलन अथवा समागम से प्रथम हृदय में जो अनुराग का आविर्भाव होता है, उसको पूवराग अथवा पूर्वानुराग कहते है, इसके चार मार्ग हैं—

१–प्रत्यक्ष दर्शन २–चित्रदर्शन ३–श्रवणदर्शन ४–स्वप्नदर्शन

## १—प्रत्यक्ष दर्शन

किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के नयनगोचर होने पर जिस अनुराग का प्रादुर्भाव होता है, उसे प्रत्यक्ष दर्शन कहते है ।

## उदाहरण

कवित्त—

कलित - कपोलन पै अलकै लुरी है मंजु
सुललित - आभा लसी अधर - तमोर की ।
हियरा - हरन - वारे उर पै फबे है हार
अंगन प्रभा है आछे - भूखन - अथोर की ।
'हरिऔध' वेस बसनादिक बखाने बनै
आने बनै चित मै निकाई नैन - कोर की ।
एरी बीर काकी मति बावरी बनी है नॉहि
सु - छबि बिलोकि बॉकी नवल-किसोर की ॥१॥

अति अनुकूल सुख - मूल कालिंदी के कूल
लोक - सिद्ध - पीठ जाको श्रुति ठहरावै है।
'हरिऔध' स-बिधि सम्हारि निज-साँसन को
आसन हूँ मारि सक-त्रासन भगावै है।
एरी बीर बिटप कदंब पै न बैठो आज
रस पैठो मंजु - मीठी - बाँसुरी बजावै है।
काहू मोहिनी को मोह-वारो मन, मोहन को
मोहन हमारो मंत्र - मोहन जगावै है ॥२॥

भूलि ना सकी हौं हूलि हूलि हिय मेरे उठै
ललित - लुनाई वाके लोयन - ललाम की।
प्यारी छबि पापी-प्रान पलक बिसारै नाँहिं
आनन बगारे कारे - कारे - केस-दाम की।
'हरिऔध' कान हूँ न मानै पान कीने बिना
चैन-दैन-वारी - सुधा बैन - अभिराम की।
आँखिन समाई क्यों हूँ कढ़त न माई वह
मंद मंद मंजुल अवाई घनस्याम की ॥३॥

दोहा—

मो मन अपनो करत है बाँकी - भौंह - मरोर।
आवत है चितवत - चकित चाव-भरो - चित चोर ॥४॥

## २—चित्रदर्शन

चित्रदर्शन द्वारा जिस अनुराग की उत्पत्ति होती है उसे चित्रदर्शन कहते हैं।

### उदाहरण

सवैया—

भावुकता-भव-भूति-निकेतन भाव-भरी मुख है बहु - भावत।
भाल को रोचन मोहत है मन लोचन-लोच-भरो ललचावत।

ए 'हरिऔध' हँसी हित-जोरति हेरन है हियरा हुलसावत।
चित्र तिहारो चितेरे बताइ दै चित्त बसे हुँ क्यो चित्त चुरावत॥ १॥

दोहा—

चितै चित्र मै लाल के अमल-अमोल-कपोल।
ललकित लालायित भये ललना-लोयन-लोल॥ २॥

## ३—श्रवण-दर्शन

रूप, गुण अथवा कीर्ति श्रवण से जो अनुराग उत्पन्न होता है उसे श्रवण-दर्शन कहते हैं।

### उदाहरण

सवैया—

तू बतरावति है मुसकाइ कै मो-मति माधुरी माँहिं फँसी है।
पल्लव से तव होठ हिले नव-नेह-लता उर माँहिं लसी है।
हौं छबि देखे बिनाहिं छरी गई तू छरे मोहिं भई सु-जसी है।
नैन मैं मेरे रमे मन-मोहन बैन मै मोहनी तेरे बसी है॥ १॥

दोहा—

मानस को मोहन लगे मन-मोहन छबि-ऐन।
लोने लोने बैन सुनि भये सलोने नैन॥ २॥

## ४—स्वप्नदर्शन

स्वप्न मे दर्शन करने से किसी मे जो अनुराग उत्पन्न होता है, उसे स्वप्न-दर्शन कहते हैं—

### उदाहरण

सवैया—

राति ही ते है अराति भयो उर आकुल-भाव उसास सनो है।
है न उबार उमाहन ते बहु-दाहन ते दुख होत घनो है।

भूलति सूरति ना 'हरिऔध' की सावन-नीरद नैन बनो है।
सो सपनो जरि जाउ सखी अपनो सुख जाते भयो सपनो है ॥ १ ॥

दोहा—

होवै बहु कमनीय कोउ कै कामिनि अनुकूल।
सपनो सपनो है अरी तू यह सपनो भूल ॥ २ ॥

## २—मान

प्रियापराधजनित प्रणय कोप को मान कहते है। यह तीन प्रकार का होता है—लघु, मध्यम और गुरु।

### लघु मान

पर-पत्नी-अवलोकन-जनित मान को लघु मान कहते है, यह हँसी और मीठी बातो ही से निवृत्त हो जाता है।

#### उदाहरण

दोहा—

मोको करि करि बावरी हँसहिं खिजहिं खिसियाहिं।
पिय ए अँखियाँ रावरी कत इत उत चलि जाहिं ॥ १ ॥

### मध्यम मान

परस्त्री प्रशसा-सूचक वाक्य अथवा आदरपूवक उसका नाम लेते सुनकर जो मान है, उसे मध्यम मान कहने है. यह विनय और शपथ आदि से दूर हो जाता है।

#### उदाहरण

दोहा—

अब लौं पतियाई बहुत पिय कब लौं पतियाहिं।
जो जिय को भावति न तिय मुँह मै आवति नाहिं ॥ १ ॥

## गुरु मान

अन्य स्त्री रमण विश्वास जनित मान को गुरु मान कहते हैं, यह नाना अलकार देने और पाँव पड़ने से दूर होता है।

## उदाहरण

दोहा—

प्रिय तो मनहीं की करहु जो मन मानत नाहिं।
वाही क परसहु पगन जा पग परसे जाहिं ॥ १ ॥

## ३—प्रवास

प्रियतम के परदेश निवास को प्रवास कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है १—भूत प्रवास, २—भविष्य प्रवास।

## भूत प्रवास

जिस प्रवास का सबध भूतकाल से होता है उसे भूत प्रवास कहते है।

## उदाहरण

सवैया—

अति आतुर प्यासे समान पियूख भरे अखरा-रस पीजत है।
दिन हूँ ढिग आवन के गुनि कै अपनो हियरा थिर कीजत है।
पद प्रान प्रिया पढ़ि कै 'हरिऔध' बहे अँसुआ तनु भीजत है।
यह रावरी-प्रेम-पगी-पतिया रखि कै छतिया नित जीजत है ॥१॥

पति ही परदेसी भयो तो कहो तिय जीवन को फल कौन लहा।
'हरिऔध' न धीरज होवै छनौ अकुलात अहै मन मेरो महा।
तन मो सी तियान के दाहन मै जग मै जस कौन सो तेरो रहा।
बिहरै हियरा नहिं बूझि परै बिधना हम तेरो बिगार्‌यो कहा ॥२॥

लखि कै या कपूत-कला-निधि कौ सिगरो कल आपनो खोवती हैं।
नभ के इन तारन की अवली निज नैन के तारन पोवती है।
'हरिऔध' न ऑख लगै कबहूॅ दुख सो पल हूॅ नहिं सोवती है।
पतिया पढि कै सिगरी रतिया पकरे छतिया हम रोवती है ॥३॥

दोहा—

जिय तरसत पिय मिलन कौ पावत पलौ न चैन।
पून मास पावस भयो दृग बरसत दिन रैन ॥ ४ ॥
बिबस भई बनि बावरी कैसे दिवस सिराहिं।
छरछराति छाती रहति पाती आवति नॉहिं ॥ ५ ॥

## भविष्य प्रवास

जिस प्रवास का सबध भविष्य काल से होता है, उसे भविष्य प्रवास कहते है।

### उदाहरण

दोहा—

लखत बिदेस पयान को होत तिगूनो तंत।
मानत कंत कही नहीं आवत सरस-बसंत ॥ १ ॥
जाहु बिदेस, इतो कहहु, तब जीहै केहि जोहि।
कहि पी कहॉ पपीहरा जब कलपैहै मोहि ॥ २ ॥
छकी गमन सुनि छैल को बनी छबीली मूक।
छटपटाति छिति पर परी छाती भई छटूक ॥ ३ ॥

बरवा—

प्रीतम जात बिदेसवॉ निपट अनेस।
सिसकत खरी तरुनिया बगरे केस ॥ ४ ॥

# दश दशा

प्रियतम की वियोगावस्था मे जो दशाएँ प्राणी की होती है, वे प्राय दश प्रकार की होती है, इसलिए इनको दश दशा कहते हैं। ये दशाएँ अभिलाषा से प्रारंभ होकर मरण तक पहुँचती हैं, उनके नाम ये है—

१—अभिलाषा, २—चिंता, ३—स्मरण, ४—गुण-कथन, ५—उद्वेग, ६—प्रलाप, ७—उन्माद, ८—व्याधि, ९—जड़ता और १०—मरण। किसी किसी ने ११ वी दशा मूर्छा भी मानी है।

## १—अभिलाषा

वियोगावस्था में प्रियतम के मिलने की इच्छा को अभिलाषा कहते है।

### उदाहरण

कवित्त—

सोभा के निधान सुख-कंद-कल-कधन पै
मान सो या आपनी भुजान कब रखिहौं।
मधुर - सुधा से सुखमा से भरे बैनन को
कब इन प्यासे दोऊ स्रौनन सो चखिहौं।
'हरिऔध' प्यारे को लगाइ छतिया सो कब
बतिया प्रतीति-प्रीति रीति की परखिहौं।
मृदु-बोल बोलि कब लोल - नैन - लालन कौ
करत कलोल कालिंदी के कूल लखिहौं॥ १॥

ब्रज मैं पधारि ब्रजजीवन बिनोद दैहै
बृन्दाबन - बीथिन मै बिहँसि बिचरिहैं।
लैहै सुधि बिपुल- बिहाल - ब्रज - बालन की
तानन सुनाइ सुधा कानन मै भरिहैं।

'हरिऔध' फेर कबौ अनुकूल ह्वैहै लाल
कूल पै कलिंद - तनया के केलि करिहै।
हरिहैं हमारो दुख - पुंज गुजमाल - वारे
कुंज के बिहारी फिर कुंज मै बिहरिहै ॥ २ ॥

दोहा—

कब बियोग - निसि बिनसिहै लहे दिवस - संयोग।
कब ऑखियॉ अवलोकिहै मुख - अवलोकन-योग ॥ ३ ॥
घन-रुचि-तन-नव-छबि निरखि कब नचिहै मन-मोर।
बदन-चंद अवलोकिहै कब मन - नयन - चकोर ॥ ४ ॥

## २—चिंता

प्रिय प्राप्ति अथवा चित्त-शान्ति-साधन विचार को चिता कहते है।

### उदाहरण

कवित्त—

प्रेम को पियूख जो न परतो प्रपंच माहिँ
तो न योग - भोग देव - दानव मै ठनती।
सुख को पयोधि तो न बनतो अ - सुख-सिधु
बिबिध - बिभूति अबिभूति मै न सनती।
'हरिऔध' अबिधि-उपाधि क्यो परति पीछे
अवधि की आस क्यो बिसास-जर खनती।
तो न मन - काम - रिपु कामुकता काम देति
मोहन की मोहनी जो मोहनी न बनती ॥ १ ॥

सवैया—

होति न जो ममता ब्रज की ब्रज के दुखियान को क्यो दुख खोतो।
भूलतो जो अनुरागिन को अनुराग को तो बहतो किमि सोतो।

तो बनतो 'हरिऔध' हितू नहिँ जो उर मै हित - बीज न बोतो ।
मोहनी तो मन को न बिमोहित मोहन मै यदि मोह न होतो ।।२।।

बावरी सी भई बेदन ते कलपै पल ही पल प्रान हमारे ।
भूलि न चैन परै अँसुआन मै डूबे रहै अँखियान के तारे ।
मेरी घरी है पहार भई जब ते 'हरिऔध' बिदेस सिधारे ।
बीर हमै न बतावत है कोऊ कैसे बितावत है दिन प्यारे ।।३।।

दोहा—

चिनगी सी तन मै लगति चौकत राति सिराति ।
चिंता - मनि चेतत नही चित - चिंता नहिं जाति ।। ४ ।।

छार करति क्यो तन नहीं है दाहति दिनराति ।
जो चिंता है चिता तो क्यो न चिता बन जाति ।। ५ ।।

## ३—स्मरण

वियोग समय मे प्रिय के सयोग समय की बातो, चेष्टाओ, और समागम-सुखो की स्मृति को स्मरण कहते हैं ।

## उदाहरण

कवित्त—

काहे लोल - लहर समीर ते करत केलि
सरिता कलोल - मयी होति क्यो सलिल से ।
काहें है रसालता ते लसत रसाल - पुज
डोलत प्रसून क्यो है मंजुल - अनिल से ।
'हरिऔध' चित जो बिलोकि कै बिकल होत
काहें तरु - बृंद तो बने है मोह-मिल से ।
लतिका-ललित तो लसी है क्यो तमाल-अंक
क्यो है कंज कलित - कलिदजा मै बिलसे ।। १ ।।

सवैया—

मजु-तमालन सो लिपटी नव - लोनी - लता है बिथा उपजावति ।
कुंजन के बर - बेलि बितान की मंजुलता है महा - कलपावति ।
मुदरता ससि - सोभित - रैन की चारु - सिता-सितता है सतावति ।
बारिद के अवलोकत ही अलि बारिद - गात की है सुधि आवति ॥२॥

वेई निकुंजन जा मै लखि इन नैनन ते वह सूरत-सॉवरी ।
वेई कलिदजा के कल कूल भरी जहॉ प्रीतम के सॅग भॉवरी ।
वेई घने-बर-बेलि-बितान जहॉ 'हरिऔध' भई ही निछावरी ।
हौ झिझकी परी झॉवरी बीर बिलोकत ही मति ह्वै गई बावरी ॥३॥

दोहा—

नव-जल-धर-तन सुधि भये चूर होत चित-चैन ।
लखि कलिद-तनया-सलिल होत सलिल-मय-नैन ॥ ४ ॥

है लहरति लोनी-लता बायु बहति है मद ।
दुचित होत मो चित चितै चैत - चॉदनी चद ॥ ५ ॥

## ४—गुण-कथन

वियोग समय मे प्रिय गुणानुवाद-कथन को गुण-कथन कहते हैं ।

## उदाहरण

कवित्त—

पर-दुख-दुखी क्यो न दुखी दुख देखि होत
काहे पीर पर - पीर - हारी ना हरत है ।
पर - नैन - भरे जाको नैन भरि आवत है
वाको दृग मो दृग भरे ना क्यो भरत है ।

'हरिऔध' सोई मोहिं धीरज बँधावै क्यों न
धीर जो अधीरन बिलोकि ना धरत है।
दयानिधि क्यों न दयानिधिता दिखावत है
करुना क्यों करुना-निधान ना करत है ॥१॥

आँखिन को तारो क्यों हमारो है परारो होत
उर को हरन-हारो कत होत कोही है।
असरस होत क्यों सरस-आदरस - वारो
क्यों न देत दरस मयक-मुख-जोही है।
'हरिऔध' बिरह-पयोधि परी ऊबति हौं
क्यों न बाँह गहत सु-बाट को बटोही है।
जनम को छोही काहें परम अछोही भयो
मोहन सो मोही काहें भयो निरमोही है ॥२॥

सवैया—

कामुकता-कमनीय-निकेतन कामिनी की अँखियान को तारो।
सूधो सधो सुख-धाम सुधा-सनो सुंदर-सील-सनेह-सहारो।
भाव-भरो सुथरो भव - बल्लभ जीवन - जीवन - भूतल - प्यारो।
मोहि न कोऊ मही-तल मैं मिल्यो मोहन लौं मन-मोहन वारो ॥३॥

साँवरे अगन सी सुकुमारता साँवरे-अगन मैं निवसी है।
मंजुल-आनन - सी कमनीयता मजुल - आनन माँहि लसी है।
ए 'हरिऔध' अहै द्दग से द्दग मंजु - हँसी सम मजु-हँसी है।
मोहन - बैनन सी मधु-मानता मोहन बैनन ही मैं बसी है ॥४॥

दोहा—

गिरत उठत थहरत उड़त थिरकत होत उतग।
तऊ न तब - गुन - गुन तजत मो - मन अगुन-पतंग ॥ ५ ॥

रही अवधि की अवधि नहिं सुधि हू की सुधि नाँहिं ।
तिय, पी, सुगुन-सरस-सुधा सरसति बसुधा माहिं ॥ ६ ॥

## ५—उद्वेग

प्रिय-वियोग से व्याकुल होकर किसी विषय में चित्त न लगने का नाम उद्वेग है ।

### उदाहरण

कवित्त—

गात पियरात तो न हियरो हिरानो जात
चिता तो बिवेक-हीन-वेदना न जनती ।
सूखतो न अधर उसास ते न ऊब होति
रार तो न आस औ निरास माँहिं ठनती ।
'हरिऔध' बिधि को बिधान तो वेधि देत
तो न प्रेम मंजुता अमंजुता मैं सनती ।
बायु-चिर-संगिनी बिहंगिनी सी बेगवान
योगिनी बियोग मैं बियोगिनी जो बनती ॥ १ ॥

सवैया—

राति सिराति तो बार न बीतत बात बियोग की काहि बतैये ।
जोहत पंथ थके युग लोचन क्यों दुख-मोचन को लखि पैये ।
वेसुध हो 'हरिऔध' बिना भई कौ लौं बिथान कथान सुनैये ।
का करिये सखि संगम की बिधि बायु बिहंगम क्यो बनि जैये ॥२॥

दोहा—

ऊबति बीते अवधि दिन कोमल-तन-कुँभिलात ।
तितनो आकुल होति तिय जितनो चित अकुलात ॥ ३ ॥
सुन पिय-आगम प्रात ही युग सम बीतत राति ।
परतहि परी बनन चहति सेज-परी अकुलाति ॥ ४ ॥

## ६—प्रलाप

प्रिय की अनुपस्थिति में उसे उपस्थित मानकर अथवा वियोग से विशेष व्यथित होकर अनर्गल किंवा निरर्थक वार्तालाप को प्रलाप कहते हैं।

## उदाहरण

कवित्त—

कूकन न दै री कुंज-पुंज मैं पिकन काँहिं
आवन सदन मैं न मंजुल-बयारि दै।
तोरि दै सकल तरु-बृंद के नवल-दल
लोहू लाल-सेमल-प्रसूनन को गारि दै।
'हरिऔध' बिरह-बेहाल-मन मेरो अहै
एरी बीर अलि की अवलि कौ बिडारि दै।
कलित - कमल - कुल - कोमलता - काल बनि
ललित-लतान की ललामता निवारि दै॥ १॥

रसना पुनीत-गुन गाई गौरवित होति
रुचि चारु-चरित बिचारि बिकसति है।
सुमिरि सुमिरि मंजु-भाव मन मोहि जात
उर मैं प्रभावित-प्रतीति प्रविसति है।
'हरिऔध' प्रीतम-बिदेसी है बिदेसी कहाँ
रोम रोम माँहिं पूत-प्रीति बिलसति है।
बैनन मैं बसति बिदित-बिरुदावलि है
नैनन मै सूरति-सलोनी निवसति है॥ २॥

सवैया—

मानिहौं नातो न बारिधि-बंस को बारिधिता को कबौ ना सकैहौं।
ना कमला, कमलापन सोचिहौं ना कमला-पति को पतिऐहौं।

मोहि सताइ बचैगो न पातकी पातक-सिधु मै ताहि डुबैहौ।
देहौ बिथोरि कलंकित-कालिमा छोरि मयक मयकता लैहौ ॥३॥

तो से कपूत के पाप ही ते बड़वानल वारिधि को तन तावत।
तो सम पामर होत न, कौन तो, गौतम-ती को कलक लगावत।
पी 'हरिऔध' बिना अब पातकी मोहुँ को पावक लाइ सतावत।
डूबत को कहूँ एरे मयंक तू एक चुलूक हूँ बारि न पावत ॥४॥

दोहा—

ताको कैसो बिरह दुख ताको कहा प्रवास।
मेरे मानस मै अहै निस-दिन जासु निवास ॥ ५ ॥

कैसी है यह साँवरी-सूरति कहत बनै न।
निवसति है अँखियान मैं अँखियाँ निरखि सकैं न ॥ ६ ॥

रुधिर-भरो क्यो है खरो किंसुक कुसुमन ब्याज।
आह आह कै कोकिला कहा कराहति आज ॥ ७ ॥

मो चित बिचलित होत है बहि बहि दहत सरीर।
बरजि बरजि आवै न इत सीतल-मंद-समीर ॥ ८ ॥

## ७—उन्माद

वियोगावस्था मे सयोगोत्सुक हो बुद्धि-विपर्यय-पूर्वक वृथा व्यापार करने, जड़, चेतन विवेक-रहित होने और व्यर्थ हँसने, रोने आदि को उन्माद कहते है।

## उदाहरण

कवित्त—

हँसे, रोवै, गावै, बतरावै, बकै, बोलै नाँहि
उठै बैठै, धावै भरै बन बन भाँवरी।
नभ को निहारै कछू कहै फिर भू को चहै
जकी ही सो रहै जो बिलोकै छबि साँवरी।

'हरिऔध' काहू की कही न उर आनै
रूख पात हूँ सो पूछै औ बखानै बात रावरी।
काल रही नैनन की पूतरी जो बाल आज
एरे निरदयी तेरे देखे बिना बावरी॥ १॥

इत उत दौरी फिरै हसै रोवै थिरै नाँहि
अनु - छन दीबो करै बन बन भाँवरी।
इक टक लावै जो पयोद लखि पावै कहूँ
भिरहिँ तमाल हूँ बिलोकि छबि साँवरी।
'हरिऔध' उघरी ही रहै लाज हूँ ना बहै
पलकन हूँ ना चहैं बीते हूँ बिभावरी।
प्यारी वह सूरत तिहारी अहो प्रान-नाथ
अँखियाँ हमारी भई देखे बिना बावरी॥ २॥

सवैया—

बातै बियोग-बिथा सों भरी अरी बावरी जानै कहा बनबासी।
पीर हूँ नारिन के उर की ना पछानत ए तरु-तीर - निवासी।
सोभा, स्वरुप, मनोहरता 'हरिऔध' सी यामैं न है छबि खासी।
बाल तमाल सो धाइ कहा तू रही लपटाइ लवंग-लता सी॥ ३॥

दोहा—

बनति कमलिनी राति की बिगत-निसा ससि जोति।
भये रावरी - छबि सुरति बाल बावरी होति॥ ४॥
रोअत हँसत लरत भिरत ललकत लहत न चैन।
बिना रावरे - मुख लखे भये बावरे नैन॥ ५॥

## ८—व्याधि

वियोग व्यथाजनित शरीरकृशता, पाडुता आदि अस्वास्थ्य को व्याधि कहते हैं।

कवित्त—

भावत न भौन भार भये अंग - भूखन है
सेज सतराति ना सुहाति मजु-सारी है।
चाँदनी दहति है अँगारे बरसत चद
चारु-भूत कंजन की चारुता न प्यारी है।
'हरिऔध' बिना सुख-साध आधि-व्याधि-भई
पावक ते पूरित - प्रसूनन की क्यारी है।
फूँकि फूँकि देत है बसंत बजमारो मोहि
कूकि कूकि कोकिला हूँ हनति कटारी है॥ १॥

सवैया—

लोनी-लवंग - लता लहराइ बिलोचन मेरे नहीं ललचावत।
कोमल - मंजुल - पादप के दल है न अलौकिकता दिखरावत।
कौन सो रोग भयो बिछुरे पिय भोग नहीं जिय को बेलमावत।
है फल भावत ना मन - भावने है न लुभावने फूल लुभावत॥२॥

दोहा—

है बिलास की आस नहिँ पास रह्यो सुख कौन।
मोहिँ अभावन-मय कियो मन-भावन तजि भौन॥ ३॥

छन छन छीजत जात तन छबि - बिहीन भो भौन।
मो छतिया मैं ह्वै गयो पति बिछुरत छत कौन॥ ४॥

बरवा—

सूखत याहि अनेसवाँ यह तन हाय।
पिय सों कहत सनेसवा कोउ न जाय॥ ५॥

छुवतहिँ सखिन अँगुरिया जरि बरि जाहिँ।
धधकति बिरह - अगिनिया अंगन माँहिँ॥ ६॥

दाहत देह दुलहिया बिरह - अँगार ।
सीतल होत न अँखियन की जलधार ॥ ७ ॥

## ९—जड़ता

अगो तथा मन के चेष्टाशून्य होने और इन्द्रियो की गति के अवरोध को जड़ता कहते है ।

## उदाहरण

कवित्त—

पतिया छुये ही काहें छतिया छिलन लागी
गात छोरि गई क्यों छबीली-छबि छलकै ।
क्यो है छरि गई क्यो छलावा मै परी लखाति
छूटे केस, क्यो हैं छटा-हीन मंजु अलकै ।
'हरिऔध' कहा भयो कौन सी बही है बायु
काहें लोप भई लोक लोभनीय-ललकै ।
बोलि बोलि के हूँ काहें सकति न बोलि बाल
खोलि खोलि के हूँ काहें खोलति न पलकै ॥ १ ॥

सवैया—

चंपक की लता चारु रही नहिँ क्यों कुँभिलात है बेलि चमेली ।
काहें भई चकि कै जकि कै छकि कै छन मे नव-बाल दुहेली ।
ए 'हरिऔध' बिलोकतही पतिया क्यो भई तिय को तलबेली ।
काहें न खोलति है अँखियान को बोलति काहें नहीं अलबेली ॥२॥

दोहा—

पर की कही नहीं सुनत अपनी कहति न बात ।
तिय है पाहन ह्वै गई किधौं भयो पवि-पात ॥ ३ ॥

हिलत डुलत बोलत नहीं खोले खुलत न नैन।
कहा भयो पतिया पढ़त धरकति छतिया है न॥ ४॥

## १०—मूर्छा

वियोग-दशा में शरीर के दु:ख-सुख का ज्ञान न रहने का नाम मूर्छा है।

### उदाहरण

कवित्त—

जो चित चिता की भाँति चिनगी लगावै चेति
वाते तो अचितित अचित उपकारी है।
जो उर नरक नाना-यातना-निकेतन है
वाकी अनुरागिनी धरा मैं कौन नारी है।
'हरिऔध' बिधि के बिधान ते कहा है बस
या ही ते बतावति बियोग-व्यथा-वारी है।
मीनता मलीन-मीन-केतनता ते है मंजु
चेतना ते चौगुनी अचेतनता प्यारी है॥ १॥

सवैया—

होत है ज्ञान कबौ हित कौ नहिं, गाँठ कबौ हित की जुरि जाति है।
मोह-मयी कबहूँ दिखराति कबौ सब मोहन ते मुरि जाति है।
प्रीति कबौ छलकी सी परै कबौ दीरघ-लोयन मैं दुरि जाति है।
है सियराति अचेत भये तिय चेतन चाँदनी मैं चुरि जाति है॥२॥

दोहा—

दही तिया पतिया पढ़त रही देह-सुधि नाँहि।
पकरि उर छिलत आपनो मुरछि परी महि माँहि॥३॥
कित ते इत आई अरी मंद मंद करि गौन।
मुरछित ह्वै छिति पर परी अहै परी यह कौन॥४॥

## ११--मरण

प्राण-परित्याग का नाम मरण है, वियोगावस्था में चरम नैराश्य की गणना मरण दशा में की जाती है।

### उदाहरण

कवित्त—

परलोक हूँ मै पन पूरो होत काहु को तो
उर को प्रतीति प्रानप्यारे की घनी रहै।
अहित भये हूँ मेरे प्रति - रोम - कूपन मैं
'हरिऔध' प्यारे ही के हित की ठनी रहै।
हौ तो हौ मरत पै मिलत जो मुये हूँ कछू
तो हौ चहौ प्रेम ही की बारुनी छनी रहै।
लगी रहै लोयन कौ ललक बिलोकन की
मुख - अवलोकन की लालसा बनी रहै॥ १॥

ह्वैहै दुखी अँखियाँ हमारी तुमै देखे बिना
आग हूँ बरैगी बार - बार मेरे उर मै।
तेरे कल - बैन बिना कान हूँ न पैहै कल
नीरसता छैहै किन्नरीन हूँ के सुर मै।
अधर तिहारो पान कीने बिना 'हरिऔध'
माधुरी न रहि जैहै सुधा से मधुर मै।
तेरे बिना एरे प्रान - प्यारे ए हमारे - प्रान
पाइहै प्रमोद ना पुरंदर के पुर मैं॥ २॥

सवैया—

काल कराल करालता मै परि छाती छितीसन हूँ की छिली है।
रैहै नहीं अमराधिप से अमरावति हूँ कबौ जाति गिली है।
ए 'हरिऔध' दली जो गई नहिं ऐसी कहाँ कोऊ बेलि खिली है।
जैहै सुधानिधि हूँ कबहूँ मरि काहि सुधा बसुधा मै मिलि है ॥३॥

दोहा—

अंत - समय अनुराग - मय पिय आवहिं जो भौन।
तो मम - जीवन - सम सफल जीवन है जग कौन ॥ ४ ॥

मग जोहत लोचन थके अब रहि जात न मौन।
जिअत मिलहु जो मिलि सकहु मुये मिलत है कौन ॥ ५ ॥

तुम आये नहिं देह तजि पौन करत है गौन।
मम - प्यासी अँखियान को प्यास बुझैहै कौन ॥ ६ ॥

जिअन लालसा है नहीं सुनहु रसिक - सिर - मौर।
अधर - सुधारस - लालची चाहत सुधा न और ॥ ७ ॥

मरत पै चहत मानियहु मेरी इतनी बात।
मम - तन - रज पै पिय कबहुँ रखियहु पग-जल जात ॥ ८ ॥

# करुण रस

## स्थायी भाव–शोक

## देवता–यमराज

## वर्ण–कपोतचित्रित

## आलंबन

प्रिय-बधु, समाज, देश की अपार हानि, स्वजनवृंद का मरण, शोचनीय व्यक्ति, दुःखदग्ध प्राणिसमूह आदि ।

## उद्दीपन

दाह कर्म, प्राणिसमूह की विविध यातना, शोचनीय अथवा दुःख-जनक-दशा का दर्शन, समाज और देश-पतन का निरीक्षण आदि ।

## अनुभाव

भूमि-पतन, रोदन, भाग्यनिंदा, दुःखप्रदर्शन, विवर्णता, उच्छ्वास निःश्वास, स्तंभ, प्रलाप आदि ।

## संचारी भाव

निर्वेद, मोह, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिंता आदि ।

## विशेष

इष्ट के नाश और अनिष्ट की परिपुष्टता अथवा आविर्भाव से इस रस की उत्पत्ति होती है । किसी किसी ने वरुण को इस रस का देवता माना है ।

## उदाहरण

## दिनों का फेर

कवित्त—

रमा - कमनीय - कर - लालित रहे जे लोक
तिनके अमोल - लाल अन्न को ललात हैं।
सुंदर सँवारे जाके सुर से सदन हुते
धरा परे ताके मैन - तारे दिखरात है।
'हरिऔध' फूटे भाग भुवनाभिरामन के
भोरे - भोरे - तात भूमि-भार भये जात है।
जाको बल-विभव बिलोकि लोक - पाल भूले
ताके कुल - बालक बलूने लौं बिलात हैं॥ १॥

पल पल पैहै आज तिनको पतन होत
देव - विभवो ते भौन जिनके भरे रहे।
ताको तात पलत चबाइ तरु - पातन को
परे जो सदैव कल्प - पादप तरे रहे।
'हरिऔध' तेई अंधकूप पाहुने हैं बने
भूप ह्वै स - भीत द्वारे जिनके खरे रहे।
ताको देखि आसन तजत ना गवासन हूँ
सासन ते जाके पाकसासन डरे रहे॥ २॥

धन के कुबेर गये बीते है बराक हूँ ते
सूखि सूखि सुर-तरु बने है तुच्छ तिनके।
साज - बाज जिनको धराधिप ते दूनो हुती
तिनके गिरो है रोम रोम पास रिन के।

'हरिऔध' तेज - हीन तारे हैं तरनि बने
एक से रहे है मेदिनी मैं दिन किनके।
तने बिने तिनके निवास है तरुन तरे
सोने के सदन है सुमेर जैसे जिनके ॥३॥

कलित - कपाल अहै कालिमा - बलित होत
सूखे जात कोमल कमल से बदन है।
लालसा - लसित उर मै है सूल सालि जाति
कसक - प्रतोद मंजु - मोद के कदन है।
'हरिऔध' लोचन हमारे अजहूँ ना खुले
भये बिकराल क्रूर - काल के रदन है।
रतन - समूह भरे सौध बिनसे है जात
सूने परे जात सजे सोने के सदन है ॥४॥

बसुधा मै बंदनीय ज्ञान को बिकास भयो
जाके बेद - गान की मधुर - ध्वनि गूँजे ते।
ताके बश - जात मूढ़ता के तम ते है घिरे
मान हैं रखत माँगि माँगि मान दूजे ते।
'हरिऔध' जाकी भूत - भावना बिभूति हुती
सोई है अपूत, भाव - पूत - उर भूँजे ते।
आज पेट - पूजा ताकी पूजनोय - पूँजी भई
पूजनीय पूजे गये जाके पग पूजे ते ॥५॥

## करुण कथा

कवित्त—

कैसे भला चौगुनो न चित - चैन चूर होतो
क्यो न चंद बदन बिपुल होतो पियरो।

कैसे रोम रोम मै समायो दुख ऊन होतो
कैसे होतो कछुक दहत - गात सियरो।
'हरिऔध' बिधवा-बिलाप जो करत नाँहिं
कैसे भला बावरो बनत तो न जियरो।
कैसे पिक-कूकते करेजो ना मसकि जात
हूक ते न कैसे टूक टूक होतो हियरो ॥१॥

कब लौ निबाह होतो वेदना - बहन करि
कौ लौ करि केते ब्योत काया कॉहिं कसती।
व्रत-उपवास कै बितावति दिवस कौ लौ
कब लौ बचावति विवेचना बिनसती।
'हरिऔध' बार बार बिपुल - बेहाल बनि
कैसे बाल - बिधवा बसुंधरा मै बसती।
मन को मसोस जो न कढ़तो उसास - मिस
उर की कसक जो न आँसू ह्वै निकसती ॥२॥

रूप होते जाको है कुरूपता - कुरोग लगो
कबौ जो कलंक - अक ते न उबरति है।
बारि - धर जाको तन दहत बरसि बारि
जाकी मति मधु - रितु - माधुरी छरति है।
'हरिऔध' ऐसी बाल-बिधवा अभागिनी है
जाको दुख अनुरागिनी हू ना दरति है।
चाँदनी चमकि जाके चित को हरति चेत
जाको चैन चूर चंद - चारुता करति है ॥३॥

ससुर को सुर जाके सुर सो मिलत नाँहिं
जाकी जर सासु ह्वै बिसासिनी खनति है।

देवर के तेवर हैं जाको बेधि - बेधि देत
औगुन - गनन जाके ननद गनति है।
'हरिऔध' कैसे होवै बिधवा व्यथित नाँहि
जाको जाति नाना यातना हित जनति है।
जाकी पति पिता - सम पाता हूँ रखत नाँहि
जाके हित माता हूँ बिमाता सी बनति है ।। ४ ।।

सवैया—

नागिनि-सी भई फूल की सेज दवागिनि-सी उर माँहि बरी है।
मंजु कला-कर काल भयो बिधवा - सुख - साज पै गाज परी है।
सो बिधि क्यो न भई जरि छार अहो 'हरिऔध' जो दाह भरी है।
काहें भई छतिया छत - पूरित काहें छरी गई फूल - छरी है ।।५।।

जाको छबीलो उछाह भरो छलिया - बिधि के छलछंद ते छूट्यो।
जाको सु-जीवन मंजु-हरा भव-कंटक काल के हाथ ते टूट्यो।
ए 'हरिऔध' सुहागिन होत ही जाको सुहाग अभाग ने लूट्यो।
वा सम कौन अभागिनि जाको भये बड़ भागिनि भाग है फूट्यो ।।६।।

## कारुणिकता

कवित्त—

जाकी कुसुमावलि - कलित चितचोर हुती
सोई भूरि - धूरि - भरो भूतल पै परो है।
जाको फल चाखि रही रसना सरस बनी
पात बिनु नीरस ह्वै ताको गात गरो है।
एहो 'हरिऔध' जो अवनि-अंक लाल हुतो
सोई आज काल को कवल बनि अरो है।

ताप-जरो जीव जाते सुखित - खरो है भयो
सोई हरो भरो तरु सूखो, सरो, मरो है ॥ १ ॥

सवैया—

नीले बितान मै हैं न लसे अब है न बसे तम मै बनि न्यारे ।
हैं रजनी के न अंक बिभूखन है न बिलोचन - रंजन - हारे ।
ए 'हरिऔध' न हीरक से अब है बिलसे बर - जोति - बगारे ।
तेज - बिहीन ह्वै धूरि - भरे महि मै है परे बिखरे नभ - तारे ।

## मर्म्म-व्यथा

कवित्त—

आवत है दूर ते बिमोहित बिपुल बनि
भावतो न मानतो अभाव को तो हरतो ।
तन - मन - वारि भूरि - भावरैं भरत हेरि
रीझ जो न जातो भले - भाव ते तो भरतो ।
'हरिऔध' कहै एरे दीप तू दिपे है कहा
लोक ते नही, तो परलोक ते तो डरतो ।
देह क्यो दहत है पतंग जैसे प्रेमिक को
नेह भरो ह्वै कै क्यो सनेह है न करतो ॥ १ ॥

सवैया—

चंद चकोर को चाहै नहीं पै चकोर है चंद को चाहि निहारत ।
नीर कबौ नहिँ मानत मीन कौ मीन है नीर ते जीवन धारत ।
ए 'हरिऔध' अनेही कबौ नहिँ नेह कै नेहिन कॉहि निहारत ।
है न पयोद पपीहरा प्रेमिका प्रान पपीहा पयोद पै वारत ॥२॥

## लोचन-विहीनता

कवित्त—

जाति - दयनीय - दसा देखि दुख होत नाँहि
लोच - भरी - बात पै रहत ललचाये है।
हित को अहित औ अहित को कहहिं हित
पेच - पाच - वारे पेच पाच पै लुभाये है।
'हरिऔध' भूल ही पै भूल है करत जात
अजहूँ लिलार - लेख को न भूल पाये है।
कोरे बनि करहिँ निहोरे करजोरे रहैं
भोरे-भोरे-भाव भोरे - हिंदुन को भाये है ॥ १ ॥

जगत मै जाकी जगमगत सु - जोत रही
वाकी जाति - वारे नॉहिं जागत जगाये हैं।
तेज - हीन भये जात तात तेज - वारन के
जीवन - बिहीन जग - जीवन के जाये हैं।
'हरिऔध' आज तिल ताल तिनहूँ को भयो
कबहूँ तिलोक के जे तिलक कहाये है।
भरत के पूत हूँ उभारे उभरत नाँहिं
भारतीय भोरे - भोरे भाव पै लुभाये है ॥ २ ॥

तंत कै कै हिंदुन को अंत जो न दैहै करि
कैसे तो दिगत मॉहिं कीरति बितरिहै।
कैसे भारतीयता - बिभव को बिकास कैहै
भूति जो न भरत - कुमारन की हरिहै।
'हरिऔध' देस प्रेमपाग मै पगैगे किमि
जो न जाति-लालसा लहू सो हाथ भरिहैं।

कैसे कुल-कमल कहाइहै कमाल करि
कुल को कलंक ते कलंकी जो न करिहै ॥ ३ ॥

सवैया—

केते कलंक भयो के भये बलि केते गये गरिमा ते गिले है ।
ऐसे धरा मै अनेक धँसे जिनके मुख-पंकज हूँ न खिले है ।
छीजि गये अजौ छीजत जात तऊ हिय पाहन से न हिले है ।
घूर पै फूल-से-बाल मरे बहु धूल मैं लाखन लाल मिले है ॥४॥

## विनय

सवैया—

औगुन के ही रहे बन औगुनी नाँहिँ गुनी गुन की गरुआई ।
औरन पेरि भई पुलकावलि जानि परी नहिँ पीर पराई ।
आकुल भो 'हरिऔध' कहाँ अवलोकत ही जनता अकुलाई ।
देखि भरी दुखिया-अँखियान की है न कबौ अँखिया भर आई ॥ १ ॥

आँखि-बिहीन हौ आँखिन आछत नाथ कबौ अँखिया मत फेरो ।
मो मति पगु भई है, मया करो अध औ पंगु को पथ निबेरो ।
है 'हरिऔध' तिहारो न और को जैहै कहाँ तजि कै पग तेरो ।
मो करनीन ते काज कहाँ करुना करिकै करुनाकर हेरो ॥ २ ॥

## विपत्ति-वासर

दोहा—

जल सूखे, असरस भयो, सरसिज नाँहिँ लखाहिँ ।
कैसे बिसर न जाँय खग ऐसे सरवर काँहिँ ॥ १ ॥

दूर भई सब मंजुता ताकत नाँहिँ मिलिद ।
अवनीतल पै है परो धूरि भरो अरबिंद ॥ २ ॥

मिलत नहीं फल फूल दल रही न छाया आस ।
कैसे आवै खग सकल सूखे - तरु - वर - पास ।।३।।

झरि सूखे रज मै मिले भये काल प्रतिकूल ।
न्यारी लाली रखत हे लाल लाल जे फूल ।।४।।

जिन मैं तरु - वर लहलहे रहे महा - छबि देत ।
है उजरे सूखे परे हरे भरे ते खेत ।।५।।

## मनोव्यथा

दोहा—

कब तोको निरखत नहो पपिहा प्रीति - समेत ।
घन तू पाहनता करत जो पाहन हनि देत ।।१।।

कत चमकावत बारि - धर चपला - मिस तरवारि ।
चाहत केवल बूँद द्वै चातक चोंच पसारि ।।२।।

आजु कालि मै लेहु सुधि मरत जिआवहु पालि ।
घन तब जल बरसे कहा सूखि गयो जब सालि ।।३।।

हरो भरो मरु नहि भयो बुझी न चातक - प्यास ।
घन तो बरसत वारि कत जो जरि गयो जवास ।।४।।

## अकरुण चित्त

दोहा—

कोऊ चितवत चित्त दै कब चाहक की ओर ।
अछत चारु कर चंद के चिनगी चुगत चकोर ।।१।।

कहा नेह करि कीजिये भलो न नेही संग ।
दीपक के देखत दहत अपनो गात पतंग ।।२।।

कैसे तानत बान तू छोड़ि मनोहर तान ।
रंग रखत कैसे बधिक हरि कुरंग को प्रान ।।३।।

जो जानत जन तोरिहै लखि सुखमा - सुखमूल ।
तो काहे को फूलतो कबहूँ कोऊ फूल ॥४॥
कहा मनोहरता मिले पाये सरस - सुबास ।
मधुप न मोहत तो कहा सुंदर - सुमन - बिकास ॥५॥

## बेचारे बिहंग

दोहा—

बसत बिपिन मै खात फल पिअत सरित - सर - नीर ।
तिन बिहगन कहँ बेधहीं मारि बधिक - गन तीर ॥१॥
काहे बिधि सुंदर कियो दियो सुहावन - रंग ।
बधिक - बान बेधत रहत जो बिहग को अंग ॥२॥
तीखे बानन ते बिधत कुसुम - मनोहर - अग ।
चित्रित पर लै का करै ए बापुरे बिहंग ॥३॥
बसुधा मैं बेधत बधिक गहत गगन मै बाज ।
कहाँ जाय बिहरै बसै बेबस बिहग - समाज ॥४॥

## अंतर्वेदना

दोहा—

जाते आलोकित बनै तिमिर - भरे सब ओक ।
कबहूँ फिर अवलोकिहै भारत वह आलोक ॥१॥
गई आँखि हूँ जाहि लहि जोहन - वारी होति ।
कहा कबौ फिर जागिहै जाति माँहि सोइ जोति ॥२॥
जाते बहु - बिकसित बनत जनजन, पूजे आस ।
का कबहूँ ह्वैहै न फिर वैसो सरस - विकास ॥३॥

# अद्भुत

## स्थायी भाव—विस्मय अथवा आश्चर्य

## देवता – ब्रह्मा

## वर्ण – पीत

## आलंबन

अलौकिक-वस्तु असभवित-व्यापार लोकोत्तर-कार्यकलाप विचित्र दृश्य आदि ।

## उद्दीपन

लोक-चकितकर-कार्य-कलाप, वस्तु और व्यापारों का दर्शन, गुण-श्रवण महिमा-निरूपण, वैचित्र्य-अवलोकन आदि ।

## अनुभाव

स्तभ, स्वेद, रोमाच, गद्‌गद स्वर, सभ्रम, नेत्रविकास आदि ।

## संचारी भाव

वितर्क, आवेग, भ्राति, हर्ष, औत्सुक्य, चाचल्य आदि ।

## विशेष

किसी किसी ने इस रस को देवता गधर्व माना है ।

## रहस्यवाद

### मनहरण

कवित्त—

छबि के निकेतन अछूते - छिति छोर माँहिं
काकी छबि - पुंजता छगूनी - छलकति है ।
बन उपबन की ललामता ललाम ह्वै ह्वै
काकी लखि ललित - लुनाई ललकति है ।
'हरिऔध' काको हेरि पादप हरे हैं होत
कुसुमालि काको अवलोकि पुलकति है ।
कौन बतरै है बेलि माँहिं काकी केलि होति
कली कली माँहिं काकी कला किलकति है ॥१॥

मंद मंद सीतल - सुगंधित - समीर चलि
कत प्राणि - पुंज को पुलकि परसत है ।
भूरि - अनुराग - भरी ऊषा को कलित अंक
कत प्रति - बार ह्वै सराग सरसत है ।
'हरिऔध' अंत ना मिलत इन तंतन को
कत ह्वै सुहावनो दिगंत दरसत है ।
काकी सुधा - धार ते सुधाकर सरस बनि
सारी - बसुधा पै न्यारी - सुधा बरसत है ॥२॥

लहलहे काको लहे - उलहे - बिटप होत
कासो हिले लतिका ललाम ह्वै ह्वै हिलती ।
काके गौरवों ते गौरवित ह्वै लसत गिरि
धन - रासि धरा काके बल सो उगिलती ।
'हरिऔध' होतो लोक मैं न लोक-नायक तो
कलिका कुसुम की बिलोकि काको खिलती ।

दमक दिखाति काकी दमकति - दामिनी मैं
चाँदनी मै चंद मैं चमक काकी मिलती ॥ ३ ॥

एक तिनके ते है अनंतता विदित होति
पथ - रज - कन हूँ कहत 'नेति' हारे हैं।
सत्ता की महत्ता पत्ता पत्ता है बताये देति
काल की इयत्ता गुने लोमस, बिचारे हैं।
'हरिऔध' अनुभूति - रहित बिभूति अहै
बिभव-पयोधि-वारि-बिंदु लोक सारे हैं।
अव - तन मैं है भूरि भूरि रवि सोम भरे
बिभु रोम रोम मैं करोरो ब्योम-तारे हैं ॥ ४ ॥

देहिन को सुखित सनेहिन - समान करि
पंखे अति - मंजुल - पवन के हिलत हैं।
चंद के मनोरम - करनते अवनि काज
चाँदनी के सुंदर बिछावने सिलत हैं।
'हरिऔध' कौन कहै काके अनुकूल भये
सीपन मैं मोती मनभावने मिलत हैं।
कीच माँहिं अमल - कमल बिकसित होत
धूल माँहिं सुमन - सुहावने खिलत है ॥५॥

काल - अनुकूल कैसे कारज - सकल होत
पिक कूके कैसे सारो ककुभ उमहतो।
विकसित कैसे होति कला कुसुमायुध की
कैसे लहराति लता पादप उलहतो।
'हरिऔध' हेतु-भूत सत्ता जो न कोऊ होति
कुसुम - समूह कुसुमाकर क्यो लहतो।

बैहर क्यो डोलति बहन कै मरंद भार
मलय - समीर मंद मंद कैसे बहतो ॥ ६ ॥

फूल खिले देखे कै बिलोके हरे - भरे - तरु
भूलि निज - भाव ललचाई ललकै थकीं ।
जा थल दिखातो लोक-लोचन छबीलो लाल
औरै छबि देख वॉ उमंग - छलकै छकी ।
'हरिऔध' उत भव - हित मैं लुकत हरि
इत मुख-मुख जोहि जोग - जुगते जकीं ।
कित है लसे न बिलसे न दृग सौहै कबौ
ऑखि मै बसे हूॅ ना बिलोकि ॲखियॉ सकीं ॥ ७ ॥

बसि घर बार मै बिसारे घर बारिन को
घरी घरी बचि घेर घारन के घेरे ते ।
तम मै उॅजारो किये उर को उॅजारो लहि
देखे जग - जीवन के जीवन को नेरे ते ।
'हरिऔध' कहै भेद खुलत अभेद को है
सारे - फेर - फारन ते मानस को फेरे ते ।
कानन के कानन की बातन को कान करि
ऑखिन की ऑखिन को ऑखि मॉहिं हेरे ते ॥ ८ ॥

## नैश गगन

कवित्त—

आलोकिक उजरे सुनहरे सुहावने हैं
कारे पीरे नीले हरे भूरे रतनारे है ।
नयन - बिमोहन बिचित्रता - निकेतन है
बिधि - कमनीय - कंज - कर के सॅवारे है ।

'हरिऔध' बिभु-बिभुता के है अनंत ओक
लोक - अनुरंजन के सहज सहारे है।
तेज-तोय-निधि के बबूले - • चमकीले चारु
व्योम-तरु - तोम के फबीले - फूल तारे है ॥ १ ॥

प्रकृति - असीमता - अनंतता के अंकुर हैं
आकर है अमित - प्रभाकर के थल के।
बिपुल - अलौकिकता - ललित - निकेतन है
केतन है लौकिक - ललामता महल के।
'हरिऔध' बिभु की बिभूति ते बिभूति-मान
बैभव है मूल - भूत साधन सकल के।
दिवि के दुलारे लोक - प्यारे तेज पुंज-वारे
सुथरे - सँवारे सारे तारे नभतल के ॥ २ ॥

कोटि कोटि कोस को है अंतर सितारन मै
लाख लाख कोस माँहि काया निवसी अहै।
अवलोके गये नाँहिं अजहू कई करोर
मति अजौ कोटिन की थिति मै फँसी अहै।
'हरिऔध' गिने नाना - तारन - कतारन के
अरब खरब की विवृति बिनसी अहै।
तारे है अनत - या अनंत नभ-मंडल मै
एक एक तारे सै अनंतता बसी अहै ॥ ३ ॥

कोटि-कोटि-तारे भिन्न भिन्न रंग - रूप - वारे
विपुल वगारे जोति बगरे अरे अहैं।
कोटि कोटि छन छन छीजत बनत जात
जगत - जवाहिर से कोटिन जरे अहै।

'हरिऔध' कोटि कोटि दिवि-पति देव
कोटि कोटि धाता पाता अंक मैं परे अहैं।
सारे - बिभा-वारे के समूह को सहारे दै दै
भारे - भारे - भूरि-भानु नभ मै भरे अहै ॥ ४ ॥

किधौ हैं अनंत मै अनंत-वायु - यान उड़े
प्रकृति - बधू के किधौ लोचन के तारे है।
नंदन - बिपिन तरु के है किधौ दिव्य-फल
किधौ कल्प - पादप प्रसून - पुंज प्यारे है।
'हरिऔध' किधौ है बिमान दिवि देवन के
उड़हिं पतंग कै पतंगम ए सारे हैं।
रतन पसारे है कि पारे के सँवारे - पिंड
अनल - अंगारे किधौ न्यारे - नभ-तारे है ॥ ५ ॥

सागर, सरित, सर, बन, उपबन, मेरु,
धन, जन, बिपुल बहन कै अभै से हैं।
पल पल भ्रमत रहहिं बिकसहिं भूरि
दिव्यता - निकेतन बतावै किमि कैसे है।
'हरिऔध' लाख लाख कोस को कलेवर है
तारक - विमान मंजु आप आप - जैसे है।
बड़े - बेग - वान छबि - मान तेज के निधान
आन नभयान, ना जहान माँहिं ऐसे हैं ॥ ६ ॥

किधौ नील - अंबर मैं सलमा, सितारे टँके
किधौ नभ - अंक मै अनंत जोति जाल हैं।
स्यामल चँदोवे के किधौं है चमकीले-बिंदु
किधौ मान - सर मैं कलोलत मराल हैं।

'हरिऔध' किधौं ताल माँहिं है कमल फूले
किधौं तम - तोम माँहिं बरत मसाल हैं।
तारक कै निसि-कंठ - माल के मुकुत - मंजु
खेलत कै दिवि मै दुलारे देव - बाल हैं ॥७॥

हीरक लुभात हेरि सेतता सितारन की
वारति ललाई लाल - तारन पै गुंजता।
तारक - अवलि अवलोकि मोहि मोहि जाति
नंदन - बिपिन-कुसुमों की कल - कुंजता।
'हरिऔध' मंजुता कथन मै कला - कर की
मानव चकित होत हेरि मति - लुंजता।
छहरि छहरि छके - नैनन को छोरे लेति
तारों-भरी राति की अछूती - छबि-पुंजता ॥८॥

कतहूँ प्रकृति की अछूती - छटा छहरति
कहूँ देव - बाला मंजु- मंडली हँसति है।
कतहूँ दिखाति है कतार तारकावलि की
कहूँ जगी-जोति सुधा - धारा मैं धँसति है।
'हरिऔध' ताकी अलौकिकता बतावै कौन
जामैं सारी-कांति कांति-कांत की बसति है।
बहु - रबि-ससि ते ललित ओक ओक अहै
नभ मैं ललामता त्रिलोक की लसति है ॥९॥

## विचित्र चित्र

कवित्त—

दिवि है अदिवि उत देव हूँ अदेव अहैं
वाकी न्यारी - जोति अहै जगत जहाँ नहीं।

वाको तेज जित को हरत तम - तोम नाँहिँ
तेज बितरत है तरनि हूँ तहाँ नही ।
'हरिऔध' जहाँ पै न रस सरसत वाको
सरस मिलत सरि सर हूँ वहाँ नही ।
तीनो लोक माँहिँ रंग रंग की कलाये करि
मन की तरंग है तरंगित कहाँ नहीं ॥१॥

मरो जन हेरत न भुवन - बिभूति काँहिँ
जोहत न भानु जोति भव मै पसारे है ।
सूँघत न सुनत न गहत कहत कछु
काठ - सम रहत बिचारन ते न्यारे है ।
'हरिऔध' नाँहिँ अनुभवत परस पौन
सारी - अनुभूतिन ते रहत किनारे है ।
जीवन - बिहीन - जन को न जग-भान होत
जगत की सत्ता जीव - जीवन सहारे है ॥२॥

कहूँ तरु हिलत लसति तृन - राजि कहूँ
कुसुम खिलत कहूँ बेलि उलहति है ।
नाचत मयूर कहूँ गान है करत भृंग
कलित कथान कहूँ सारिका कहति है ।
'हरिऔध' कतहूँ कलोलत है मृग - यूथ
प्रकृति - बधूटी कहूँ नटति रहति है ।
कहूँ रंग रंग के कमल सों लसे हैं सर
कतहूँ तरंग - वती सरिता बहति है ॥३॥

कहूँ रस - धारा कहूँ बहति रुधिर - धारा
कोऊ कुम्हिलात कोऊ कंज लौं खिलत है ।

कहूँ है मसान कहूँ सरग बिराजमान
कोऊ बिहँसत कोऊ बेत लौं हिलत है ।
'हरिऔध' बिधि - करतूति बहु - रंगिनी है
कहूँ राग - रंग कहूँ हियरा छिलत है ।
कतहूँ अराजक, है राजत स्वराज कहूँ
कोऊ राज लेत कोऊ रज मैं मिलत है ।। ४ ।।

आगि लगि जाति है जवासन के तन मॉहिं
बिदहत अरक - दलन अवलोके है ।
पी पी कहि बारि पी न सकत पपीहरा है
पवि के प्रहार हूँ रुकत नॉहिं रोके है ।
'हरिऔध' पावस मैं निसि तम-तोम मॉहिं
बरत प्रदीप पादपन पै बिलोके है ।
बारिद बहावत सुधा है बसुधातल पै
बरसत मोती मंजु - मारुत के झोके है ।। ५ ।।

हंस को गयंद औ गयंद हंस होत हेरे
रंभा के सु - खभ बारिजों पै गये रोके है ।
चंपक की कलित - कलीन मॉहिं तारे मिले
भुजग कलभ - कर मॉहिं अवलोके है ।
'हरिऔध' मंजुल जपा - दल बनत लाल
गहब गुलाबन पै मोती गये लोके है ।
कंजन मैं ललित - लुकंजन लसत देखे
बिधु मै चपल युग - खंजन बिलोके हैं ।। ६ ।।

अनुकूल रहि प्रतिकूलता करहिं नित
वचन - रसाल कहि खीचि लेत खाल है ।

'छल' ना करहिँ पै करेजो छीलि छीलि देहिँ
राखत कपाल बानि लेत बाल बाल है।
'हरिऔध' का है ए स्वराज तरु-आलबाल
सुमन की माल कै भुजंग - बिकराल है।
जाति - हित - ढाल किधौं हितू कंठ-करवाल
हिंदू - कुल - लाल किधौं हिंदू-कुल-काल है ॥ ७ ॥

मंदिर बिलोकि कै पुरंदर सिहाने रहै
पास सदा इंदिरा को आसन परो रहै।
सारे-लोक पिसैं पावै कन ना पिपीलिका हूँ
पै प्रभूत - धन धरा - धिप लौं धरो रहै।
'हरिऔध' चाहत है भोरे - भाग वारे यहै
छूवै ना छदाम द्वारे धनद खरो रहै।
भावते अभाव हरि भोला - नाथ भूले रहै
भवन सदैव भूरि - बैभव - भरो रहै ॥ ८ ॥

दोहा—

है लौकिकता - रहित हरि परम अलौकिक चीज।
है बारिद - भव - सालि को जगत - बिटप को बीज ॥ ९ ॥

चित - अलि कत भरमत रहत कहाँ नहीं है बास।
बिकसित - कुसुमन मैं अहै काको सरस - बिकास ॥१०॥

कहाँ नहीं निवसत अहै सकल - लोक - अभिराम।
लखन जोग लोयन लखत वाको रूप - ललाम ॥११॥

आलोकित वाको करै मिल्यो न वह आलोक।
लोक छोरि परलोक को कत अवलोकत लोक ॥१२॥

तीनो लोकन मैं, फिरे देखे तीनों काल।
कहि पायो परलोक को को अवलोकित - हाल ॥१३॥

हित चाहै पर अहित करि दै दै पूजा भूरी।
हरि आँखिन हूँ मैं अधम झोंकन चाहत धूरि ॥१४॥

का जग है काहें भयो कहा हेतु का काम।
कौन बनैहै कौन है या मंदिर को राम ॥१५॥

बाँधन हित भव - उदधि मैं सत - रज - तम को सेतु।
है त्रि - देव की कल्पना एक देव के हेतु ॥१६॥

प्रेम - पिपासा है बढ़ी चित प्रति - दिन पवि होत।
पारावार तरन चहत रचि पाहन को पोत ॥१७॥

कैसे अनुरागी बनै है न राग - मय अंग।
'लाल' न, कारो चित भयो लहै लाल को रंग ॥१८॥

# हास्य

## स्थायी भाव—हास

## देवता—प्रमथ अर्थात् शिवगण

## वर्ण—श्वेत

आलंबन—विकृत आकार, विचित्र वेशभूषा और अनुपयुक्त वचन आदि के आधार।

उद्दीपन—विचित्र स्वरूप, अव्यवस्थित वेशभूषा व आकार प्रकार, टेढे मेढे वचन और हृदय में गुदगुदी उत्पन्न करनेवाले अंगभंगी, भाव आदि।

अनुभव—नेत्रो का मुकुलित और वदन का विकसित होना, मध्य अथवा ऊँचे स्वर से हँसना, खिलखिलाना आदि।

संचारीभाव—निद्रा, आलस्य, हर्ष, चपलता आदि।

## विशेष

किसी किसी ने स्थायी भाव हास का छ भेद माना है, यह युक्तिसंगत नही। सभी स्थायी भाव वासनारूप हैं अतएव अंतःकरण मे उनका स्थान है, शरीर में नही। स्मित हसित, विहसित अवहसित, अपहसित और अतिहसित के नाम और लक्षण बतलाते हैं कि उनका निवासस्थान देह है, अतएव ये हसन क्रिया के ही भेद है।

## उदाहरण

## कांत कल्पना

कवित्त—

कारे कारे अहि ते कपाल परि - पूरित है
अलि की अवलि आली अलक-लुरी की है।

बरछी बिसारे - बान - बलित बिलोचन है
अधरहिँ लाली मिली बिबता बुरी की है।
'हरिऔध' गात मैं बसत करि केहरि है
कुरुचि ते चूर भई चारुता चुरी की है।
कैसी कमनीय - कामिनी की कमनीयता है
कल्पना मधुर कैसी रूप - माधुरी की है ॥ १ ॥

सवैया—

साँप से केस भवैं करवार सी है अँखियाँ सफरीन सी नाची।
सीप से कान, है नासिका कीर सी, बिबता है अधरान मैं राची।
कंबु सो कंठ उरोज है मेरु से लंक मृनाल के तंतु सी बाँची।
चारुता है कै अचारुता है यह चंद - मुखी किधौं कोऊ पिसाची ॥२॥

## परिहास-परायण

कवित्त—

कामुक - कुजन जो कुजनता के काज कैहै
सहज - मना तो क्यो सहज-साज सजिहै।
कुरुचि - निकेतन जो 'बोइहै कुरुचि - बीज
सुरुचिवती तो क्यो सुरुचिता न तजिहै।
'हरिऔध' कोऊ असरलता निबाहिहै तो
सरला - परम क्यों सरलता को भजिहै।
निपट - निलज जो निलजता दिखाइ है तो
नारी-लाज-वारी कौ लौं लाज कै कै लजिहै ॥ १ ॥

सवैया—

सामने होति नहीं अँखियाँ मुँह फेरि सुनावत बैन रसीले।
आनन जोहत बासर बीतत मोहि रिझावत खोजि वसीले॥
ए 'हरिऔध' मरोरत भौंह नचावत नैनन को करि हीले।
कोऊ लजीली लजै है कहाँ लगि आप ही जो है लजात लजीले॥२॥

## घुड़की धमकी

कवित्त—

आँखि दिखराइहै तो दुगुनी दिखैहौ आँखि
पर-चित-चोरन की कसर निकारिहौ।
रार जो मचैहैं तो तिगूनी तकरार ह्वैहै
पीछे परे बार बार पकरि पछारिहौ।
'हरिऔध' मान किये बनिहौ गुमानिनी हौ
कैसे भला नारी ह्वै अनारिन ते हारिहौ।
गारिहौ गरब सारो गोरे-गात-वारन को
मरद-निगोरन की गरमी निवारिहौ॥१॥

मंद-मंद हँसि मंजु-बैनन सुनैहै नाँहि
चित हूँ न चंचल-चितौनन ते चोरिहैं।
लोल-लोल-लोयन ते मानस लुभैहै नाँहि
भौंह हूँ न भाव-साथ कबहूँ मरोरिहै।
'हरिऔध' नर है नकारे तो नकारे रहैं
नारि हूँ नरन ते तमाम नातो तोरिहै।
अब चाव साथ बैठि रुचिर-अगारन मैं
गोरे गात-वारन को गोरी ना अगोरिहैं॥२॥

आदर न पैहै तबौ बार जो बितैहै खरे
तबौ ना लुभहै जो मनो - भव लौ लसिहैं।
सहज - सनेह के न भाजन बनैंगे तबौ
मंद - मंद मोहक - मयक लौ जो हॅसिहै।
'हरिऔध' अकम तजत ना अकम - वारो
कसे काहि कब लौं कसौटिन पै कसिहैं।
कबौं काहू कामिनी नयन मैं बसे तो बसे
नर अब नारि के नयन मै न बसिहैं॥ ३॥

सरस - बदन - वारी बिरस - बदन ह्वैहै
गुनन - गहन - वारी औगुन को गहिहै।
उपहास कै है मंद - मंद - बिहॅसन - वारी
नेह - गेह - वारी - नेह - गेहता न लहिहै।
'हरिऔध' पति - परतीति मै न प्रीति रहे
राग - मयी महि मैं बिराग - धारा बहिहै।
पिक - बैनी पिक - बैनता ते पुलकैहै नॉहि
मृग - नैनी - मृग - नैनता ते रूसि रहिहै॥ ४॥

मोहक - मधुर - प्रेम मलय - समीर लगे
कामना की बेलि नॉहि मंद - मंद हिलिहै।
नदन - बिपिन - सम - मानस - मनोरम मैं
मजु - भाव - पारिजात-कुसुम न खिलिहै।
'हरिऔध' कांत को अकांत अवलोकि है तो
मृदुल - करेजो कुल - कामिनी को छिलिहै।
कोमलता कमल - बदन की न काम ऐहै
कनक लता मै कमनीयता न मिलिहै॥ ५॥

## सबला अबला

कवित्त—

सास औ ससुर मैं न नेह जो भयो तो कहा
दृग मैं सनेह - मयी जब महि सारी है।
माता और पिता के मनाये और माने कहा
मानवी को जब मंजु - मानवता प्यारी है।
'हरिऔध' मानै क्यों समाज-जीति मान-वारी
वाने जब समता की ममता पसारी है।
पूजि पूजि पद प्रेम - रंग - रँगे - प्रेमिन को
बिना पति पूजे पूजनीय होत नारी है॥ १॥

कैहौ सावधान ह्वै स्वतंत्रता - सुरा को पान
कौ लौं परतंत्रता कसैलो - रस चखिहौ।
हरिहौ गुमान मगरूरी - अविचारिन को
परम - अनारिन कौ नारी हूँ परखिहौ।
देखि 'हरिऔध' बंक-भौंह ना सकैहौ नेक
मुख ना कलक - अंक-अकित के लखिहौं।
वे - परद ह्वैहौ ना निवारि सारे - परदान
चादर उतारि लाज - चादर मै रखिहौ॥ २॥

जुलमी - नरन के दुसह - जुलमन काँहि
आजु लौ सह्यो तो सह्यो अब नाँहि सहिहै।
देखिहै न आँख कबौ फूटी-आँखि-वारन को
या हू को न सोच है कि कोऊ कहा कहिहै।
'हरिऔध' ढाहि ढाहि भीतन अभीत ह्वैहै
टूक टूक करि परदान को उमहिहै।

नाचिहै उघरि जो उघारन न मुख पैहै
बंद कौ लौ घरनी घरन माँहि रहिहै ॥ ३ ॥

सवैया—

प्रीति न कैहैं कबौ परदान ते नीति - पुरातन ना प्रतिपालिहै ।
लाख करौ कोऊ पै कुल-लाज को लोयन-कोयन माँहि न लालिहै ।
जो कहिहै 'हरिऔध' कबौ कछु सूल लौ तो तेहि के उर सालिहै ।
घूँघट घालि लै घूँघट - लोलुप घूँघट - वारी न घूँघट घालिहै ॥४॥

## पुष्प वर्षा

कवित्त—

लंबी लंबी - बतियाँ सुनी है लालसाये भरी
सुफल न लाये नेह - बीज देखे बोके है ।
चूर चूर किये केते अरुचिर - चावन को
चूके बिना चित के चपल - भाव रोके है ।
'हरिऔध' बाला है अचल लौ अचल ताहि
नाहि बिचलाते चाल-मारुत के झोके है ।
बार बार लाली अवलोकी है कपोलन की
लालन के लाल-लाल-लोयन बिलोके है ॥ १ ॥

अखिल-छबीले है छबीली-छबि-अनुरागी
रस - मयी रसिका के रसिक बसेरे है ।
मधु-मयी मधु की मधुरता पै मोहित ह्वै
मधु - लोभी करते मधुप - सम फेरे है ।
'हरिऔध' कैसे नारि - समता करैगो नर
रूपसी मै रत रूप - वारे बहुतेरे है ।

लाल सब लोच-वारे-लोचन के लालची है
कामुक - सकल काम - कामिनी के चेरे है ॥ २ ।

छबि के निकेतन है छबि के सहारे बने
तन मै नवलता लसावति नवेली है ।
मोहकता मिली जोहि जोहि मोहनी को मुख
गौरव गहाइ देत गरब - गहेली है ।
'हरिऔध' नरता की नारिता सजीवन है
नारि के सनेह ही ते साहिबी सहेली है ।
अलबेले याहि ते रहत अलबेले बने
अलबेलेपन मैं बसति अलबेली है ॥ ३ ॥

भामिनी के ओप-वारे भाल के बिमल-भाव
तम - वारे मानस के मंजुल - अँजोर है ।
घन-रुचि-रुचिर चिकुरवारी-कामिनी के
कामुक - निकर - कमनीय - तन - मोर हैं ।
'हरिऔध' सकल - सरस - चित चाव-साथ
सरसा के कलित - रसों मैं सराबोर हैं ।
चखन की कोर चितचोर की है चितचोर
चंद-मुख-वारे चंद - मुखी के चकोर है ॥ ४ ॥

सवैया—

बंदी ललाम न कैहै लिलार को जो न बनी रहिहै मुख-लाली ।
जो है बिलासिता की जननी तो न कानन माँहिं बिराजिहै बाली ।
बाजिहै ना पग - नूपुर हूँ यदि मानवता बनिहै मतवाली ।
दूखित ह्वै है बिभूखन ते तो बिभूखित ह्वै है न भूखन-वाली ॥५॥

## अधजल गगरी

कवित्त—

बालपन ही ते जो न बानरता बादि देति
लोग क्या न तारी दै दै बानर तो कहते।
दूर जो न करति बिपुल पसु की सी बानि
कैसे तो न पसुता - तरग ही मैं बहते।
'हरिऔध' गहते न गैल मनुजातन की
बहॅके गरूर - वारे गौरव न लहते।
नारी को परखि कौन हरति अनारीपन
नारी जो न होति तो अनारी नर रहते ॥१॥

## सच्चे जाति-हितैषी

सवैया—

है जनता को जगावत जागि कै पै नहीं जागि सकी मति सूती।
है अवनीतल के उपकारक छाँह नहीं कुल - प्रीति है छूती।
जाति रसातल जाति चली पै कहावत है जग मैं करतूती।
सारत काज सपूत समान हैं का है सपूत की और सपूती ? ॥१॥

'वा' नरता को करेजो निकारिहौं नारिता की जर जो खनती है।
'वा' बिधी के उर हूँ को बिदारिहौं जो बिधि-बामता मैं सनती है।
ए 'हरिऔध' कबौ नहिँ मानिहौं 'छूटी न' गाढ़ी अजौ छनती है।
तो सधवा करिहौं बिधवान को जो सधवा, बिधवा बनती है ॥२॥

## नेता

सवैया—

जाति मैं बोअत आगि रहै कुल मैं हैं बिरोध की आग जगावत।
आग लगाइ कै दूर खरे रहि ब्योंत बुझावन के है बतावत।

है 'हरिऔध' बने अगुआ पर आग ही के उगिले सुख पावत।
है सुलगावत देस मैं आग तऊ मुँह मैं नहीं आग लगावत ॥१॥

नाम से काम बड़ो बडी बात बड़े कपटी तऊ उन्नत चेता।
चौंकत पातन के खरके पग फूँकि धरै पै बनै जग-जेता।
है धँसे जात धरातल माँहि कहावत लोक मैं ऊरध - रेता।
जोरत प्रीति अनीति न छोरत नीति न जानत नाम है नेता ॥२॥

## सच्चे बीर

कवित्त—

अपनी अधम-रुचि रुचि-कर-बेलि काँहि
बालिका-रुधिर-धार ही सो सदा सींचिहौं।
तनिक न ह्वैहौ दुखी तिय - तन - तापन ते
देखि महा - पापन को नयन, न मीचिहौं।
नाम मेरो सुने नाक नरक सिकोरिहै तो
यमराज - दंड सौंहै बनिहौ दधीचि हौं।
खोलिहै जो मुँह तो तुरंत ऐंचि लैहौं जीह
बोलिहै जो बाल-बिधवा तो खाल खींचिहौं ॥१॥

सवैया —

हैं मिटे जात पै आँखिन खोलत हैं बहे जात पै देत हैं खेवा।
हैं सग को कबौं बात न पूछत है ठग काँहि खिआवत मेवा।
है सनमान बिसासिन-नारि को है चली जात रसातल बेवा।
देस को सेवक दूसरो कौन है दूसरी कौन है देस की सेवा ॥२॥

ऊँची न कैसे रखैं अँखियाँ बने ऊँच है नीचन काँहि चपेटे।
औरन को किमि मान करै जब मान मिल्यो मरजाद के मेटे।
माहुर है पै बने मधु - मान हैं, हैं फन साँप के फूल लपेटे।
कैसे न दूर बड़प्पन सों रहैं, है बड़े औ बड़े बाप के बेटे ॥३॥

## सच्चे सपूत

सवैया—

पूत हौ, काहु को दास नही अपनो पद कैसे नहीं पहिचानिहौ।
एक पढ़ो लिखो, मूढ़ है दूसरो, कैसे समान दुहून को जानिहौ।
जो 'हरिऔध' भई मन की नही कैसे भला तो नहीं हठ ठानिहौ।
बाप के मानन की कहा बात मै बाप के बाप हू को नहि मानिहौ॥ १॥

कोऊ नवीन नवीनता को तजि कैसे पुरातन-पथ गहैगो।
याको करै परवाह कहा लगि बाप जो वाहि कपूत कहैगो।
ए 'हरिऔध' सपूत कहा करै कैसे भला अपमान सहैगो।
बात के माने नहीं मन मानिहै बाप के माने न मान रहैगो॥ २॥

का करै पूत बड़ो सुखिया जननी जो रहै दुखिया बनि भूखी।
वाको भला कबौ कैसे मिले कछु दैव बनाइ दियो जेहि रूखी।
बाप के भाग ही को यह भोग है जो नहीं पावत रोटियौ रूखी।
जो मुख सूखो न देख्यो गयो कबौ सो मुख बात कहै यदि सूखी॥ ३॥

## साहब बहादुर

कवित्त—

सूट की सनक क्यो न सिर पै सवार होय
क्यो न कोट पतलून प्रीति होवै महती।
नकटाई कालर गले न परि जाय कैसे
टोप बूट-चाट क्यो रहै न रुचि सहती।
'हरिऔध' क्यो न बुरा मानै जात पॉत-वारे
क्यो न होवै जनता अनेक बात कहती।
साहब हमारे कैसे साहब बनहिं नाँहि
साहव बने ही जो पै साहिबी है रहती॥ १॥

बाप को न मानै सनमानैं जननी को नाँहिं
मेम कुल-बाला को बखाने उमहत है।
निज वेस तजि पर-बेस पै बिकाने रहैं
बोली हूँ बिरानी बोलि बोलि निबहत हैं।
'हरिऔध' कौन सी सपूती दिखरैहै और
साहब हमारे साहिबी ही मैं रहत है।
पोटी दूहि दूहि कै पुनीत-परिपाटिन की
चोटी काटि काटि बात चोटी की कहत है ॥ २ ॥

सवैया—

सूट की चाट के चेरे रहे कबहूँ उतरी नहीं बूट की बूटी।
सपति बानक-बंदिनी सी रही हैट के हाथ गई पति लूटी।
ए 'हरिऔध' बँधी मरजाद हूँ कोट के बंधन मैं परि टूटी।
कालर काल भई कुल-मान की नाक कटी नकटाई न छूटी ॥ ३ ॥

## कच्चा चिट्ठा

सवैया—

काम ते क्यो न करैं मनमानते जे मन के गये दास गिने है।
कैसे नही तब ताने सहै जब बानै बुरी रहती दहिने है।
ए 'हरिऔध' है मूँछ बनी अथवा मुख के छबि-वारे छिने है।
या बिगरैल बिलासिनि हाथ सों बालम मूँछ के बाल बिने है ॥ १ ॥

चाहत के रसचाखन चाहहिं भूत के पूत चुरैल के चेले।
बानर है पहचानन चाहत पारस से मनि को मुख मेले।
का 'हरिऔध' कहै गति काल की केले समान कहाँहिं करेले।
छैल छिछोरे, छछूँदर हैं बने, बैल कहावत है अलबेले ॥ २ ॥

## बज्र-प्रहार

कवित्त—

पाइ कै बिजाति-पग-लेहन सरग-सुख
कैसे जाति-हित के नरक माँहिं परिहै।
करि कै कुटिल-नीति-सरस-सुधा को पान
कैसे ना सुनीति की सुरा को परिहरिहै।
'हरिऔध' तोरत जो गगन-तरैया अहै
कैसे दृग-तारन मै जोति तो बितरिहै।
कुल को कलंक अकलंकता को बानो अहै
हिंदू-कुल बिपुल-कलक कैसे हरिहै॥ १॥

कैसे तो कपूत ह्वै सपूत-सिर-मौर ह्वैहै
भारतीयता के झूठे 'भाव' न दिखैहै जो।
देस प्रेम-पथ को पथिक क्यौ कहैहै क्रूर
आपने समाज मै न पावक लगैहै जो।
'हरिऔध' क्यो कुल-कलंक पैहै नेता-पद
काढ़ि कै करेजो जाति को न कलपैहै जो।
आप हूँ पिसाई माँहिं परिकै पिसैगो खल
पिसे जात हिंदुन को औरो पीसि दैहै जो॥ २॥

जा कुल के अहै कैसे वा कुल के काल ह्वैहै
गाज बनि आकुल-समाज पै क्यो परिहै।
कैसे भारतीयता बहाने भार-भूत रहि
जाति-भव-बिदित-विभूति काँहि हरिहै।
'हरिऔध' नेता कहवाइ क्यो अनीति कैहै
रुधिर-पिपासित-उदर कैसे भरिहै।

पास कै प्रपंचिन को पाइहैं पिसाई कैसे
हिंदुन को पीसि कै पिसान जो न करिहै ॥३॥

## वचन-वाण

कवित्त—

वे है मूढ़ जो न रूप - चंद छबि देखि मोहैं
नरक - अँधेरी काको कहाँ पै लखाति है।
जहाँ बाँकी परम - मधुर - झनकार होति
काको तहाँ कथा पाप - पुन्न की सुनाति है।
'हरिऔध' लोभ की लहर लहराति जहाँ
तहाँ जाति - पाँति, पाँति बाहर जनाति है।
पेटवारे कैसे तब पेट की न मानै कही
बेचि बेंचि बेटी जब पेटी परि जाति है ॥१॥

चावन की चारुता मे चारुता रहति नाँहि
भावन ते भावुकता करति किनारो है।
बिबिध-बिलास की बिलासिता बिलीन होति
रस-हीन बनत सकल-रस प्यारो है।
'हरिऔध' बिना धन रूप है बिरूप होत
सुंदर सनेह हूँ ना लहत सहारो है।
कैसे भरो पूरो छैल चाहहिँ छबीली नाँहि
कहूँ नाहिँ पूछो जात छूछो हाथवारो है ॥२॥

मुँह-कौर छीनि छीनि भूखे नर-नारिन कौ
कैसे भरे पेटन को बारबार भरते।
कैसे देस-प्रेमिन के नैनन के सूल होते
कैसे जाति - प्रेमिन के चित ते उतरते।

'हरिऔध' कैसे दास बनते बिलासिता के
कैसे धन धनिक - बसुंधरा को हरते।
चित को बिदेसी भाव कैसे तो बिदित होत
जो न हम देसी ह्वै बिदेसी पट धरते ॥ ३ ॥

सवैया—

तो कहा सीढ़िन पै चढ़िकै कियो चाव के साथ जो ऊँचे चढ़े ना।
तो कहा दूर भई मन - मूढ़ता मानवता ते गये जो मढ़े ना।
तो कहा कोऊ कियो गढ़िकै 'हरिऔध' गये यदि ठीक गढ़े ना।
तो कहा आगे बढ़े जो बढ़े नहीं तो कहा पूत - पढ़े जो कढ़े ना ॥४॥

सीस पै माँग बनी अवलोकिकै पौरुख पानिप खोइ परायो।
बाल बने अरु मूँछ मुँड़ी लखि बीर को बानो महा बिलखायो।
साहस कैसे बिचारो करै नर मै न रह्यो नर को सरमायो।
जाति सपूतन सूरपनो सब आँखिन मै सुरमा ह्वै समायो ॥५॥

## निराले लाल

दोहा—

वे जनमे है आप ही अथवा मिले भभूत।
कैसे मानै बाप को है न बाप के पूत ॥ १ ॥

क्यो न भला चाँटे सहै है माई के लाल।
कैसे मुँह - लाली रहै बिना भये मुँह लाल ॥ २ ॥

## नामी नेता

दोहा—

रही नीति की सुधि नहीं भूली नीयत बात।
कैसे करै अनीति नहिं नेतापन है जात ॥ १ ॥

निकसै मुँह ते बात किमि जाति गई जब चेति।
बात रखन की लालसा बात बनन नहिँ देति ॥ २ ॥

जा नेता की मति हरत नेतापन अनुराग।
सो न परत जो नरक मैं तो है नरक अभाग ॥ ३ ॥

## दिल के फफोले

दोहा—

कैसे तिनकी लालसा लहू-भरी नहिँ होय।
जिनकी मुँह-लाली रही कुल ललना को खोय ॥ १ ॥

ते किमि रखिहँहिँ जाति-पति कितनाहूँ ले काँखि।
आँखिन के तारे छिने जिनकी गई न आँखि ॥ २ ॥

बेगानोपन लहि बने जो बेगाने माल।
कैसे हिंदू-हित करें वे हिंदू-कुल-बाल ॥ ३ ॥

वे क्यों देखैं जाति-दुख देखि देखि दिन रैन।
द्वै द्वै अँखियन के अछत जिनकी अँखियाँ है न ॥ ४ ॥

इतनो हूँ समझत नहीं तऊ बनत है पूत।
जाको कहत अछूत है वामै कैसी छूत ॥ ५ ॥

## माननीय महंत

दोहा—

कैसे बने महंत नहिँ महि मैं महिमा-वान।
सकल दान चेली करति रखति रखेली मान ॥ १ ॥

मानत बात न काहु की सुख के साज अनंत।
जाय महंती या रहै मन की करत महंत ॥ २ ॥

बार-विलासिनि सो बिलसि करि कमला सो हेत।
चाहत सरग महंत नहिँ यहीं सरग सुख लेत ॥ ३ ॥

## सच्चे साधु

दोहा—

जो साधुन को भेस धरि करत असाधुन काम।
ताको जो मिलिहै न तो काको मिलि है राम ॥ १ ॥

जो योगी संयोग लहि तजि है योग प्रसंग।
तो गुरुता दिखराइहै कैसे गेरुओ रंग ॥ २ ॥

वे कैसे नहि भूलिहै ताड़ बिलोकि अपान।
जिनकी ताड़ी लगति है करि ताड़ी को पान ॥ ३ ॥

पावन जो करतो नहीं वाको संत-सुजान।
सुरा-मान होतो न तो सुरसरि-सलिल-समान ॥ ४ ॥

कैसे काहू संत को तो सिर जातो घूम।
धूम-पान की नहिँ मचति जो धरती मै धूम ॥ ५ ॥

जो नव-जीवन-दायिनी गाँजा-चिलम न होति।
कैसे साधु-जमात मै जगति ज्ञान की जोति ॥ ६ ॥

जो न भोग को भूलतो योगी पी पी भंग।
कैसे होतो भाव-मय भव-भयावनो-रंग ॥ ७ ॥

## भंग तरंग

दोहा—

मतवाली कैसे नही वाकी कला लखाय।
जा कवि-मुँह-लाली रहति मद की लाली पाय ॥ १ ॥

तो क्यो जय लहिहै नहीं कहि जय जय कवि कोय।
जो कविता पै विजयिनी विजया-देवी होय ॥ २ ॥

छन हूँ छूटत है नहीं कूड़ी सोटा संग।
कविता सों गाढ़ी छनति गाढ़ी छाने भंग ॥ ३ ॥

वा कवि मैं ही मिलति है कवि की सहज-उमंग।
जाकी कविता रंग मे विलसति भंग - तरंग ॥ ४ ॥

धूरि माँहिं सुधबुध मिलै प्रतिभा होय अपग।
सुधा मयी कविता करत कवि - जन छाने भग ॥ ५ ॥

कवि - पुंगव कलि - काल मै कूर हुँ को करि लेति।
कोन जड़ी - बूटो नहीं बूटी जन को देति ॥ ६ ॥

देवी होति चुरैल है देव - दूत यम - दूत।
भग - भवानी सो मिले नाना - भाव - भभूत ॥ ७ ॥

## व्यंग बाण

दोहा—

जन को लूटत रहहिं लै दुगुनो - तिगुनो - ब्याज।
अहै महाजन करत हैं महाजनी के काज ॥ १ ॥

सोना ताँबा को करहि ताँबा सोना काँहि।
साहु कहावहिं पै सदा मूसि मूसि धन खाँहिं ॥ २ ॥

साहु साहु कहि होत है सब दिन साहु - बखान।
कतर - ब्योंत करि चोर हूँ के है कतरत कान ॥ ३ ॥

चाहत सरग - बिमान हैं दै दमरी को दान।
बनियन की छूटत नहिं बनियापन की बान ॥ ४ ॥

कौड़ी खात हराम की लेत राम को नाम।
कौन दूसरो पाइहै स्वर्ग - लोक - अभिराम ॥ ५ ॥

# वीर-रस

## स्थायी भाव—उत्साह

## देवता—महेंद्र

वर्ण—कनक-कांति-निभ-गौर

**आलंबन विभाव**—रिपु अथवा रिपु का विभव एव ऐश्वर्य्य आदि।

**उद्दीपन विभाव**—रिपुचेष्टा, उसकी ललकार, मारू-वाद्य, रण-कोलाहल, कड़खा गान आदि।

**अनुभाव**—अग-स्फुरण, नेत्र की अरुणिमा, युद्ध के सहायक उपादान—धनुष आदि की खोज, सैन्य-संग्रह आदि।

**संचारी भाव**—गर्व, असूया, उग्रता, धैर्य्य, मति, स्मृति, तर्क आदि।

## विशेष

किसी किसी ने इद्र को इस रस का देवता माना है। वीर-रस के प्राय चार भेद माने गये हैं।

१—धर्मवीर, २—युद्धवीर, ३—दानवीर, ४—दयावीर। मेरा विचार है कि पाँचवाँ कर्मवीर भी माना जाना चाहिए।

## धर्मवीर

वेद-शास्त्र के वचनों और सिद्धातो पर अचल श्रद्धा और विश्वास आलंबन, उनके उपदेशों और शिक्षाओं का श्रवण, मनन आदि उद्दीपन विभाव तदनुकूल आचरण और व्यवहार अनुभाव एवं धृति, क्षमा आदि धर्म के दश लक्षण संचारी भाव हैं। धर्मवीर मे धर्म-धारण और धर्म-सपादन के उत्साह की पुष्टि है।

## उदाहरण

कवित्त—

समय - सरसता निहारि सरसत जात
कूल - अनुकूलता बिलोकि उमहत है।
बार बार भरि भरि अमित-उमंग माँहिं
तरल - तरंगिनी - तरंग मैं बहत है।
'हरिऔध' लोक-पति-लीला पै लुभानो मन
ललकि ललकि भाव लीनता लहत है।
बोलत रहत है सलिल-कल-कल माँहिं
कला - मयी - केलि मैं कलोलत रहत है॥ १॥

दरति रहति है दुरित के दुरंत - भाव
हरति रहति है मन मलिन - मलीनता।
करति रहति है अपार - उपकारन को
नासति रहति अपकारन की पीनता।
'हरिऔध' मोचति बिलोचन - बिपुल - मल
सोचति सदैव सदाचार - समीचीनता।
जनम सुधारि सारी धरनी उधारति है
धरम - धुरंधर की धरम - धुरीनता॥ २॥

पलित - जटा - कलाप कलित-पताका अहै
साध - भरी - साधना के सुंदर सदन की।
कानन की मुद्रा योग - मुद्रा की सहेलिका है
माला कर कंज की क्रिया है मंजु-मन की।
'हरिऔध' संत - जन - सहज - उपासना की
बोधिनी है पूत - बिभा गैरिक - बसन की।

सुचि अनुभूति की प्रसूति है तिलक-रुचि
भव की बिभूति सी बिभूति है बदन की ॥३॥

आपदा-सहित सारी अपकारिता निवारि
कनक - कनकता को कहत निकाम, ना।
वाकी बामता मै अभिरामता - अमित भरि
तजत सकामता समेत धन - धाम, ना।
'हरिऔध' होत अविवेकी ना विवेक-वारो
रति ते बिरति हूँ मै गहत बिराम, ना।
सारत है काम सारी-काम-वारी बातन ते
राखत न काम-मयी कामिनी की कामना ॥४॥

मानस मै सरिता सनेह की है लहरति
लोचन मै लोक - प्रेम - रस निचुरत है।
कोमल - बयन मै लसत है सुधा को सोत
चावन को चित - चारुता ते चुपरत है।
'हरिऔध' भावुकता - भरित - उदार - नर
भावन मैं भावना सुहावन भरत है।
लहि भूत - हित को प्रभूत - अनुभूत - पोत
बनि भाव - पूत भव - सागर तरत है ॥५॥

गमन करत मंद मंद है सु - पथ माँहिं
अपुनीत - पंथ को न पग परसत है।
लोक हित - लोलुपता ललित - अयन - बनि
रस - बितरन को बयन तरसत है।
'हरिऔध' संत - जन बरद - करन माँहि
बसुधा - विमोहिनी - बिभूति दरसत है।

प्रेम - बर - बारि बार बार बरसत नैन
उर मैं सुधा को मंजु - सोत सरसत है ॥६॥

लोक होत ललित तिलोक - पति - लाभ होत
ललक अलौकिक - बिलोचन लहत है।
रुचि होत रुचिर बिचार अति चारु होत
मानस महान - मोद लहि उमहत है।
'हरिऔध' भीने भव - रग मैं बिभूति होति
भूत - हित - तरु प्रीति - भू मैं पलुहत है।
चित चाव भरे होति भावना प्रभाव - मयी
भाव - भरे - उर मैं 'अभाव' ना रहत है ॥७॥

जाकी कृति रतन - मयी है रतनाकर सी
जाकी कल - कीरति कलाकर सी सेत है।
लोक-पति की सी जाकी लोक-हित-चितना है
जाको चित, चेतना लौं रहत सचेत है।
'हरिऔध' सोई है धरा मैं धर्म - धुर-धारी
जाकी धनु - धारिता न रुधिर - उपेत है।
दान-धारा जाकी धाराधर लौं बरसि जाति
जो जन धरा - धर लौं धीरता - निकेत है ॥८॥

चित के मलिन भाव अमलिन होत जात
बिमल - बिलोचन के प्रेम - बारि चूये ते।
उचित। बिचारन के कंधे ना छिलन देत
उपचित बहु अबिचारन के जूये ते।
'हरिऔध' धरम - धुरंधर मुदित होत
मोह - मद बिनसे प्रमादिन के मूये ते।

छाये रहे उर मैं अवनि के अछूते भाव
बनत अपूत ना अछूत - जन छूये ते ॥ ६ ॥

छीन को बिलोकि छीन, धन छीन लेत नाँहिं
बनि कै सचेत न हरत चित - चेत है।
औरन को दुख देखि परम दुखित होत
हरो भरो करत रहत हित - खेत है।
'हरिऔध' जीवन दै जीवन - बिहीनन को
पूजनीय - जन जगती मैं जस लेत है।
रिस कै मसकि मीसि देत ना मसक हूँ को
दाँत पीसि पीसि काहू को न पीसि देत है ॥१०॥

हरत रहत है अहेतुक बिकारन को
काहू पै कबौं न कोह करत कहर है।
मद - मान - मत्तता निवारत है वाको मद
प्रेम - पूत काम के फरेरे की फहर है।
'हरिऔध' मोह ते न मोहत महान जन
वाको मोह - रवि पाप - ताप - तम-हर है।
लोक - हित - लाभन पै ललकि लुभानो रहै
होति लहू - लोहित न लोभ की लहर है ॥११॥

आँखि फारि देखे आँखि काहू को न फोरि देत
आह भरे भुस खाल माँहिं ना भरत है।
जीह के हिलाये जीह काहू की न खैंचि लेत
मुँह खोले कंठ पै कुठार ना धरत है।
'हरिऔध' धीर-बीर बनत अधीर नाँहिं
धाक हित जेवरी न धूरि मैं बरत है।

एक टूक रोटी-हित बतिया दो टूक कहे
काहू को करेजो टूक टूक ना करत है ॥१२॥

कमनीय-रुचि को कलंकित करत नाँहिं
कोमलता कोमल हृदै की ना हरत है।
बनि बनि कीट ना बसत सुमनन माँहिं
पावक न भोरे-भोरे-भाव मै भरत है।
'हरिऔध' लोभ-हीन ललित ललक-वारो
काहू के न अनुकूल-काल ते लरत है।
लाल लाल आँखें करि लाल ह्वै न काल होत
लहू नाँहिं लोक-लालसान को करत है ॥१३॥

बेद की बिभूति ते बिभूति-मान बनि बनि
लोक-बंदनीय-बर-बिरद बरत है।
गौरव गहत गाइ गाइ गौरवित-गुन
ज्ञान-रवि पाइ उर-तिमिर हरत है।
'हरिऔध' धर्म-वारो सारो मन-मानो छोरि
मुनिन-मतन काहिं मनन करत है।
भारत के भूत-हित भरे भाव-पंकज पै
मत्त मन भौंर भूरि-भावरै भरत है ॥१४॥

महिमा महंतन की मति को करति मंजु
संतन की संतता असंतता हरति है।
पावनता परसे अपावतना दूर होति
देव-रुचि दुरित-दुरंतता दरति है।
'हरिऔध' मानवता भावुकता भूति बनि
भावन में लोक-हितकारिता भरति है।

धर्म - धुर - धारी के सुधारे लोक सुधरत
धर्म के उधारे सारी धरा उधरति है ॥ १५ ॥

क्रूर होत कंपित मथित मगरूर होत
पामरता दूर होति परम - नकारे की ।
धरकति छाती है अधम - अधिकारिन की
दहलति दानवता दानवी - दुलारे की ।
'हरिऔध' धरती अनीति-भरी धसकति
सुनि कै धुकार धर्म - ध्वनित नगारे की ।
हॉक सुने बड़े बड़े हाँक-वारे हहरत
मानत न कौन धाक धर्म-धाकवारे की ॥ १६ ॥

सुरसरि - सलिल बनावत सुरा को नॉहिं
सुर बनि बनि ना असुरता पसारे देत ।
बिधि बॉधि बॉधि नॉहिं बॉधत अबिधि बॉध
बंदित ह्वै बंदनीय-बानो ना बिगारे देत ।
'हरिऔध' पूत-नीति-पथ को पथिक प्यारो
बातन ते तारे ना गगन के उतारे देत ।
बारिद ह्वै बहुधा बरसि ना अँगारे जात
सुधा-मिस बसुधा पै बिस ना बगारे देत ॥ १७ ॥

दोहा—

अमल-आरसी-सम अहै बिपुल - बिमल - मन तौन ।
पूत - भाव - प्रतिबिंब ते प्रतिबिंबित है जौन ॥ १८ ॥

द्रवत पसीजत जो रहत लहि परितापन कॉहिं ।
वाको उर नवनीत है या अवनीतल मॉहिं ॥ १९ ॥

है वाके मुख-चद को चित अनुराग चकोर।
पर-हित-रुचि चोरत नही जाके चित को चोर ॥ २०

लोचन-वारे को न क्यो सब थल लसत लखाहिँ।
जगत-बिलोचन बसत है जब जन लोचन माँहिँ ॥ २१

ललित-लुनाई जगत की दिन दिन होत रसाल।
लोने लोने नयन मै बसे सलोने-लाल ॥ २२

क्यो सुधरति जो नहि लहति धरम-धुरंधर-सूरि।
तो कैसे उधरति धरा जो न धरति पग-धूरि ॥ २३

अति-पावन-पग-संत को जो नहिँ परसत अग।
पावनता कैसे लहति पतित-पावनी-गंग ॥ २४

बहु सजीवता दान करि जीव-बिहीनन काँहिँ।
सुधा बहावत संत-जन बहुधा बसुधा माँहिँ ॥ २५

## कर्मवीर

कर्तव्य-परायणता और काय-सिद्धि के सिद्धातो पर दृढ विश्वास आ( बन, कार्यकारिणी शक्ति के सफल प्रयोगो का अनुधावन और चित उद्दीपन विभाव, कार्य-सिद्धि के साधनो और प्रयोगो का समुचित व्यवह अनुभाव एवं धृति, मति गर्व, उग्रता आदि सचारी भाव है। कर्मवीर कार्य-साधन में पूर्ण उत्साह की पुष्टि है।

## उदाहरण

कवित्त—

बिपुल अलौकिक-कलान ते कलित बनि
रेलतार काज क्यो अकल्पनीय करते।
दामिनी क्यो कामिनी लौ सारति सदन-काम
कैसे दिवि-बिभव दिवा-पति बितरते।

'हरिऔध' जो न कर्म्म बीरता धरा मैं होति
बारिधि को बाँधि कैसे बानर उतरते।
फिरते बिमान-अनगन क्यो गगन माँहिं
कैसे नग-निकर नगन ते निकरते ॥१॥

कैसे पृथु प्रथित बनत पृथिवी को दूहि
कैसे सातो सागर सगर-सुत सँवारे लेत।
कैसे पार करत पवन-पूत पारावार
गिरी कर-धारी कैसे गिरिवर धारे लेत।
'हरिऔध' जो न कर्म-बीर की बिरद होति
बार बार बीर कैसे बसुधा उबारे लेत।
दृगन के तारे क्यो सहारे होते साधन के
नभ-तल-तारे कैसे मानव उतारे लेत ॥२॥

कैसे मघवा के घन प्रबल बिलीन होते
ब्रज की बसुंधरा बिभूति कैसे लहती।
करति सजीव क्यो सजीवन सी मूरि मिलि
दूर होति कैसे कौसलेस-बिथा महती।
'हरिऔध' जो न करतूती-करतूत होति
साहसी सपूत की सपूती कैसे रहती।
कैसे धूरि-धारा को उधारि या धरातल पै
सुर-सरि-धारा सी पुनीत-धारा बहती ॥३॥

जल-निधि कैसे दान करत अपार - निधि
गाढ़ी कैसे गगन-बिभूतिन ते छनती।
नाना कल केते लोक-यान क्यो जनम लेते
बीजुरी क्यो बिपुल-निराली-जोति जनती।

'हरिऔध' जो न करतूत होति मानव मै
बायु बहु - बिभुता - बितान कैसे तनती ।
कैसे रमा राजति बिराजित बिभूति माँहिं
रजमयी महि क्यो रजत - वती बनती ।।४।।

कैसे बास बनत असन को बिधान होत
बिबिध-सुपास के बसन कैसे सिलते ।
दीपक क्यो दिपत दिखात तम-पुंज मॉहिं
निकसति कैसे सुधा सागर - सलिल ते ।
'हरिऔध' जो न काम धुन होति कामुक मै
राख मॉहिं कनक-कनूके कैसे मिलते ।
कैसे मरु-भूमि फल-मूल-अनुकूल होति
धूल मै क्यो परम अनूठे फूल खिलते ।।५।।

साधक की साध सारी साधना निकेतन है
सिद्धि बिना 'इति' है न साहसी के 'अथ' मै ।
संगिनी सफलता सफल करतूत की है
बिजय बिराजति है कर्म-समरथ मै ।
'हरिऔध' सारी बाधा बाधति अबाध गति
भू मै बिचरत बीर बैठि 'भूति-रथ' मै ।
पार करि लेत है अपार-पारावार हूँ को
मानत न हार है पहार परे पथ मैं ।।६।।

काम-धुन-वारो कौन काम है न साधि लेत
वाको सारो काम किये साधना सरत है ।
धरा मै धॅसत पैठि जात है पतार हूं मैं
बिहरत नभ मैं दिसा मै पसरत है ।

'हरिऔध' संभव बनावत असंभव को
लोक को अलौकिक-बिभूति बितरत है।
बूझ-बल नागर करत है अनागर को
सूझ-बल गागर मै सागर भरत है ॥ ७ ॥

तोरि दैहै पवि को मरोरि दैहै मेरु-दंड
मरुत महान मरु-महि की निवरिहै।
दूरि कै प्रखर पवनातप प्रकोप-ताप
अवरोधि पावक पयोधि पार परिहै।
'हरिऔध' बाधा परे साध-भरे साधन मै
कर्मबीर बाधक-अबाध-गति हरिहै।
दरिहै दिगंत-दंति-कुल को दुरंत-दाप
प्रबल-प्रहार कै पहार चूर करिहै ॥ ८ ॥

भूरि-भाग-भाजन न भाजत सभीत बनि
बहि बहि भारन भरत भव-धाम है।
कसि कै कमर कौन समर करत नाँहिं
अजर अमर ह्वै रखत कुल-नाम है।
'हरिऔध' कर्म-बीर पीछे ना धरत पग
बीछे बीछे पथ पै अरत बसु-जाम है।
जमदूत-जोरा-जोरी किये हूँ जुरत जात
काल हूँ की छोरा-छोरी छोरत न काम है ॥ ९ ॥

कैसे मुख-लालिमा रहति लोक-कामना की
काम की लगन कृति-कालिमा न खोती जो।
कैसे भव-सुख-लाभ-तरु पल्लवित होत
बीज-हित-कारिता के बीरता न बोती जो।

'हरिऔध' कैसे धरा धारति उधार - व्रत
धीर-मति धाम धाम का मल न धोती जो।
कैसे अवनी मैं बड़े कमनीय काम होते
काम - धुन-वारे मै न काम - धुन होती जो ॥१०॥

दोहा—

तजत काज अपनो नहीं लहत बिजय को हार।
हार न मानत साहसी सिर पर गिरे पहार ॥११॥

परि कटक - बाधान मै होत चौगुनो चेत।
काज - कंज - सुमिलिद बनि बीर - बृंद रस लेत ॥१२॥

जन निज बल ते बनि बली होत भूति को भौन।
किये भरोसो भाग को भागवान भो कौन ॥१३॥

पावन चरित सजीव - जन है जग जीवन - मूरि।
ताप निवारत कर - परस पाप हरत पग - धूरि ॥१४॥

करतूती - कर - तल परसि मुकुत कहावत पोत।
रजत बनति रज - राजि है कनक लौह - कन होत ॥१५॥

गुन - आगर - जन मनि लहत पहुँचत उरग समीप।
मोती ते गागर भरत लहि सागर की सीप ॥१६॥

दूर होत घर - घर तिमिर जगति जगत में जोति।
तेज - वंत - तरवा परसि नवनी अवनी होति ॥१७॥

सबाल - बाहु - वैभव मिले सकल होत अनुकूल।
कटक - जाल कलित - कुसुम बनत रसाल वबूल ॥१८॥

दै अवित्त को बित्त बहु हरत कुपित को पित्त।
सचल बनावत अचल को परम - अविचलित चित्त ॥१९॥

मानस - बल बलवान - तन संकट पावत छू न।
नावक बनत मयंक - कर पावक बनत प्रसून ॥२०॥

## युद्धवीर

शत्रु का प्रताप, पौरुष और ऐश्वर्य आदि आलंबन, मारू वाद्य और सैन्य कोलाहल आदि उद्दीपन, अंग-स्फुरण और नेत्र - लालिमा आदि अनुभाव, गर्व, उग्रता और धृति आदि संचारी भाव है।

युद्ध वीर में बल, पौरुष प्रतापादिजनित उत्साह की पुष्टि है।

कवित्त---

धूरि मैं समैहैं गोले ओले के समान गिरि
टूक टूक ह्वैहै तोप बार बार दनकी।
घोर घमासान बीरता की धूमधाम ह्वैहै
धीरता रही जो बनी धीरन के मन की।
'हरिऔध' बिरद निबाहत बिरदवारो
बात अबिदित है न बात - भरे तन की।
बर - बीर छिति माँहिं छोरत अछूतो जस
सुधि हूँ न लेत छिदी छाती के छतन की ॥ १ ॥

पीछे ना परैगो कबौं परम - उमंग भरो
रण - रंग - रँगो दंग करिकै पधारैगो।
बार बार धूआँधार कठिन समर करि
कीरति अपार या धरा पर पसारैगो।
'हरिऔध' बैरिन को उदर बिदारि दैहै
लात मारि मारि आँत अरि की निकारगो।
जाकी करतूत मै लगी ना छूत एकौ बार
राजपूत - पूत भूत सिर को उतारैगो ॥ २ ॥

उठो उठो बीरो चीरो अरिन - करेजन कौ
पीरो मुख परे बनी बात हूँ बिगरिहै।

छटकि छटकि छाती छगुनी करैयन को
कौन आज उछरि उछरि कै कचरिहै।
'हरिऔध' कहै बीर-बृंद ना अबेर करौ
हाँक ते तिहारी धीर हूँ ना धीर धरिहै।
पारावार - धार मैं उड़ैगी छार आँच लगे
ठोकर की मार ते पहार गिरि परिहै ॥ ३ ॥

बहँके बहँकि सारी बहँक निवारि दैहौ
बाल बाल बीनिहौ बलकि बने बलवान।
तमके तमकि तम हरिहौ तमारि सम
दात पीसिहैं तो दाँत तोरिहौ मरदि मान।
'हरिऔध' बैरिन की बीरता बिफल कैहौ
बादिन पै बदिकै बगारिहौ बिखीले बान।
मुँह जो बनैहै तो पकरि मुँह तोरि दैहौ
आँखिजो दिखैहै तो निकारि लैहौ आँखियान ॥ ४ ॥

बिदित पुरारि - बज्र बज्रता बिलोप कैहै
बिकराल - काल की करालता को खलिहै।
चक्री के प्रबल - चक्र काँहि चूर चूर कै है
कालिका - कृपान की कृपानता को छलिहै।
'हरिऔध' कोऊ रन - बाँकुरो उमग भरि
बंक करि भौंहै सत्रु सौंहै जब चलिहै।
खंड खंड करिहै पिनाकी के पिनाक काँहि
ठोकि भुज - दंड यम - दंड हूँ को दलिहै ॥ ५ ॥

बीर - कुल-बाल ह्वै न सहिहौ त्रिकाल माँहि
लोक-प्रतिकूल की अकल्पित-कुचाली को।

खलन की खाल खींचि लैहौं खलता के किये
बाल बाल बीनिहौं बिरोधी-बल-शाली को।
'हरिऔध' कर मै कराल - करवाल गहि
अरि-कुल काल ह्वै रिझैहौं मै कपाली को।
मानव अमंडनीय - मुंडन को काटि काटि
मुंडन की मालिका पिन्हैहौं मुंडमाली को॥ ६॥

पातक को पल पल प्रबल - प्रसार देखि
जा दिन अपार - बिकरार रूप धरिहौं।
करिकै प्रकंपित पताल के प्रवासिन को
गरल सहस्र - फन फूंक लौं बितरिहौं।
'हरिऔध' दिपत-दिगत मै दवारि भरि
प्रलय - प्रभाकर लौं व्योम मै बिचरिहौं।
ज्वाल पर ज्वालामुखी लौं बमन करि
सारी मेदिनी को ज्वाल-माला-मयी करिहौं॥ ७॥

बाल बाल बिने पै मनोबल न जाको जात
सोई बलवान गयो सबल बखानो है।
सोई साहसी है जो समर मै सपूती करै
रोम रोम मॉहिं जाके साहस समानो है।
'हरिऔध' बाहु - बल बिजय - बधावरो है
सूरन की सूरता अमरता बहानो है।
ह्वैबो ना अधीर धीर - धीरता को बैभव है
ह्वैबो ना अ-बीर बीर बीरता को बानो है॥ ८॥

परम अकुंठित बिरोधिनी स - कंठता की
कुलिस सी कठिन कठोरता मै ढाली है।

अंग-भंग-निपुन तरंगित तरंगिनी सी
भरित - उमंग रन - रंग - मतवाली है।
'हरिऔध' बैरि-उर-विवर-बिहारिनी है
काल को कराल रसना सी कंपवाली है।
लहू-लाली-भरी कै कपाल-माली-आली अहै
बीर-करवाल काल - ब्याली किधौं काली है ॥ ९ ॥

पग जो न देहै साथ पंगु तो बनैहौं तिन्है
कर जो न कैहै कही लुंचता सकारिहौं।
बार बार ताको छत बिछत बनैहौं छेदि
जाति-दुख-छत जो न छाती मैं निहारिहौं।
'हरिऔध' जाति-हित जीहौं जाति-हित कैहौं
प्रतिकूल भये रोम रोम मैं उखारिहौं।
बिमुख बनैगो तो न मुख रहि जैहै मुख
रस जो न राखिहै तो रसना निकारिहौं ॥१०॥

कंचन बिहाइ काँच पै जो मोहि जैहै मन
तो मैं ताको मानवी बिमोह सब हरिहौं।
बासना सतैहै तो बसैहै नाँहि बासना की
बिचलित चाव ते बचाव कै उबरिहौं।
'हरिऔध' जाति पीसि पेट पालिहौं ना कबौं
आँखि जो फिरी तो आँखि-माँहि धूर भरिहौं।
चूक पर चूक जो निबोरी हित होति जाति
रसना निगोरी को तो टूक टूक करिहौं ॥११॥

एक बूँद रुधिर रहैगो जौ लौ गात माँहि
देस-अनुराग-ताग तब लौ न तोरिहौं।

अपनी विभूति को बचैहौ बाल बाल बिने
खाल के खिंचे हूँ रक्त अरि को निचोरिहौ।
'हरिऔध' पैहौ दिव्य हार हारहूँ के भये
बजर परे हूँ सिद्धि छूटी गाँठ जोरिहौ।
छाती के छिले हूँ मोरिहौ ना छमता ते मुख
रोम रोम छिदे जाति-ममता न छोरिहौ ॥१२॥

फुंकरत देखि फनि-पति को न भीत होत
देव सेनापति की दुरतता दरत है।
दबत न देखि भूरि भैरवता भैरव की
संयमिनी - नाथ दड - पानिता हरत है।
'हरिऔध' मानत धरा-पति की धाक नाँहिं
सौहैं परे नाक-पति हूँ को निदरत है।
करवाल गहे ना डरत लोक - पाल हूँ ते
बीर - बर बिकराल काल ते लरत है ॥१३॥

करिकै समर धूआँधार धीर बीर नर
बार बार अरि को पछारि, है उछरतो।
काटत फिरत गज-बाजि की कतार काँहिं
पीर भीर - भार मै सँभारि, है उभरतो।
'हरिऔध' तार बाँधि बाँधि तीखे तीरन को
भीरु-भावना मै, है भभर-भूरि-भरतो।
हनित कटार पार होत है करेजन के
वार पर वार तरवार की है करतो ॥१४॥

बड़े - बड़े बीरन को पकरि पछारि देत
भारी - भारी - भीरन हनत पल - भर मै।

रोम रोम छिदे छनौ छोरत उछाह नाँहिं
छत लगे हाथी को उछारत अधर मैं।
'हरिऔध' करि कै धरा को शर-धारा-मयी
मुंड - माला देत मुंड-मालिका के कर मै।
कसि कै कमर बनि अमर अमर - सम
सूरमा करत सूरमापन समर मै ॥१५॥

रन की बिभीषिका ते भीत कबहूँ ना होत
रन - रंग - रँगो - बीर बीरता बरत है।
काल - दंड गहि दंड देत है उदंड काँहिं
बरि - वंड - दल को बिहंडि बिहरत है।
'हरिऔध' मारतंड - मंडल - समान बढ़ि
तामसिक - मंडली को तामस हरत है।
खंड - खंड - परम - प्रचंड भुज - दंड करि
रुंड - मुंड - झुंड मैं बितुंड लौं लरत है ॥१६॥

दोहा—

पवि - समान तोरत रहत करिवर - कुंभ - अपार।
काहु गदा - धर - करन को गुरु - तर गदा - प्रहार ॥१७॥

लोक - लाल - प्रतिपाल - रत कुल - कलंक - नर - काल।
कामद - कल्पलता सरिस है नृपाल - करवाल ॥१८॥

जिअत न जो नर - केहरी नर - केहरि - ब्रत धारि।
कदाचार - करि - कुंभ को कैसे सकत बिदारि ॥१९॥

गरजि गरजि जो बीर - बर करत न बारिद काज।
पर - अकाज - रत कु - जन पै कौन गिरावत गाज ॥२०॥

भू-मंडल मै जो नहीं होत बीर-भुज-दंड।
दंडित करत उदंड को तो काको कोदंड ॥२१॥

जो काली - रसना - सरिस होति न बीर - कृपान ।
रुधिर - पान - रत - नरन को रुधिर करत को पान ॥२२॥

बीर - भाव मैं भूति को होतो जो न उभार ।
तो, को करतो भूत - हित को हरतो भू - भार ॥२३॥

परति भार मैं काहि लखि भार - भूत - जन - भीर ।
उबरति कैसे बसुमती जो न उबारत बीर ॥२४॥

किमि दुरंत - नर - दव - दही - मही लहति रस - सोत ।
जो न बान - धारा - बलित बीर - बारि - धर होत ॥२५॥

लाला प्रानन को परत लहत न कोऊ त्रान ।
जब दामिनि लौं समर मैं दमकति बीर - कृपान ॥२६॥

## दयावीर

दीन, आर्त्त और दुःख-दग्ध जन आलंबन, आर्त्त स्वर, करुण-क्रन्दन, दुःख-पूर्ण वर्णन और हृदयद्रावी विनय आदि उद्दीपन, मृदु भाषण, उदार आश्वासन, दुःख दूरीकरण चेष्टा आदि अनुभाव, एव चचलता, उत्कठा और धृति आदि सचारी भाव हैं। दयावीर में चित्तार्द्रता संभूत उत्साह की परिपुष्टि है।

कवित्त—

ताको सुर-तरु के समान है फलद होत
मूठी नाज काज जो तिगूनो तरसत है।
परम प्रवंचित अकिंचन - कु - धातु काँहिं
फली - भूत पारस - समान परसत है।
'हरिऔध' दीनन को दीनता तिमिर हरि
ससि के समान ह्वै सरस सरसत है।
बार बार जन - विटपालि पै बरद - वर
बारिद - समान बारि - धार बरसत है ॥ १ ॥

बिपुल - पिपासित - पिपासा कैसे दूर होति
कैसे पेट भूरि - भूखे लोगन को भरतो।
कैसे द्रवीभूत होत पाहन - समान उर
गज कैसे ग्राह के बदन ते उबरतो।
'हरिऔध' होति जो दयालु मै दयालुता न
मजु - मोती कैसे पातकीन पै बगरतो।
बनतो सदय कौन दुखिया न - दुख देखि
कौन दयनीयन पै दौरि दया करतो ॥ २ ॥

मानवता - मंजु-बेलि चित - आलबाल माँहि
प्रतिदिन फैलि फैलि फूलति फलति है।
पर - उपकारिता - बिलोचन मै बिलसति
लोक - हित - कारिता करन ते पलति है।
'हरिऔध' बार बार बिपति - हरन - बानि
बिबिध - बिथा को अ - बिथा ते बदलति है।
दलित - जनन के दलन की दलक सारी
दयावान दिल की दयालुता दलति है ॥ ३ ॥

पगन मै सुपथ - गमन बेस मैं है बसी
करन मै मंजु - दान - मिस निवसति है।
बदन मैं सोहति सनेह - सने - बैन बोलि
पर - काज साँसत सहति बिहँसति है।
'हरिऔध' दया-वान-जन की निराली दया
असरस - पाहन परसि सरसति है।
उर मै बसति है तरलता - निवास बनि
लोयन मै बारि ह्वै बिपुल बिसलति है ॥ ४ ॥

कैसे गिरि - अंक ते प्रसूत - सरि-धारा होति
मंजुल - सलिल क्यों सरन मॉहिं रहतो ।
मा की छतियान मै भरत क्यो अछूतो छीर
बिबुध - बरूथ क्यों रसा को रसा कहतो ।
'हरिऔध' होति दयामय मै दया जो नॉहिं
कैसे तो मयंक ते सुधा को सोत बहतो ।
कैसे तरु - लता मै सरसता - निवास होत
तोयद को तोम तो तरलता क्यो लहतो ॥ ५ ॥

कुसुम - सरिस होत कोमल, कठोर - पवि
मंजुल - मृनाल लौं मृदुल होत मूसरो ।
सुधा होति सुरसरि - सलिल - समान - पूत
नीरसता छोरि कै सरस होत ऊसरो ।
'हरिऔध' तेरी कृपा - कोर ते उधरि जात
धीर तजि धूरि मै मिलत धमधूसरो ।
कोऊ तोसो दीन - बंधु दीखत दुनी मै नॉहिं
दया - निधि तोसो दयावान कौन दूसरो ॥ ६ ॥

प्रभु - पग - बल पवि - प्रबल - प्रहार ही ते
चूर होत पातकीन - पातक - पहार है ।
तेरो वर - विरद निवारत त्रिबिधि - ताप
दूर करि देत भव - बिबिध बिकार है ।
'हरिऔध' ऐसो अपकारी है अपर कौन
तोसों कौन करत अपार - उपकार है ।
तोसों कौन बिदित - दयानिधि दुनी मै अहै
दिवि - मॉहिं तोसो कौन उदित - उदार है ॥ ७ ॥

बिभा देत भानु सुधा स्रवत सुधा - कर है
बरसत बारि - धर वर बारि - धार है।
सरस बनावत रसा को है बिपुल - रस
मंद मंद बहति मनोरम - बयार है।
'हरिऔध' बगर बगर मै बगरि भूरि
करति बिनोदित बसंत की बहार है।
छहरि छहरि जात तारन - कतार हूँ मै
कृपा - पारावार की कृपालुता - अपार है ॥ ८ ॥

दोहा——

तृन - तरु - हित बसतो न जो प्रभु - दयालुता माँहिं।
पाहन तो न पसीजतो तजि पाहनता काँहिं ॥ ९ ॥
जो न दया-निधिता लहे सरसत दया-निधान।
कैसे जीवन को करत जीवन जीवन - दान ॥ १० ॥
सुख - मय नहिँ होतो दिवस रस-मय होति न राति।
जा न दया - मय की दया दया - मयी दिखराति ॥ ११ ॥
जो न दया - निधि की दया घेरति बन घन - घोर।
कौन दूबरी दूब पै बरसत बारि - अथोर ॥ १२ ॥
ब्रज - ललना लोनी - लता कैसे होति ललाम।
दया - बारि ते सींचतो जो न बारि - धर - स्याम ॥ १३ ॥

## दानवीर

याचकगण और दानपात्र आलबन, कर्तव्यज्ञान, कलित-कीर्ति-धवलिमा, दानपात्र की पात्रता आदि उद्दीपन, अकृपणता और सर्वस्वदान एव औदार्य आदि अनुभाव और हर्ष आदि सचारी भाव है।

दानवीर मे दान करने के उत्साह की पुष्टता है।

कवित्त—

कंचन - समान है अकिंचन - जनन काज
पर - हितकारिता सरस मंजु रस है।
कौमुदी है सब सुख-साधना कुमोदिनी की
कामुक निमित्त काम - धेनु को दरस है।
'हरिऔध' दीनता-धरा की है परम - निधि
कु-दिन - कु-धातु काँहिं पारस - परस है।
जीवन - विधायिनी है अवनि - उदारता की
तेरी दान - धरा सुधा - धारा ते सरस है ॥ १ ॥

पलुहति कैसे उपकार की कलित - बेलि
सुफल उदारता - लता हुँ कैसे लहती।
भूरि - दुख-धूरि की दुखदता क्यो दूर होति
जीव - दया - सरिता सरस कैसे रहती।
'हरिऔध' कैसे अकिंचनता तृनावलि मै
लसति हरीतिमा - बिभूति - वती - महती।
दीन - तरु होत क्यो हरित हित - बारि लहे
दीनता धरा पै जो न दान-धारा बहती ॥ २ ॥

दीन-दुख दुसह-दवारि बर-बारिद, है
दारिद-अपार-पारावार पूत-बेरो है।
भवन है बिपुल-उदार-उर-भावन को
चारु-भूत-चावन को रुचि-कर-खेरो है।
'हरिऔध' पर-हितकारिता-बिकास-भूमि
लोक-उपकारिता को लसित-बसेरो है।
चेरो अहै दया-मान-विगलित-मानस को
तेरो दान दया - मंजु - आनन - उँजेरो है ॥ ३ ॥

अविभव माँहिं है बिराजत बिभव बनि
भाव ह्वै कै बिपुल अभाव मै बसत है।
रस है अरस मैं बिभा है बिभा-हीनन मै
सुख ह्वै कै असुखीन माँहि निवसत है।
'हरिऔध' भोजन ह्वै भूखे की हरत भूख
नीर ह्वै पिपासित-गरे मैं प्रविसत है।
दीनता निवारि, कै अदीन सब दीनन को
दिन दिन दानिन को दान बिलसत है ॥ ४ ॥

सींचन को बंस-बिरदावलि-दलित-बेलि
गात को रुधिर बारि-धारा लौं बहैहौं मै।
तन बेचि बेचि रोम रोम ते निबाहि पन
बंचित-समाज-बंदनीयता बचैहौ मैं।
'हरिऔध' धन-वारि बंधन-निवारि पैहौ
सिर दै दै साँची-देस-बंधुता दिखैहौ मैं।
जीवन-बिहीन को सजीवन बनैहौं जूझि
जाति-हित जीवन हूँ दान करि दैहो मैं ॥ ५ ॥

तेरो पद ऊँचो पद ऊँची पदवीन को है
दारिद-दुरित को दरन तेरो दर है।
तेरो प्यार दाता है अपार-अधिकारन को
बिपुल-बिभूति को बिधाता तेरो बर है।
'हरिऔध' तौ मन मृदुलता-निकेतन है
तेरो उर अतुल उदारता को घर है।
फलद दयालुता तिहारी कल्प-बेलि-सी है
कामधेनु - कामद तिहारो कांत-कर है ॥६॥

तो सों कौन दूसरो द्रवत पर-दुख देखि
तोसो कौन दानी को दयालुता-निकेत है।
याचकन कॉहि कौन करत अयाचक है
कंचन बरसि जात कौन चित-चेत है।
'हरिऔध' रंकन को करत कुबेर कौन
सकल अकिंचन की कौन सुधि लेत है।
काने सनमाने दीन-जन जानि दीनन को
जाने अनजाने को खजाने खोलि देत है ॥७॥

धन, जन, असन, बसन, बासनन देइ
दानबीर दीनन की दीनता दरत है।
हीर-हार मंजु-मनि-मोतिन की माल देत
भूर-भव-बिभव भवन मै भरत है।
'हरिऔध' राजी है करत बर-बाजी देइ
साजी धेनु-राजि दै अधेनुता हरत है।
लावत 'अबार' न बराकन-उबारन मै
बार बार बारन-कतार बितरत है ॥८॥

दिन दिन रतन-बखेरन की बानी हेरि
रतन - समूह - आकरन मै अरो अहै।
धरनि मैं धन, भूधरन मै छिपे है नग.
मुकुत अगाध-अबुनिधि मै परो अहै।
'हरिऔध' तेरी दान - बीरता बखान सुने
भभरि कुबेर भूरि - भीति ते भरो अहै।
कनक - अपार बार बार बितरत देखि
सोने को पहार एक कोने मै खरो अहै ॥९॥

घनता तिहारी ही रसालता की अवलोकि
घन - माला घूमि घूमि नभ मै घिरति है।
रवि की किरिन बिकसित ह्वै बसुंधरा पै
तेरी गुरुता ते गौरवित ह्वै गिरति है।
'हरिऔध' तेरी ही दमक को दमामो दै दै
दमकत दामिनी दिगंत मै फिरति है।
लहि कै तरनि लौ तिलोकतम - हारी तेज
तारावलि तेरी दानधारा मै तिरति है॥१०॥

दोहा—

जगतीतल मैं कौन है दानी जलद-समान।
जो ज़ीवन हित करत है अपनो जीवन दान ॥११॥

बायु सहत, छीजत, दहत, गरत गॅवावत मान।
तब हूॅ जलधर जगत को करत रहत जल - दान ॥१२॥

दानी सॉसत हूॅ सहे दान देइ जस लेत।
सहि पाहन बनि बनि बिफल सफल बिटप फल देत ॥१३॥

जो न सुधा - निधि लेत सुधि बनि बनि दया - निधान।
सरस - सुधा तो करत को बसुधा तल को दान ॥१४॥

वा सम कौन दयालु है अवनी - तल मै आन।
पर - दुख देखि द्रवत रहत तो नवनीत - समान ॥१५॥

वा सम दानी कौन जो गात उघार निहारि।
बस न चलत हूँ देत है अपने बसन उतारि ॥१६॥

साँचो दानी सरस - उर अहै घन - सरिस कौन।
ऊसर मै सर ते अधिक रस बरसत है जौन ॥१७॥

मान गुमान कबौ नही होत दान अनुकूल।
बिन फूले फल देत है गूलर - तरु को फूल ॥१८॥

---

# रौद्र

## स्थायी भाव—क्रोध

## देवता—रुद्र

## वर्ण—अरुण अथवा रक्त

आलंबन—शत्रु अथवा वह पुरुष जो जाति और देश का द्रोही हो कदाचारी और कपटाचारी व्यक्ति आदि—

अनुभाव—भ्रूभंग, अधरदशन, ताल ठोंकना, डाँटना, ललकारना रोमांच, स्वेद, मद, परुष-भाषण आदि—

संचारी भाव—गर्व, चपलता, मोह, अमर्ष, उग्रता, आवेग आदि—

उद्दीपन—शत्रु की चेष्टायें और उसका व्यवहार, उसका आस्फालन अस्त्र-शस्त्र-प्रहार और आक्रोश देशद्रोही, जाति-शत्रु और कदाचारी पुरुषों का कार्य्य-कलाप और उनकी कूट नीति आदि—

## विशेषता

इस रस में उद्दीप्त क्रोध की प्रबलता और पुष्टता होती है।

## उदाहरण

## अहंभाव

कवित्त—

कब लौं अभाग तू बनाइहै अभागो मोहि
जो न भागिहै तो तोको पौरुख दिखैहौं मैं।
काढ़ि हौ कचूमर पकरि मुँह लाल कैहौं
चाल चलिहै तो बाल बाल बीनि लैहौं मैं।

एरे क्रूर मानि है कही ना 'हरिऔध' की तो
धूर माँहिं तोको चूर चूर कै मिलैहौ मै ।
पसुता दिखैहै तो पिसान करि देहौ पीसि
मसक समान मूढ़ तोको मीसि देहौ मै ॥ १ ॥

सामने जो ऐहै महा बिकराल - काल हूँ तो
लोहा लेइ तासो ताल ठोकि ठोकि लरिहौ ।
गरजि गिराइहौ गुमान मगरूरिन कौ
तरजि तिलोक - पति हूँ को तेह हरिहौ ।
'हरिऔध' धाइहौ कँपाइ दिगदंतिन कौ
बड़े बड़े धीर - धुर - धारिन कौ धरिहौ ।
वैरिन की अँखियाँ बनैहौ बारि - धारा - मयी
धूरि - धारा - मयी मैं बसुंधरा कौ करिहौ ॥ २ ॥

दून की जो लैहै ताप देहौ तिगुनो तो ताहि
बहँके बहँक - बानि काँहिं बहकैहौ मैं ।
कीच जो उछारि है तो पकरि पछारि देहौ
पीछे जो परैगो तो न पीछे पाँव नैहौ मै ।
'हरिऔध' करिकै बिरोध का बिरोधी कैहै
वाको अवरोध बारि - धारा मै बहैहौं मै ।
बल जो दिखाइहै बिलाइहै बल्ले सम
बैर - बलि - बेदिका पै वाको बलि देहौ मै ॥ ३ ॥

## उत्तेजिता बाला

कवित्त—

बीजुरी बिलसि घन - अंक मै जो कैहै केलि
तो मै ताको फूटी-आँखि हूँ ते ना निहारिहौ ।

सारी वारि-बूँदन को बारिधि मैं बोरि दैहौं
बसुधा ते बरखा बयारि को निकारिहौं।
'हरिऔध' बैर करिहै जो मो बियोगिनी ते
तो मैं मोर - कुल को मरोरि मारि डारिहौं।
आदर न दैहौं कबौं कादर - पपीहन कौ
बजमारे - बादर को उदर बिदारिहौं॥ १॥

मंजुल - रसाल मजरीन को बिथोरि दैहौं
रसना - बिहीन कैहौं कोकिल - नकारे को।
कुसुम - समूह की कुसुमता निवारि दैहौं
मारि दैहौं गुजत - मिलिद - मतवारे को।
ए हो 'हरिऔध' जो सतैहै दुख दैहै मोहिं
बिरस बनैहौं तो सरोज - रस - वारे को।
अंतक लौं सारे-सुख - तत को निपात कैहौं
अंत करि दैहौं या बसंत बजमारे को॥ २॥

## पवि-प्रहार

### मनहरण

कवित्त—

कैसे तो रसातल पठाइ दैहौं तोको नाँहिं
ताड़ित जो तोते होत भारत अवनि है।
तू जो बार बार वार करत हितून पै तो
मेरो कर कैसे ना कटारी तोहि हनिहै।
'हरिऔध' कहै एरे कुल के कलंक जो तू
तमकि तमकि जाति - नेहिन पै तनिहै।
मेरी बंक - भौं तो तेरी बंकता नसैहै क्यों न
मेरो लाल-नैन क्यों न तेरो काल बनिहै॥ १॥

एड़ी और चोटी को पसीनो करि एक जो तू
खोटी है करत क्यों न दाँत कोट कैहौं मै।
रोटी के निमित्त पेट काटि लेत औरन के
ऐसी छोटी बातन ते कैसे ना घिनैहौ मै।
'हरिऔध' तू जो जाति-पीठ की चमोटी बन्यो
कैसे तो न बार बार पोटी दूहि लैहौ मै।
मोटी-मोटी-बाहै बदी-मोटैं जो बनति है तो
एरे नर तेरी बोटी बोटि काटि दैहौ मैं॥ २॥

कमनीय - कामिनी मै कुल मै कुलीनता मैं
कालिमा लगाइ क्यो कलंक मै सनत है।
काहें बहु - आनन के सुनत अनैसे बैन
काहें अपकीरत - बितानन तनत है।
'हरिऔध' तोते जो पै हिंदू हित होत नाँहिं
हिंदू ह्वै के जो तू जर हिंदू की खनत है।
काहें करवाल कालिका की ना परति तो पै
काहें तो न काल को कलेवा तू बनत है॥ ३॥

कोऊ गिरि काहें तेरे सीस पै गिरत नाँहिं
धाक खोइ काहें तू धरा मै ना धँसत है।
काहें ना रसातल सिधारत रसा के हिले
काहें ना कपालिनी - कुफाँस मै फँसत है।
'हरिऔध' हिंदू बनि हिंदू - कुल-बाल होइ
हिंदू - गरो जो तू जेवरीन ते कसत है।
काहें तो प्रचंड - यम - दंड ना लगत तोहि
काहें तोको कारो काल - नाग ना डँसत है॥ ४॥

मानव की कहा ह्वैहै कुपित अमानव हूँ
खग मृग मीनन की मंडली कँपावैगी।
तरु काल ह्वैहै फूल फल मै समैहै सूल
दल दलि दैहै बेलि लता कलपावैगी।
'हरिऔध' कहै देस-द्रोही तू न पैहै कल
धाई धूरि-धारा असि-धारा सी सतावैगी।
भारत के कोटि कोटि कीट काटि काटि खैहै
चीटे चोट कैहै चींटी तोको चाटि जावैगी॥ ५॥

दिनकर-किरिनै करेजो तेरो बेधि दैहै
चंद की कलाये तोको गरल पिआइहै।
अत तेरो करिहै दिगंतन के दंति दौरि
धूरि माँहिं तोको धरा-धरहूँ मिलाइहै।
'हरिऔध' जो तू कुल-लाल ह्वै बनैगो काल
हिंदुन को तेरे दृग-लाल जो कँपाइहै।
कारे-कारे-बारि-बाह ते तो पवि-पात ह्वै
नभ-तारे तो पै तो अँगारे बरसाइहैं॥ ६॥

रेति रेति जाति-गरो कौलौ तू मनैहै मोद
चेति चेति कौलौं लोक-चित्त-चाव हरिहै।
काल बनि बनि काहू काँहिं कलपैहै कौलौ
लाल ह्वैहै कौलौ तू लहू सो हाथ भरिहै।
मानत है काहें 'हरिऔध' की कही ना कूर
कालिमामयी तू कौलौ मेदिनी को करिहै।
कोऊ ज्वाला-मुखी फूटि कैहै टूक टूक तोहि
एरे महा-पापी तो पै बज्र टूटि परिहै॥ ७॥

दिवि ह्वैहै अदिवि धनाधिप बराक ह्वैहै
सकल बिभूति अ-बिभूति पद पावैगी।
सुर ह्वैहै असुर सुराधिप-समन ह्वैहै
काम - धेनु सारी कामधेनुता गँवावैगी।
कहै 'हरिऔध' एरे हिंदू कुल के कलंक
जाति काँहिं तेरी कूट नीति जो कँपावैगी।
ज्वाल-माला ह्वैहै तो मयंक-कला केलि-मयी
तोको कल्प बेलि कल्प कल्प कलपावैगी॥८॥

तेरो नाम सुने नाक नीचता सिकोरि लैहै
तेरो मुख देखे महा-पातक सिहरि है।
पामरता पै है यम-यातना परसि तोहि
लोक-कालिमाहुँ को कलंकित तू करि है।
'हरिऔध' कहत पुकारि जाति-बैरी सुन
जाति बैर-बिरद्द बहँकि जो तू बरि है।
गौरव तिहारो तो अगौरव-बिभूति ह्वैहै
कौरव-समान तू हूँ रौरव मैं परि है॥९॥

कैसे भला हिंदुन को कबहूँ अकाज हो तो
हिंदू ह्वै अहिंदू काज जो न करि जातो तू।
भीर क्यो परति क्यो भभरि-हित भागि जात
नाना बैर-भावन ते जो न भरि जातो तू।
'हरिऔध' जाति तो अकंटक न कैसे होति
कंटक-समान पंथ ते जो टरि जातो तू।
गरि जातो सरि जातो कतहूँ निकरि जातो
जरि जातो बरि जातो जो पै मरि जातो तू॥१०॥

दोहा—

गरल बमत बहकत रहत दहत हरत चित चैन ।
कैसे लोने नैन मै राई लोन परै न ॥११॥

कैसे ऐंची जाय नहिँ क्यो न बनहि बदनाम ।
जब चलि जीभ चलावतै रहति चाम के दाम ॥१२॥

सत बनेहूँ जो हरत काहू गर को हार ।
काहें वाके सीस पै टूटि न परत पहार ॥१३॥

ते असंत है सत नहिं क्यो न गहहिं करवाल ।
जिनकी अँखियाँ लाल ह्वै बनहिँ लोक-हित काल ॥१४॥

जो भिरि है करिहौ उभरि बीर भाव को अत ।
हौ बैरिन कौ तोरि हौ सकल - बिखीले - दत ॥१५॥

बचि पै है वैरी नहीं परि सौहै करि सौह ।
हरिहै सारी वंकता बक भई मम भौह ॥१६॥

---

# भयानक

## स्थायी भाव—भय

## देवता—काल

## वर्ण—श्याम अथवा कृष्ण

आलंबन—भयंकर दृश्य, घोर दर्शन जन्तु अथवा प्राणि विशेष, भीति-वर्द्धक स्थान आदि ।

उद्दीपन—भयंकर दृश्यो का अवलोकन, भयजनक प्राणियों और स्थानों का दर्शन, उनकी चेष्टायें और उनके कार्य्यकलाप ।

अनुभाव—विवर्णता, कप, मूर्छा, स्वेद, रोमाच, स्वरभग आदि ।

सचारी भाव—आवेग, मोह, त्रास, दैन्य, शका, तथा मृत्यु आदि ।

इस रस में इद्रिय विक्षोभ के साथ भय की पुष्टि होती है। इसके पात्र कापुरुष और भीरु स्त्री आदि हैं।

## विशेष

किसी किसी ने इस रस का देवता यमराज को माना है ।

## भय की बिभूति

## मनहरण

कवित्त —

याजन यजन बहु - साधन - बिराग राग
ब्रत उपवास काल - त्रास करतूति है ।
सॉसत - सहन नाना - सासन प्रतीति प्रीति
सहज - भयानक - बिभावना प्रसूति है ।

'हरिऔध' बिबिध - बिभीषिका थहर भरी
सकल - ससंक - भाव - गात-भूति है।
भभरे जनन की भभर भूत - प्रेम - भीति
भीरु - जन - अनुभूति भय की बिभूति है ।। १ ।।

भूत - प्रेत परम - भयावनी कुमूर्ति देखे
चैन से कबौ ना भूतहूँ को पूत सूतिहै।
फुँकरत फनि - गन फनिता बतैहै कौन
कालिका-करालता कहाँ लौं कोऊ कूतिहै।
'हरिऔध' काहि से गरल - कंठता है छिपी
काको ना कपाल-नैन-ज्वाल - अनुभूति है।
भैरव समेत भूत - नाथ की प्रभूत - भूति
भूरि - भय - भावना भयंकर - बिभूति है ।।२।।

कहा अजगुत बक्र - दंत बिकराल - काय
कदाकार कोऊ भूरि - भीति उपजैहै जो।
कौन है विचित्रता विकल्पित विपुल - मूर्ति
बनिकै भयंकरी बिभीषिका बढ़ैहै जो।
'हरिऔध' कछू ना अचंभौ तम-तोम - तरु
भैरव - बिभूति ह्वै अपार डरपैहै जो।
जहाँ तहाँ खरे क्यों दिखैहैं ना प्रभूत - भूत
भय - अभिभूत - मनभूत बनि जैहै जो ।। ३ ।।

## बिभीषिका

कवित्त—

सूरता बिलोके साँचे-सूर - कुल - केसरी की
बड़े - बड़े - साहसी समर मैं सकाने है।

बीरता - विकंपित भई है बाँके - बीरन की
बैरिन के बैभव बलूले लौं बिलाने हैं।
'हरिऔध' कर - करवाल - गहे केते भीरु
भीत ह्वै कै गिरि की गुहान मैं सामने हैं।
धनु ताने केते हहराने केते थहराने
केते भहराने केते भभरि पराने हैं॥ १॥

बासर बड़े हैं पै अबासर बनैंगे बिधि
लोमसता चाव कौलौं लोमस दिखावैगे।
चिरजीवी जेते हैं न वेऊ चिरजीवी अहैं
कैसे चिर - जीवन जगत जीव पावैगे॥
'हरिऔध' अमरावती न अमरावती है
सारे लोक काल के उदर मैं समावैगे।
कौन है अमर? है अमरता निवास कहाँ?
एक दिन अमर - अमर मर जावैगे॥ २॥

## प्रलय काल

कवित्त

सारे - लोक लोकपाल सहित विलोप ह्वैहैं
कुल - कला-निधि काल - गाल मैं समावैगे।
तारकता तजि तजि तारक तिरोहित ह्वै
प्रलय - पयोधि मैं बलूले पद पावैगे।
'हरिऔध' देव देव - लोक हूँ दुरैंगे कहूँ
दिवि मैं दिवा - पति न दिपत दिखावैगे।
मिलि जैहैं सारे भूत ही न पंच भूत माँहि
एक दिन पंच - भूत भूत बन जावैंगे॥ १॥

सिव की समाधि भई भंग भीम - नाद भयो
कँपे लोक - पाल धीर ध्रुव ना धरे रहे।
सहमे सुरासुर स-संकित दिगंत भयो
सारे पारावार ना प्रपंच से परे रहे।
'हरिऔध' प्रलय - बिभूति को बिकास देखि
भुवन - स - भूधर भयातुर अरे रहे।
भीत भये भूत भारी - भीरुता धरा मैं भरी
सित - भानु डरे भानु भभरे खरे रहे॥ २॥

धाँय धाँय दहिहै धरातल मसान - सम
अगनित खानैं ज्वाल - माल-जाल जनिहै।
पावक ते पूरित दिगंत हूँ दुरंत ह्वैहै
दव के अधर मैं बितान बहु तनिहै।
'हरिऔध' ग्वैहै ऐसो बार जब नाना लोक
लोक - पाल - सहित हुतासन मैं सनिहै।
सूर ससि जारे जैहै प्रलय - अँगारे माँहिं
सारे तारे तपत - तवा की बूँद बनिहै॥ ३॥

डरपैहै घिरि घेरि दानव - समान घन
परम - प्रचंडता प्रभंजन दिखावैगो।
कर्न - भेदी - गरज कँपैहै दिग्गजन काँहिं
काको बिज्जु-व्यापक-प्रकोप ना कँपावैगो।
'हरिऔध' बारि - धर मूसल-समान-धार
बारि-निधि प्लावन लौं बिबस बनावैगो।
भूमि - तल निलय बनैहै भू - बलय माँहिं
सारो - लोक प्रलय - सलिल मैं समावैगो॥ ४॥

सारे - प्रांत प्लावन मैं परिकै बिलीन ह्वैहै
पुर - ग्राम - पत्तन की सत्ता लोप पावैगो।

पवि - पात भये बिनिपात ह्वै है जीवन कौ
प्रलय - प्रबलता ते जनता बिलावैगी।
'हरिऔध' प्रखर - प्रभंजन - प्रकोप कीने
बिदलित पूरी - पादपावलि दिखावैगी।
मिलि जैहै धूरि मै धरा - धर बिधूनित ह्वै
धारा - धर - धारा मै वसुंधरा समावैगी ।।५।।

ज्वाल - माला - बमन सहस-फन-सेस कैहै
काल - ज्योति ज्वलित - दिगंतन मैं जगिहै।
मदन - दहन को दहन - पटु खुलैगो नैन
दाहकता दाहक - त्रिसूल की उमगि है।
'हरिऔध' प्रबल - प्रलय - परिपाक भये
लोक-ओक पावक - बिपाक - पाक पगि है।
परम - प्रचंड - मारतंड उगिलैगो आग
अनल - अखंड महि - मंडल मै लगि है ।।६।।

कूदि कूदि उछरि उछरि कै लगैहै आग
लाग कै लवर - ब्योम - ब्यापिनी उठावैगो।
दाहैगो अनत - जीव - जंतु - यातुधान-दल
बरत - मसाल घर बार को बनावैगो।
'हरिऔध' करिहै दिगंत को दवारि - दग्ध
बसुधा-बिभूति को बिभूति कै दिखावैगो।
प्रलय - प्रकोप - पौन - पूत अति बंका-बीर
डंका दै दै नाना - लोक-लंका को जरावैगो ।।७।।

ज्वाल-माल जगे दग्ध ह्वै हैं जगती के जीव
घर-बार बसन-बितान जैसो बरि है।

तृन-पुंज-सरिस दहत दिखरैहै मेरु
बन मै भयंकरी-लवर फूटि परिहै।
'हरिऔध' बारहो-दिवाकर उदित भये
दुसह-दवारिता दिगंतन मै भरिहै।
तूल-सम सकल-धरातल को तरु-तोम
तेल-सम तोय-निधि तोय-रासि जरिहै ॥८॥

नाचि नाचि जरति जमात मनु-जातन की
बारि ही मै बरत रहत बारि-वारे है।
बिहग उड़त गिरि परत दहत जात
पसु-बृंद पावक मै परि पचि हारे हैं।
'हरिऔध' कहाँ जाँय, कहा करै, कैसे बचैं,
प्रलय-प्रपंच ते प्रपंचित बिचारे हैं।
अवनि गगन ही अहै न उगिलत आग
सरित-पतीन हूँ मै भरित अँगारे हैं ॥९॥

भानु ते भभरि भूरि-कंपित-भयो है लोक
पवि-उर प्रलय-प्रकोप ते हिलत है।
द्रवी-भूत-धातुन को प्रबल-प्रवाह आइ
पल पल नाना-प्रानि-पुंज को गिलत है।
'हरिऔध' हाहाकार पूरित दिगत भयो
कहाँ जाय कोऊ कहीं त्रान ना मिलत है।
तारे ही गगन ते न गिरहिं सरारे-भरे
भूतल हूँ आग ह्वै अँगारे उगिलत है ॥१०॥

भभरि भभरि भागिहै पै कहाँ जैहै भागि
हहरि हहरि काँपिहै पै क्यो उबरि है।

कहाँ कै है माता पिता भ्राता क्यो बचैहैं काहि
आप ही जो प्रबल दवारि माँहिं परिहै।
'हरिऔध' कैसे ता बिमूढ़ जन ह्वैहैं नाँहिं
सिगरे सदन जो बरूद जैसे बरिहैं।
धरती बनैगी जो पै जरती चिता-समान
कैसे तो न सारे जगती के जीव जरिहैं॥ ११॥

धसके, धरातल मै धँसि जैहै नाना जीव
ज्वाल माल लगे गेह धू धू धू धू जरिहैं।
परि परि पावक मै बिपुल - पहार-पंक्ति
प्रलय-पटाका ह्वै प्रचंड रव करिहैं।
'हरिऔध' बार बार भू पै बज्र-पात ह्वै है
काल-पेट दहत - भुवन भूरि भरिहै।
काँचे-घट-तुल्य सारे-लोक फूटि फूटि जैहैं
टकराये कोटि कोटि तारे टूटि परिहैं॥ १२॥

नभ-तल भू-तल पताल है दवारि भरो
दिवि है दहत है उदधि-बारि बरतो।
तारक-कतार परि पावक मैं छार होत
प्रानि - पुंज - प्रान है दुरंत - दव हरतो।
'हरिऔध' नाना - पुर - नगर-अगारन मैं
उलका निपात है अंगारन को भरतो।
कोपे काल प्रलय - अनल बिकराल भयो
जगे ज्वाल - माल है जगत सारो जरतो॥ १३॥

कोऊ हाहा खात थहरात कोऊ भहरात
कोऊ परो दुसह दवारि मे दिखात है।

तरु है जरत धू धू धू धू हैं जरत मेरु
धाँय धाँय बरत धरातल को गात है।
'हरिऔध' ठौर ठौर धधकत आग ही है
ज्वाल मै जरति जीव - जंतु की जमात है।
महा हाहाकार है सुनात ओक - ओक माँहि
प्रलय जराये लोक लोक जरो जात है॥ १४

करको प्रहार तारकावलि को लोप कैहै
दिवि को दलैगो दिवा - पति को मिटावैगो।
नाना - अंग - चालन दिगंतन को कैहै चूर
ध्वंस कै धरातल को धूरि मै मिलावैगो।
'हरिऔध' होत महा - काल को करालनृत्त
सहस - बदन - ब्याल - बैभव बिलावैगो।
लात लगे टूटिहै अतल - तल पत्ता - सम
पल मै पताल हूँ को लत्ता उड़ि जावैगो॥ १५

सृग - नाद सुने घोर - डमरू - डिमिक भये
कोपे महा - काल के सुरासुर सिहरिगे।
उच्छलत - बारिधि को वारि बिचलित भयो
धसके धरा - तल धरा - धर बिदरिगे।
'हरिऔध' चौदहो भुवन भय - भीत बने
काँपे पंच - भूत दसो दिग्गज भभरिगे।
कोल गयो डोल काठ मारिगो कमठ हूँ को
बैल बिललानो ब्याल - बदन बिहरिगे॥ १६॥

हुँकरत बैल के बलूले लौं बिलाने लोक
फुँकरत फनि के अनंत - ओक जरिगे।

प्रकटे त्रिलोचन - त्रिसूल ते दुरंत - द्व
सारे प्रानी दावा मैं पतंग - सम परिगे ।
'हरिऔध' कहै प्रलयंकर - प्रकोप भये
मरिगे अमर बारि - धार - वारे बरिगे ।
गरे के गरल ते अँगारे झरे भूतल पै
नयन उघारे तारे पावक ते भरिगे ॥ १७ ॥

बाम देव बामता ते मर ह्वै अमर जैहै
कोटि कोटि मनु - जात कीट जैसे मरिहै ।
धूरि माँहिं मिलिहै सुमेर से धरा - धर हूँ
बारिद - प्रलै के तेल - बिंदु जैसे जरिहैं ।
'हरिऔध' त्रिपुरारि - नयन तृतीय खुले
तीनो लोक तूल के अंबार जैसे बरिहै ।
काल - कोप पौन के हिलाये ब्योम-तरु-तोम
फल के समान सारे तारे झरि परिहैं ॥ १८ ॥

लोकन की सत्ता औ महत्ता महा-भूतन की
प्रलय महान बिकराल कर लूटैगो ।
अतक-अनंत की अनंतता को अंत ह्वैहै
टूक टूक ह्वैबे ते छपा - कर न छूटैगो ।
'हरिऔध' हर के अकांड - तांडवो के भये
भांड के समान सारो ब्रह्मांड फूटैगो ।
प्रबल प्रचंड - मारतंड खंड खंड ह्वैहै
परम - उदंड - यम काल - दंड टूटैगो ॥ १९ ॥

## प्रलय प्रकोप

दोहा—

रवि ससि रहि जैहैं नहीं बचि है नाँहिं अनंत।
अंत समय करिहै प्रलय अंतक हूँ को अंत॥ १।
जरि जैहै सारो जगत बरि जैहै बनि घास।
उगे दिवाकर बारहो बहे पवन-उनचास॥ २।

## नरक वर्णन

दोहा—

पग पग पै पग-वेधिनी पथ-पौरुख-गिरि गाज।
है कंटक-मय नरक-महि कुल-कंटक जन काज॥ १॥
पग पारत जरि बारि उठत तरफत हाहा खात।
अहै आततायीन हित नरक-अवनि अय-तात॥ २॥
साँसत पै साँसत सहत पिसत दहत दिनरात।
जब कौरव से पातकी रौरव मैं परि जात॥ ३॥
कौन नारकी बिन जिअत निज तन लोहू चाटि।
को काकी पोटी दुहत बोटी बोटी काटि॥ ४॥
जरहिं बरहिं पल पल पिसहिं मिसहिं खाहिं तरवारि।
कौन यातना ना सहहिं नरक परे नर-नारि॥ ५॥
काल-ब्याल-मय-महि मिले दहत देखि सब ओक।
भागे भागे फिरत हैं नरक अभागे-लोक॥ ६॥
गिरत परत सोनित बमत फूटत रहत कपार।
पापी पावत नरक मैं पल-पल प्रबल-प्रहार॥ ७॥
जरत नरत को जीव है पै न होत जरि छार।
धरा आगि उगिलत रहत बरसत गगन अँगार॥ ८॥

---

# वीभत्स

## स्थायी भाव—जुगुप्सा अथवा ग्लानि वा घृणा

## देवता—महाकाल

## वर्ण—नील

आलंबन—दुर्गन्ध युक्त पदार्थ, मास, रुधिर, चर्बी, विष्ठा, मूत्र आदि—

उद्दीपन—दुर्गन्धित पदार्थों में कीडे पड़ना, उनपर मक्षिकादि पतन।

अनुभाव—थूकना, मुँह फेर लेना, आँख बद करना, नाक सिकोड़ना, रोमाच आदि।

संचारी भाव—मोह, मूर्छा, आवेग, व्याधि, आदि।

इस रस मे ग्लानि और घृणा की परिपूर्णता होती है और इन्हीं भावों द्वारा यह पुष्ट होता है।

## विशेष

इस रस में जुगुप्सा की पुष्टि और ग्लानि एवं घृणा की अधिकता होती है इस रस का पात्र उद्वेगमय मानस होता है।

## युद्ध-भूमि

## मनहरण

कवित्त—

काटि काटि खात मुंड-माल मे के मुंडन कौ
मास मेद मज्जा ते अघाइ उमहति है।
असित - कलेवर, डरावने विसाल - नेत्र,
चाबि - चाबि हाड़ बिकरालता गहति है।

'हरिऔध' बाल बगरे है काल - जाल जैसे
बार बार अट्ट अट्ट हँसति रहति है।
शव-राशि-कढ़ी रण-भूमि रक्त - धारा माँहि
शव पै सवार शव-वाहना बहति है॥ १॥

कटी अँगुरीन ते सिंगारति रहति गात
आँत ते सँवरि भूरि-गौरव गहति है।
मेद मास मज्जा खाइ खाइ कै मुदित होति
स्वेद चाटि चाटि स्वाद सौगुनो लहति है।
'हरिऔध' कहै रण-भूमि-सरि-धारा माँहि
बिपुल-बिनोदित ह्वै भैरवी वहति है।
खिलति महा है गज-खाल को बसन धारि
लोहू को महावर लगाइ उमहति है॥ २॥

खोपरीन खाइ कै बदन ते बमति ज्वाल
रुंड - मुंड - झुंडन बिहंडि बिहरति है।
पकरि कबंधन करति है रुधिर - पान
प्रचुर - करेजन चबाइ उछरति है।
'हरिऔध' जोरि जोरि जीह गज-बाजिन की
पान सम चाबि मोद भावरै भरति है।
रण-भूमि माँहि भूत-नाथ की बिभूति बनि
भूत-लीला भूतन की मंडली करति है॥ ३॥

कूकर-समूह अंग भंग कै भिरत भूरि
भरित-उमंग काक आँखि काढ़ि खात है।
रुरुआ ररत भूत भीर है करत रव
भैरव-निनाद भरो भूतल दिखात है।

'हरिऔध' रण मै लुठत है बिपुल-लोथ
पल पल शोणित प्रवाह अधिकात है।
घात माँहिं बैठि गीध आँत ऐंचि लेत
गात नोचि नोचि खात जम्बुक-जमात है ॥ ४ ॥

सवैया—

काल कलेऊ बनावत लोक को कालिका मुढन ठाट है ठाटति।
गीध-समूह निकारत आँत है त्यों करवार घने-सिर काटति।
ए 'हरिऔध' अरी रण-बाहिनी लोथते है धरनी-तल पाटति।
नाचति हाड़ चबाइ कै योगिनी चाट ते लोहू चुरैल है चाटति ॥५॥

## मानव-तन

कवित्त—

कीचर भरे हैं नैन नेटा भरी नासिका है
थूक औ खेखार लार पूरित बदन है।
नख ते बिहीन अहै एक आँगुरी हूँ नाहिं
हाड़ को है ढाँचो रोम-सख्या अनगन है।
'हरिऔध' अग अंग अहै चाम-आवरित
रक्त मेद मज्जा मास स्वेद को सदन है।
क्रूर-करतूत-भरो छूत-भरो खूत-भरो
मल-भरो मूत-भरो मानव को तन है ॥१॥

## स्मशान-भूमि

कवित्त—

कहूँ धूम उठत बरति कतहूँ है चिना
कहूँ होत रोर कहूँ अरथी धरी अहै।
कहूँ हाड़ परो कहूँ जरो अध-जरो बाँस
कहूँ गीध-भीर मास नोचत अरी अहै।

'हरिऔध' कहूँ काक कूकर हैं शव खात
कतहूँ मसान मैं छछूंदरी मरी अहै।
कहूँ जरी लकरी कहूँ है सरी - गरी - माल
कहूँ भूरि - धूरि - भरी खोपरी परी अहै ॥१॥

## कूकर शूकर

कवित्त—

चंद - मुखी चाव ते बनावत चुरैल काँहि
ताको कहै कंज जो बिसिख - बिख-धर है।
नरक - बिधायिनी को मानत सुरांगना है
आमिख के पिंड को गिनत गौरि - बर है।
'हरिऔध' काहै काम कामिनी-बिजित - नर
कूकर कि सूकर कि काक है कि खर है।
मान जो हरत ताके मुख को चबात पान
मूसत जो माल ताको चूसत अधर है ॥१॥

## नरपिशाच

कवित्त—

साँप ते डरावने भयावने है भूतन ते
काक जैसे कुटिल अपार - अरुचिर है।
अपजस - भाजन कलंक के निकेतन है
कामुकता - मंदिर के निंदित अजिर हैं।
'हरिऔध' मानव - स्वरूप माँहिं दानव हैं
आँखि कान आछत ते आँधर बधिर हैं।
हाड़ जे चिचोरत बेचारी - बिधवान के हैं
भोली - बालिकान के जे चूसत रुधिर हैं ॥१॥

बानि कै सजीवन जे जीवन हरत जात
जीवन को केते छल करि जे छरत है।
सतत पतंग - प्रानि - पुंज के दहन काज
मेदिनी मै दीपक - समान जे बरत है।
'हरिऔध' का है वे अमानव कि मानव है
छाति पै सजातिन के मूँग जे दरत है।
औरन को मूसि मूसि जिनको बढत मास
लहू चूसि चूसि कै जे फूलत फरत है॥ २॥

## नराधम

दोहा—

ताको थूकै क्यो न जन होठ दुखनते काटि।
जाकी काया पलति है थूक पराया चाटि॥१॥

पहलो दिवि को दूत है दूजो है यम - दूत।
साँचो पूत सपूत है है कपूत तो मूत॥२॥

लाज न आई नीच को भयो कान नहिं तात।
बात बात पै देखियत जनता थूकत जात॥३॥

वा सम अधम न दूसरो जो दुख देत दुलारि।
जाकी मुँह - लाली रहत ललना - लोहू गारि॥४॥

सो मानव है जगत मै तो दानव है कौन।
मास - खात लोहू पिअत हाड़ चिचोरत जौन॥५॥

## कलंक कथा

बिगरत है परलोक हूँ कीने काज अपूत।
खरो खिन्न नर को करत नरक भरो मल - मूत॥१॥

सौहै मुँह कैसे करै है कलंक-मय गाथ।
लहू बने लोचन अहैं लहू भरे है हाथ ॥२॥
ताके चित की बासना तासु चाव कहि देत।
अगल बगल अवलोकि कै बगल सूँघि जो लेत ॥३॥
मैलो मुख मल बमत है जब कबहूँ समुहात।
भेद बतावत भीतरी स्वेद-गंध-मय-गात ॥४॥
बोलि अनैसे-बैन जो बरबस बनत बलाय।
तो मुँह मै कीरे परै तुरत जीह सरि जाय ॥५॥

---

# शांत

## स्थायी भाव—शम अथच निर्वेद

## देवता–शांतिमूर्ति विष्णु

## वर्ण–कुंद-पुष्प-कांति समान शुक्ल

आलंबन—संसार की असारता और अनित्यता का ज्ञान, परमात्मा के सत्य स्वरूप का अनुभव।

उद्दीपन—सद्गुरु प्राप्ति, सत्संग, पवित्र आश्रम, पवित्र तीर्थ, रमणीय एकांत वन, सच्छास्त्र अनुशीलन, श्रवण मनन आदि।

अनुभाव—रोमांच, पुलकावली, अश्रु-विसर्जन आदि।

संचारीभाव—धृति, मति, हर्ष, स्मरण, प्राणियों पर दया आदि।

## विशेष

काम क्रोधादि शमन पूर्वक निर्वेद की परिपुष्टता को शांत कहते हैं, इसका आश्रय उत्तम पात्र है।

## असार संसार

### मनहरण

कवित्त—

मिलि जैहैं धूरि मैं धरा-धर धरा-तल हू
काल-कर सागर - सलिल को उलीचिहै।
बड़े बड़े लोक - पाल बिपुल बिभव - वारे
पल मैं बिलैहैं ज्यों बिलाति बारि-बीचि है।

'हरिऔध' बात कहा तुच्छ-तन-धारिन की
कबौं मेदिनो हू मीच-भै ते ऑख मीचिहै।
सरस-बसंत ह्वै बिरस सरसैहै नाँहि
बरसि सुधा रस सुधा-कर न सींचिहै॥ १॥

ऐसी ही लसैगी हरिआरी हरे रूखन मै
ऐसी ही ललामता ललित लता लहि है।
ऐसोई करैगो कूजि कूजि कल गान खग
सुमन सुरभि लै समीर मंद बहिहै।
'हरिऔध' एक दिन तू ही ऑखि मूँदि लैहै
ऐसी ही रहैगी मोद-मयी जैसी महि है।
ऐसी ही चमक चारु - चाँदनी चुरैहै चित
ऐसोई हँसत मंद मंद चंद रहिहै॥ २॥

प्रान बिन ताको तजि भजति सदा की नारि
तरसत हुती जाको किन्नरी बरन को।
दाहत चिता पै राखि सुदर सरीर वाको
जाकी पलिका को पावा हुतो सुबरन को।
'हरिऔध' देखत मसान माँहिं ताको परो
जाकी धाक कपत करेजो भू-धरन को।
चौर होत हुती जिनै मसक निवारन को
तिनै खात देखे नोचि गीदरन को॥ ३॥

पूजित - सचीस-धनाधीस औ फनीसहूँ के
जगदीस ईसहूँ के सीस जो धरी रहै।
कामिनी के कंठ कुच करन चरन हूँ की
जाते जेवरन हूँ की सुखमा खरी रहै।

'हरिऔध' कल औ कलेस काल-कौतुक है
सदा नाँहिं एक ही सी काहू की घरी रहै।
धूरि-भूरि-भरी गरी छिन्न-करी भूपै कबौ
बस्तु हूँ अनोखी मंजु-माला-सी परी रहै॥ ४॥

## आत्मग्लानि

कवित्त—

चल फिर न सकहिं परे है फेर माँहिं तऊ
बार बार फेरे पाप-पथ ते फिरे नहीं।
घरी घरी घर के घनेरे-दुख घेरे रहै
तब हूँ रुचिर-रुचि घेरे ते घिरे नहीं।
'हरिऔध' आयु-भोग-भाजन भरत जात
चित-भीरुताते तऊ उभरि भिरे नहीं।
गई आँखि तऊ आँखि होति आँखि-वारन की
गिरे दाँत तऊ दाँत बिख के गिरे नहीं॥ १॥

बड़े-बड़े - लोचन के लालची बनेई रहे
बिसर न पाई बात बेंदी - बिकसी की है।
छी छी छी छी कहैं लोग तऊ है न छो छी सुधि
सुछबि न भूल पाई छाती-उकसी की है।
'हरिऔध' चूकि चूकि करहूँ न चूक चुकी
कसक सकी न कढ़ि कंचुकी कसी की है।
उकसि उकसि आज हूँ न कस मै है मन
अकस न छूटि पाई काम-अकसी की है॥ २॥

# निर्वेद

कवित्त—

मेरी नारि मेरो पूत मेरो परिवार सारो
मेरो गाँव मेरो गेह मेरो धन जन है।
मेरो मीत मेरो तात मेरो हित मेरो नात
मेरो मुख मेरो नैन मेरो यह तन है।
'हरिऔध' ऐसे नाना चावन को चेरो अहै
मोह-भरे-भावन मैं रहत मगन है।
छोरि छोरि हारे छोरे बंधन न छूटि पाये
मोरि मोरि हारे मोरे मुरत न मन है॥ १॥

सवैया—

चाह नहीं सुर पादप की तर वाँ के तरून के जो रहि जैयै।
प्यास पियूखहूँ की न हिये 'हरिऔध' जो पूखन-जा लखि लैयै।
काम-दुघाहुँ सो काम कहा वह गो-धन जो अपनो धन कैयै।
त्यागिये राज तिहूँ पुर को अज-पूजित जो व्रज की रज पैयै॥२॥

मुख जोहत जो नित मेरे रहे उनको अब बैन सुनातो नहीं।
जिन सामुहें दीठ न कीनी कबौ उनको अब जोम जनातो नहीं।
'हरिऔध' कहा कहै औरन की सगहूँ लगतो नगिचातो नहीं।
अब तो जग-जीवन तेरे बिना जग आपनो कोऊ दिखातो नहीं॥३॥

आरस छोरि लहौ तुलसी-दल पारस पाइ पलौ न उमाहौं।
गावत वे प्रभु के गुन-पावन पावत मोद पलास की छाँहौं।
या जग मैं जकरे सँकरे परौ भाग छुटे 'हरिऔध' सराहौं।
साँवरे राज ते काज कहा हमैं रावरे पायन की रज चाहौं॥४॥

पाइ बिभौ कबहूँ गरबात कबौ हित पेट के आतुर धावै।
मोद सों मत्त बनै कबहूँ अति चिंतित ह्वै कबहूँ अकुलावै।

भूलै कबौं 'हरिऔध' सनेह मै सोक पगो कबहूँ बिलखावै ।
या बिध बावरो जीव बनो रहै कैसे कबौं गुन रावरो गावै ।।५।।

का पदवी जन - मान विभौ मिले जो पल मै तजि संग पराहीं ।
विद्या विवेकते काज कहा छल छोरिकै तोको न जो पतियाहीं ।
तौ 'हरिऔध' दया - निधि साँवरे और कछू कबौ चाहत नाहीं।
काहू उपावन प्रीति बनी रहै भावन वा पद पावन माँहीं ।।६।।

## विराग

दोहा—

थोरे मै अवसर परे ओरे लौं गरि जात ।
गोरे - गोरे - गात पै कत कोऊ गरबात ।। १ ।।

बाहु हेरि बहकत वृथा बनि पर - सुख - ससि राहु ।
सहसन के देखे कटी सहस - बाहु की बाहु ।। २ ।।

कोऊ बल करि अबल पै कत बलकत इतरात ।
लखे बलूले के सरिस बहु - बल - वान बिलात ।। ३ ।।

सारी धरती मै रही जासु धाक की धूम ।
धूमिल सक्यो मसान करि तासु चिता की धूम ।। ४ ।।

जाके धौंसे की रही महि मैं भरो धुकार ।
धू धू धू धू जरि भयो सो छिति - तल की छार ।। ५ ।।

तीन हाथ महि मै परो तिनको गात लखात ।
जे अवनी - तल - पति रहे अवनी मै न समात ।। ६ ।।

का अनगन जन बाजि गज का धन लाख करोर ।
मनुज लेत मुँह मोरि जब देखि काल - दृग - कोर ।। ७ ।।

# हमारी प्रकाशित पुस्तकें

## हिन्दी दासबोध

जिस तरह उत्तर भारत मे गोस्वामी जी की रामायण का प्रचार ाजा से लेकर रंक की झोपड़ी तक है, उसी तरह इस पुस्तक का ार दक्षिण भारत में है। भगवान तिलक ने तो 'दासबोध' को ार के सर्वश्रेष्ठ ग्रथो मे माना है। मूल्य सजिल्द पुस्तक का ३)

## भक्त और भगवान

सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, रसखान, बिहारी, भारतेन्दु, सत्य-नारायण तथा अष्टछाप के भक्त कवि-पुंगवो के भगवान के प्रति जो अनुपम उद्गार है उनका इस पुस्तक मे बहुत ही सुन्दर सकलन किया गया है। भक्तो के वास्ते तो यह अपूर्व पुस्तक है। मूल्य १॥)

## बिहारी की वाग्विभूति

बिहारी हिन्दी के बहुत लोक-प्रसिद्ध कवि है। उनकी सतसई की पढ़ाई कई परीक्षाओ मे होती है। पर बिहारी की विशेपताओ का सम्यक् उद्घाटन करनेवाली हिदी मे कोई भी पुस्तक नहीं थी; इस पुस्तक से बिहारी-सम्बन्धी सभी बातो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा। मूल्य १॥।)

## हिन्दी ज्ञानेश्वरी

महाराष्ट्र प्रान्त के प्रसिद्ध महात्मा श्री ज्ञानेश्वर जी ने भक्तों को भगवद्गीता का वास्तविक मर्म समझाने के लिए श्री शंकराचार्य के मतानुसार 'ज्ञानेश्वरी' नामक बहुत ही विद्वत्तापूर्ण और विशद टीका लिखी है। आज तक गीता पर जितनी टीकाएँ निकली हैं उनमें यह सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। मूल्य सजिल्द का ४॥)

## भाषा-भूषण ( सटीक )

अलंकार का ज्ञान प्राप्त करानेवाली यह सबसे छोटी अं सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। दोहों मे लक्षण और उदाहरण दोनों दिए गए इससे कंठस्थ कर अलंकार का ज्ञान प्राप्त करना सरल-सा है। मूल्य १

## हिन्दी-नाट्य-साहित्य

इस ग्रन्थ के आरम्भ में प्राय: ५० पृष्ठों में संस्कृत-नाट्य-साहित्य की उत्पत्ति, विकास, नाटक तथा लक्षण-ग्रन्थो का संक्षिप्त इतिहास, रूपक-भेद, वस्तु, रस आदि पर एक पूरा प्रकरण दिया गया है। इसके अनन्तर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पूर्व के नाटकों का इतिहास देकर भारतेन्दु जी की नाट्य-रचनाओं का विवरण आलोचना सहित क्रमशः तीन प्रकरणों में दिया गया है। इसके बाद भारतेन्दु-काल के अन्य नाटककारों का विवरण एक प्रकरण में देकर वर्तमान-काल के प्रमुख नाटककार 'प्रसाद' जी की रचनाओं की ६० पृष्ठों मे विवेचना की गई है। पुस्तक में नाटकों के इतिहास-सम्बन्धी समग्र ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। मूल्य २॥~)

## कहानी-कला

इस पुस्तक मे कहानियों की रचना कैसे होती है, इसका आकर्षक ढंग से, एक-एक बात का प्रेमचन्द जी तथा 'प्रसाद' जी आदि प्रसिद्ध कहानी-लेखको की कहानियो मे से उद्धरण देकर वर्णन किया गया है। जो लोग कहानी लिखना सीखना चाहते है उनके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। मूल्य १।।)

## वैदेही-वनवास

यह 'हरिऔध' जी की करुण-रस-प्रधान सर्वश्रेष्ठ रचना है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते आप करुण-रस के सागर मे इतने निमग्न हो जायँगे कि आपकी आँखो से आँसू गिरने लगेगे। लेखक ने एक-एक पंक्ति इसकी आँसू पोछ-पोछ कर लिखी है। ग्रंथारंभ मे काव्य-संबंधी अनेक बातो का दिग्दर्शन कराते हुए लेखक ने २५ पेज की भूमिका भी लिखी है। सभी पत्र-पत्रिकाओ ने इस पुस्तक की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। सचित्र व सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।)